हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली

विविध

कविताएँ, ज्योतिष, काव्यशास्त्र,

पत्र-संकलन

हजारीप्रसाद द्विवेदी
ग्रन्थावली
11
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली

"ताम्बूल ही गृहस्थ का श्रीचक्र है। इसमें केवल शिव-शक्ति का लीला-विलास ही नही, उनका तेज भी विन्यस्त है।"

—चारु चन्द्रलेख

निवेदन

प्रातः स्मरणीय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के समग्र साहित्य को एक सूत्र में अनुस्यूत करके हिन्दी-पाठकों को समर्पित करते हुए हमें अत्यधिक आनन्द का अनुभव हो रहा है। स्वर्गीय आचार्यजी के मन में अनेक परि-कल्पनाएँ तथा योजनाएँ थी जिन्हें कार्यान्वित करने के लिए वे निरन्तर क्रियाशील थे। परन्तु नियति-निर्णय से उन्हें अधूरी ही छोडकर वे चले गये हैं। **हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली** की प्रकाशन-योजना उसी सम्पूर्णता की शृंखला की पहली कड़ी है।

आचार्यत्व की गरिमा से दीप्त आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व और उनकी अपार सर्जनात्मक क्षमता किसी भी पाठक को चमत्कृत और अभिभूत करने के लिए पर्याप्त है। मनीषियों की दृष्टि में वे चिन्तन और भावना दोनों ही स्तरो पर महत्त्व-विन्दु पर भासमान है। उनकी रचना-दृष्टि समय के आरपार देखने मे समर्थ थी। इतिहास उनकी लेखनी का स्पर्श पाकर अपनी समस्त जड़ता खो बैठा और सतत् प्रवाहित जीवनधारा साहित्य में हिल्लोलित हो उठी, जो तीनों कालो को जोड़ देती है।

आचार्य द्विवेदी की बहुमुखी जीवन-साधना ने हिन्दी वाङ्मय के एक पूरे और विशाल युग को प्रभावित किया है। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी और बांग्ला साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे। साथ ही, अंग्रेजी साहित्य का भी व्यापक धरातल पर उन्होने परिशीलन किया था और अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ग्रीक साहित्य का भी रसास्वादन किया था। अगाध पाण्डित्य मे सहजता का मणिकांचन योग उन्हें सामान्य मानव की भूमिका में प्रतिष्ठित कर देने की क्षमता प्रदान कर देता था और वे अनायास ही जनहृदय से स्पन्दित और आन्दोलित हो उठते थे। उनका विद्वान् सरलता से सजग हो उठता था। वे प्रत्येक मन मे विराजमान हो जाने की अपूर्व मेधा के धनी हो जाते थे।

आचार्यजी की इन्ही अद्वितीय प्रवृत्तियो को स्थायी रूप देने के लिए इस ग्रन्थावली की योजना बनायी गयी है। विषय और विधा दोनों दृष्टि-कोणों को साथ रखकर विभिन्न खण्डों का विभाजन किया गया है। कुल मिलाकर ये ग्यारह खण्ड है—

1. पहला खण्ड : उपन्यास-1
2. दूसरा खण्ड : उपन्यास-2
3. तीसरा खण्ड : हिन्दी साहित्य का इतिहास
4. चौथा खण्ड : प्रमुख सन्त कवि
5. पांचवाँ खण्ड : मध्यकालीन साधना
6. छठवाँ खण्ड : मध्यकालीन साहित्य
7. सातवाँ खण्ड : लालित्य तत्त्व एवं साहित्य मर्म
8. आठवाँ खण्ड : कालिदास और रवीन्द्र
9. नवाँ खण्ड : निबन्ध-1
10. दसवाँ खण्ड : निबन्ध-2
11. ग्यारहवाँ खण्ड : विविध साहित्य

ग्रन्थावली को क्रमबद्ध करने मे अनेकों समस्याएँ आयी हैं। निबन्धों का विभाजन भी निबन्ध-संग्रह तथा तिथि-क्रम के आधार पर न करके विषय के अनुसार ही किया गया है। निबन्ध के अन्त में मूल निबन्ध-संग्रह का नाम दे दिया गया है। ग्रन्थावली अधिकाधिक उपयोगी हो सके, इस बात को ध्यान मे रखकर ऐसा किया गया है। कबीर, सूर और तुलसी के अतिरिक्त कालिदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर से आचार्यप्रवर प्राय: अभिभूत रहे है, अत: दोनों महाकवियों से सम्बद्ध सामग्री एक ही खण्ड में दे दी गयी है। अन्तिम खण्ड में विविध प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्री संकलित है। आचार्य द्विवेदी ने प्रारम्भ में काव्य रचनाएँ भी की थीं और अनेक अनुवाद भी। उन्हें यहाँ समाहित कर दिया गया है।

इस विशाल योजना की परिपूर्णता मे अनेक लोगों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया है जिसके बिना निश्चय ही यह कार्य पूर्ण नही हो पाता। उन सबके प्रति हम हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करते हैं। पं. राजाराम शास्त्री ने अप्रकाशित ज्योतिःशास्त्र एवं साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी रचनाओं के विषय में परामर्श दिया; और श्री महेशनारायण 'भारतीभक्त' ने मुद्रणप्रति तैयार करके हमारे दायित्व को आसान बनाया। हम इन दोनों को साधुवाद अर्पित करते हैं। श्रीमती शीला सन्धू और राजकमल प्रकाशन से सम्बद्ध सभी व्यक्तियों ने जिस तत्परता और रुचि से इस योजना को सम्पूर्ण कराया है, वह प्रशंसनीय है।

इन शब्दो के साथ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का सम्पूर्ण रचना-संसार ग्रन्थावली के रूप में, हम वृहद् हिन्दी विश्व परिवार को समर्पित करते हैं। इससे ज्ञानधारा एवं रससृष्टि मे थोड़ा भी विकास सम्भव हुआ तो हम अपने को कृतकार्य मानेंगे।

जगदीशनारायण द्विवेदी
मुकुन्द द्विवेदी

अनुक्रम

सारी उमर लेखक ने की ज्योतिप की पढाई,
पर बम्बईवाले ने फतह कर ली लड़ाई।
शुभलाभ, मेप-वृप-मिथुन-फल सबका हांकता,
साहित्य का सेवक मगर है धूल फांकता।
बंगाल के इस बोलपुर मे कटी उमर.
खजाना मगर तिलस्म का पहुँचा है अमृतसर।
वह छप गयी किताब बिक गयी भी बीस हां,
पै टापते ही रह गये लिक्खाड़जी हहा।
मैस्मर से लेके फ्रायड और युग की पोथी,
चाटी है मगर सब हुई बेकार और थोथी।
वह मेस्मरिज्म का जो करामाती है दर्पन,
अल्लीगढी जादूगरी का हो गया भूपन।
दिन तीन ही मे काले हो जायें सफेद केश,
ऐसा गया का एक करामाती है दरवेश।
वह भी न मिला हाय अभागे लिक्खाड़ को,
वह झोंकता ही रह गया किस्मत के भाड़ को!

—कविताएँ (खड़ी बोली)
ग्रन्थावली-11, पृ. 20

हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली

11

विविध
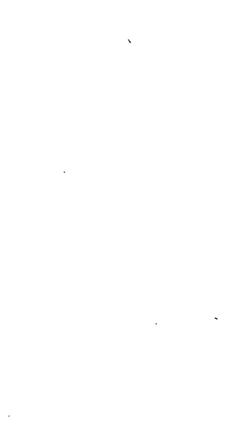
तरंगिणी के प्रति तरंग को ले रखकर निज कोल
अति उदास होकर प्रवाह ने खोकर सब कल्लोल
जकड़ भुजों से कलकल स्वर में कहा मन्द मृदु बोल—
कि रुकोगे क्या न एक दिन और ?

अट्ठारह

आत्मा की ओर से

उठता हुआ अभी यौवन था मदमाती थी आँखें
परियों की रानी-सी मैं उड़ती थी ले चित्रित पाँखें
नशा ! रूप का नशा अहा वह भी कितना मतवाला था !
कहाँ खबर थी यह कि जमाना पलटा खानेवाला था !
इन सड़कों पर रूपराशि का पुनः-पुनः अभिसार
झाँक-झाँक से ही सज्जित हो करता था गुजार
कि जिसकी एक-एक झंकार हृदय में अब भी है साकार !

सावन की थी रात मेघ मेदुर था अम्बर घोर
कोकिल का था मौन किन्तु भीषण उलूक का शोर
रह रहके बिजली की कौंधें लाती थी चकचौंध
किन्तु न ये सूने थे मेरे सड़क वीथियाँ सौंध !
कहाँ भयानक काल मेघ से चपला का अभियान
मिस्सी मण्डित सुदती दसनों का कि कहाँ मुसुकान।
प्रतिस्मित में मनोज-ललकार हृदय में अब भी है साकार!

अश्रु मान था हास्य दान था अनुनय मदिरा प्याली
लड़ने को ही प्यार समझती थी आँखें मतवाली।
साँप लोटते थे—बिजली गिरती थी चल चितवन में ! !
इस खण्डहर में भरा हुआ था यौवन का वरदान
धानी और कुसुम्भी में था छिपा हुआ अरमान

कि जिसका एक-एक मृदुतार .
हृदय मे अब भी है साकार !

घिरी विपत् की घोर घटाएँ पलटा खाया काल
इन सड़कों पर पहले देखी मैंने फौजी चाल
छाती फटती थी सुन-सुनकर नूतन जै-जैकार
उस दिन, केवल उस दिन मैंने समझा यह व्यवहार
कि जिसको समझा मैने यौवन था वह निपट किशोर
वाली वय मे मैंने देखे सुख के दोनों छोर !
कि उस दिन का वह करुण विचार
हृदय मे अब भी है साकार !

जुम्मे जुम्मे आठ दिनों की ही कुल मेरी आयु (रही)
यह कैशोर अवस्था क्या सहने को झंझावात (रही)
दिल्ली ने दिल खोल-खोलकर अपना साध बुझाया (था)
लखनौ के यौवनमद ने भी कुछ तो शौक निभाया (था)
हतभागिन मुर्शिदावाद-लाड़िली हाय असहाय !
हुई अचानक बाली वय में विधवा बन निरुपाय
कि उस दिन की असहाय पुकार
हृदय में अब भी है साकार !

तरु कोटर में घर्घर रव से घुग्घू ध्वनि विकराल (उठी)
उठी दहल साथ ही दिशाएँ सुन वीर ब्रीटन (?) जयकार (उठी)
चौंक उठी, 'या नबी' (?) उसी दिन आया मुख के पास
देख विशाल प्रचण्ड मरुस्थल दबी प्यार की प्यास
सपना-सा हो गया तभी से, झांझ साँझ का नाज !
और उमंगों के बदले था कायरता का राज !
कि विधु वदनों का करुण विकार
हृदय में अब भी है साकार !

सुन्दरियों के क्रीड़ागृह पर बैठा मत्त फिरंगी (था)
नागर रसिकों के महलों पर कर्कश शासन जंगी (था)
सिराज का ताज मीर जाफर के सिर पर आया
जिसमें कुछ अपमान रहा कुछ लोभ रहा विक्षोभ रहा।
जिसकी अति अपमान-क्षोभ-विक्षोभ-कलुष थी काया।

क्रूर काल के अट्टहास से काँपा पुन. दिगन्त !
सिहर उठा मेरा मर्मस्थल हन्त विधे हा हन्त!
कि अवलाओं का वह चीत्कार
हृदय में अब भी है साकार !!

देना था इनाम दुश्मन को नरक कीट वे दौड़े !
आह, मृणाल नालों पर पड़ने लगे कि वज्र हथौड़े !
जेवर छीना गया बेगमों का नरपशु के कर से
कुसुम कलाई कामिनियों के क्रूर वृकों से परसे !
कटा रसाल, गिरी मालतियाँ मुरझाकर सुख भूल
तोड़े गये कुचलकर निर्ममता से सुन्दर फूल !
कि उनका रोना हो बेज़ार
हृदय में अब भी है साकार !!

क्रूर काल, वे किसलय कोमल लाल-लाल से हाय !
और, शुभ्र शेफालिका सुमन नाल सदृश मृदु गात
इंगुर गौर, गोल, लोलुप लालसा-लसित भुजपाश
तुमको पिघला न सके वे रे निष्करुण विलास।
थे निस्तब्ध हर्म्य वातायन रोके श्वास प्रश्वास
केवल फटता था जब-तब क्रन्दन-ध्वनि से आकाश
कि सन्नाटे का वह व्यापार
हृदय में अब भी है साकार !

बिखुरे सुथरे अलक मुनव्वर से मुखड़े पर छिटके
टकते थे नरगिस नयनों की दुरवस्था मर मिटके
हाय, किन्तु फिर भी वहती थी निर्मम निष्ठुर धारा
जिसमें प्रतिबिम्बित होता था बिछुड़ा प्रेम सहारा ॥
जिन पर कुरवाँ होते थे उनका ही है यह हाल
हे सिराज ! आ एक बार लख क्रूर काल की चाल
कि जिसका एक-एक संचार
हृदय में अब भी है साकार !

ऐ वादे-सवा, लौट जा तू इस गुलशन मे अब फूल कहाँ ?
बुलबुल गिरफ्तार होगी गाना तेरा माकूल कहाँ ?
भूल गयी सारी गजलें तूती गाती है विपत्कथा—
एक-एक पद में प्रतिबिम्बित अन्तःपुर की घोर व्यथा।

देख रही हो उस मैना को फिरती है बेचैन
बुलबुल उसके कल कण्ठो मे वे सुमधुर पद है न—
कि जिनके कोमल कण्ठ वहार
हृदय में अब भी है साकार !

ऐ अनन्त आकाश, शून्य तुम सचमुच हो अलवेले !
कितने खेल धरित्री के सँग मे तुमने हैं खेले
कल तक तो वीणा के ही सँग छेड़ी तुमने तान !
आज फिरंगी के सँग करते भीम तोप घमसान ! !
इन महलों के सुमधुर संगीतों का वह झंकार
याद नही क्या कुछ भी तुझको हे निर्मम आकाश !
कि जिनका एक-एक मधुधार
हृदय मे अब भी है साकार !

हे निष्ठुर विधि, क्या अनन्त है तेरा उत्कट हास ?
किया तलब नूतन नवाब ने गीत, शराब विलास !
यम के शासन मे रतिपति ने डरकर साजे बाण !
कहाँ, किन्तु, क्षण-क्षण में आने-जानेवाले प्राण ?
स्मित पर विकनेवाले हृदयो का न यहाँ लवलेश !
दिल पर चलनेवाले निसि-दिन चरण कहाँ अब शेप ?
कि उनका भीतयुक्त संचार
हृदय में अब भी है साकार !

कोमल पद थे वही, वही थे रसमय वृक्ष अशोक !
किन्तु न खा आघात सुमनमय होने का था शौक
कहाँ आज गण्डूप सेक से बकुल कण्टकित होते ?
जब कि हृदय के पद्म पत्र ही शूल कण्टकित होते ?
श्यामाओं के कोमल तन मे ग्रीष्म शीत उपचार
कहने-भर को ही बाकी थे—सूने थे बाजार
कि उनका विवश प्रीति अभिसार
हृदय मे अब भी है साकार ! !

प्रलय घटा की घहराहट है या कि चण्ड ताण्डव की रोर !
वज्र टूटता है कि गगन फटता कर भीषण शोर !
अरे फिरंगी, रख दे टुक प्याले को कर किलकारी बन्द !
देख तुम्हीं मुझको हँसता है ओ अविजित, स्वच्छन्द

ऐ अतीत, लख एक बार आ वर्त्तमान की चाल
इस उन्मत्त हँसी में अपनी मादक नजरें डाल
कि जिसकी एक-एक किलकार
हृदय में अब भी है साकार !

ओ मुर्शिदाबाद की लक्ष्मी ! लौट लौट धीमे से,
अब जीवन अभिलाष हटा दे सदा हेतु जी में से !
देख फिरंगी लिखता है अपने घर को सन्देश !
हुई मुर्शिदाबाद-लाड़िली अब मेरी—सविशेष।
राज नहीं है ताज नहीं है साज नहीं न सिराज
केवल एक बची है अब तक प्रिय सिराज की लाज
कि जिसका एक-एक व्यवहार
हृदय में अब भी है साकार !

ठहर कल्पने ! कौन झांप देता है सुर-सरिता मे !
अलक लोल शव किसका वह हाथों से छाती थामे ! !
निठुर, वहाँ क्या नहीं जायगी ? लख उस हतभागी को
कैसे बढ़ सकती है सरले, बिना सम्हाले जी को ?
जिसे देखने को होते थे बहु नरपति बेचैन
हा, उस सुन्दर मुखड़े में अब एक रक्तकण है न—
कि जिसका सरस उदार विहार
हृदय में अब भी है साकार !

हा मयंकमुख, हा अतृप्त सुख, हा-हा कुन्तल श्याम !
हा सरोज पद, हा मनोज मद, हा-हा तनु अभिराम ! !
हा कोमल कर, हा मोहन वर, हा-हा मधुकर नैन !
हा उज्ज्वल सत, हा कठोर व्रत, हा-हा मृदु वर वैन !
हा कण्टक वृत्त सुमन पत्र, हा मार्दव वृत्त कठोर
अहे कृपणता वृत्त उदारते, प्रेमावृत वृत्त चोर
कि कल्पना का सब साक्षात्कार
हृदय में अब भी है साकार !

[8 अगस्त, 1931]

उन्नीस

स्वागत स्वागत मेरी माया !
मैंने तुममें सबकुछ पाया !
निविड़ नीलिमामय प्रशान्त अद्भुत आडम्बर शून्य !
मेघों का क्रीडास्थल बिजली के सुलास्य की भूमि
यह विराट सुविशाल चण्डतम व्योम तुम्हारी चिकुर छाया
स्वागत स्वागत मेरी माया !

क्षुब्ध विलोल लहर आलोड़ित यह गंभीरतम सिन्धु
वज्रनादमय कोलाहलमय भयमय जयमय अन्ध
यह लावण्य समुद्र, फेनमय भी है तेरी कायच्छाया
स्वागत स्वागत मेरी माया !

व्याघ्र-विहार, सिंह-संक्रान्त, वराह-वाह अति भीम
रम्य मृगाध्यासित शाद्वलम्मय कलम-करंविल भीम
एक साथ वरदान-शापमय, यह वन भृकुटि युगों की छाया !
स्वागत स्वागत मेरी माया !

यह निश्चल कि धवल, सुप्त सुविशाल गिरीश्वर देह
निर्झरमय मृदु लता गुल्ममय रसप्रवाह का गेह
सदा हासमय रसस्रोत उसी तेरी बत्तीसी का जाया
स्वागत स्वागत मेरी माया !

अहे, निमेष मात्र में परिवर्तित यह वायु विलोल
जिस पर फेन पुंज-से वारिद शाव रहे हैं डोल
गतिमय,नतिमय, चकित चावमय पवन तुम्हारी श्वासच्छाया
स्वागत स्वागत मेरी माया !

कूक उठी सहकार कुंज में से वह कोकिल-बाल
चहक उठी गुलशन में कोने से बुलबुल की डाल
मधुर गीति झंकृत होती वह वेणुकुंज के मन की माया।
स्वागत स्वागत मेरी माया !

बीस

यहाँ तुम्हारी आशा
प्यारे, यहाँ तुम्हारी आशा।
हाय, निराशा की धारा में बहता है संसार।
सम्भव है हो मुक्ति कहीं प्यारे तेरा प्यार—
इसीलिए यह तप यह ध्यान
किन्तु निराशा का सम्मान!
हाय प्यारे, यह कैसी बात
तेरे रहते यह उत्पात!

बहता हो संसार अगर आशा मे उसको बहने दो
मैं भी बहता हूँ लेकिन विश्वास न है—यह कहने दो।
यद्यपि आशा कुछ क्षण तक है आगे किन्तु निराशा ही है
तेरा नाम कभी ले-ले खुश होना एक तमाशा ही है।
फिर भी कहता हूँ यह बात
भाव हृदय को तुम्हें न ज्ञात?
यहाँ तुम्हारी आशा
प्यारे, यहाँ तुम्हारी आशा।

अब तक लाज बचायी तुमने
अब तक लाज बचायी हमने
हमने तुमने, तुमने हमने
किन्तु विपत्ति लगी है जमने।
किन्तु तुम्हारी आशा
प्यारे, यहाँ तुम्हारी आशा।

बाहर का तो सुलझाया है तुमने कितनी बार—
भीतर का सुलझाने में क्या याद न रहता प्यार!
प्यारे, तुमसे नही छिपाया
अब तक जो सिर आया
हाय, तुम्हारी माया—
प्यारी जाया।
लो तुम अपनी माया
तुम्हें बहुत तरसाया

पर मैंने क्या पाया ?
मेरी तेरी माया— हाँ विभु, तेरी माया।
किन्तु है यहाँ तुम्हारी आशा
प्यारे, यहाँ तुम्हारी आशा।

बाहर भी है भीतर भी है घोर छिड़ा संग्राम
मैं घुलता जाता हूँ निसि दिन तुमको है क्या काम।
जैसे हो न जान पहचान
हाँ गुरु अच्छे हो उस्ताद
बन्धन है प्रिय ! बन्धन ज्ञान !
जहाँ ज्ञान कैसा वाँ स्वाद ?
और तुम्हारी माया
बड़ी छबीली माया
सखे कहाँ बहकाया ?
मेरी प्यारी माया !
हाय, निराशा की दरिया ही बहती है इस पार
शायद आशा के तरंग टकराते हों उस पार !
मुझे लिवा चल ऐ उस्ताद
आशा का भी दे कुछ स्वाद
यहाँ तुम्हारी आशा
प्यारे, यहाँ तुम्हारी आशा।

तू कैसा है मूर्ख
और तुम बड़े सुजान ?
मैं भी तो, ले, मूर्ख
नहीं, धूर्त ऐ प्राण ?
सुनो अमृत का नाद सुनाई देगा तुमको
देख रहे हो वह हरियाली वह आशा का बाग।
हाँ प्यारे, मैं सुनता हूँ तेरा वह मंगलगान।
सुनेगा अधिकाधिक रे प्राण !
क्षण-भर में ही जाते भूल
क्षण-भर में झर जाते फूल
प्यारे, यहाँ तुम्हारी आशा।

मंगलगानों का यह तांता बँधता जाता यार,
किन्तु बताओ, झूँठमूँठ क्यों मान रहा संसार ?

सुनायी यद्यपि देता नहीं
किन्तु कहता है—है यह सही
न कुछ भी इसमें साधन
मृत्यु ही क्या संजीवन ?
और माया आराधन ?
आह, प्रियतमा के हाथों का यह मंगल उपहार
तुम्हें समर्पण करता हूँ बढ़ आओ मेरे प्यार !
खुशी में फूल उठोगे
नहीं यह साधारण उपहार !
पर अब लाज बचाना
प्रियवर अधिक न अब तरसाना
यही तुम्हारा गोकुल प्यारे, यही कि वह बरसाना
भूल न जाना कभी-कभी प्रेमाश्रु यहाँ बरसाना
कि प्यारे अब न अधिक तरसाना।
कि प्यारे यहाँ तुम्हारी आशा।
तुम्हारा मंगलगान, तुम्हारा मंगलगान।

लोग न जाने क्या-क्या कहते !
'कहने दो' यह तुम हो कहते।
ठीक जान पड़ता है हमको एक यही सिद्धान्त
प्रेम प्रेम में ही समाप्त है उसका अन्य न प्रान्त
पर मुझमें वह प्रेम नहीं है।
(इसका) पक्का कोई नेम नहीं है।
छिछला है यह निस्सन्देह
पर प्यारे, मेरा क्या दोष ?
प्रकृति निगोडी ऐसी ही कुछ रूखी स्वादविहीन
कि उसको लेकर लज्जित होना पड़ता है हो दीन।
जो कहना चाहिए न कहता
चुप होने में भी न निबहता
हूँ सन्तुष्ट बिना सन्तोष
असन्तुष्ट हूँ किन्तु न रोष
फिर भी कहता हूँ क्या दोष ?
पर, प्यारे मेरा क्या दोष ?
होता और उपाय अगर तो करता नहीं गुहार
जो कुछ बन पड़ता कर देता प्यार हेतु ही प्यार।

कहाँ किन्तु हो पाया ऐसा ?
अच्छा कहो कि कहो अनैसा।
मेरा है ऐसा ही प्यार
मैं मतलब का ही हूँ यार।
लोग कहा करते हैं प्यारे, यह भी कोई प्यार !
किन्तु बताओ कर ही क्या सकता हूँ और विचार ?
मैं भी कहता हूँ यह तो है प्यार का बुरा स्वाँग
स्वाँग अगर हो तो वह ही हो पर है सच्चा स्वाँग।
अब है लाज बचाना,
प्यारे, अब है लाज बचाना।

सुनता हूँ मगन संगीत
मधुर मनोहर सुखमय गीत
हरा-भरा सुन्दर उद्यान
देख रहा हूँ मेरे प्राण
बजाओ मुरली मीठी।
सुनूं मैं तान सुरीली
सुनूं मंगलमय गीत
सुनूं सुखमय संगीत।
यही कही वंशीवट होगा वृन्दावन में आना
मधु मुरली की मधुर तान से मेरा मन भरमाना
कि प्यारे एक बार आ जाना।

[काशी, रंगभरी एकादशी, सं. 1989]

इक्कीस

बहुत सोयी अब उठ ऐ प्राण !
विजन निद्रिते जरा सजग हो आज नही सुनसान
वेणुकुंज के पत्र आज करते मर्मर मृदु गान
हरसिंगार बिना ही ऋतु के फूल कर रहा दान

बता सयानी, इनके मन की पीड़ा गूढ़ गम्भीर
तेरे बिना कौन बतलायेगा यह पीड़ा वीर !
बहुत सोयी अब उठ ऐ प्राण !

बाईस

रजनी दिन नित्य चला ही किया मैं अनन्त की गोद में खेला हुआ;
चिरकाल न वास कहीं भी किया किसी आँधी से नित्य धकेला हुआ;
न थका न रुका न हटा न झुका, किसी फक्कड़ बाबा का चेला हुआ;
मद चूता रहा, तन मस्त बना अलबेला मैं ऐसा अकेला हुआ।

पिक कूका किये, अलि गूँजा किये, नव वल्लरियाँ लहराती रहीं;
हँसके वश में करने को रसाल और मालतियाँ मुसकाती रहीं;
बकुलों ने बिछाये प्रसून नये नवमाधवी नित्य रिझाती रहीं;
न रुका मैं कहीं न प्रलुब्ध हुआ, कलियाँ मुझे नित्य बुलाती रहीं।

मलयानिल आया कहा कि रुको कुछ मन्दी सुगन्धी का ले लो मजा,
लहरों ने कहा, ठहरो तो जरा, तू भगा-भगा मेरे बटोही न जा।
लिये चाँद-सा कुम्भ सुधारस का रजनी ने कहा यह जानता जा।
दिल मेरा बना पै अड़ाल रहा कहा, फक्कड़ कोप सजा-ही-सजा।

विरही गज देखके रोते रहे, प्रिय प्रेमी निजत्व को खोते रहे,
कवि वस्तुलता से सने से बने वृथा कल्पना के रस ढोते रहे,
वन बाग नये अनुराग भरे रस राशि से प्राण भिगोते रहे,
कोई रोते रहे कोई खोते रहे, अपना रथ पै हम जोते रहे।

तेईस

अरे ओ सत्यार्थी भया !

"पवलों तोरी चिठिया, बजवलों बधौआ कि
सतार्थी भइया रे !
तोरी डगर अकेल कि सतार्थी भइया रे !
एक हम देखलों सरगवा बिचवा रे
एक सुरुज अकेल सरगवा बिचवा रे
दोसरे हौं देखलो सरगवा बिचवा रे
एक चँदवा अकेल सरगवा बिचवा रे।
तीसरे हौं देखलों दुनिया बिचवा रे
तोरी डगर अकेल कि सतार्थी भइया रे !"

पायी तुम्हारी चिट्ठी, बजाया बधाव,
अरे ओ सत्यार्थी भैया !
तेरा रास्ता
अकेले का रास्ता है,
अरे ओ सत्यार्थी भैया ! !
एक मैंने देखा सरग आकाश के बीच
एक सूर्य अकेले चला करता है आकाश के बीच
दूसरा मैंने देखा आकाश के बीच
एक चांद अकेला चला करता है आकाश के बीच
तीसरा मैंने देखा दुनिया के बीच
तेरा रास्ता अकेला है, अरे ओ सत्यार्थी भैया !

"तोरी डगरी अकेल कि सतार्थी भइया रे !
पुरुब में गइलों, पुछलों हाथ जोरि के पुरवैया भैया रे
कही देखले कवनो दिलगीर कि पुरवैया भइया रे !
पछिम में गइलों पुछलो हाथ जोरि के पछिवा भैया रे
कही देखले कवनो दिलगीर कि पछिवा भइया रे !
दुनो कहे हँसि के बटोही भइया रे कि बटोही भैया रे
खाली एक दिलगीर से सतार्थी भइया रे
ओकर डगरी अकेल कि सतार्थी भइया रे !

उतर में गइलों हिमालैजी सों पुछलो हिमालै भइया रे
कहीं देखले कवनो दिलगीर कि हिमालै भइया रे।
दखिन में गइलों समुंदरजी मे पुछलो समुंदर भइया रे
कहीं देखले कवनो दिलगीर कि समुंदर भइया रे।
दुनो कहें
लाख ढूढ़ें जियका, करोड़ ढूढ़ें नौकरी सतार्थी भइया रे
देखलों सहस्सर बिलाला भइले रे कि सतार्थी भइया रे
लाग ढूढ़ें धरम करोड़ ढूढ़ें करम सतार्थी भइया रे
केहू नाही गइले आरतवा की डगरी सतार्थी भइया रे!
तोरी डगरी अकेल कि सतार्थी भैया रे!"

[18 जनवरी, 1940]

चौबीस

हमसे तुमसे नहीं बनेगी

सखि, हमे न आया रोना; सखि, तुम्हें न आया टोना
सखि, हमे न भाता घूंघट; सखि, तुम्हे अनावृत होना।
फिर बोलो किस भाँति छनेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

सखि, तुम गुपचुप रहती हो, अस्फुट बातें कहती हो,
अपने अनुराग-सरित में, निर्द्वन्द्व बहा करती हो।
ना सजनी, यों नही बनेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

तव प्रेमपत्रिका प्यारी, होती दुनिया से न्यारी,
कुछ पल्लव-मर्मर डाली, कुछ राग-रंग की क्यारी।
सखि, पहेली ना सुलझेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

तुम गान अनूठे गातीं, कितनों ही को ललचाती
कुछ कू-कू, चिक्-चिक्, फुर-फुर, ये कला हमें सुहाती।
मेरी आत्मा नहीं सुनेगी
हमसे तुमसे नहीं बनेगी!

सखि, लगी अभी तुम रोने? मेरा यह वक्ष भिगोने,
तब कहाँ सजनि वे अँखियाँ, जिनके ये चाँदी-सोने।
मोतीलड़ियाँ अगर छनेंगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

सखि, लगी हमारी बातें? क्यों तुम रोती अधरातें?
सजनी तुम बनी पहेली—अचरज हैं सारी बातें!
रोओगी तो नही बनेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

सखि, हरी तुम्हारी साड़ी, रँग-रँग के सुमन सँवारी
घूँघटपट पै शशि वारूँ—पर हाय मम प्यारी!
छिपी रहे छवि छिपी रहेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

तुम हो रहस्यमय नारी, मैं हूँ विज्ञान-पुजारी
हम जितना पता लगाते—उतनी ही बढ़ती सारी।
जो आवृत छवि ना निकलेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

जब मैं मतवाला बनकर, वासन्ती वसन पहनकर
चाहता कि तुमसे मिल लूँ तुम उठी खड़ी हो तनकर।
नहीं सखी अब नही बनेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

मैं समझ नही सकता हूँ—वकता-झकता पकता हूँ
तुम प्रेममयी या निष्ठुर तुमसे सदैव छकता हूँ।
ना सजनी, अब नही निभेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी!

पाऊँ रहस्य मैं तेरा, कर प्रयोगशाला डेरा
दिन-रात व्यस्त रहता हूँ—दिन-संझा-रात-सबेरा।

कब तक यह रफ्तार चलेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी !

तातील एक दिन की है, प्राणाधिक, यह विनती है
उस दिन मत घूँघट तानो, हे चण्डि, बात सुनती है !
नहीं तो सजनी नही निभेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी !

कल एतवार आता है, संकेतवार आता है
कल क्या घूँघट खोलोगी, सखि, एतवार जाता है।
ना तो सजनी, नहीं बनेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी !

छोड़ो प्रयोगशाला को, छोड़ो चिन्ताज्वाला को
जो विकलता न पहिचाने—छोड़ो उस प्रिय बाला को।
तुम्ही या कि तव टेक रहेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी !

अह, निठुर आज तुम आयी, छुट्टी के दिन तुम आयं
सारी जग की सुन्दरता, वारूँ तेरी परछा.।
अगर गयी तो नही बनेगी
हमसे तुमसे नही बनेगी !

कमल चरन तनु वल्लरी, सुमन सलोने हाथ,
तेरे हाथ बिके सखी, हूँगा आज सनाथ।
तेरी एक कटाक्ष पर, होता हृदय निहाल,
तुझको माया कहे वह निष्ठुर ऐ बाल !
शैशव में ही रीझकर जिसे किया स्वीकार,
उसी प्रकृत सौन्दर्य पर हो जा आज निसार !

पच्चीस

उठ-उठ अरी कराल ज्वाल
तू लाल-लाल अंगारे बन !
धक-धक धधक-धधक उठ हिय में
री प्रलयंकरि ! तारे बन
जला चुकी अब हृदय भीषणे !
अब लपटों को बाहर काढ
दहक चिता-सी लहक पिपासी !
ला दे चिनगारी की बाढ़ !
प्रलय मचा दे, विश्व नचा दे
गला-पचा दे सब अभिताप
नाप-नाप संसार हठीली !
लोल लपट से जगती नाप !

छब्बीस

मार्ग सुन्दर बहुत है।
गाड़ियाँ, घोड़े, पदातिक सभी के उपयुक्त।
सुना है उसको पकड़कर चल सके कोई,
पहुँचता लक्ष्य तक निर्भ्रान्त।
जानता हूँ, मानता हूँ
लक्ष्य तक निर्भ्रान्त जाना चाहता हूँ।
सड़क पक्की और छायादार यह है।
किन्तु मैं मजबूर हूँ।
कंकड़ों में, कण्टकों में
दूर जंगल में—
भटकना है बदा।
नहीं तो जी नहीं सकता।

इस तरफ कोई न चलता यान,
है कोई न देता ध्यान।
मैं भटकता बढ़ रहा हूँ
लक्ष्य से अनजान।
सोचता हूँ क्या यही है लक्ष्य जीवन का
जीते जाव,
पीते जाव
अपने क्षोभ को ही।
दूरवाले समझते हैं आदमी यह प्राणवन्त महान्
कंकड़ों पर चल रहा है,
कण्टकों को दल रहा है,
किन्तु मैं हूँ जानता इस रास्ते की मार
और मैं हूँ जानता पक्की सड़क के
नहीं पाने का भयंकर घाव।
सोचता हूँ रौंदकर क्या एक
बन सकता न सुन्दर मार्ग ?
जिसे जीने की ललकवाले
करें उपयोग !

[9 फरवरी, 1966]

कविताएँ

[ब्रजभाषा]

एक
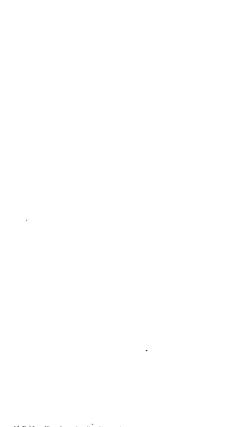
भारत में काल है कि वगरो वसन्त है ?

मुख पीत, आंख पीत, देह को रकत पीत
पीत रंग मे ही पुते लोग हां वसन्त है।
तरुन को पात पीत, तरुनन को गात पीत,
पीत-मुख सोभा तरुनीन को लसन्त है।
पीत-शान्ति कृपक, सुपीत रक्त धेनुवृप,
पीत ऋद्धि देश विपरीत विलसन्त है।
पीत धुजाले के पीतता को सह देके कहो,
भारत में काल है कि वगरो वसन्त है।

दो

अबीर

फीके पड़े है गुलाव जहां तहां कौन गुलाल की बात करैंगो ?
देखि कुरंग वि-रंग बने जिन्हैं ता ढिग रंग कहा ठहरैंगो ?
लाल ! गुलाल सम्हारते क्या लखि बाल कपोल को धीर धरैंगो ?
वीर अबीर जो डालि हैं सोऊ अ-वीर बने हिय-पीर परैंगो ?

भीर अभीरन को भई भोर तहां सखि ! मोहन मोह गयो भरि।
मंजु गुलावी मुठी को गुलाल गुलावी कपोलन पै त्यों गयो झरि।
कैसे कहूं सुखमा सजनी, कछु जादुगरी तें बसी ज्यों कियो हरि।
लाल रसीले रसीली लली रसरासि से गीलि गये अँखियां करि।

[होली, सं. 1986]

तीन

दोहे

मधुर अधर मुरली मधुर, मधुर माधुरी रौन
मधुरिपु मधुसम मधुसखा, जय माधव मधु मौन!

पाप ताप परिताप को, पड़्यो भयानक फेर!
कबहुँ कि जमुना-कुंज की, सुनिहौं वंसी टेर!

बढत हृदय तम पुंज मे, भाव भगति की भूख!
मिलिहैं नख पदकंज की, कबहुँ कि मंजु मयूख!

साँसति विषय विकार की, फाँसति आसा डोर!
कबहुँ कि होईहि चपल मन, वृन्दावन की ओर!

कबलौं सहिहै हृदय घन ! तेरो विषम विछोह!
मन मनमथ-मन-मथनकर, मोहन तेरी टोह!

चार

आगे खरो लखि नंद को लाल हमने सखि पैंड़ तजे री,
कुंजन ओट चली सचुपाइ उपाइ लगाइ तहौं तिन घेरी।
मैं निदरे सखि ! रूप अनूपन कान्हर हू पर आँखि तरेरी।
पै परी फाँस अरी मुसुकानि की प्रान बचाइ न लाख बचे री।

या ब्रजमण्डल की सिगरी गलियानि मे री सखि एक ही सोर है,
'कान्हर कान्हर' एही सुनौ वह गोप कौ बाल बड़ौ बरजोर है।
तेरी सौं गैयन जोरि बटोरि गुआरनि आवत रोजई भोर है।
कारे घने सौं तन हेरि हेराइ नचावत सो मन मोर है।

पाँच

आयो है वैठन लाल हिये अरि काँकरी पूरित पेड़ परो है,
कोमल पाँयन मे गड़िहैं हियो विदरै यह कैसो कर्‌यो है।
सेजरिया धरि आनो नहीं, यह कैसो चवाइन चेत चर्‌यो है।
हा, हिय आये लला, यड़ि नार से कैसो करूँ कित काह धर्‌यो है।

छह

एक पिचकारी लै बगारती गुलालजल-मंत्र कौ परीलौ निवाध बिथुरै परी।
एक किलकारतीं सिटी लौ रेल इंजन की कुंकुम के पुंज नवधूम लै घरै परी।
एक हँसि हारी एक तन-मन वारी विनु दाम की विकानी एक बिज्जु-सी बरै परीं।
नंद कै लड़ैतै पै उझकि झुकि झूमि-झूमि मधुमच्छिका-सी एकवारगी टरै परी।

सात

नंद के दुलारे चकचके से थके से खरे मानो कोऊ रेडियो विलोक्यो गाँव वारो हैं।
काजर की पुतरी कबूतरी सी आँखिन सौ मुल्हकि मुल्हकि ताकै रंग को बनाये हैं।
छूटि गयी मुरली लकुट कहूँ छूटि गयी पीत पर तनु पै गुलाल लाल धारो हैं।
डूबिगो गचाक सौं मजाक के मजाक में यथा समुद्र मध्य कोऊ पोत गोह वारो है।

आठ

गाल लाल भाल लाल नव वनमाल लाल,
लाल रंग ही कौ चहूँ ओर भयौ मेला है।
किचन रसोई जैसे दाल-भात झोल झाल
दावें वाटे चहूँ ओर आलू ही को ठेला है।
साँप बन्यो कहूँ, कहूँ मोर कहूँ सिंह बैल,
भीत भई ऐसी मानो शंभु को तबेला है।
अस्त्रहीन शस्त्रहीन शत्रुहीन दीन-छीन
मनो चक्रव्यूह में महारथी अकेला है।

नौ

जोरि जोरि अच्छर निचोरि चोरि औरन सों,
सरस कवित्त नवराग को गढ़ैया हौं।
पण्डित प्रसिद्ध, पण्डिताई बिना जानें कछू,
तीसकम बत्तिसेक वेद कौ पढ़ैया हौं।
टाँय टाँय जानौ, कूकि कूकि पहिचानौं तत्त्व
चिकिर चिकिर करि सुर कौ चढ़ैया हौं।
भाइयो भगिनियो बताइये बिचारि आजु
सुक बनौ पिक बनौं या कि गौरैया हौं।

दस

गोपिया नवेली बरसाने की हवेली से पि—
पोलिका की रेली जैसी बढ़ती चली गयी।
रूप नगनियान जैसी ब्रज गलियान तेंगी
नोटिसी नीलाम-पैं-सी चढ़ती चली गयी।
मृग छालनि सों कुकुम गुलालनि सों
ढोलक सी ब्रज भूमि मढ़ती चली गयी।
राधा फ्लेरियन काल सुनि ग्वाल बाल माल
ग्रैंड ट्रंक रोड जैसी बढ़ती चली गयी।

ग्यारह

नव-नीरद-साँवरो स्याम लला सजनी जिन भूले बबूलनि में,
मनमोहन पै मन थोर नहीं रहै रात विवाद को मूलनि में।
न लखैं युग मूरति बाग-तड़ागनि कुंज लता द्रुम फूलनि में।
बिन झूलैं हहा दुख झूलनि में रगरैं बिगरैं चख धूलनि में।

जिनकी अँखियाँ में ब्रज सुंदरी ते सुमोहिनी-मूरति फीकी लगै।
जिन कीरति की कल केलि कला तेरी स्याम लला की न नीकी लगै।
जिनकी वा कसाइन लोहे की लेखनि मे न विभा विरही की लगै।
परों पांय लला तिनकी अँखियाँ रज नेकु तेरी पनही की लगै।

जिन गोपी-गुपाल की रास कला मे विलास की वास बनाया करैं।
जिन बाँसुरी के सुर में न कहूँ रस की सरिता लग पाया करैं।
जिन राधिका रानी की वानी सलोनी में गंदगी गान [illegible] करैं।
ब्रज लाड़िलेजू के सनेह परे तिनकी अँखियाँ [illegible] करैं।

बिन बूझे बिचारे बिमागिन सी [illegible] बान [illegible]
ठकुराइनि [illegible] जन धूरि [illegible]

जिनकी कटु भाषिनी नाशिनी जीह तिहारी अकीरति गाया करै।
छवि मोहन की रस चासनी में तिनकी रसना न चपाया करै।

जिन साँवरे मीत की प्रीति न जोये न रोये अहीरिन के बिरहा।
जिनकी हिय कंज कली न खिली लख राधा लली को···
जिन भूले नही सु अहीर की छोहरियान की नेह कला पै हहा।
मनमोहन ऐसे अभागिन कौ अनुराग-तड़ाग मे दीजो बहा।

जिन रावरे साँवरे लाल कौ नेह मे थोथी विलासिता पावते है।
जिन प्रेम भिखारिन की कविता कौ चुड़ैल की चेली बतावते हैं।
जिन वा व्रज बानी सुधारस सानी मे गाली की नाली बहावते है।
व्रज सुंदरि रावरे पाँय परो कहो कैसे कृपा-कन पावते हैं ?

ए व्रजचंद निहोरो करों रसहीननि कौ सरसाओ न जी।
फिरते पै विलासिता को चसमा इन पै करुना बरसाओ न जी।
व्रज रानी की बानी बिगारते ए टुक प्रेम-व्यथा परसाओ न जी।
पर हाहा बिचारे गरीबनि को तरसाओ न जी तरसाओ न जी।

बारह

विधवा

कै अपमान के ताप लगे हियरा जल कै कण ह्वै गयो है,
हीतल कौ किधौ सूनो सनेह बिछोह को ताप ते तै गयो है।
या निठुराई भरे जग में बिरवा अनरीति को ह्वै गयो है,
माधव या धयहीन अभागिन कै अँसुआ किधौं गयो है।

ये अँगियाँ सखि या जग बीच सुहाग की रात हँसी सो हँसी,
प्रीतम प्रीति के आसरा मे निरमोही के हाथ फँसी सो फँसी।
जाने बिना सुम संग उमंग सनेह के बीच धँसी सो धँसी,
नागिनि लौं ये बिछोह बिया या अभागिन को जो डँसी सो डँसी।

हम जाने सुहाग कहा सजनी यहि माँग में आग लगी सो लगी ,
दुख ही दुख हाथ हमारे लग्यो रजनी सुख की जो भगी सो भगी।
यह जोवन जोर मरोर विथा निसि धौस के हेतु लगी सो लगी ,
अपमान कठोरता घोर विथा यम प्रान के पाछे लगी सो लगी।

तेरह

अभिमान की वान मे माते रहो कवहूँ जनि देखो इतै भरि लोचन।
मनभावन भावन में पगि कै लगि कै मनमोहन सों तजि पोचन।
मदगंजन कंजन को हियरा मुरझाय लला ! न कवों मम सोचन।
वस चावरिता लखि मेरी कवो हँसों हेरि मनै मन सोच विमोचन।

सुख संगम खोइ हराइ हँसी इतनो अभिलाख अजो हम राखे।
अरु दीरघ दोख दराइवे हेतु सुधा मधुरो सुठि स्वादहि चाखे।
कवहूँ तव शीतल हीतल में हमरो स्मृति को नहि कै करि माखे।
रिस पूरित घोर घृणा सों भरी उठि जा इहें है मनभावन आँखें।

यहि घोर समुद्र में नाव पड़ी, सव ओर से तुंग तरंग चलै।
पुरवाई हवा के झकोरे लगे घुरवा थहराई उचंग चलै।
फुफुकार भयानक चारों दिशा लहरी कीवारी इक संग चलै।
अब रावरी आस अकेली लला कि वहै कि रहै किधौ लंगर लै।

कवौं ऊँचे अकास धुवावति है कवौं नीचे पताल पठावति है।
कवौं भोर भयानक मे ठहराइ अनेकनि नाच नचावति हैं।
कवौं गाज को साजनि साजति हैं कवौ सोर अथोर मचावति है।
एक रावरी आस रही है लला ! लहरी वड़े वेग सो धावति हैं।

जो रहे कभी प्रान पियारे हमारे नही वे दशा मम जानते हैं।
अव या वह जानें न जानें हमें विपदा मे कोई पहिचानते हैं।
घर वार छुटा, सुख सार छुटा, हिय हाट छुटा हम मानते हैं।
पर रावरी आस की तनु लला अव भी न छुटा हम जानते हैं।

वह देखो कराल है व्याल महा फुफुकारत है लहरी लहरी,
वह डूबा अभी घड़ियाल भयानक, तुंग तरंग बनी गहरी।
अब डूबी—कहाँ तक जाय टिकी यह हाय पुरातन ही ठहरी,
अब वेगि बचाओ, बचाओ लला ! न पुकार सुने बहरी लहरी।

कविताएँ

[अनूदित]

निशा निस्तब्ध सन्नाटा-भरी वैराग्य का संगीत गा उठती,
लिये झिल्ली झणित झकार
तारा की सभा के बीच।
होता भंग रह-रह ताल नृत्यनिलीन मेना के कनकमय नुपूरों में;
उर्वशी की स्वर्णवीणा स्खलित हो उठती पयोधर-प्रान्त से,
झंकारती दारुण-करुण मृदुतान अन्यमनस्क हो;
दिखती अकारण वाष्परेखा अमरगण के अश्रुहीन अदीन नयनों में—
सदा पति-पार्श्व मे बैठी हुई एकासनासीना शची सहसा
चकित हो देखती पति के दृगों मे,
खोजती मानो वहाँ कुछ तृपाशात्मक वारि।
धरती से पवन के स्रोत मे बहता हुआ आता करुण उच्छ्वास जब-जब
और झर पड़ती कुसुम-मंजरी नन्दन विपिन की सुकुमार।

हे सुरलोक, आनन्दित रहो, हँसते रहो हे देवगण, पीते रहो पीयूप।
यह पुर है तुम्हारे सौख्य का आगार,
परदेशी कि हम हैं मर्त्य की सन्तान!
प्यारी मर्त्यभूमि नही कभी है स्वर्ग, वह है मातृभूमि अमोल;
उसके नयन से झरती रहेगी अश्रुधारा
छोड़ यदि आवें उसे दो दिवस के भी बाद हम दो दण्ड के भी लिए;
जितने भी न क्यों हो क्षुद्र, जितने दीन-हीन अपात्र, जितने पाप-ताप-ग्रस्त,
सबको व्यग्र आलिंगन-जड़ित कर माँ निरन्तर बाँधना है चाहती,
जाती जुड़ा छाती लगाती प्रेम से जब धूलि-धूसर मलिन अंगों को।
बहे, हे देवगण तब स्वर्ग में पीयूप की धारा
हमारे मर्त्य में सुख-दुःख-मिश्रित प्रेमधारा रहे
जो निज अश्रुजल से सीचकर भूलोक के स्वर्गीय खण्डों को सदा
श्यामल बनाये रहे।

—ऐसा हो कि हे अप्सरी,
तव मोहक दृगों की ज्योति प्रेम-विछोह-पीड़ा से कभी भी म्लान
मत हो जाय,
मैं होता विदा हूँ।
चाहती हो तुम किसी को नही,
ना पाती किसी का शोक।

धरती पर किसी ग्रामान्त में
अश्वत्थ की छायातले दीनातिदीन मलीन गृह में भी
कहीं मम प्रेयसी जो जन्म लेगी,
बालिका वह हृदय में संचित रखेगी अमृत का भाण्डार यत्न-समेत मेरे ही लिए;
शिशुकाल में ही उस नदी के तीर पर शिवमूर्त्ति रचकर माँग लेगी वर मुझे सप्रेम,
सन्ध्या के समय उत्सुकमना, प्रज्ज्वलित कर लघुदीप सरिता में बहा देगी सशक-
सकम्प,
निश्चल एक-टक लखती रहेगी, सोचती भावी अचल सौभाग्य एकाकी खड़ी तट
पर

पधारेगी भवन में लिये विमल सुहाग, सन्नत नयन, चर्चित भाल,
मंगल वसन, मोहक ताल-सुर-संगीत, वेणु-निनाद—
उत्सव-जाल।
फिर हो सुदिन या दुर्दिन, भवनलक्ष्मी विराजेगी—
करों में मंगलांकित वलय
शुभसीमन्त में सिन्दूर,
इस संसार-सागर के सिरे पर पूर्णिमा की चाँद।
— हे सुरवृन्द, आयेगा स्मरण फिर भी मनोहर स्वर्ग स्वप्न-समान
रह-रहकर
किसी अधरात को जब मैं अचानक देख पाऊँगा
कि निर्मल सेज पर बिछला रही है चाँदनी
जिसमें अलस निद्राजड़ित मेरी प्रिया के बाहु लुण्ठित हो रहे हैं,
शिथिल लज्जा-ग्रन्थियाँ हैं;
एक मृदुल सुहाग-चुम्बन से जगा दूँगा
कि व्रीड़ाभरी सचकित प्रिया जगकर
वल्लरी-सम लिपट जायेगी रभस-आश्लेष में मम वक्ष से।
उस समय मलयानिल बहेगी कुसुम का ले वास,
जाग्रत पिकी कूकेगी सुदूर-विलासि तरु की डाल पर।

अयि दीन-हीन-मलीन दुःखातुरा अश्रु-निलीन जननी मर्त्यभूमि,
अनेक दिन के बाद मेरा चित्त रोदन कर उठा है आज तेरे लिए;
माँ, जिस दिन विदाई के करुण दुख हेतु मेरे शुष्क नयनों में भरा जल-वाष्प
उस दिन ही मधुर सुरलोक छाया-छविल—
तन्द्रिल कल्पना की भाँति क्या जाने कहाँ उड़ गया
तेरा नील-विपुल-व्योम, तेरा ज्योतिमय आलोक,
तेरे जन-बहुल पुर-ग्राम,
जलनिधि के तटों की बालुका-वेला मनोरम दीर्घ।

तरुगण-मध्य वह नि शब्द अरुणोदय,
विजन सरित-तटों की सांझ अवनन मुखी,
सबकुछ प्रतिफलित हो गये मुकुर समान इस नयनाम्बु में !
हृत-पुत्रिके हे जननि,
जिस दिन मैं तुम्हारी गोद से छिन गया अन्तिम बार
उस दिन की तुम्हारी आँख की झरती हुई जलधार
सिंचित कर रही थी जो तुम्हारे मातृस्तन को सतत
वह निश्चय गयी है सूख अब तक,
किन्तु फिर भी जानता हूँ जब तुम्हारी गोद में मैं लौट आऊँगा पुनः
तत्क्षण बढा भुज-युगल तू लेगी हृदय में लगा मंगल-शंख बजवाकर तथा
तत्काल स्नेहच्छाय से सुखदुख भरे संसार मे अपने अनेकों
पुत्र-कन्या बीच
मुझको यो बिठा लेगी कि मानो चिरन्तन पहिचानवाला आ गया कोई भवन मे
और फिर दिनरात सिरहाने खड़ी जगती रहेगी
प्राण मे कम्पित हृदय में सदा शंकित बनी,
ऊपर देवता की ओर करुणा-भरे नयनों से रहेगी ताकती
चिन्ताभरी मन मे कि जिसको पा सकी हूँ वह नही खो जाय
मेरा लाल !

दो

नति स्वीकार

सूर्योदय होते ही उसकी होगी महिमा क्षीण
तो भी प्राभातिक शशि बोला शान्त स्निग्ध अदीन—
अस्त सिन्धु तट पर मैं बैठा देख रहा हूँ राह,
उदित प्रभाकर को प्रणाम कर लूँगा है यह चाह।

तीन

उदारचरितानाम्

फटी भीत के छेद में, नाम गोत्र से हीन
कुसुम एक नन्हा खिला, क्षुद्र निरतिशय दीन।
वन के सब चिल्ला पड़े—'धिक्-धिक्' है यह कौन !'
सूर्य उठे, बोले—'कहो भाई, अच्छे हो न?'

चार

भ्रष्ट लग्न

सिरहाने का दीप जुड़ाया था अभी
भिनुसार की कोकिला कूकती थी,
अभी जाग उठी मैं उसी धुनि से अलसायी
हुई खिड़की पै गयी,
शिथिला कबरी मे सम्हालके नूतन फूलों की माला
सजा ही रही थी कि ऐसे मर्म अरुणायित धूसर
मार्ग पै दीखा बटोही वही—
नवयौवन अंग में चू रहा था
सिर पै नव हेमकिरीट छटा पर
ऊषा की लालिमा चू पड़ी थी
पहिनी उसने थी गले मे मनोहर मोतियों की जयमाला भली।
रथ से उतर बड़ी व्यग्रता से दरवाजे पै मेरे पुकार उठा—
"वह है कहाँ कोई बता दे जरा !"—
यह कातर वाणी भरी करुणा से सुनी, पर
हाय, न बोल सकी
गड़-सी गयी लाज मे कैसे कहूँ,

"ओ नवीन बटोही, वह मैं ही तो हूँ
वह मैं ही तो हूँ !"

दुइ बेर बरोबर हो चली थी तब भी
न सँझौती का दिया जला,
मैं मगन मन-ही-मन लिलार पै सोने की
बेंदी यों ही सजा रही थी,
खिड़की पै खड़ी लिये हेम का दर्पण बाँध
रही कबरी भली थी,
बस ऐसे समै नव सँझलौने सन्ध्या से
धूसर मार्ग पै दीखा बटोही वही—
नवयौवन अंग मे उच्छल था, नयनों मे भरी
करुणा की व्यथा।
रथ-अश्व नहाये हुए श्रम-विन्दु से, आनन
फेन भरे हुए थे
सुकुमार बटोही के भूषण-वस्त्र रजोमय धूसर
हो चले थे,
रथ से उतरा बड़ी क्लान्ति भरा दरवाजे पै
मेरे पुकार उठा—
"वह है कहाँ कोई बता दे जरा !"
यह कातर वाणी भरी करुणा से सुनी, पर
हाय, न बोल सकी,
गड़-सी गयी लाज से कैसे कहूँ—
"ओ क्लान्त बटोही, वह मैं ही तो हूँ
वह मै ही तो हूँ !"

घर के सब दीप जला दिये है,
भरे फागुन की निशा आज भली
मलयानिल आज दछिन ओर से आकर
लोट रही छतिया पै झुकी—
वह मैना बड़ी मुँहजोर पड़ी-पड़ी हेम के पिंजर
सो रही है
दरवाजे के सामने द्वारी उसी विध नीद की गोद मे
जा गिरा है

मेरे प्यारे सुहाग के आनन में नवयुग का
घुल-घुला हुआ है
अंग-अंग में चन्दन औ' अगुरु का
सुवास समाकुल हो रहा है
पहनी है मयूरकण्ठी मनोहर कंचुकी वक्ष पे
ओढ़न दे लिया है
जो कि दूब सा मेचक-श्यामल है
टक टक निहार रही पथ पे,
खिड़की में अकेली उदासी भरी,
रंग-धूसर भूमि पे बैठी हुई एक गान ज़रा-ज़रा
गा रही हूँ।
रजनी के त्रियाम चले गये हैं,—
"ओ हताश बटोही, यह मैं ही तो हूँ,
यह मैं ही तो हूँ।"

पाँच

प्रतीक्षा

काल सीमाहीन है राजेन्द्र, तेरे हाथ में
गिन कौन सकता है कि कितने दिवस, कितनी रात्रियाँ
आतीं इधर, जातीं उधर,
कितने विकसते और झड़ते युगयुगान्तर कल्प !
है तुमको विलम्ब नहीं
न है जल्दी कहीं,
तुम जानते करना प्रतीक्षा, देवदेव, अनल्प।
सौ-सौ वर्ष से चलता तुम्हारा धीर आयोजन
खिलाने का कुसुम लघु एक।
किन्तु न काल है कर में हमारे,
छीन-छान इसीलिए चलती निरन्तर

और होता है विलम्ब न सह्य थोड़ा भी हमें
हे नाथ,
सबको सर्वविध सेवा-समापन में निकल जाता समूचा काल !
खाली ही पड़ा रहता तुम्हारा, हाय, पूजा-थाल ।
फिर औचक सम्हल
हम दौड़कर आते सभय बेचैन
पर तुम तक पहुँचकर
देखते यह हैं कि प्रभु का काल बीता है न !

छह

कृपण

भीख माँगती फिरती थी मैं गाँव-गाँव पथ-पथ पर,
उसी समय तुम चले हुए थे अपने काञ्चन-रथ पर।
एक अपूर्व स्वप्न-सा लगता था वह दृश्य नयन में।
कैसी थी विचित्र तव शोभा, कैसी भूषा तन में।
मैं सोचूँ मन मे कि आज ये
मिले कौन, राजाधिराज ये !
तुम्हें देखकर मैंने उस दिन अपना भाग सराहा,
दर-दर आज न फिरना होगा जो विधना ने चाहा।
घर से आज निकलते ही यह किसके दर्शन पाये !
जायेंगे रथ पर जाने कितने धन-धान्य लुटाये !
मुट्ठी भर-भर लूँ बटोर मैं,
मनि-मानिक-मुक्ता अथोर मैं।
जहाँ खड़ी मैं बाट जोहती वहीं अचानक आकर
रथ रुक गया, निहार वदन मम, तुम उतरे मुस्काकर।
जुड़ा गयी छाती जब देखा उस मुख को मुस्काते।
क्या जाने क्यों इसी समय तुम आये हाथ बढ़ाते—
और मिला तुमसे सुनने को—
'दे दो, अलि, कुछ मुझको दे दो !'

मेरा भार अगर लघु करके न दी सान्त्वना नही सही।
केवल इतना रखना अनुनय—
वहन कर सकूँ इसको निर्भय।
नतशिर होके सुख के दिन में
तव मुख पहचानूँ छिन-छिन में।
दुःख-रात्रि में करे वंचना मेरी जिस दिन निखिल मही
उस दिन ऐसा हो करुणामय,
तुम पर करूँ नही कुछ संशय॥

आठ

असमाप्त

जीवन में जितनी पूजाएँ समाप्त नही हो सकी,
मैं ठीक जानता हूँ, वे भी खो नही गयी है।
जो फूल विकसित होते-न-होते पृथ्वी पर झड़ गया
जिस नदी ने मरुमार्ग में धारा खो दी,
मैं ठीक जानता हूँ, वे भी खो नही गयी है।

जीवन मे आज भी जो कुछ पीछे छूट गया है,
मैं ठीक जानता हूँ, वह भी खो नही गया है।
मेरा (जो-कुछ) अनागत है, (जो-कुछ) अनाहत है
तुम्हारी वीणा के तारों मे वे सब बज रहे हैं,
मैं ठीक जानता हूँ वे भी खो नही गये है।

नौ

ओ रे नवीन, ओ अपरिपक्व !

ओ रे नवीन, ओ अपरिपक्व, तू आ रे,
ओ हरित कान्ति, ओ बोधहीन (ओ न्यारे) ।
तू मार अधमरों को है आज बचा रे ।

ये रक्तज्योति के मद से जो मतवाले
जो चाहें कह लें आज तुझे (गम खा ले),
तू सकल तर्क को करके तुच्छ उठा ले
निज पुच्छ उच्च मे और सदर्प नचा ले--
आ रे दुरन्त, आ ओ निर्जरस निराले।

वह देख हिल रहा पिंजड़ा मन्द हवा मे,
उस घर में या उस घर के दक्षिण-वामे
कुछ और नही है हिलता या डुलता रे ।

वह जो प्रवीण है जो अत्यन्त पका है।
उसके डैने मे लोचन-कान ढँका है।
यों झीम रहा है मानो चित्र-अँका है
उस अन्धकार के बद्धद्वार पंजर मे।
जीवन्त प्राणमय, आ इस गृह जर्जर में

बाहर की ओर न कोई देख रहा है
कैसा प्रचण्ड जलस्रोत बढ़ा आता है
जल-ज्वार-मध्य लहरें गरजें फुफकारें ।

चलना न चाहती मिट्टी की सन्तानें
पग रख मिट्टी पर (उसे अशुचि ये मानें) ।
अपनी-अपनी उनकी हैं बाँस-मचानें
जिन पर अडोल आसन बाँधे वे सुस्थिर ।
आ रे अशान्त, आ अपरिपक्व, आ अस्थिर ।

सब तुझे रोकना चाहेंगे भरसक वे
सोचेंगे देख प्रकाश नया औचक वे—
यह कैसा अद्‌भुत काण्ड आज दिखता रे।

पाकर तेरा संघात खीझ जायेंगे
शयनीय छोड़ निज दौड़-दौड़ आयेंगे;
इस अवसर पर निद्रा से जग जायेंगे—
फिर गुत्थागुत्थी सत्य और मिथ्या की।
आ रे प्रचण्ड, आ अपरिपक्व, एकाकी।

पूजा वेदी वह शृंखल देवी की है।
वह नित्य सत्य होकर क्या रहने की है?
तू द्वार तोड़ आ रे पागल मतवारे।

झंझा-समान विजय-ध्वज को फहराता,
आकाश ठहाके से विदारता-ढाता,
भोला बाबा की झोली झाड़ लुटाता
तू चुन-चुनकर ले आ प्रमाद, ला ग़लती।
आ रे प्रमत्त, ओ अपरिपक्व, ओ झक्की!

इस बँधे मार्ग की अन्तिम सीमा पर तू
इनको घसीट निस्सीम ओर देकर तू,
बन जायें मार्ग अनजान देश के न्यारे।

बाधा हैं, है आघात जानता हूँ मैं
पर यही जानकर प्राण वक्ष में झूमें।
पुस्तक पढ़ुओं से विधि-याचन की धूमें
है मची हुई, तू इन्हें तोड़ ऐ सच्चे,
आ रे प्रमुक्त, आ अपरिपक्व, आ कच्चे।

तू है चिर-यौवनशाली चिरजीवी है,
दे झाड़ सड़न यह जो कि जीर्णता की है,
फिर दे बखेर निःशेष प्राण की धारें।

तेरे हरियाली-मद से मस्त भरा है,
तेरी विद्युत से झंझा मेघ भरा है।
ओ वकुलमाल तू पहने सातलरा है
पहनाता तू उसको वसन्त के गल में।
आ मृत्युहीन, ओ अपरिपक्व आ पल में

दस

चंचला

हे विराट नदी,
अदृश्य अशब्द तेरी वारिधारा बह रही निरवधि विराम-विहीन
अविरल-अविच्छिन्न-अजस्र !
--स्पन्दन से सिहरता शून्य तेरी रुद्र कायाहीन गति के,
वस्तुहीन प्रवाह के खा-खा प्रचण्डाघात उठते वस्तु-रूपी फेन के
शत पुंज;--
नव आलोक की तीव्रच्छटा विच्छुरित होती नित्य चित्र-विचित्र
वर्णस्रोत मे
उठ-उठ निरन्तर धावमान विशाल तिमिर व्यूह से।
(इस चण्ड गति से उठे) घूर्णाचक्र के प्रत्येक स्तर मे
पतित-घूर्णित भटकते-मरते अनेकों सूर्य-शशि-नक्षत्र बुद्बुद की
तरह दिन-रात।
हे भैरवी, हे वैरागिणी,
तुम जो चली उद्देश्यहीन अबाध—
यह गति ही तुम्हारी रागिणी—
नि.शब्द मोहन गान।
क्या तुमको निरन्तर है पुकार रहा अनन्त सुदूर—जिसका
ओर-छोर न सका कोई जान !
उसकी ही निगोड़ी प्रीति से तुम हाय घर-छोड़ी बनी
चल पड़ी, हो उन्मत्त इस अभिसार-यात्रा को, प्रणय का वह विकट
संचार!
--वक्षोहार बारम्बार टकराता, बिखरते जा रहे नक्षत्र मुक्ताकार!
घनमेचक चिकुर सम्भार उड़-उड़ व्योमतल को कर रहा है
अन्धतिमिराकार,
हिल उठते चपल विद्युद्वलय के कर्णफूल दुरन्त,
व्याकुल-विकल अंचल छू रहा धरती, विलुण्ठित हो रहा कम्पित
तृणों पर
और वन-वन में नवोदित तरुण किसलय-राजि पर निर्वाध;
झर पड़ते कि बारम्वार—चम्पा, बकुल, जूही और पाटल,
मार्ग मे;

गिर-गिर तुम्हारे नवल ऋतु की थाल से अनजान !
केवल दौड़ती हो, दौड़ती उद्दाम, उद्धत वाम गति से
ताकती भी हो नही फिरकर, लुटाती जा रही सर्वस्व अपना
खीच-खीच, उलीचकर सब शून्य करती हुई निज भाण्डार,
कुछ भी नही संचती-सँजोती-लेतीं बटोर-बटोर।
मन मे कही शोक न मोह, तुम निर्भय-निधड़क, निछोह !
इस आनन्द मे पथ के लुटाती जा रही निर्बाध निज पाथेय,
जिस क्षण पूर्ण हो जातीं उसी क्षण कुछ नहीं रहता
तुम्हारा, सभी हो जाता निखिल का,
स्वयं को इस भाँति दे देना उँड़ेल अशेष—मस्ती का कि अलबेला नशा
निर्द्वन्द्व ! इससे तुम सदैव पवित्र !
पादस्पर्श से है भूल जाती मलिनता निज विश्वधूलि सदा निमेप-
निमेप में उन्मिषित होकर मृत्यु बनती प्राण प्रति उल्लास में;
बस एक क्षणभर अगर थककर,
साँस लो विश्वास का तुम तनिक रुककर,
स्फीत हो उट्ठे जगत दुर्वार पुंजीभूत पर्वत-सदृश वस्तुसमूह से;
अति पंगु-मूक-कबन्ध, बधिर-निरन्ध,
वह बाधा घमण्डी
स्थूल तन मोटी मुचण्डी
खड़ी होये छेककर पथ रोक सबका—
क्षुद्र से भी क्षुद्रतर परमाणु अपने-आपके ही भार से—
संशयजनित दारुण-विरूप विकार से—
हो उठे विद्ध असीम नभ के मूल में ही वेदना के शूल से।
हे नटी, हे चपलाप्सरे, तुम हे अलक्ष्य विहारि-मोहिनि सुन्दरी
तेरे मनोहर नृत्य की मन्दाकिनी अहरह स्रवित होकर रही पावन
निरन्तर विश्वजीवन को मरण के स्नान से;
निःशेष निर्मल नील में विकसा रही है इस असीम अनन्त तनु
आकाश का आलोक !
रे कवि,
आज तुझको उत्तरल चंचल बना डाला नवल-झंकार-मुखरा इस
भुवन की मेखला ने, और इसके अलक्षित पद-संचरण की अहैतुक
निर्बाध गति ने, नाड़ियो मे आज तेरे सुन रहा हूँ किसी चंचल की
पगध्वनि, वक्ष मे रणरणित निःस्वन,
है न कोई जानता यह—नाचती हैं रक्त मे तेरे उदधि की लोल लहरें,
काँपती है आज मन में विकलता व्याकुल वनों की,
याद आती है पुरानी बात;—

युग-युग से चला हूँ,
स्खलित हो-हो
सदा चुप-चुप
रूप से नवरूप मे ढलता हुआ
फिर प्राण से नवप्राण में जलता हुआ
(हो दिवस या कि विभावरी)
हो प्रात या कि निशीथ,
जब जो कुछ मिला है हाथ में
देता गया हूँ—
दान से नवदात को।
(पद-बन्ध में उन्मत्त) रे कवि, देख इस स्रोतस्विनी के स्रोत को जो
मुखर हो उट्ठा अचानक,
काँपती थरथर तरणि है तीर का संचय पड़ा रह जाय तेरा तीर पर ही
उलटकर उस ओर तू मत ताक।
ऐसा हो कि, वाणी सामने की खींच ले तुझको महागतिस्रोत में,
पीछे पड़े उस तीव्र कोलाहल मुखरता से,
बचा ले इस तिमिर के अतल तल से—और ले जाये उठाकर
उस अकूल ज्योति की ही ओर—
जिसका कहीं ओर-न-छोर !

ग्यारह

मृत्युंजय

दूर से मैं समझता था तुम महादुर्जय निठुर हो,
काँपती धरती तुम्हारे कठिन शासन से,
भयंकर विभीषा के रूप हो तुम,
लपलपाती यह तुम्हारी लोल जिह्वा, दपदपाती जल रही है
दुखी जन के भय-विदीर्ण विशीर्ण हृदयों में—

तुम्हारे दाहिने कर का भयंकर सेल उट्ठा है घुमड़ते बादलों
की ओर
झंझा के,
वहाँ से खींच लाता विकट-दारुण वज्र।

जब तुम्हारे सामने पहुँचा, कलेजे में अजब-सी धुकधुकी थी,
काँपते पग थे, बढ़ा मैं भीत-भीत;
उधर,
तुम्हारे भृकुटि-तर्जन में तरंगित हो रहा था निकट-भावी
विकटतर उत्पात;
—वह आघात आ टूटा!

—कि पंजर काँप उट्ठा, धड़क उट्ठा वक्ष;
करतल से दबाकर उसे मैंने जानना चाहा
कि कुछ क्या शेष अब भी है?
बचा क्या है अभी कुछ आखिरी आघात?
—वह आघात आ टूटा!!

बस यही था?
और कुछ है नहीं बाकी मार?
चोट बस, इतनी तुम्हारी थी?
—कि मेरा भय विलीन हुआ।

जब तुम्हारे हाथ का वह वज्र उद्यत था कठिन आघात करने हेतु
तब मैं मान बैठा था कि तुम हो बड़े—मुझसे बड़े!
पर अपने कठिन आघात के ही साथ
तुम आये उतर मेरे धरातल पर पलक में,
और तुम हो गये छोटे एक क्षण में आज।
टूटकर बिखरा कि मेरा त्रास, मेरी लाज।

हो बड़े जितने न क्यों तुम
किन्तु उतने बड़े निश्चय ही न
जितनी बड़ी होती मृत्यु!
—मैं मगर हूँ मृत्यु से भी बड़ा।
केवल यही अन्तिम बात कह मैं चल पड़ूँगा (तात)
—केवल यही अन्तिम बात!

हाय, वह तो सुख नहीं है
या न शम, विश्राम ही है
मृत्यु का आक्रमण और निशेष प्रतिगृह का
यही नववर्ष का आशीष
रुद्र-प्रसाद तेरे शीश।
फिर भी भय नहीं है, भय नहीं है, ओ बटोही।
दिग्भ्रमित घर-बार-छोड़ी
निठुर अपलक्ष्मी निगोड़ी
यही तेरी आज वरदात्री बनेगी

ओ बटोही,
जीर्ण क्लान्त निशा पुरातन वर्ष की
ले ! कट गयी वह ओ बटोही।
आज आया है निठुर यह
द्वार बन्धन दूर होये
पाव मद का चूर होये
जानता इसको नहीं मैं,
समझता इसको नहीं मैं,
किन्तु फिर भी पकड़ इसकी अंगुली तू (ओ अमानी !)
ध्वनित हो हृत्कम्प में तेरे इसी की दीप्त वाणी

ओ बटोही,
कट गयी, कट जाय जीर्ण निशा पुरानी।

तेरह

कैमेलिया

नाम था उसका कमला।
मैंने उसको कापी पर लिखा हुआ देखा है।
ट्राम में जा रही थी कालेज के रास्ते,
साथ में ले लिया था छोटे भाई को।
मैं था पीछेवाली बेंच पर।
मुख के एक ओर की गोल रेखा दिख रही थी,
और गर्दन पर जूड़े के नीचे के कोमल केश।
गोद में पड़ी हुई थीं कापी और किताबें।
जहाँ मुझे उतरना था वहाँ उतरना न हो सका।
अब समय का हिसाब करके निकला करता हूँ
वह हिसाब मेरे काम के साथ ठीक मेल नहीं खाता,
लेकिन प्रायः ठीक मिल जाता है उनके जाने के समय के साथ।
अक्सर मुलाकात हो जाती है।
मन-ही-मन सोचता हूँ—
और कोई रिश्ता हो, न हो, मेरी सहयात्रिणी तो है
निर्मल बुद्धि का चेहरा जैसे [illegible] हो रहा हो
सुकुमार ललाट के ऊपर केश उठाये हुए होते हैं,
उज्ज्वल आँखों की दृष्टि में कोई संकोच नहीं है।
मन-ही-मन सोचता हूँ, कोई संकट क्यों नहीं दिखाई देता
ताकि इसे उद्धार करके जन्म सार्थक करूँ,—
रास्ते में कोई एक उत्पात,
कोई एक गुंडों का [illegible]।

जी में आता था अकारण ही ऐसा हाथ बैठा दूं
कि सिर से उसकी टोपी उछल पड़े।
गर्दनिया देकर उतार दूं माझ राह में।
कोई बहाना नही मिलता था हाथ खुजला रहा था
इसी समय उसने एक मोटा चुरुट जलाया,
लगा कश खीचने।
मैं नजदीक जाके बैठ गया, 'फेंको चुरुट'।
उसने मानो बात ही नही सुनी,
धुआं उड़ाता रहा, मौज के साथ।
मुंह से चुरुट खींचकर फेंक दिया मैंने रास्ते पर।
मुक्का बांधकर एक बार मेरी ओर कटमटाके देखा,
ज्यादा कुछ बोला नहीं, एक उछाल में उतर पड़ा।
शायद मुझे पहचानता था।
फुटबाल के खेल मे मेरा नाम है, खासा अच्छा नाम
उस लड़की का मुंह लाल हो गया,
किताब खोलकर सिर झुकाकर पढ़ने का भान करने लगी,
हाथ उसके कांपते रहे
कटाक्ष से भी नही देखा वीर पुरुष की ओर।
दफ्तर जानेवाले बाबुओं ने कहा, 'खूब किया आपने भाई साहब!'
जरा देर बाद ही वह लड़की उतर गयी, बेमौके,
और चली गयी एक टैक्सी लेकर।
दूसरे दिन उसे नही देखा,
उसके बादवाले दिन को भी नही।
तीन दिन बाद क्या देखता हूं, कि
एक ठेले-गाडी पर चली है कालेज की ओर
मैं समझ गया, गँवार की तरह गलती कर चुका हूं,
वह लड़की अपनी फिकर आप ही कर सकती है,
उसे मेरी कोई जरूरत थी ही नही।
फिर मन ही मे कहा, मेरा भाग्य गँदले पानी की तलैया है,—
आज बार-बार वीरत्व की स्मृति आवाज दे रही है मजाक की तरह।

तै किया, गलती सुधारनी होगी।
खबर मिली है वे लोग गर्मी की छुट्टियों में दार्जिलिंग जा रहे हैं।
इस बार मुझे भी हवा-पानी बदलने की अनिवार्य आवश्यकता हुई।
उनका वासस्थान छोटा-सा था,
नाम दिया था मोतिया—

रास्ते से ज़रा-सा उतरकर एक कोने मे,
पेड़ों की आड़ मे,
सामने था बर्फ का पहाड़
सुना, इस बार वे लोग नही आयेंगे।
सोच रहा था लौट चलूं,
ऐसे ही समय अपने एक भक्त से मुलाकात हो गयी,
मोहनलाल—
दुवला-पतला लम्बा आदमी है,
आँखों में चश्मा,
उसका कमज़ोर पाकयन्त्र दार्जिलिंग आकर ज़रा उत्साह पाया करता है।
उसने कहा—"तनुका मेरी वहन है,
तुमसे भेंट करना चाहती है,
किसी प्रकार नही छोड़ेगी, चलना ही होगा।"
लड़की छाया के समान है,
शरीर उतना ही है जितने विना काम ही नही चल सकता,
लिखने-पढने में जितना लगाव है, आहार मे उतना नही है।
इसीलिए फुटवाल के सरदार पर ऐसी अद्भुत भक्ति है—
वह समझती थी कि मैं जो उससे मुलाकात करने आया हूँ
वह मेरी दुर्लभ दया है।
हाय रे नसीव का खेल!
जिस दिन उतर आऊँगा उसके दो दिन आगे तनुका ने कहा—
"आपको एक चीज दूंगी, ताकि हमारी याद बनी रहे,
एक फूल का पौधा।"
अच्छा झंझट हाथ लगा! चुप हो रहा।
तनुका बोली, "कीमती पौधा है,
इस देश की मिट्टी में मुश्किल से उगता है।"
मैंने पूछा, "नाम क्या है?"
वोली—"कैमेलिया।"
चौंक पड़ा मैं—
और एक नाम मन के अन्धकार में चमक उठा,
हँसके वोला—'कम्मेलिया'
शायद आसानी से इसका मन नही मिलता।"
पता नही तनुका ने क्या समझा,
अचानक लजा गयी,
खुश भी हुई।

गमला-समेत फूल का पौधा लेकर चल पड़ा।
देखा, पार्श्ववर्तिनी के तौर पर यह सहयात्रिणी सहज नहीं है।
एक दो-कमरा गाड़ी में
नहाने के घर में गमले को छिपाया।

जाने दो इस भ्रमण-वृत्तान्त को,
छोड़ दिया जाय, और कई महीनों की तुच्छता को।
पूजा की छुट्टी में इस प्रहसन की यवनिका उठी सन्थाल-परगने में।
जगह छोटी है। नाम नहीं बताना चाहता—
वायु बदलनेवाले वायुविकार-ग्रस्त लोग
इस स्थान की खबर नहीं रखते,
कमला के मामा रेल के इंजीनियर थे।
उन्होंने यहीं डेरा डाला था,
शाल-वन की छाया में, गिलहरियों के मुहल्ले में।
दिगन्त तक नीला पहाड दिखायी देता है,
अदूर की जलधारा बालू के भीतर से चली है—
पलाश-वन में रेशम के कोए लगे हुए हैं,
हर्र के वृक्षों-तले भैंसे चर रहे हैं,—
पीठ पर हैं नंगे सन्थाल-बालक।
मकान का कहीं पता नहीं—
इसलिए नदी-किनारे तम्बू तानना पड़ा।
साथी कोई नहीं था, थी केवल वह कैमेलिया।
माँ को लेकर कमला आयी है।
धूप उठने के पहले
शिशिर-स्निग्ध वायु में
शालवन के भीतर से घूमने आती है,
हाथ में होता है छाता,
मैदान के फूल पैरों तले सिर रगड़ते हैं—
पर वह क्या किसी की ओर देखती है!
थोड़े पानीवाली नदी को पैदल ही पार करके उस पार
निकल जाती है,
वहाँ शीशम-वृक्ष के नीचे किताब पढ़ती है।
और मुझे जो उसने पहचान लिया है
यह बात मैं समझ गया, इस तरह, कि वह मुझे लक्ष्य ही नहीं करती।
एक दिन देखता हूँ नदी-किनारे बालू पर उनका पिकनिक चल रहा है।
जी में आया जाकर कहूँ कि 'क्या मेरी जरूरत बिल्कुल नहीं है।

मैं नदी से पानी ले आ सकता हूँ—
जंगल से लकड़ी काट ले आ सकता हूँ,
और फिर आस-पास के जंगल मे
क्या कोई भलामानस भालू भी नही मिलता ?'
देखा, दल में एक युवक भी है—
कमीज पहने है, बदन मे विलायती रेशम का कोट है,
कमला की बगल में पैर फैलाकर बैठा हुआ है
और कमला अन्यमनस्क होकर श्वेत जवाफूल की पपड़ियाँ चिथड़ रही है।
बगल में पड़ी हुई है विलायती मासिक पत्रिका।
क्षण-भर में ही समझ गया, इस सन्थाल-परगने के निर्जन कोने में
मैं हूँ असहनीय अतिरिक्त—कही नही अँट सकूँगा।
उसी समय लौट आता, पर एक काम बाकी रह गया था।
और दो-एक दिनों में ही कैमेलिया खिलेगी,
उसे पठाकर तब छुट्टी लूँगा।
सारा दिन कन्धे पर बन्दूक रखकर घूमा करता हूँ
वन-बीहड में,
और शाम के पहले ही लौटकर गमले में पानी देता हूँ।
देखा करता हूँ कली कहाँ तक आगे बढी है।
आज उसका समय हुआ है।
जो मेरी रसोई के लिए लकड़ी ले आया करती है
उस सन्थाल-लड़की को बुलाया है।
सोचा है, इसी के हाथों
शालपत्र के पात्र में रखकर भिजवा दूँगा।
तम्बू के भीतर बैठा-बैठा एक जासूसी कहानी पढ़ रहा हूँ।
बाहर से मीठे सुर मे आवाज आयी, "काहे बुलाया है बाबू ?"
निकलकर देखता हूँ, कैमेलिया
सन्थाल-लड़की के कान में झूल रही है
और काले-काले गाल को आलोकित कर रही है।
उसने फिर पूछा, "काहे बुलाया ?"
मैं बोला, "इसी वास्ते।"

फिर कलकत्ते लौट आया।

चौदह

मामूली लड़की

मैं अन्त:पुर की लड़की हूँ—
तुम मुझे नहीं पहचानोगे।
तुम्हारी आखिरी कहानी की पुस्तक मैंने पढ़ी है, शरत्‌बाबू*
'बासी फूलों की माला'।—
तुम्हारी नायिका एलोकेशी को मरण-दशा प्राप्त हुई थी
पैंतीस वर्ष की उमर में।
पच्चीस वर्ष की उमर के साथ उसकी तनातनी थी
देखती हूँ तुम महाशय व्यक्ति हो,
जिता दिया है उसे।

अपनी बात बताऊँ।
उमर मेरी थोड़ी ही है।
किसी एक के मन को स्पर्श किया था
मेरी इस कच्ची उमर की माया ने।
यही जानकर मेरा शरीर पुलकित होता था—
मैं भूल ही गयी थी कि मैं एक मामूली लड़की हूँ।
मेरी तरह ऐसी हजार-हजार लड़कियाँ हैं
वारी उमर का मन्त्र उनके यौवन में।
दुहाई है
एक मामूली लड़की की कहानी लिखो
बड़ा दुःख है उसे।
उसके भी स्वभाव की गहराई मे
कही अगर कोई असाधारण बात छिपी हो,
किस प्रकार वह प्रमाणित करेगी उसे,
ऐसे कितने है जो उसे परख सकें!
उनकी आँखो मे कच्ची उमर का जादू लगता है
सत्य की तलाश मे उनका मन नही जाता
हम बिक जाती हैं मरीचिका के दामों।
बात क्यो उठी, बताती हूँ।

* बंगाल के प्रसिद्ध औपन्यासिक स्वर्गीय शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय।

मान लो उसका नाम नरेश है
उसने कहा था कि मेरी जैसी कोई उसकी आँखों नहीं पड़ी
इतनी बड़ी बात विश्वास करूँ, ऐसा साहस नहीं है
न करूँ, ऐसा जोर कहाँ है !
एक दिन वह गया विलायत को ।
कभी-कभी चिट्ठी-पत्री मिल भी जाती थी मुझे ।
मन-ही-मन सोचती, राम राम, इतनी लडकियाँ है उस देश मे,
इतनी उनकी ठेलमठेल भीड़ ।
और फिर क्या सभी असाधारण है
इतनी बुद्धि, इतनी उज्ज्वलता ।
और उन सबने ही क्या आविष्कार किया है एक नरेश सेन को
स्वदेश में जिसका परिचय दस जनो मे दबा था ।
पिछले मेल की चिट्ठी में उसने लिखा है, लीजी के साथ समुद्र
में नहाने गया था ।
बंगाली कवि की कविता की कई लाइनें उद्धृत कर दी हैं
वही, जिसमें उर्वशी उठती है समुद्र मे ।
इसके बाद बालू पर बैठ गये
एक दूसरे के बगल में—
सामने हिल रही हैं नील समुद्र की तरंगें,
आकाश में फैला हुआ है निर्मल सूर्यालोक
लीजी ने उससे खूब धीरे-धीरे कहा,
"यही तो उस दिन तुम आये,
दो दिन बाद चले जाओगे
सीपी के दो पद,
बीच मे भरा रहने दो
एक ठोस अश्रु-बिन्दु से—
दुर्लभ मूल्यहीन ।"
बात कहने का कैसा असाधारण ढंग है ।
उसी के साथ नरेश ने लिखा है,
"बातें यदि बनायी हुई हों तो भी दोष क्या है
लेकिन है चमत्कार—
हीरा जड़ा सोने का फूल क्या सत्य है ?
तो भी क्या सत्य नहीं है ?"
समझ ही तो सकते हो
एक तुलना का इशारा
उसकी चिट्ठी में एक अदृश्य काँटे की तरह

मेरे हृदय में चुभोकर बता देता है—
मैं एक अत्यन्त मामूली लड़की हूँ।
मूल्यवान् को पूरा मूल्य चुका दूँ
ऐसा धन तो मेरे हाथ में नहीं है।
अजी न हो यही सही,
न हो मैं सारे जीवन ऋणी ही बनी रही।
पैरों पड़ती हूँ एक कहानी तुम लिखो शरत्‌बाबू,
अत्यन्त मामूली लड़की की कहानी—
जिस अभागिनी को दूर से मुकाबला करना होता है
अन्तत: पाँच-सात असामान्याओं के साथ—
अर्थात् सप्तरथिनी को मार
समझ गयी हूँ मेरा भाग्य खोटा है
हार हुई है मेरी।

किन्तु तुम जिसकी कहानी लिखोगे,
उसे जिता देना मेरी ओर से,
पढ़ते-पढते, ऐसा हो कि, छाती फूल उठे।
फूल-चन्दन पड़े तुम्हारी कलम के मुँह में
उसे नाम देना मालती।
वह नाम मेरा है।
पकड़ जाने का कोई डर नहीं है,
ऐसी अनेक मालतियाँ हैं इस बंगाल मे,
वे सभी मामूली लड़कियाँ हैं,
वे फ्रेंच जर्मन नहीं जानती
रोना जानती हैं।

कैसे जिता दोगे?
उच्च है तुम्हारा मन, महीयसी है तुम्हारी लेखनी
खूब सम्भव तुम उसे त्याग के रास्ते ले जाओगे
दुःख के चरम बिन्दु पर,
शकुन्तला की तरह।
दया करो मेरे ऊपर।
उतर आओ मेरे धरातल पर।
बिछौने पर सोयी हुई रात के अन्धकार में
देवता के निकट जो असम्भव वर माँगती हूँ—

वह वर मैं नहीं पाऊँगी,
किन्तु ऐसा करना कि तुम्हारी नायिका को वह मिले।
रहने दो ना नरेश को सात वर्ष लन्दन में,
बार-बार वह फेल हो अपनी परीक्षा में,
रहने दो आदर के साथ उसे अपनी उपासिका मण्डली मे।
इसी बीच मालती एम. ए. पास करे,
कलकत्ता विश्वविद्यालय से,
होने दो उसे गणित में प्रथम तुम्हारी कलम की एक खरोच से।

किन्तु वही यदि रुकते हो
तो तुम्हारे साहित्य-सम्राट् नाम को धब्बा लगेगा।
मेरी दशा जो भी हो
तुम अपनी कल्पना को छोटी मत बनाओ
तुम तो विधाता की भाँति कृपण नहीं हो।

लड़की को भेज दो यूरोप में।
वहाँ जो लोग ज्ञानी है,
विद्वान् हैं, वीर हैं
जो कवि हैं, जो शिल्पी हैं, जो राजा है,
वे दल बाँधकर उसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हों।

ज्योतिविन्दु की भाँति वे आविष्कार करें उसे
सिर्फ विदुषी जानकर नही,
नारी जानकर।

उसमें जो विश्वविजयी जादू है
वह रहस्य प्रकट होवे,
मूढ़ों के देश में नही
उस देश मे जहाँ समझदार हैं, मर्मज्ञ है,
जहाँ अंग्रेज हैं, फ्रेंच हैं, जर्मन हैं।
मालती के सम्मान के लिए क्यों न एक सभा बुलवायी जाय—
बड़े-बड़े नामी-गरामी लोगों की सभा।
मान लिया जाय वहाँ मूसलाधार खुशामद
की वर्षा हो रही है,
और बीच में से वह लापरवाही के साथ चली है—
तरंगो पर से चला करती है जिस प्रकार पालवाली नाव।

उसकी आँखें देखकर वे कानाफूसी कर रहे हैं,
सभी कह रहे हैं, भारतवर्ष का सजल मेघ
और उज्ज्वल धूप
दोनो ही मिले हुए है इसकी मोहिनी दृष्टि में ।
यही जनान्तिक में—कह रखूं,
सृष्टिकर्त्ता का प्रसाद सचमुच मेरी आँखों में है।
(अपने ही मुँह अपनी वात कहनी पड़ी, लाचारी है,
आज भी किसी यूरोपीय रसज्ञ का
साक्षात्कार भाग्य को नसीब नही हुआ।)
नरेश आकर खडा हो उसी कोने मे;
और खड़ा हो उसकी असाधारण लड़कियो का दल
और इसके बाद ?
इसके बाद 'वनिया की वेटी रतनी
मोर कहनियाँ इतनी'
मेरा सपना खतम हुआ।
हाय रे मामूली लड़की,
हाय रे विधाता की शक्ति का अपव्यय !

पन्द्रह

अफ्रीका

उस उद्‌भ्रान्त आदिम युग मे
जिस समय स्रष्टा अपने प्रति असन्तोष से
नयी सृष्टि को वार-वार विध्वस्त कर रहे थे,
उसी दिन
रुद्र समुद्र का वाहु
प्राची धरित्री की छाती से
छीन ले गया तुम्हें, ऐ अफ्रीका,
वाँधा उसने तुम्हें, वनस्पति के कठिन पहरे से

कृपण आलोक के अन्तःपुर मे
वहाँ एकान्त चुपचाप फुरसत के समय
तुमने संग्रह किया था दुर्गम का रहस्य,
पहचाना था जल-स्थल और आकाश का दुर्बोध संकेत
प्रकृति का दृष्टि - अतीत जादू
मन्त्र जगा रहा था चेतनातीत मन में।
भीषण को तुम चिढा रहे थे
विरूप के छद्मवेश में
शंका को हार मानना चाहते थे
अपने को उग्र करके विभीपिका की प्रचण्ड महिमा से
ताण्डव के दुन्दुभिनिनाद से।
हाय छायावृता,
काले घूँघट के नीचे, अपरिचित था तुम्हारा मानवरूप
उपेक्षा की आविल दृष्टि में।
वे लोहे की हथकड़ी लेकर आये
जिनके नख तुम्हारे भेड़ियों से भी अधिक तीक्ष्ण है,
आया मनुष्य पकड़नेवालो का दल
गर्व से जो अन्धे है, तुम्हारे सूर्यहीन अरण्यो से भी अधिक।
सभ्य के बर्बर लोभ ने
नंगा कर दिया अपनी अमानुपिक निर्लज्जता को।
तुम्हारे भापाहीन क्रन्दन से
वाष्पाकुल वनमार्ग में
पंकिल हो उठी धूलि तुम्हारे रक्त और आँसू से मिलकर;
दस्यु-पदों के काँटे-ठुके जूतो के नीचे
बीभत्स कीचड़ का पिण्ड
तुम्हारे अपमानित इतिहास मे दीर्घकालीन चिह्न छोड़ गया।
समुद्र के पार उसी समय उनके मुहल्ले-मुहल्ले मे
मन्दिरो मे पूजा का घण्टा बज रहा था
सवेरे और सन्ध्या समय
दयामय देवता के नाम पर;
बच्चे खेल रहे थे माताओं की गोद मे
कवि के संगीत में बज उठी थी
सुन्दर की आराधना।

आज जब पश्चिम दिगन्त मे
प्रदोषकाल झंझावायु मे रुद्धश्वास हो रहा है,

जब गुप्त गह्वरों से पशु निकल आये हैं
अशुभ ध्वनि ने दिन का अन्तकाल घोषित किया है,
आओ, ऐ युगान्त के कवि,
आसन्न सन्ध्या के अन्तिम रश्मिपात के समय
खड़े हो जाओ उस हृत-मना
मानवी के द्वार पर।
बोलो क्षमा करो—
हिंस्र प्रलाप के भीतर
यही हो तुम्हारी सभ्यता की अन्तिम पुण्य वाणी।

सोलह

आविर्भाव

बाट जोही थी किसी दिन भरे फागुन में तुम्हारी,
पर पधारे चरण इस घनघोर वर्षा बीच
इस उत्ताल तुमुल-निनाद मन्द्रिल छन्द से
घनघनित मोहन घुमड़ते पद बन्ध से
तुम गान जो चाहो बजाना आज मेरी प्राणवीणा पर, बजा लो खींच
इस घनघोर वर्षण बीच

दूर से देखा किसी दिन था तुम्हारा कनक-अञ्चल आवरण,
नव फुल्ल चम्पक आभरण,
पर पास देखा तो नवल
घन-नील अवगुण्ठन विमल
चल चंचला की कौंध में है दमकता, करता चपल विचरण !
कहाँ वह आज चम्पाभरण !

एक दिन देखा तुम्हारे चरण छिन-छिन छू रहे वन-तल
परस से सिहर उठते हैं कुसुमदल

और फिर ऐसा लगा है, पड़ रहा मानो कहीं सुन
क्षीण कटि की मेखला-किंकिणी की-सी मृदुल रुनझुन;
लग रहा ऐसा कि पाया हो कहीं नि:श्वास-परिमल,
जब चरण सुकुमार छूते नवल वन-तल !
आगमन अब यह भुवन भर, गगन में फैला चिकुर चल,
चरण में बाँधे सुमन-दल,
ढँक लिया मुझको तुम्हारी मदिर छाया ने,
सजल घन-सघन माया ने
कि, व्याकुल कर दिया तुमने हृदय-सागर-किनारा
श्याम-सुन्दर महोत्सव-वल,
चरण में बाँधे सुमनदल।

फूल-वन में बैठ फागुन में पिरोये हार मैंने मनोरम उपभोग्य
पर यह है न वह उपहार जो होये तुम्हारे योग्य
जिधर चरण बढ़े तुम्हारे फिर उसी ही ओर
प्रिय वह अनुसरण करता चला जाता स्तवन का गान आत्मविभोर !
क्षुद्र यह वीणा बजा सकती कहाँ वह सुर विशाल-मनोज्ञ,
पर यह है न वह उपहार जो होये तुम्हारे योग्य !

जानता था कौन वह छिन-भर-निहारी मूर्त्ति वर्पण को करेगी दूर,
चंचल दरस फिर मिट जायेगा बन क्रूर !
और फिर यह जानता था कौन —लज्जा-दीन
मैं यों प्रिय जनोचित साज सज्जा-हीन,
होऊँगा मलिन मन छीन !
हाय सुहागघर के द्वार पर तुमने कराया इस तरह का अर्घ्य-विनिवेदन
दिया इस रूप में दर्शन !

क्षमा कर दो क्षमा, अपराध !
मेरा निरायोजन यह अभद्र प्रमाद !
क्षणिक पर्णकुटीर मे प्रिय तुम पधारो आप,
झिलमिल दीप के आलोक में चुपचाप,
बेंत की इस बाँसुरी में झरे नयन-प्रसाद
मनभावन ! क्षमा कर दो, क्षमा, अपराध !

बाट जोही जब तुम्हारी भरे फागुन में, तुम्हारे तब चरण आये न
अब पधारो इस भरी बरसात में (गुरुदेव)

तुम पधारो हे, गगन-प्रांगण-लुण्ठित-अंचल,
सकल स्वप्न करो मुदित मन प्रद्रवित-चंचल !

गान जो चाहो बजाना आज मेरी प्राण-वीणा पर, बजा लो खींच,
इस घनघोर वर्षण बीच !

सत्रह

त्राण

इस अभागे देश से हे नाथ मंगलमय, करो तुम
दूर सब भयजाल ओछे
छिन्न कर दो लोक से नृप से मरण से
भीति का जंजाल,
चूर्ण-विचूर्ण कर दो रुद्र यह पाषाण का जो भार
दुर्बल दीन कन्धारूढ़ चिरपेक्षण व्यथा की मार,
यह अवनति सदा की धूलितल में—
यह कठिन अपमान अपना ही निमिष-निमिष,
यह दासत्व की शृंखला भीतर और बाहर जड़ित,
बारम्बार हो नतशीर्ष त्रस्तोद्‌भ्रान्त शतपद प्रान्त
तल का यह सुचिर परिहार मानव-दर्प का,
हतगर्व-मर्यादाजनित धिक्कार लज्जाराशि बृहदाकार
कर दो चूर्ण ठोकर मार
दो अवसर कि शुभ प्रत्यूष वेला में
उठायें शिर ग्रहण कर सकें निज निश्वास
मुक्त बयार में लग सके यह निस्सीम
परम व्योम का आलोक, दृप्त अशोक।

अट्ठारह

इस बार मुझे लौटाओ

आज जब संसार में सब लोग शत-शत कर्म मे है
निरत आठो याम,
ऐसे ही समय तू छिन्न-बाधा भगोड़े शिशु की तरह
मैदान में बैठा उदासी से भरे तरु के तले छिपकर कि
दुपहरिया गँवाता,
दूर के वन-गन्धवाही तप्त झंझा के झकोरों में बजाता
बाँसुरी दिन-भर
अरे, उठ आज अपना सिर उठाकर देख आग लगी कहाँ है ?
कौन शंख बजा रहा है विश्वजन को जगाने के हेतु ?
यह आकाश फटता है कहाँ दुस्तर करुण क्रन्दन-गिरा से ?
किस अँधेरे रुद्ध कारागेह
में बैठी अनाथ वधू तुम्हारी मदद पाने के लिए
व्याकुल पुकार रही ?
कहाँ से स्फीत वपु अपमान दीन-दरिद्र-अक्षम की
शिरा का चूस रहा निरन्तर लाख मुँह फैला
कि उठ वह देख स्वार्थोद्धत कलुप अन्याय
का कैसा घृणित परिहास ग्रास किये चला नर-लोक को ?
संकुचित भीत-क्रीत दास छिपा हुआ है छद्मवेशी !

देख, वह जो सिर झुकाये मूक मानव खड़ा—
जिसके म्लान मुख पर सदा अंकित शत-शताब्दी
की कठिन निर्यातना की पीर,
जितना भी न लादो भार ढोता ही चला करता
अलस गति से जहाँ तक साँस चलती है,
मरण के बाद जाता लाद है औलाद के सिर पर—
करम को ठोंकता है पर न झुंझलाता,
न देता देवता को दोष, रखता है न मन में
रंच-भर अभिमान,
सूखी रोटियों को चाट अधपेटा बचाये
जा रहा है कष्टरक्षित प्राण, हाहाकार से जर्जर !

जब इस अन्न को भी छीन लेता है निठुर
कोई लगाता, प्राण में ठोकर निठुर गर्वान्ध
अत्याचार, तो फिर जानता यह भी नही
वह जाय किसके द्वार पर कुछ न्याय की
आशा लिये।
बस, एक बार दरिद्र के भगवान् को
है याद कर लेता करुण निःश्वास लेकर।

उन्नीस

'भर-सक-भला' और 'और-भी-भला'

भर-सक-भला पुकार उठा—हे और-भी-भला भाई,
किस स्वर्गीय जगत् में तुमने निज आभा फैलायी!
और-भी-भला रोकर बोला—पूछा नही बसेरा,
अकर्मण्य दम्भी की अक्षम ईर्ष्या में घर मेरा।

बीस

उपकार का दम्भ

कहा शैवाल ने ऊँचे उठा सिर,
कि लिख लो ताल, यह मत भूलना फिर—
दिया मैंने तुम्हें बिल्कुल सबेरे
शिशिर की एक बूंदी यार मेरे!

इक्कीस

निज का और साधारण का

कहा चन्द्र ने, निज प्रकाश मैंने
जगती को लुटा दिया ;
जो कलंक मेरा उसको अपने में
ही है सटा लिया

वाईस

भक्ति के पाग

रथ-यात्रा शोभा महा, धूमधाम सब ओर।
पथ पै झुक-झुक भक्तजन, करते प्रणति अथोर ॥
पथ, रथ, मूर्त्ति सभी यही, सोचें मैं हूँ देव
अन्तर्यामी देवता, हँसते लखकर एव।

तेईस

बन्दीवीर

पाँच नदियों के किनारे
देखते ही देखते गुरुमन्त्र के बल के सहारे
जटाजूट सँभाल सिर पर जग उठे सिख वीर
निर्मम निडर निधड़क धीर,
और हजार कण्ठों से समुच्छ्रित जयध्वनि गुरु की
ध्वनित कम्पित मथित कर उठी सब दिग्प्रान्त,
नव जागरण उत्थित सिक्ख वीरों ने निहारा
नवल अरुणोदय पुकारा
कि 'अलख निरंजन'
यह महारव उठा बन्धन तोड़ भयभंजन
खिंची विशाल असियाँ वक्ष तट के पास
घन उल्लास बज उठी झन-झन-झन
सुनो पंजाब आज दहाड़ उठा कि
'अलख निरंजन'।

एक आया था कभी वह दिन
लाख प्राणों ने न जाना भय न शंका छिन
न रक्खा किसी का भी ऋन
कि जीवन-मृत्यु चरणों के तले थे मृत्य
आशंका रहित थे चित्त
दुर्गम पाँच नदियों के दसों तट घेर
आया था कभी वह दिन
उधर दिल्ली का महल हिल उठा बारम्बार
शाहंशाह की थी भंग हो आती अलस तन्द्रा
अरे यह कौन हैं ?
जिनके कि कण्ठनिनाद से आकाश मन्थित हो उठा
रह-रह सुनिविड़ निशीथ की है शान्ति होती भंग
रे यह कौन हैं जिनके प्रदीप्त मशाल जलकर
जला देते हैं गगन का लाल भाल विशाल
उठती है लपट विकराल।

पाँच नदियों के किनारे
भक्त तन की रक्त-लहरी मुक्त हो उठी कहाँ रे!
लक्ष वक्ष विदीर्ण कर उड़ रहे दुर्दम प्राण
दल के दल विहंग समान नीड़ोन्मुखी
आज वीरों ने लगायी रक्त की टीका
प्रदीप्त हुआ मनोहर भाल जननी का
दुर्गम पाँच नदियों के किनारे।

मुगल सिख उन्मत्त रण में
गुँथे आलिंगन मरण में
कसी गर्दन शत्रु मर्दन का विकट उल्लास मन में
यों लड़े जैसे कि खाकर चोट निर्मम बाज
जूझे हों फणोद्धत नाग से (वन में)
भयंकर समर में हो व्यस्त, वे अलमस्त-से
सिखवीर गरज उठे कि उस दिन—
वज्र-दारुण घोष से—
'जय वाहि गुरु की जय' भयोद्धत रोष से
जब दुर्ग मे गुरुदासपुर के हो गया वन्दी
विकट वन्दा
तुरानी सैन्य के कर में
उसे घन निगड़बद्ध विशाल सिंह समान
कसकर बाँध लोहे की कठिन जंजीर से,
लाया गया दिल्ली नगर में
जब कि वन्दी हो गया वन्दा विकट गुरुदासपुर में

सामने निकली मुगल सेना उड़ाती मार्ग पर की धूल
ले बरछा फलक की नोक पर
खण्डित सिखों के मुण्ड का जयशूल
पीछे सात सौ सिख वीर बन्दी चल रहे अलमस्त
झन-झन झनझनाती जा रही
बेडी चरण में अस्त।
खरभर नगर मे मच गयी
सड़कें खचाखच भर गयी
खुलते गये हर्म्य गवाक्ष अन्तःपुर विहारी
सुन्दरी जन के, दहाड़ा भीमरव से
सिख वीरो ने मरण जय भूल

'जय गुरु वाहि गुरु की जय'
मुगल सिक्ख साथ-साथ उड़ा रहे हैं
आज दिल्ली नगरपथ की धूल।

मानो मच गयी हो होड़
देगा कौन पहले प्राण संशय छोड़।
सौ-सौ वीर कट-कटकर मरे,
जब दिनभर वधिक जल्लाद के हाथों भयंकर घोर
गर्जन कर 'जय जय वाहि गुरु की जय'
चढ़ाया अर्घ्य उज्ज्वल सात सौ
सिर का कठिन दुर्जय
किया निःशेष जीवन सात दिवसों में।

हुआ जब सात दिन का अर्घ्यदान समाप्त
काजी ने दिया तब डाल बन्दा वीर के उत्संग में
उसके सुकोमल पुत्र को।
बोला कि इसको मारना होगा तुम्हें
निज हाथ से चुपचाप।
कोमल गात, कुँवर-किशोर
शृंखलबद्ध कर निष्पाप
बन्दा के कलेजे का नरम टुकड़ा, दुलारा लाल।
वाणी हुई उसकी रुद्ध
धीरे खींचकर शिशु को लगाया वक्ष से कसकर
निमिष-भर के लिए रख दिया माथे पर
पिता का अभयदाता दाहिना निज हाथ
केवल एक बार निहार, उसकी चूम ली रंगीन पगड़ी
और फिर कटि मे बँधी दारुण कृपाण सँभाल ली
फिर देख शिशु के दुधमुँहे मुँह ओर बोला कान में
'जय वाहि गुरु की जय, न बेटा,
है कही कुछ भय'

नवीन किशोर मुख पर अभय किरणें
जल उठी तत्काल
बोला लाल
'जय गुरु वाहि गुरु की जय, नही कुछ भय!'

लिया बायीं भुजा में कस
लगाया गले बन्दा वीर ने
फिर दाहिने कर ले कराल कृपाण
भोंक दिया कलेजे में
दुलारे लाल के !

'जय वाहि गुरु की जय' पुकारा लाल ने
फिर लोट धरती पर गया निष्प्राण
सारी सभा थी निस्तब्ध वाक्य-विहीन !

और फिर जल्लाद ने जलती सँड़ासी से जला डाला
अविचलित वीर बन्दा को
मरा सुस्थिर न बोला एक कातर शब्द
व्याकुल दर्शकों के नयन मुद्रित हुए
और सभा हुई निस्तब्ध।

संस्कृत में लिखी कविताएँ

एक

क्वचिद्राज्यलाभात् क्वचिद्वल्कलाञ्च, क्वचित् प्रेयसी स्निग्ध दृग्बाणपातैः।
यतः प्राप्यते मानुषैरात्मतोषस्ततो नाहभावाहयाम्यर्यचिन्ताम्।

उदयगिरि निकूटादुद्भवस्ताम्रकान्तिः
प्रतपति दिशि दिश्यंगार धारां प्रवर्षन्
स च निखिल वसूनां प्राणदाता विवस्वान्
यदि पतति दिनान्ते के वयं क्व स्थिरत्वम् ! !

अमृतकिरणवर्षैः सेचयन्नौपधानि
प्रथित मधुरकान्तिः मूर्तशान्तिः सुधात्मा
विधिगुण परिपाकात् सोपि विभ्रंशतश्चेत्
उपशमित विरोधा एव के वीतविघ्नाः !

[31 अगस्त, 1939]

दो

प्रेमचन्द-प्रशस्तिः

भञ्जन्मोह महान्धकार वसति सद्वृत्तमुच्चैर्भजन्
वैदग्ध्यं प्रथयन् सुसज्जनमनो वारान्निर्धिह्लादयन्।
ध्वान्तोद्भ्रान्तजनान् दिशन्ननुदिशंध्वान्तप्रियान् शोभयन्।
चन्द्रः कोऽपि चकास्त्यसा व भिनवः श्री प्रेमचन्द्रः सुधीः ॥

प्रेमचद्रश्च चन्द्रश्च न कदापि समावुभौ,
एकः पूर्णकलो नित्यमपरस्तु यदा कदा।

तीन

वन्दे मोटी तोदमुदारम्
द्रविण - पाक - दक्षिणं, समार्जित व्यवस्थासारम्।
लोकविचार चारुचर्वनकरममित नीतिविस्तारम्।
जनपरिवादाधान कर्म्मसुनिपुण मंजूपाकारम्।
विफल वितण्डावाद जल्पना मिथ्यावादपिटारम्।
विद्वज्जन गर्जना श्रवणजम् धुकुड़पुकुड़म स्वमनुक.रम्।
मूर्खमण्डलीमध्य समर्पितकरमति बुद्धि बधारम्।
सकल पुराणशास्त्रमधरीकृतमविहृतस्थौल्याकारम्।

एक

करुण-गानम्

[सुमित्रानन्दन पन्त की कविताओं का संस्कृत-श्लोकान्तरण]

अहो मदीया किल कीदृशीयं गीतिः सदार्द्रा हृदयादुदेति।
अस्याश्रुतेऽपि प्रतिबिन्दुमध्ये दाहः सदा वाडवजोऽभ्युदेति।
वर्णाः समस्तायुरसः प्रकम्पाः, शब्दाश्च सर्वे स्मृतिदंशभूताः।
पादास्तयोच्छ्वासमया भवन्ति, कणः कथायाः करुणाम्बुराशिः।

[आह ! यह मेरा गीला गान;—
वर्ण-वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द-शब्द है सुधि का दंशन,
चरण - चरण है आह,
कथा है करुण अथाह !
बूंद में है वाड़व का दाह !]

× × ×

पीड़ा सदा तिष्ठति कल्पनायां चक्षुर्जले रोदनसिक्तगानम्—
शून्ये समुच्छ्वास उदीर्यमाणे तिष्ठत्यहो ! सस्वर-पद्यबन्ध.।
अवश्यमासीत् स कविर्वियोगी आद्यो यदुच्छ्वासज एप गीतः
अमूल्लयो वै मधुरोऽप्यनन्तो भवेदनन्ता खलु माधुरीहि।

[शाप है अथवा यह वरदान ?
कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है।
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है ?

वियोगी होगा पहला कवि
आह से निकले होगे (?) गान !

× × ×

त्यक्ता द्रुमाणाहि मंजुलाभाम् विहाय मायां प्रकृतेरुदाम्
बालेसुजाले तव कुन्तलानां कथं प्रबन्धामि विलोचने मे ?
[छोड़ द्रुमों की यह छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन ?]

दो

फूल

प्राणेपु प्रतिगृह्य मार्दवरसं चादाय हासं तथा,
स्निग्धीभूतहृदोनिशोऽप्यनुपमं मुग्धर्त्तकानां स्मितम् ।
उच्छ्वासं खलु पारिजातजमथैतस्मिन् जगत्यागतो—
हे सारल्यमय-प्रसून ! मृदुता-प्राण ! त्वमज्ञानतः ।

प्राण मे कोमलता का सार
स्निग्ध रजनी का लेकर हास
मुग्ध नक्षत्रों की मुसुकान
पारिजातो का ले उच्छ्वास
विश्व मे आये हो अनजान ।
सरल हे छोटे कोमल प्राण !

× × ×

ऐश्वर्योऽह्ययमद्भुतस्तरुणिमायाः, सुन्दरीयं तनुः ।
आच्छाद्याननमद्य पल्लवपटेनैतेन नूलेन वै ।
अस्पृष्टं मकरन्दराशिमभितश्चादाय कस्मात्कुतः—
स्व. सन्देश हर ! त्वमत्र पुलिने प्राप्तोऽसि हे पुष्पक !

निराला यौवन का ऐश्वर्य—
नये पल्लव का घूंघट डाल,
रूप से भरकर सारे अंग
अछूता सा लेकर मकरन्द
कहाँ से आये हो इस देश ।
स्वर्ग के हे मोहक सन्देश !

× × ×

एतन्मुग्धनिमीलितार्धनयनं यस्मिन् प्रगुप्तस्तव,
सर्वस्वं सुरभेर्निधिस्तदपि वै पात्रं मधोरुच्छलत् ।
एकाक्यत्र समागतोऽसि सुमनो बाल ! स्मितानन्दित !
जानेऽज्ञानपराक्रमात् खलु पथभ्रान्तोऽसि शोभा निधे !

मुग्ध-से अर्धोन्मीलित नयन ,
छिपा इनमे सौरभ का भार ।

छलकता लेकर मधु का पात्र
चले आये एकाकी पार।
कहो क्या आये मारग भूल
मञ्जु छोटे मुसुकाते फूल !

एते ये भ्रमराः समुत्सुकतया पश्यंति ते स्वार्थिनः।
योऽयं वा मलयानिलः प्रवहति श्वासो विषस्तस्य च।
शृंगारःक्षणिकस्तवायमभितः स्वप्नं स्मितं चौषिकम्।
नो जानासि सखे! हसस्यपि तथा ? कष्टं स्वरूपोन्मदा !

विकल भौंरों की झूठी चाह
विषैली हा मारुत का श्वास।
क्षणिक यह है तेरा शृंगार
स्वप्न-सा है ऊषा का हास!
नही क्या यह आता है याद।
सखे ! यह कैसा रूपोन्माद !

× × ×

रागेणासि विमोहनेने सुकुमार, त्वं समाकर्षितः ?
केनप्रेषितकोऽसि वाऽत्र पुलिने ? कोऽयंविधिर्निर्दयः ?
प्राणाः हा प्रभवन्ति तात ! मलिना माधुर्य-मूर्त्ते तव।
त्वं हे मुग्धविलोकनासि सुमनो मौग्ध्यसामुग्धंजगत् !

कौन वह है सम्मोहन राग
खीच लाया तुमको सुकुमार !
तुम्हे जिसने भेजा इस देश—
कौन वह है निष्ठुर करतार ?
मलिन होते जाते हैं प्राण—
मधुर भोलेपन के संसार ?
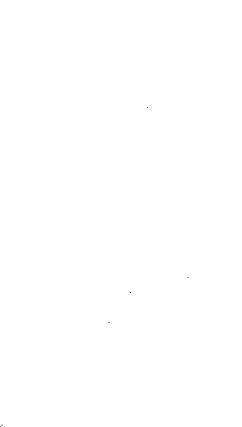
वैयक्तिक संस्मरण
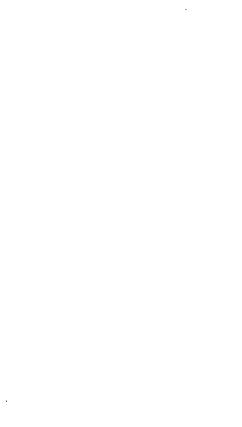
मेरी पिटाई

छोटेपन में प्राथमिक पाठशालाओं के 'मास्टर साहब' लोगों के हाथों काफी पिटना पड़ा है और तरह-तरह के दण्ड भोगने पड़े हैं, परन्तु एक पिटाई की बहुत याद आती है। सुना है कि आजकल नये स्कूलों में बच्चों की पिटाई नही होती, पर मैं जब छोटा था तो ऐसी बात नहीं थी। हर गलती पर पिटाई होती थी और कभी-कभी बिना गलती के भी पिटाई हो जाती थी। इतना मुझे अवश्य याद है कि और बच्चों की तुलना मे मैं कम ही पिटता था। पढने-लिखने मे बहुत कमजोर नही था लेकिन हाथ-मुँह से लेकर कापी-किताब गन्दा करने मे मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नही था, और इसी बात पर मार खाया करता था। एक बार तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेन्सी के चौबीस जिलों के विकट नाम एक ही साँस में न बोल जाने के कारण काफी मार खानी पड़ी, पर दूसरे दिन मैंने परिश्रम करके मन्त्र की तरह सारे-के-सारे नाम रट डाले। मगर मार खाना तो भगवान् ने भाग्य में लिख दिया था! पण्डितजी के सामने पहुँचते-पहुँचते कुर्ते पर स्याही गिर गयी और मन्त्रपाठ के पहले ही कसकर पिटाई हो गयी। ऐसे ही भाग्य-विपर्यय की एक कहानी सुना रहा हूँ। उन दिनों मै दर्जा चार में पढ़ रहा था। मेरे एक अध्यापक पण्डित रामनरेश मिश्र थे। विद्यार्थियों को विद्वान् बनाने की उनकी बड़ी इच्छा रहती थी और मेरे ऊपर उनका विशेष स्नेह था, क्योंकि मुझसे उन्होंने बहुत-सी आशाएँ मन में सँजो रखी थी। जान लड़ाकर पढ़ाते थे और आशा करते थे कि उनके लड़के भी उनके आदर्शों के अनुरूप ही चलें। मैं अगर बीमार पड़ गया, स्कूल नही गया तो घर आकर बता जाया करते थे कि आज क्या-क्या पढाया है। वे सच्चे गुरु थे। विद्यार्थियों की उन्नति से सदा अपने-आपको चरितार्थ माननेवाले थे। वे भीतर से जितने पवित्र थे, उतने ही बाहर से भी साफ-सुथरे रहते थे। गन्दगी उनको बिल्कुल बर्दाश्त नहीं थी और यहीं मैं चूक जाता था।

सन् 1916 ई. में पहली लड़ाई चल रही थी। महँगाई बहुत बढ़ गयी थी, हालाँकि आज की तुलना में वह कुछ भी नही थी। गाँव में एक पैसे के पाँच ताँबे बादामी

कागज मिलते थे। मेरे सारे साथी बच्चों में एक आम धारणा बनी थी कि गंगा साव बड़ा ठग है। एक पैसे में सिर्फ पाँच ही ताव बेचता है। किसी बच्चे के पिता शहर से चार पैसे में एक जिस्ता खरीद लाये थे, इसलिए बच्चों के हिसाब से गंगा साव को एक पैसे में कम-से-कम छः ताव बेचना चाहिए। गंगा साव बड़े शान्त प्रकृति के दुकानदार थे। गाँव में उन दिनों रंग नहीं मिलते थे। भूगोल के लिए नक्शे बनाने के लिए रंगों की बड़ी जरूरत थी। स्कूल में पण्डितजी ने एक बड़ा अच्छा सुझाव दिया। साधारणतः तीन-चार रंग बहुत आवश्यक थे। ब्रिटिश इण्डिया के लिए लाल रंग, देशी रियासतों के लिए पीला, समुद्र के लिए हरा और कुछ गैर बातों के लिए थोड़ा-बहुत अन्य रंग। पण्डितजी ने सुझाव दिया कि खेतों में घुस जाओ। चने के फूल से ब्रिटिश क्षेत्रों को रँगो, सरसों के फूल से या अरहर के फूल से देशी रियासतों को रँगो, तीसी के फूल से समुद्र और नदियों को रँगो। यह युक्ति बहुत काम आयी। कई विद्यार्थियों ने अच्छे नक्शे बनाये, परन्तु मैंने सभी फूलों को रगड़कर सारा नक्शा विचित्र रंग में रंगीन बना दिया। नक्शा लेकर जब पण्डितजी के पास पहुँचा तो वे देखते ही नाराज हो गये; क्योंकि मेरे कपड़े भी बुरी तरह धूलि-धूसर हो गये थे। फिर धानी रंग के कागज पर बने हुए नक्शे में जो गोंद-गाद थी, उसे देखकर वे बिल्कुल ही बिगड़ उठे। उन्हें बड़ी आशा थी कि मैं वजीफे के इम्तहान में अच्छा स्थान पाऊँगा। मेरी रंगीन चित्रकारी ने उनकी आशाओं पर वैसा ही कुठाराघात किया। उन्होंने कान पकड़कर खींचकर एक थप्पड़ मारा। यह कोई बड़ा दण्ड नहीं था, लेकिन संयोग की बात थी कि यह बड़ा दण्ड हो गया। हुआ यह कि उन दिनों गाँव की प्रथा के अनुसार मेरे कान छिदवाये गये थे और उनमें थोड़ा-थोड़ा दर्द भी था, शायद पकने लगे थे। पण्डितजी ने जो कान पकड़कर खींचा और थप्पड़ मारा, तो घाव एकदम फूट गया और खून से उनका हाथ लाल हो गया। और, मेरी तो कुछ पूछो मत! पण्डितजी घाव देखकर एकदम घबड़ा गये। सारे स्कूल में सहमा मच गया। पण्डितजी सचमुच बहुत दुःखी थे। उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा अनर्थ हो जायेगा। मुझे मार से उतनी पीड़ा नहीं थी, जितना खून देखकर डर लग रहा था। किसी तरह मुझे घर पहुँचाया गया। पण्डितजी मन-ही-मन अपने को दोषी मानते रहे थे, इसलिए घर पर उनका इतना सम्मान था कि सब लोगों ने यही कहा कि उनसे गलती हो गयी। कई दिन बाद जब मैं स्कूल गया तो वे बार-बार मेरा कान देखते रहे और अफसोस करते रहे। इस घटना के बाद उन्होंने और भी प्यार से पढ़ाना शुरू किया और फिर कभी मुझे मारा नहीं।

याद है ?" मैंने फिर चरणस्पर्श करके कहा कि "उस पिटाई का परिणाम तो बहुत अच्छा हुआ। मैं सोचता हूँ कि आपने शायद और पीटा होता तो और अच्छा होता।" फिर मैंने कहा कि "मेरी लिखावट अब भी गन्दी होती है, लेकिन कुछ सुधार अवश्य हुआ है।" उनका कण्ठ भर आया, कुछ बोल नही पाये। बड़े स्नेह से मेरा चेहरा देखते ही रहे। मैं सचमुच उनका कृतज्ञ हूँ।

[वाराणसी, 24 मार्च, 1973]

विश्वविद्यालय-प्रसंग

...अभी मुझे रेक्टर पद सँभाले सिर्फ पाँच महीने और पाँच ही दिन बीते है। रहना पाँच वर्ष है! अभी तक विद्यार्थियो ने मुझे धोखा नही दिया है। ये कई प्रकार के राजनीतिक विश्वासो से प्रभावित हैं। एक दल दूसरे दल की निन्दा कर जाता है, पर समझाने पर वे मान भी जाते है। चलते-चलते धमका भी जाते है, यह भी कह जाते हैं कि 'आपके ही बीच मे पड़ने से हम चुप हो जाते हैं, नही तो...।' मैंने ध्यान से लक्ष्य किया है कि वे प्रायः वाक्य पूरा नही करते। एकाध अक्खड़ कर भी देते है। कभी-कभी मैं जान-बूझकर पूछ बैठता हूँ, 'नही तो क्या बेटा ?' प्रायः उत्तर नही मिलता। यदि मेरे आग्रह पर उत्तर देते हैं, तो वह उत्तर सुनने लायक नही होता। उन उत्तरो में विश्वविद्यालय के विशिष्ट व्यक्तियों की कल्पित और अतिरंजित 'धाँधलियो' की चर्चा होती है। उनमे कुछ सत्य भी होता है। पर उन तथ्यो पर एकांगी दृष्टि की छाप प्रायः मिलती है। पता लगाने पर दूसरा पक्ष सुनायी देता है। दोनो को जोड़-घटाकर असली तथ्य का अन्दाजा लगाता हूँ। जहाँ सचमुच की गलती होती है, सुधारने की कोशिश करता हूँ; किन्तु सब समय सफलता नही मिलती। प्रायः व्यक्तिगत स्वाभिमान का प्रश्न विकट रूप मे आ जाता है। कागज पर लिखे और छापे गये नियम प्रायः बाधक हो जाते हैं। सच या झूठ, मैं मानने लगा हूँ कि विद्यार्थी अब भी मुझे अपना हिताकांक्षी मानते हैं। मैं उनसे प्रेम करता हूँ। मुझे अब भी विश्वास है कि विद्यार्थी मुझसे प्रेम करते हैं। कब तक करेंगे, यह मैं नही कह सकता। उनकी सारी माँगें पूरी करने की क्षमता मुझमे नही है; क्योकि बहुत बँधा हुआ हूँ। विश्वविद्यालय गुरुकुल न रहकर कानून-कुल बन गया है। यहाँ मनुष्य बहुत दुर्बल है, कानून प्रबल है। मेरा हृदय

रो रहा है। मैं मनुष्य की दृष्टि से जिसे आवश्यक समझता हूँ वह बात सब समय कानून की दृष्टि से करने लायक नहीं होती। सुपरिभाषित (और कभी-कभी विपरिभाषित भी) नियमों का अखण्ड राज्य है। रेक्टर इन कानूनों के महासमुद्र की तरंगों पर नाचनेवाले काक के समान ही है। उसकी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति नगण्य है। मुझे भय लगता है। मैं क्या वह सब कर सकता हूँ जिसे मैं अपना परमधर्म मानता हूँ ? क्या मीठी बातों से सबको सन्तुष्ट रखने की साधना सफल होगी ? मेरे पास जो बात अपनी बची रह गयी है, वह केवल यही है। बाकी सारी बातें नियमों के अधीन हैं। नियम भी कैसे ? एकदम दुर्लंघ्य ! हर आदमी कह जाता है कि वह मुझसे न्याय की आशा करता है। हर भले आदमी को हर भले आदमी से ऐसी ही आशा करनी चाहिए। यहाँ तक ठीक है। कठिनाई तब पैदा होती है जब वह 'न्याय' की बात समझाता है। अस्सी फीसदी मामलों में उसका मतलब होता है उसका अपना स्वार्थ ! जो आता है, न्याय के नाम पर अपने मतलब की माँग करता है। प्रत्येक के पास युक्तियाँ हैं, दलीलें हैं। है नहीं तो केवल यह कि दूसरे के प्रति थोड़ा विश्वास नहीं है ! विश्वास का संकट, सन्देह का वातावरण--यही विश्वविद्यालय की मुख्य समस्या है। विद्यार्थी जब अपने अध्यापकों की निन्दा करते हैं, उनके आचरण से लेकर योग्यता तक की खिल्ली उड़ाते हैं; कर्मचारी जब अपने ऊपरवालों की 'धाँधलियों' का 'भंडाफोड़' करते हैं और बदले में 'दूसरे पक्ष' से भी ऐसी ही आरोप-प्रत्यारोप की अश्राव्य उक्तियाँ सुनने को मिलती हैं, तो सिर घूम जाता है। समाज विश्वास पर टिका हुआ है। जब विश्वास की जड़ ही खोखली हो गयी हो तो समाज कैसे चलेगा ?

गांधीजी की बात याद आती है। मनुष्य का केवल ईमानदार होना ही पर्याप्त नहीं है, वह समाज में ईमानदार प्रतीत भी होना चाहिए। कभी-कभी व्यक्तिगत रूप से ईमानदार आदमी बदनाम भी हो जाता है और कभी बाहर से ईमानदार प्रतीत होनेवाला आदमी भीतर से बेईमान सिद्ध हो जाता है। मनुष्य के दो व्यक्तित्व हैं : उसका निजी एक है, सामाजिक दूसरा है। दोनों में भारसाम्य होना ही ठीक है। कई बार लोग व्यक्तिगत रूप में सच्चे और ईमानदार होते हैं, पर साथ ही समाज के प्रति लापरवाह भी होते हैं। समाज की उपेक्षा के कारण उनकी सच्चाई प्रभावशाली नहीं हो पाती। मुझे यह देखकर कभी-कभी बहुत ही मर्माहत होना पड़ता है कि सच्चे और चरित्रवान अध्यापकों के प्रति भी विद्यार्थियों में अनास्था का भाव इसलिए आ जाता है कि ये विद्यार्थियों की बात नहीं सुनते और उनके बालहठों से चिढ़ जाते हैं। मुझे बार-बार अनुभव हुआ है कि विद्यार्थी आज ज्ञान से भी अधिक प्रेम का भूखा है। यदि उसे विश्वास हो कि वह प्रेम पा रहा है तो अस्सी फीसदी समस्याएँ अपने-आप सुलझ जाती हैं। जहाँ कहीं शान्ति और व्यवस्था जी रही है---और बहुत अधिक मात्रा में जी रही है---वहाँ उन्हें प्रेम मिलता है। यह ठीक है कि कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो केवल भय का ही शासन मानते हैं, जिनके लिए प्रेम दुर्बलता का नामान्तर है, परन्तु अपवाद तो सब जगह हुआ ही करते हैं।

विश्वविद्यालय में एक-से-एक अध्यापक हैं। शायद ही किसी संस्था में इतने योग्य लोग एक साथ मिल सकें। पर इन सबका सम्मिलित प्रभाव नहीं दिखायी देता। कई विभागों में वरिष्ठ और कनिष्ठ अध्यापकों में बहुत विरोध दिखायी देता है। विरोध एकतरफा नहीं है। कभी-कभी ऊपरवाला अनावश्यक रूप से दृढ है, तो कहीं-कहीं नीचेवाले उसका तख्ता उलट देने के लिए सतत प्रयत्नशील। इन झगड़ों के कारण अत्यन्त हास्यास्पद होते हैं। उनकी चर्चा न करना ही अच्छा होगा। पर इतना कहना अनुचित नहीं होगा कि बहुत छोटी-छोटी बातों पर अधिक बल देने से ही इनका जन्म होता है। 'शालिग्राम की बटिया, क्या छोटी क्या बड़ी' वाली मनोवृत्ति बहुत कम दिखायी देती है। सबसे कष्टकर बात तब हो जाती है जब आपसी झगड़ों में विद्यार्थियों को घसीटा जाता है।

परन्तु सब मिलाकर विश्वविद्यालय के अध्यापकों का स्तर काफी ऊँचा है। उनसे मुझे हर बात में सहयोग मिलता है। त्यागी, कर्मठ, स्वाभिमानी और प्रेमार्द्र-हृदय अध्यापकों की संख्या काफी है। उनके ज्ञान का सदुपयोग न होना एक और बड़ी समस्या है। कानूनी शिकंजों से जकड़ा हुआ विश्वविद्यालयीय जड़ संगठन इसका प्रधान बाधक है। प्रत्येक जिज्ञासु विद्यार्थी प्रत्येक अध्यापक की उपलब्धियों से लाभ नहीं उठा सका। प्रत्येक अपनी लोहशृंखलाबद्ध कोठरियों में कैद है। विद्यार्थी कानूनन तय किये गये शिक्षण-मार्ग पर चलने को ही स्वतन्त्र है, बाकी सब कुछ अपराध है। अध्यापक का भाग्य जहाँ बँधा है वहीं बँधा रह गया है, वह अन्यत्र अपनी कमाई भी नहीं खर्च कर पाता। अब तो यह आदत बन गयी है कि जितना परीक्षोपयोगी है, उतना ही सार्थक है। बाकी निरर्थक है। विशिष्ट विद्वानों के व्याख्यान कराइए। बहुत थोड़े विद्यार्थी उसमें आयेंगे। कभी-कभी तो एक भी नहीं मिलेंगे। विशिष्ट विषयों की व्याख्यानमालाएँ प्रायः अनसुनी रह जाती हैं। दूसरी कोठरियों की ओर जाने का उपाय भी नहीं है, इच्छा भी नहीं है और प्रयत्न भी नहीं है। एक ही उपाय रह गया है। अध्यापक स्वयं होस्टलों में अनौपचारिक रूप से विद्यार्थियों से मिलें। मित्र के रूप में उनसे सम्पर्क स्थापित करें। प्रेम द्वारा उनकी उपेक्षित सम्भावनाओं को सींचें और ज्ञान के अपार सागरतट पर उन्हें छोड़ देने का यत्न करें। बाकी वे स्वयं कर लेंगे।

आज प्रातःकाल से ही मेरा मन बहुत क्षुब्ध है क्योंकि, मुझे ऐसा लगता है कि मेरे कुछ अध्यापक मित्रों ने 'अनजान में' कम और 'जानबूझकर' अधिक ऐसा किया है जो विश्वविद्यालय के हित की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। वे विद्यार्थियों में कुछ उत्तम चरित्र ले आना चाहते हैं, पर एक दल-विशेष के नाम का आग्रह नहीं छोड़ पाते। उन्होंने जानबूझकर मुझे अन्धकार में रखा है। ऐसा सोचने को प्रोत्साहन मिलता है। कई बार ऐसा होता है कि मेरे आदेशों को टाल दिया जाता है। कभी-कभी मुझे अपनी लघुता को समझा देना उनका उद्देश्य होता है। मुझे अपनी लघुता का आवश्यकता से कुछ अधिक ही ज्ञान होता है। परन्तु विश्वविद्यालय के वृहत्तर स्वार्थ को भुलाकर जब केवल मुझे नीचा दिखाना या अपने को

अधिक शक्तिशाली दिखाना ही उनका उद्देश्य होता है तो मन क्षुब्ध होता है। आज मैं इसीलिए क्षुब्ध हूँ। धीरे-धीरे मेरा क्षोभ दूर हो रहा है। मैं बहुत सोचने के बाद इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मैंने अपनी ही इस धारणा के विरुद्ध कार्य किया था कि मनुष्य को उसके पूरे व्यक्तित्व के रूप मे ही देखना चाहिए। उसे खण्ड-खण्ड करके देखना गलती है। मैंने जिन लोगों पर विश्वास किया था, उनके खण्ड-व्यक्तित्व पर विश्वास किया था। वे वस्तुतः विश्वविद्यालय के अध्यापक से अधिक एक दल-विशेष के सदस्य थे। उन्हे उक्त दल-विशेप की महिमा पर अधिक विश्वास है, विश्वविद्यालय के यश और मान पर कम। विश्वविद्यालय उनकी दृष्टि मे दल-विशेष का मान बढ़ाने का उपयुक्त साधनमात्र है। गलती मेरी है जो मैंने इस तथ्य का ध्यान नही रखा। उन्होने मुझे दिये गये वचन को भंग किया है, मुझे और विश्वविद्यालय को बदनाम होने को छोड़ दिया है, पर अपना उद्देश्य ठीक ही सिद्ध किया है। उन्होने मुझे नही, मैंने ही अपने को धोखा दिया है। मैं व्याकुल हूँ, होना ही चाहिए। मेरे कुछ मित्र सलाह देते हैं कि मैं उनको दण्ड दूँ। मैं समझता हूँ, प्रायश्चिती मैं हूँ। मुझे प्रायश्चित करना चाहिए। कैसे प्रायश्चित होगा, अभी भी नही समझ पाया हूँ। अन्तर्यामी भगवान् की जैसी प्रेरणा होगी, वैसा ही करूँगा।

कई दिनो से विश्वविद्यालय मे रैंगिग की बीमारी फैली हुई है। यह एक मानसिक उन्माद है। असंयत चरित्र का भयंकर रोग है। प्रवीण लोग चिन्तित हैं। विश्वविद्यालय की बदनामी हो रही है। मैं निश्चिन्त नहीं बैठ सकता। मुझे कुछ करना चाहिए। कई बार जी में आया है, इस कार्य को ही छोड़ दूँ। कदाचित् मेरी मुक्ति हो जायेगी, पर इन विद्यार्थियों का क्या होगा जो इस समय दुर्बुद्धि के शिकार है? ज़रा-ज़रा-सी बातों पर उत्तेजित होकर ये मन से, वचन से और कभी-कभी कर्म से भी हिंसा कर बैठते हैं। ये भूल ही गये हैं कि यहाँ वे पढ़ने के लिए आये हैं। इन्हें कैसे याद दिलाया जाय कि उनका एकमात्र काम ज्ञानार्जन है! और, ज्ञानार्जन के लिए मानसिक शान्ति निहायत जरूरी है। वे छोटी कामनाओ के वशवर्ती होकर क्रोध के शिकार होते हैं, अनुचित मनोविनोद के लिए नवागन्तुक दुर्बल विद्यार्थियों को सताते हैं। हे भगवान्, इनको सबुद्धि कैसे हो? क्या दण्ड देकर, भय और आतंक का वातावरण प्रस्तुत करके? नही, मेरे अन्तर्यामी इसे स्वीकार नही करते।

प्रायश्चित करना होगा। महामना मालवीयजी के अत्यन्त प्रिय पर्व इस श्रावणी के दिन, गुरुदेव की इस पुण्यतिथि को, रक्षाबन्धन के इस पवित्र त्योहार के दिन कुछ अवश्य करना होगा।

पुलिस का विश्वविद्यालय में आना बुरा है। कई गुमराह बने या बनाये गये विद्यार्थी ऐसी स्थिति पैदा कर देते हैं कि लोग पुलिस को बुलाना आवश्यक समझने लगते हैं। मैं मर्माहत हो उठता हूँ। किस पर लाठी या गोली चलाने के लिए पुलिस बुलायी जाय? विद्यार्थियों पर? शिव, शिव, शिव! यह तो कुलगुरु का नही, कसाई का काम है। तो फिर उपाय क्या है? मीठे शब्द व्यर्थ हो चले हैं। और बड़े उपाय को सोचना चाहिए। अभी तक एक ही उपाय समझ में आ रहा है। अपने-आपको

ही उत्सर्ग कर दूं, महा-अज्ञात के चरणों में।

इस समय मैं अपने को इतना छोटा अनुभव कर रहा हूँ कि विश्वास ही नही होता कि मेरे प्रायश्चित से कुछ सुधर जायेगा। पर करना तो पड़ेगा ही। हे दीनबन्धु, शक्ति दो कि मैं आत्मघाती दुर्बुद्धि पर आक्रमण कर सकूं। मेरी आत्मा में पूर्ण रूप से संचलित होओ। हजारो नौजवानो के भविष्य को कुछ सार्थक बनाने का जो गुरुभार बिना मांगे ही तुमने दे दिया है, उसके उपयुक्त सिद्ध हो सकूं, ऐसी क्षमता दो। दो मेरी वाणी मे वह अमोघ प्रभाविनी शक्ति जो इस भविष्यघाती यौवनोन्माद को कुछ नयी दिशा दे सके। मेरे प्रायश्चित को शक्ति दो, मेरे व्रत को साफल्य दो, मेरे विद्यार्थियों को शुभ बुद्धि दो। ऐसी क्षमता दो कि सब पर पूर्ण विश्वास करने की मेरी बुद्धि रंचमात्र भी विचलित न हो सके। मैं प्रायश्चित करूंगा, बदले में तुमसे शुभद शक्ति मांगूंगा। हर बड़ी बात का दाम चुकाना होता है। तुम्हारी कृपा का मूल्य चुकाने की शक्ति तुम्ही दे सकते हो। निखिल गुरो, शक्ति दो, बल दो, साहस दो, और दो शुभबुद्धि को प्रेरित करनेवाली अमोघ प्रेरणा!

विश्वविद्यालय की रक्षा करनी होगी। छोटी-छोटी बातो को तूल देकर उसे बदनाम करना आसान है, पर बड़ी-बड़ी बातों की ओर प्रेरित और प्रोत्साहित करने और यहाँ के निवासियों को भविष्य-निर्माता बनाने का काम बहुत कठिन है। सबकी शुभबुद्धि पर विश्वास करना कठिन साधना है। मैं क्या इस साधना मे सफल हूँगा? दीनबन्धु, शक्ति दो। बड़ी साधना की शक्ति!

मैं प्रायश्चित करूंगा। तुम्हारे ही चरणो मे अपने-आपको उत्सर्ग करके! महाउदार, इतनी बड़ी शक्ति देने मे तुम्हे क्या आनन्द नहीं आयेगा? मेरे लिए यह बड़ी है, तुम्हारे लिए क्या है!

कहानियाँ

धनवर्षण

किसी एक गाँव में एक ब्राह्मण रहा करते थे। ये एक बहुत करामाती मन्त्र जानते थे। मन्त्र का गुण यह था कि एक विशेष प्रकार के नक्षत्रयोग आने पर जब उसका प्रयोग किया जाता तो आकाश से नाना भाँति के रत्न और धन की वर्षा होने लगती थी। उस ब्राह्मण के पास एक बड़े बुद्धिमान विद्यार्थी पढ़ते थे। एक दिन एक काम से ब्राह्मण उस विद्यार्थी को लेकर घर से बाहर हुए। कुछ दूर जाने पर वे रास्ते में एक घने जंगल में आ पड़े। इस जंगल में पाँच सौ डाकू रहते थे। राहियों के आते ही उनके माल-असबाब लेकर वे चलते बनते। उस ब्राह्मण और विद्यार्थी की भी यही दशा हुई। डाकुओं ने उन्हें बाँध लिया।

राहगीरों के पास सदा रुपया-पैसा नहीं रहा करता था। फिर भी डाकू उनको नहीं छोड़ते थे। वे एक को बाँधकर बाकी से कहते कि 'जाओ, यदि हो सके तो रुपये ले आकर इसे छुड़ा ले जाओ।' यदि बाप-बेटे को कभी पकड़ पाते, तो लड़के को बाँधकर रख लेते और बाप को रुपया ले आने को भेजते। यदि माँ-बेटी को पकड़ते, तो बेटी को रखकर माँ को रुपया ले आने को कहते। इसी तरह यदि दो भाइयों को पकड़ते तो छोटे को रखकर बड़े को भेजते और गुरु-चेला को पकड़ने पर गुरु को रखकर चेला से कहते कि 'यदि हो सके तो रुपया ले आकर अपने गुरु को छुड़ा ले जाओ।' इसी के अनुसार उन्होंने ब्राह्मण को पकड रखा और शिष्य को रुपया-पैसा ले आने के लिए भेज दिया।

जाते समय शिष्य ने गुरु को नमस्कार करके कहा, "मैं दो-एक दिन के भीतर ही लौटूँगा, आप डरिएगा मत। किन्तु एक काम आपको करना होगा। आपको मैं सावधान किये जाता हूँ, आज धनवर्षण का योग है, ऐसा न हो कि आप दु:ख से कातर होकर धनवर्षा करें। यदि करेंगे तो आप खुद भी मरेंगे और ये पाँच सौ डाकू भी मरेंगे।" शिष्य ऐसा कहकर रुपये के लिए घर की ओर चले। और डाकुओं ने भी शाम होने पर गुरु को बाँधकर मिट्टी पर छोड़ दिया।

सन्ध्या समय पूरब की ओर चाँद उगने लगा। ब्राह्मण ने देखा, नक्षत्रयोग आ

रहा है। देखकर उन्होंने सोचा, 'अच्छा, धन के लिए ही न डाकू हमको नाना प्रकार के कष्ट दे रहे हैं! यह धनवर्षण का योग तो दिखायी देता है। मैं इतना कष्ट क्यों सहूँ? मैं इसी समय मन्त्र के बल से धन बरसाकर, इन्हे देकर क्यो न चला जाऊँ!' यही सोचकर उन्होंने कहा, "क्यों जी, तुम लोगों ने मुझे क्यो पकड़ा है?" कहना व्यर्थ है, उन्होंने जवाब दिया, "धन के लिए।" ब्राह्मण ने कहा, "यदि यही बात है तो मेरा बन्धन खोल दो, स्नान करने दो, नया वस्त्र पहनने दो, चन्दन लगाने दो और फूलों की माला पहनने दो।" डाकुओं ने वैसा ही किया। ब्राह्मण ने मन्त्र पढ़कर ज्यों ही आकाश की ओर देखा, त्यों ही आकाश से नाना धन-रत्नों की झड़ी लग गयी। डाकू, जिससे जितना हो सका, उस धन को लूटकर, अपने कपड़े में बाँधकर चलते बने। ब्राह्मण भी उनके पीछे-पीछे जाने लगे। कुछ दूर जाने के बाद अचानक पाँच सौ अन्य डाकू भी आ गये और उन्होंने इन डाकुओं को रोक लिया। पहले के डाकुओं ने कहा, "क्यों हमको रोकते हो?" नयों ने जवाब दिया, "धन के लिए।" पहले के डाकुओं ने कहा, "अगर यही बात है तो इस ब्राह्मण से माँगो। इसके आकाश की ओर देखते ही धन की वर्षा होती है। इसी ने हमको धन दिया है।"

नये डाकुओं ने पहले के डाकुओं को छोड़कर ब्राह्मण को ही पकड़ लिया। बोले, "बाबाजी, हम लोगो को भी धन दो।" ब्राह्मण ने कहा, "बहुत अच्छा, यदि यही चाहते हो तो धनवर्षा का योग साल-भर के बाद आता है। साल-भर ठहरो। उस योग के आने पर मैं धन बरसाकर तुम्हें भी दूँगा।" डाकू बिगड़ उठे, बोले, "क्यों रे दुष्ट बम्हन, इनके लिए अभी वर्षा हुई और हम लोगों के लिए होगी साल-भर बाद!" यही कहकर उन्होंने उन्हे काटकर रास्ते पर फेंक दिया और साथ ही दौड़कर डाकुओं को भी पकड़ लिया। फिर क्या था? दोनों दलों में भयंकर मारामारी शुरू हुई। कितने ही मरे, कितने ही बचे। जो बचे उनमे फिर गोलमाल शुरू हुआ। इस प्रकार अन्त में सिर्फ दो आदमी बच रहे और शेष सभी मारकाट मे समाप्त हो गये।

ये बचे हुए आदमी सारा धन-रत्न लेकर जाते-जाते एक गाँव के पास आये। वहाँ उन्होने एक वृक्ष के नीचे रुपयों को छिपा रखा। उनमें से एक तलवार लेकर वृक्ष पर चढ़ गया और पहरा देने लगा, दूसरा खाने को भात बनाने के लिए गाँव में गया। तलवार लेकर पहरा देनेवाले ने सोचा कि अगर वह लौटकर आयेगा तो इस धन को दो हिस्सों में बाँटना पड़ेगा। यह सोचकर उसने तलवार को सँभालकर पकड़ लिया और उसके आने की राह देखने लगा। जो गाँव मे भात बनाने गया, वह भी सोचने लगा कि 'यदि वह जीता रहेगा तो आधा हिस्सा ले लेगा। इस भात में विष मिलाकर यदि उसे खिलाया जाये तो वह खाते ही मर जायेगा और रुपया सारा-का-सारा मेरा होगा।' यही सोचकर खुद तो उसने आधा भात खा लिया और बाकी में विष मिलाकर ले आया। पहला आदमी पहले से ही सज-धजकर बैठा था। दूसरे के आते ही तलवार से उसके दो टुकड़े कर एक गुप्त स्थान

में फेंक आया। फिर खुद भी विषाक्त भात खाकर मर गया। इस तरह उस धन के लिए सभी का विनाश हुआ।

इधर गुरु को छुड़ाने के लिए शिष्य रुपया-पैसा लेकर दो-एक दिन के भीतर ही आ पहुँचे। आकर देखा, गुरु वहाँ नहीं हैं और धन-रत्न चारों ओर बिखरा पड़ा है। देखकर ही वे समझ गये कि गुरु ने उनकी बात नही सुनी। वे धनवर्षा करके सबके साथ स्वयं भी विनष्ट हो गये है।

मन्त्र-तन्त्र

बहुत दिनों की बात है। एक राजा के राज्य में एक गृहस्थ को एक लड़का हुआ। माँ-बाप ने उसका नाम 'कुमार' रखा। कुमार के बड़े होने पर उसके माता-पिता ने उसका विवाह एक गृहस्थ की लड़की से कर दिया। कुछ दिन बाद उसे लड़के-लड़कियाँ भी हुईं। फिर उनमें से प्रत्येक एक-एक गृहस्थ हो गये।

कुमार बड़ा अच्छा आदमी था। कभी जीवहत्या नही करता, दूसरे की चीज न लेता, झूठ नही बोलता, कोई नशा न खाता, और दूसरो की स्त्री को माँ के समान समझता।

कुमार जिस गाँव में रहता था, वह एक बहुत छोटा गाँव था। उसमें केवल तीस गृहस्थों के घर थे। एक दिन तीसों घर के गृहस्थों को एक काम से एक जगह मिलना था। पर गाँव में ऐसी जगह न थी जहाँ सभी एकत्र हो सकें। कुमार उन तीसों में से एक था। सबके साथ एक जगह पहुँचकर उसने एक स्थान को धूल-मिट्टी हटाकर साफ कर दिया। उस स्थान के साफ होते ही एक आदमी वहाँ आकर खड़ा हो गया। कुमार उससे कुछ न कहकर दूसरी जगह साफ करने लगा। इसके साफ होने पर एक तीसरा आ धमका। इस तरह एक-एक जगह साफ करते-करते वह एक-एक आदमी के लिए जगह करता गया और अन्त मे सबके लिए जगह कर दी।

बाद को जिसका जो काम था, कर-कराके उन्होंने वह एक चबूतरा तैयार किया। वहाँ वे यथासमय आते, बैठने-उठने तथा नाना भाँति के बातचीत, आमोद-प्रमोद करने लगे। गाँव में कोई नया आदमी आता तो वह भी वहीं जाता था। इस तरह उनके दिन कटने लगे।

कुछ दिन बाद वहीं पर उन्होंने एक छोटा-सा घर बना लिया और उसमें बैठने के लिए चटाई आदि जरूरी चीजों का संग्रह भी धीरे-धीरे कर लिया। इस

तरह वे वहाँ समयानुसार आते, बातचीत और आमोद-प्रमोद करते। देखते-देखते वे सभी उसके अनुगत हो गये।

खूब तड़के उठकर वे अपने-अपने घर के काम-काज कर लेते। फिर अपना खुरपा, हँसुआ, कुदाल लेकर घर से बाहर होते और चौरस्ता या और कहीं अगर काठ-पत्थर रहता तो हटा देते। गाड़ी या आदमी के जाने में यदि किसी ठेक-ठाक की सम्भावना होती तो उसे काटकर फेंक देते या हटा देते। ऊँची-नीची जगहों को समान कर देते। जरूरत होने पर पुल बाँध देते, तालाब खोद लेते और जिससे जो हो सकता था, दान करते थे। कुमार के गुण से इस गाँव के सभी लोग सब बातों में खूब अच्छे हो गये।

दिन बीतने लगे। इधर गाँव के मुखिया ने सोचा कि 'बात क्या है! आगे तो गाँववाले बदमाशी करते थे, शराब पीते थे और शराब के कारण कुछ आमदनी भी हो जाती थी। शराब पीकर वे अण्ट-सण्ट काम करते थे और उसके लिए जुरमाना करने पर भी कुछ आमदनी हो जाती थी। पर इस कुमार ने गाँव को ऐसा बनाया कि ये न शराब पीते है, न जीवहिंसा ही करते है। सभी भलेमानस हो गये! अच्छा ठहरो! राजा के पास नालिश करके दिखा देता हूँ कि ये कैसे भलेमानस हैं।'

मुखिया राजा के पास जाकर बोला, "महाराज, गाँव के सभी आदमी चोर हो गये हैं, इनका उपद्रव बहुत बढ गया है। कुछ उपाय न करने से बचना मुश्किल है।" राजा ने हुक्म दिया, "जाओ, चोरों को हाजिर करो।" मुखिया ने सबको बाँधकर हाजिर किया और राजा से कहा, "महाराज, हुजूर के हुक्म के मुताबिक आसामी हाजिर हैं।" राजा ने उनमे से किसी से न तो कुछ पूछा और न कहा। एक-ब-एक हुक्म ही सुना दिया, "जाओ, हाथी के पैर से कुचलकर इन्हें मार डालो।"

राजमहल के लम्बे-चौड़े आँगन में उन्हें बाँधकर सुला दिया गया। एक बड़ा हाथी मँगवाया गया। इन आदमियों में एक कुमार भी था। उसने उन सबको पुकारकर कहा, "देखो भाई, यह ठीक है कि राजा अन्याय कर रहे हैं, और यह भी सच है कि हाथी हम लोगों को अभी मार डालेगा। पर, तुम लोग राजा पर क्रोध न करना। अपना शरीर जैसे अपने को अच्छा मालूम होता है और उस पर अपना जैसा प्रेम है, राजा के शरीर के ऊपर भी हम लोगों का वैसा ही प्रेम हो।" उन्होंने ठीक वैसा ही किया।

हाथी जिसमें उन्हें कुचल दे, इसी तरह राजा के आदमियो ने उसे चलाया, पर वह किसी तरह आगे न जा सका। चिल्लाकर पीछे लौट आया। भाग चला। दूसरा हाथी मँगाया गया। वह भी आगे न बढ सका। फिर तीसरा, चौथा। इस तरह कर-करके बहुत हाथी बुलाये गये, पर एक भी आगे नही बढ़ा। सभी पीछे लौटकर भाग चले।

राजा ने कहा, "जान पड़ता है, इनके हाथ में कोई दवा है। अच्छा, इनके हाथ खोजकर देखो तो।" राजा के आदमियों ने खूब खोजा मगर कुछ भी नहीं मिला। उन्होंने कहा, "महाराज, इनके हाथ में कुछ नही है।"

राजा ने कहा, "जान पड़ता है, ये कुछ मन्त्र-तन्त्र जानते हैं।" उन्होंने खुद ही पूछा, "क्यों जी, तुम लोग क्या कोई मन्त्र-तन्त्र जानते हो ?" उन्होंने कहा, "महाराज, हम लोग कोई दूसरा मन्त्र नहीं जानते। हम ये तीस आदमी जीवहिंसा नहीं करते, दूसरे की चीज नहीं लेते, झूठ नहीं बोलते, और शराब भी नहीं पीते। सबको मित्र समझते हैं। हो सकता है सो दान करते हैं। ऊँची-नीची जमीन को समान कर देते हैं। सर्वसाधारण के लिए तालाब खोद देते और घर बना देते हैं। महाराज, अगर हम लोग कोई मन्त्र जानते हैं तो यही। और कुछ मन्त्र नहीं जानते।"

राजा इनकी बात सुनकर बड़े खुश हुए। उस दुष्ट मुखिया की जिन्स-जायदाद भी निकाल ली, और उन लोगों को उनका गाँव और बड़ा हाथी दे दिया।

व्यवसायबुद्धि

किसी देश में एक राजा के एक धनरक्षक थे। वे खूब पण्डित और बुद्धिमान थे। उनमें एक बड़ा अद्‌भुत गुण था। वे कुछ भी देखकर बाद को उसका फलाफल क्या होगा, सभी बता दे सकते थे। एक दिन राजमहल जाते समय रास्ते पर एक मरे चूहे को देखकर उन्होंने कहा कि यदि कोई इस मरे चूहे को लेकर व्यवसाय आरम्भ करे तो उसे बड़ा लाभ होगा।

उसी रास्ते पर एक खूब गरीब लेकिन बुद्धिमान युवक खड़ा था। वह इस बात को सुनकर सोचने लगा कि ये तो कभी झूठी बात नहीं कहते। अच्छा, एक बार देखा क्यों न जाये, कैसे इस मरे हुए चूहे के व्यवसाय से रुपया मिलता है। यही सोचकर वह चूहे को लेकर बाजार की ओर चला। वहाँ एक दुकानदार अपनी बिल्ली के लिए खुराक खोज रहा था। मरे चूहे को देखकर उसने उसे एक पैसे में खरीद लिया।

युवक ने इस पैसे से थोड़ा गुड़ खरीदा। उस जमाने में नगर के माली वन में फूल तोड़ने जाते। वे जब लौटकर आते तो रास्ते में उन्हें परिश्रम के कारण बड़ा कष्ट होता। युवक यह देखकर उस एक पैसे का गुड़ और एक घड़ा पानी लेकर उनके लौटने के रास्ते पर जा बैठा। माली जब फूल चुनकर लौटने लगे, तो उसने उन्हें ज़रा-ज़रा-सा गुड़ और पानी पीने को दिया।

इससे खुश होकर वे सभी उसे एक-एक मूठा फूल देकर चले गये। युवक ने फूलों के बाजार में जाकर फूलों को बेचकर जो कुछ पाया, उससे कुछ अधिक गुड़

खरीदा और फूल के वन मे जाकर मालियों को गुड़ और जल पिलाया। उन्होंने उस दिन और प्रसन्न होकर कई पेड़ों के केवल आधे फूल चुनकर बाकी उसके लिए छोड़ दिये। उसने इन बचे हुए आधे फूलों को चुनकर बाजार मे बेच दिया और कुछ अधिक पैसा पाया।

इसके बाद एक दिन खूब जोर की आँधी और बारिश हुई और राजा के बगीचे के अनेक दरख्तों की सूखी और कच्ची डाल-टहनियाँ गिर पड़ी। माली को चिन्ता हुई कि अकेले कैसे वह इन डालों को यहाँ से हटायेगा। युवक ने माली से जाकर कहाँ, "देखो, अगर तुम इन डालियों को मुझे मुफ्त छोड़ दो तो मैं सभी को हटाकर साफ कर दूं। माली राजी हो गया। युवक उस समय मुहल्ले के लड़के जहाँ मिलकर खेल रहे थे वहाँ गया और उन्हें थोड़ा-थोड़ा-सा गुड़ खाने को दिया। गुड़ खाकर लड़के बड़े खुश हुए। उसने उनसे कहा, "देखो, आँधी के कारण राजा के बगीचे में अनेक डालें गिर गयी है। चलो भाई, इसे हटा दें।" लड़के गुड़ खाकर खुश हुए थे, सभी राजी हो गये। उन्होने बगीचे की सभी डालें और टहनियाँ उठाकर रास्ते के एक किनारे इकट्ठा कर दी।

राजा के कुम्हार को उस दिन लकड़ी की बड़ी कमी थी। कैसे वह हाँड़ी, घड़ा आदि पकायेगा, वह यही सोच रहा था। राजमहल मे रोज ही उसे इन सब चीजों का जोगाड करके देना पड़ता था, इसीलिए बिचारा बहुत चिन्तित था। इसी समय रास्ते में टूटी डालो को इकट्ठा देखकर कुछ नगद पैसा और कुछ हाँड़ी बगैरह देकर युवक से वह सब उसने खरीद लिया।

युवक ने इस समय मन-ही-मन एक नया उपाय सोचा—उस नगर में पाँच सौ घसियारे थे। वे रोज नगर से दूर मैदान में जाकर घोड़ो के लिए घास काट-कर ले आते। इसीलिए युवक नगर के बाहर कुछ बड़े भाण्डों में जल रखकर घास काटकर लौटते हुए प्यासे घसियारों को जल देने लगा। कहना व्यर्थ है कि वे इससे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होने युवक से कहा कि "आपने हम लोगों का बड़ा उपकार किया है। बताइए, हम लोग आपके लिए क्या कर सकते है।" उसने कहा, "आप लोग घबड़ाते क्यों हैं, काम करने के अनेक समय हैं! जब मुझे जरूरत होगी तो मैं बताऊँगा।"

इसी समय, देखते-देखते युवक की दो सौदागरों से अच्छी मित्रता और परिचय हो गया। इनमे से एक ने आकर खबर दी, "भाई, कल एक घोड़ो का सौदागर पाँच सौ घोड़ों को लेकर यहाँ बेचने आयेगा।" युवक यह सुनकर उन पाँच सौ घसियारो को बुलाकर उनसे बोला, "देखिए, आज हमारी जरूरत आ गयी है। आप लोग कल मुझे एक-एक अँटिया घास दीजिए और जब तक मेरी घास न बिक जाये तब तक अपनी न बेचिए।" घसियारे इस बात पर राजी हो गये। युवक के पास पाँच सौ अँटिया घास इकट्ठी हुई। इधर उस घोड़ों के सौदागर ने अन्यत्र कहीं घास न पाकर युवक की इस घास को ही खरीद लिया। इससे उसको एक अच्छी आमदनी हो गयी।

युवक ने कुछ दिन बाद अपने दूसरे दोस्त सौदागर से सुना कि एक बड़ा सौदागर जहाज में माल लेकर बन्दरगाह पर आया है। यह सुनते ही वह जल्दी-जल्दी जाकर सारे माल का मोलभाव ठीक करके बयाना कर आया और सारे माल पर अपने नाम की छाप लगा दी।

यह सारा बन्दोबस्त करके वह वहीं पर एक तम्बू लगाकर पड़ रहा, और नौकरों से कह रखा कि यदि कोई सौदागर मुझसे भेंट करने आयें तो उनके साथ एक-एक करके तीन सिपाही लायें।

इधर बन्दरगाह में बड़े जहाज के आने की खबर सुनकर नगर के सभी व्यापारी माल खरीदने के लिए आने लगे। मगर जब उन्होंने सुना कि उस युवक ने अकेले ही सारा माल खरीद लिया है, तो उससे भेंट करने के लिए तम्बू के पास जाने लगे। वहाँ उसके नौकर-चाकर और सिपाही-सन्तरी आदि को देखकर व्यापारियों ने उसे बहुत बड़ा आदमी समझा।

फिर युवक ने इनके हाथ अलग-अलग सामानों को बेचकर जहाज का सारा माल बेच दिया। इस तरह दो लाख रुपये का लाभ उठाकर वह शहर को लौट आया। फिर उसे राजा के उस धनरक्षक की बात याद आयी। वह लाभ के एक लाख रुपये साथ लेकर उन्हें देने की इच्छा से उनके पास आया। उन्होंने कहा, "तुमने इतने रुपये कहाँ पाये ?" युवक ने कहा, "आपकी बात से उस मरे चूहे को लेकर व्यवसाय करने से मुझे दो लाख रुपये का लाभ हुआ है।" धनरक्षक सन्तुष्ट हुए, किन्तु उन रुपयों को उन्होंने नहीं लिया।

बड़ा कौन है ?

बहुत दिन पहले की बात है, काशी में एक राजा राज्य किया करते थे। इनकी शिक्षा और स्वभाव, दोनों ही खूब अच्छे थे। प्रजा का यह अपनी सन्तान की तरह पालन करते थे। विचार करते समय किसी तरफ पक्षपात न करके ठीक-ठीक फैसला किया करते थे। क्रोध और लोभ में पड़कर कभी किसी का विचार न करते थे। उनका इस प्रकार का आचरण होने से ही उनके मन्त्री भी अच्छे थे। वे भी किसी के साथ अन्याय नहीं करते थे। इससे राज्य की सभी प्रजा बड़ी प्रसन्न थी। जो लोग दूसरों के नाम पर झूठमूठ मामला-मुकद्दमा गढ़ा करते हैं, राज्य में नहीं दीख पड़ते थे। अदालत में मुकद्दमे नहीं आते थे। विचारक लोग सारा दिन चुपचाप बैठकर, कोई काम न पाकर शाम को उठ जाया करते। आदमियों के अभाव

में अदालत खाली ही पड़ी रहती। राजा का राज्य इस प्रकार बिना किसी गोल-माल के खूब अच्छी तरह से चलने लगा। सभी राजा का गुण गा-गाकर राजा की जयजयकार मनाते।

राजा ने एक दिन मन में सोचा—राज्य तो इस समय खूब अच्छी तरह चल रहा है, प्रजा सुखी है और देखता हूँ, सभी हमारा गुणगान कर रहे है। पर, मुझे यह भी जानना चाहिए कि मेरे अन्दर क्या दोष है! दोष जानकर उसे दूर किया जायेगा। उन्होंने पहले राजमहल के आदमियों को बुलाकर पूछा, "यदि मुझमें कोई दोष हो तो तुम लोग साफ-साफ बता दो।" किन्तु उनके दोष की बात न कहकर सभी उनके गुण की ही बात कहने लगे। राजा ने सोचा कि शायद ये भय के कारण हमारा दोष नही बता रहे हैं। अच्छा, तो और लोगों से इसकी खबर ली जाये। फिर राजा अपने राजमहल के, शहर के, यहाँ तक कि देश के आदमियों से एक-एक करके अपना दोष पूछने लगे। किन्तु किसी ने उनके दोष की बात न कही।

राजा ने फिर भी सोचा कि सम्भवत: भय से ही ये लोग हमारा दोष नही बता रहे हैं। वे मन्त्री के हाथ में राज्य देकर, वेश बदलकर एक रथ पर चढ़कर राज्य में निकल पड़े। उन्होंने सोचा था कि सारे राज्य में घूम-फिरकर देखेंगे कि हममें कोई दोष है या नहीं। घूमते-घूमते वे राज्य की अन्तिम सीमा तक गये और खोज करने में कोई कसर न छोड़ी; किसी ने उनके दोष की बात नहीं की, बल्कि सबने गुण की ही प्रशंसा की। तब अपनी राजधानी की ओर रथ फिराने के लिए उन्होंने सारथी को हुक्म दिया। सारथी रथ लौटाकर ले चलने लगा।

इधर कोशल के राजा भी ठीक उसी तरह अपना दोष खोजने के लिए घूम रहे थे। वे बड़े धार्मिक राजा थे। कही पर किसी प्रकार का दोष अपने अन्दर न पाकर वे भी अपनी राजधानी की ओर लौटे आ रहे थे। संयोग से इन दोनों राजाओं के रथ भिन्न दिशाओं से आकर ऐसी एक ढालू जगह पर आ गये, कि इधर-उधर से निकल जाने का कोई रास्ता नही रहा। किसी एक रथ को उलटा लौटाकर कुछ दूर हटा ले जाने के सिवा दूसरा कोई उपाय नही था। कोशलराज के सारथी ने काशिराज के सारथी से कहा, "तुम अपना रथ पीछे फिरा ले जाओ।" उसने जवाब में कहा, "तुम अपना रथ घुमाओ, हमारे रथ में काशिराज हैं।" कोशलराज के सारथी ने कहा, "हमारे रथ में कोशलराज हैं, तुम्ही अपना रथ फिराओ।" काशिराज के सारथी ने सोचा—ठीक ही तो है, ये भी तो एक राजा हैं। अब किसका रथ लौटाया जाय? अच्छा, इनमे जिनकी उम्र कम है, उन्ही का रथ फिराकर दूसरे का रास्ता साफ कर देना उचित होगा। उसने कहा, "तुम्हारे राजा की उम्र क्या है?" जवाब मिलने पर मिलाकर देखा तो दोनों राजाओं की उम्र समान थी। फिर एक-एक करके राज्य, धन, बल और कुल पूछकर देखा गया कि कोई किसी से किसी बात मे कम नहीं हैं, दोनों ही समान हैं। फिर काशिराज के सारथी ने सोचा कि इन दोनों में जो चरित्र में बड़े होंगे, उन्ही का रथ आगे जायेगा। उसने कोशलराज के सारथी से पूछा, "तुम्हारे राजा का चरित्र कैसा

है ?" कोसलराज के सारथी ने कहा, "हमारे राजा बड़े अच्छे चरित्र के हैं, सुनो—

कठिनों के प्रति कठिन और मृदु के प्रति मृदुतर,
साधुजनों में साधु, शठों के प्रति शठता-पर,
नीति यही कोसलनरेश की परम निपुण है।
थोड़े में बतलाना उसका बहुत कठिन है।
इस हेतु हटा अपना शकट मुझे राह तुम छोड़ दो !
कर शीघ्र कार्य हे मित्र, यह तुम अपना हठ छोड़ दो !"

काशिराज के सारथी ने कहा, "क्यों भाई, क्या तुम्हारे राजा के सभी गुण कह दिये गये ?" उसने कहा, "हाँ।" काशिराज के सारथी ने कहा, "यदि ये ही सब गुण हैं तो अवगुण किसे कहते हैं ?" उसने जवाब दिया, "अच्छी बात है, ये अवगुण ही सही, तुम्हारे राजा के गुण क्या हैं ?" काशिराज के सारथी ने कहा, "सुनो, कहता हूँ—

क्रोधी को कर प्रेम जीतते हैं काशीपति,
और दुष्ट को दिखा साधुता करते निजवश,
कृपण मनुज को दानवीरता से वश करते,
अद्वितीय हैं झूठ जीतने में सच के बल।"

यह सुनकर कोसलराज और उनका सारथी रथ से उतर गये और रथ को लौटाकर काशिराज के रथ का रास्ता कर दिया। दोनों राजाओं में परस्पर बातें हुईं। दोनों ही अपनी-अपनी राजधानी को चले गये।

बड़ा क्या है ?

एक बड़े राजा की राजसभा में एक ब्राह्मण रहते थे। ब्राह्मण जैसे पण्डित थे, वैसे ही सुशील भी। जीवहिंसा, चोरी, मिथ्या आदि के पास भी वह नहीं जाते। राजा उनको खूब चाहते और उनका काफी आदर-सम्मान करते थे। और सब लोग भी उनकी श्रद्धा-भक्ति करते थे। एक दिन उन्होंने सोचा—'अच्छा, राजा जो मेरी इतनी खातिर-बात, इतना आदर-सम्मान करते हैं, वह क्यों ? मेरी जाति के लिए, या मेरे कुल के लिए ? या देश, विद्या और चरित्र, इनमें से किसी एक के लिए ? अच्छा, तो एक दिन इसकी परीक्षा क्यों न की जाय ?'

राजा के एक कर्मचारी थे। ये राज्य से जिसका जो कुछ रुपया-पैसा पावना

होता था, उसे हिसाब करके चुकाते थे। ब्राह्मण की ये भी बड़ी भक्ति किया करते थे। एक दिन ब्राह्मण राजसभा में राजा के साथ भेंट करके घर लौटे जा रहे थे। उसी समय, उन राजकर्मचारी ने आदमियों को देने के लिए जो रुपया-पैसा सम्हाल-कर रखा था, ब्राह्मण आँख बचाकर उसमें से कुछ लेकर चुपके से चल दिये। राज-कर्मचारी ने यह देखा, लेकिन उनकी खूब भक्ति करते थे अतएव उस दिन कुछ न बोले।

ब्राह्मण फिर एक दिन रुपया चुराकर चले। राजकर्मचारी टेर पाते ही 'चोर, चोर' कहकर चिल्ला उठे। चारों ओर से आदमी-जन दौड़कर आ पहुँचे और ब्राह्मण को पकड़ लिया। उन्होंने कहा, "वाह, बाबाजी, इतने दिनों तक खूब सच्चरित्र और सुशील बनते थे! अब चलो राजा के पास।" ब्राह्मण को धरपकड़-कर वे राजा के पास ले गये और सारी घटना कह सुनायी। राजा सुनकर बड़े दुखी हुए। बोले, "ब्राह्मण, तुम ऐसे दु:शील हो—इतने दुष्ट हो!" यह कहकर राजा ने कहा, "ले जाओ, इसे यथोचित दण्ड दो।"

ब्राह्मण ने कहा, "महाराज, मैं चोर नहीं हूँ।" राजा ने कहा, "तुम अगर चोर नहीं हो तो ऐसा काम क्यों किया?" ब्राह्मण ने तब सारी बातें खोलकर कहीं, "महाराज, आप मुझसे बड़ा प्रेम करते थे, बड़ा आदर-सम्मान करते थे। लोग भी मेरी भक्ति करते थे। यही देखकर मैंने सोचा कि हमारा इतना मान-सम्मान किसलिए है? यह हमारी जाति, विद्या, कुल, देश या चरित्र के लिए? इसी की परीक्षा करने के लिए, महाराज, मैंने आपका धन चुराया था। अब मैं समझ रहा हूँ कि जो कुछ मान-सम्मान है, सबकुछ चरित्र के गुण से है। जाति, कुल, देश या विद्या के लिए नहीं।"

ब्राह्मण इसके बाद संन्यासी होकर तपस्या करने चले गये।

देवता की मनौती

एक बार किसी राजा के एक पुत्र हुआ। राजकुमार थोड़ी ही उम्र में नाना विद्याओं को सीखकर खूब पण्डित हो गये। इस समय काशी के लोग पर्व के दिन खूब धूम-धाम से देवी-देवता की पूजा करते। उनकी पूजा की सामग्री फूल-अक्षत तो थे ही, साथ ही बकरा, भेड़ा, सूअर, मुर्गा वगैरह को मारकर उनके रक्त-मास से भी वे लोग पूजा किया करते। राजकुमार के मन में ये हत्याएँ देखकर बड़ी चोट लगती। उन्होंने सोचा—'लोग देवता की पूजा करते समय बहुत जीवों की हत्या करते हैं,

इससे धर्म का रास्ता छोड़कर अधर्म के रास्ते पर ही जा रहे हैं। मैं जब राजा हूँगा, तो जैसे बनेगा, इस प्रथा को उठा दूंगा। लेकिन यह बात इस ढंग से करनी होगी कि जिसमें लोगों को कष्ट भी न हो और यह प्रथा भी उठ जाये।'

कुछ दिन बीत गये। राजकुमार एक दिन रथ पर चढ़कर नगर के बाहर घूमने गये। रास्ते में उन्होंने देखा, एक बड़े भारी बरगद के पेड़ के नीचे सैंकड़ों आदमी जमा हुए हैं। उन लोगों की धारणा थी कि उस बरगद के पेड़ पर एक देवता का वास है। उस देवता का बड़ा प्रभाव है। पूजा देकर उनसे जो आदमी जो कुछ चाहता है वही पाता है। यही सोचकर लोग बकरा, भेड़ा आदि काटकर देवता की पूजा देते थे और मनौती मानते थे, अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार लड़का-लड़की माँगते थे। यह देखकर राजकुमार रथ से उतरे। उतरकर दरख्त के नीचे जाकर धूपदीप देकर उसी तरह पूजा की, जिस तरह वे लोग कर रहे थे। इसके बाद बरगद को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके चले गये। इसके बाद प्रतिमास वहाँ आकर वे पूजा कर जाते।

कुछ दिनों के बाद, राजा की मृत्यु होने के बाद राजकुमार ही राजा हुए। राजगद्दी पर बैठकर वे यथाशक्ति धर्म के अनुसार राज्य करने लगे। लेकिन उनके मन से यह बात गयी नहीं थी कि जीवबध करके पूजा करने का रिवाज राज्य से हटा देना होगा। एक दिन राज्य के मन्त्री और बड़े-बड़े आदमियों को बुलाकर उन्होंने कहा, "आप लोग जानते हैं, मैंने कैसे राज्य पाया है?" उन आदमियों ने कहा, "नहीं महाराज, हम लोग तो यह कुछ नहीं जानते; जानी हुई बात तो यही है कि राजा का पुत्र राजा होता है।"

राजा ने कहा, "हाँ, होता तो यही है! किन्तु और भी एक कारण है। आप लोगों ने शायद देखा होगा कि मैं बीच-बीच में उस बरगद के देवता की पूजा किया करता और हाथ जोड़कर प्रणाम किया करता था।" सभी ने कहा, "हाँ-हाँ महाराज, यह सब हम लोगों ने देखा है।" राजा ने कहा, "मैंने उसी समय देवता के निकट मनौती की थी कि राज्य पाने पर मैं उनकी पूजा करूँगा। मैंने उस देवता के अनुग्रह से ही राज्य पाया है। मुझे उनकी पूजा करनी होगी, इसलिए आप लोग उसकी तैयारी कर दीजिये।"

उन लोगों ने कहा, "बताइये महाराज, क्या तैयारी की जाये!" राजा ने कहा, "मैंने मनौती की है कि हमारे राज्य में जितने पापण्ड है—जो जीवहत्या करते है, झूठ बोलते हैं, चोरी करते है, और इसी तरह के अन्य पापकर्म करते हैं, उन्हीं के रक्त-मांस और कलेजे से उस देवता की पूजा करूँगा। इन्हीं को जुटाना होगा। आप लोग भेरी बजाकर नगर में घोषणा कर दें कि 'हमारे महाराज जब युवराज थे तो बरगद के दरख्त के नीचे उन्होंने मनौती की थी कि वे जब महाराज होंगे तो उनके राज्य के इस प्रकार के एक हजार आदमियों के रक्त-मास और कलेजे से उस देवता की पूजा करेंगे—जो लोग जीवहिंसा करते हैं, चोरी करते हैं, झूठ

बोलते है, अथवा इसी प्रकार के अन्य खराब काम करते है। इस प्रकार की पूजा करके वे अपनी मनौती मनायेंगे।' "

मन्त्रियों ने राजा के आदेश की घोषणा कर दी। नतीजा यह हुआ कि राजा की मनौती कभी नही मनायी गयी।

प्रतिशोध

काशी के रास्ते मे देखा गया, एक बैलगाड़ी जा रही है। गाड़ी मे सिर्फ दो आदमी बैठे है, एक गाड़ीवान और दूसरा उसी गाड़ी का मालिक। मालिक की पोशाक देखकर जान पड़ता है कि वे एक बड़े सेठ—बड़े सौदागर हैं। सेठजी का नाम था पाण्डु।

जरा पहले एक अच्छी वर्षा हो गयी है, इसलिए रास्ता कीचड़ से बहुत खराब हो गया है—फिसलने लायक। गाड़ी खीचने मे बैलों को बड़ी तकलीफ हो रही है। लेकिन उन्हे जितना भी कष्ट क्यों न हो, गाड़ी उन्हें खीचनी ही पड़ेगी—उनकी ओर देखता कौन है ? गाड़ी चलते-चलते एक चढ़ाव की जगह पर आ गयी, इसीलिए बैलो की चाल भी धीमी हो गयी। वे किसी तरह, जितना हो सकता है, धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे है। सेठजी ने यही पर एक संन्यासी को देखा। संन्यासी का सिर मुंड़ा हुआ है और उनके पहनावे में नारंगी रंग का एक कपड़ा और चादर बड़ी खूबी से पहने गये है। इन कपड़ों से सारा शरीर ढक गया है। उनका मुँह खूब-खूब सुन्दर, शान्त और प्रफुल्ल है। संसार के मंगल के लिए बुद्धदेव जो रास्ता दिखा गये हैं, संन्यासी उसी पथ के पथिक है। इसीलिए लोग उन्हें बौद्ध संन्यासी या बौद्ध भिक्षु कहा करते थे।

जिस समय की बात हो रही है, उसी समय हमारे देश में बहुत बौद्ध संन्यासी थे। इस संन्यासी को लोग श्रमण नारद कहकर पुकारते। संन्यासी को देखकर ही सेठ के मन में भक्ति जगी। उनसे बातचीत होते सेठजी ने जब जाना कि वे भी काशी ही जा रहे हैं, तो उन्होने अपनी गाड़ी मे बैठकर चलने के लिए उनसे अनुरोध किया। संन्यासी पैदल ही जा रहे थे, रास्ते की मिहनत से बहुत थक गये थे। इसीलिए सेठजी को धन्यवाद देकर उसी गाड़ी मे सेठजी के साथ-ही-साथ जाने लगे। दोनो के रास्ते का समय आनन्द से कटने लगा।

कुछ दूर जाने पर गाड़ी एक खूब ढालुवाँ रास्ते में आकर जरा रुकी। देखा गया, सामने एक दूसरी गाड़ी का धुरा खुल जाने से उसका एक पहिया जमीन पर गिर गया है। उसका गाड़ीवान अकेला ही था, बिचारा बड़ी देर से कोशिश करके

भी कुछ कर नही सका था, बिल्कुल घबरा गया था। वह स्थान भी ऐसा था कि उस गाड़ी को बिना हटाये दूसरी गाड़ी के जाने का रास्ता ही नही था। गाड़ी एक साधारण किसान की थी, उसका नाम देवल था। देवल अपनी गाड़ी मे कई बोरे चावल लादकर वेचने के लिए काशी ही जा रहा था। रास्ते मे बिचारे की यह दुर्दशा हो गयी!

सेठजी ने जब देखा कि देवल की गाड़ी को रास्ते से हटाये बिना उनकी गाड़ी के जाने का कोई उपाय नही है तो वे बड़े झुंझला गये। उन्होंने अपने नौकर को हुक्म दिया, "जा, उसकी गाड़ी के बोरों को उठाकर नीचे फेंक दे और गाड़ी को एक तरफ खींचकर हमारी गाड़ी आगे निकाल ले चल।"

किसान ने गिड़गिड़ाकर विनय के साथ कहा, "सेठजी, एक मामूली खेतिहर हूँ—बहुत ही गरीब हूँ। वर्षा के पानी से रास्ता कीचड़ से भर गया है। बोरे अगर नीचे गिरेंगे तो हमारा सारा चावल खराब हो जायेगा। आप ज़रा रुकिये, मैं जिस तरह से होगा उसी तरह अभी अपनी गाड़ी को इस ढाल से हटाकर आपके लिए रास्ता कर देता हूँ।" किसान की कातर प्रार्थना सेठजी के कानों मे नही घुसी। और भी बिगड़कर उन्होंने नौकर को कड़ा हुक्म दिया, "अबे, देखता क्या है, हमारा हुक्म बजा! चल, उसका बोरा-बस्ता फेंककर गाड़ी को आगे बढ़ा।" नौकर गाड़ी पर से बोरों को नीचे फेंककर, गाड़ी को एक तरफ ठेलकर अपनी गाड़ी निकाल ले गया।

श्रमण नारद गाड़ी से कूदकर बोले, "सेठजी माफ कीजिए, मैं और आपके साथ नही जा सकता। मैं और भी आपके साथ जाता, पर अब नही। आप जिस किसान की गाड़ी उलटाकर आगे ले जा रहे है, उसके साथ आपका नजदीकी रिश्ता है। अपनी गाड़ी मे मुझे जगह देकर आपने मेरा बहुत उपकार किया है। इसीलिए मैं आपका ऋणी हूँ। आपके इस ऋण को मुझे चुकाना होगा। इस आपके निकट सम्बन्धी किसान की सहायता करके मैं इस ऋण को चुकाऊँगा। इसकी यदि कुछ भलाई मैं कर सका, इसे कुछ भी फायदा दिलवा सका, तो सेठजी, इससे आपका भी उपकार होगा। आपने इस किसान को बहुत नुकसान पहुँचाया है, इससे आपका भी बड़ा नुकसान हुआ है। इसीलिए आपको इस नुकसान से बचाने के लिए हमें भरसक कोशिश करनी पड़ेगी।" सेठजी के कानों मे ये बातें नही गयी। उनकी गाड़ी आगे निकल गयी।

श्रमण नारद देवल के पास गये। दोनो जने मिलकर, बोरों को उठाकर, उनमे का भीगा चावल एक जगह और बचा हुआ दूसरी जगह ठीक करके बाँधने लगे। गाड़ी को भी दोनों ने पकड़ करके उठाया। ठीक करके बोरो को चढ़ाया। देवल ने सोचा कि निश्चय ही यह संन्यासी एक परोपकारी महापुरुष हैं। इसीलिए उनका यथोचित सम्मान करके पूछा, "महाशय, मुझे जहाँ तक याद है तहाँ तक देखता हूँ, मैंने तो कभी भी इन सेठजी की किसी दिन कुछ भी बुराई नही की। मुझसे कुछ भी इनका नुकसान नहीं हुआ। फिर भी उन्होने मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया?"

बोलते हैं, अथवा इसी प्रकार के अन्य खराब काम करते है। इस प्रकार की पूजा करके वे अपनी मनौती मनायेंगे।' "

मन्त्रियों ने राजा के आदेश की घोषणा कर दी। नतीजा यह हुआ कि राजा की मनौती कभी नही मनायी गयी।

प्रतिशोध

काशी के रास्ते मे देखा गया, एक बैलगाड़ी जा रही है। गाड़ी मे सिर्फ दो आदमी बैठे हैं, एक गाड़ीवान और दूसरा उसी गाड़ी का मालिक। मालिक की पोशाक देखकर जान पड़ता है कि वे एक बड़े सेठ—बड़े सौदागर हैं। सेठजी का नाम था पाण्डु।

जरा पहले एक अच्छी वर्षा हो गयी है, इसलिए रास्ता कीचड से बहुत खराब हो गया है—फिसलने लायक। गाड़ी खीचने में बैलों को बड़ी तकलीफ हो रही है। लेकिन उन्हें जितना भी कष्ट क्यों न हो, गाड़ी उन्हें खीचनी ही पड़ेगी—उनकी ओर देखता कौन है ? गाडी चलते-चलते एक चढ़ाव की जगह पर आ गयी, इसीलिए बैलों की चाल भी धीमी हो गयी। वे किसी तरह, जितना हो सकता है, धीरे-धीरे आगे बढ रहे हैं। सेठजी ने यही पर एक संन्यासी को देखा। संन्यासी का सिर मुंड़ा हुआ है और उनके पहनावे में नारंगी रंग का एक कपड़ा और चादर बड़ी खूबी से पहने गये है। इन कपड़ों से सारा शरीर ढक गया है। उनका मुंह खूब-खूब सुन्दर, शान्त और प्रफुल्ल है। संसार के मंगल के लिए बुद्धदेव जो रास्ता दिखा गये है, संन्यासी उसी पथ के पथिक हैं। इसीलिए लोग उन्हें बौद्ध संन्यासी या बौद्ध भिक्षु कहा करते थे।

जिस समय की बात हो रही है, उसी समय हमारे देश मे बहुत बौद्ध संन्यासी थे। इस संन्यासी को लोग श्रमण नारद कहकर पुकारते। संन्यासी को देखकर ही सेठ के मन मे भक्ति जगी। उनसे बातचीत होते सेठजी ने जब जाना कि वे भी काशी ही जा रहे है, तो उन्होने अपनी गाड़ी में बैठकर चलने के लिए उनसे अनुरोध किया। संन्यासी पैदल ही जा रहे थे, रास्ते की मिहनत से बहुत थक गये थे। इसीलिए सेठजी को धन्यवाद देकर उसी गाड़ी में सेठजी के साथ-ही-साथ जाने लगे। दोनो के रास्ते का समय आनन्द से कटने लगा।

कुछ दूर जाने पर गाड़ी एक खूब ढालुवां रास्ते मे आकर जरा रुकी। देखा गया, सामने एक दूसरी गाड़ी का धुरा खुल जाने से उसका एक पहिया जमीन पर गिर गया है। उसका गाड़ीवान अकेला ही था, बिचारा बड़ी देर से कोशिश करके

भी कुछ कर नही सका था, बिल्कुल घबरा गया था। वह स्थान भी ऐसा था कि उस गाड़ी को बिना हटाये दूसरी गाड़ी के जाने का रास्ता ही नही था। गाड़ी एक साधारण किसान की थी, उसका नाम देवल था। देवल अपनी गाड़ी मे कई बोरे चावल लादकर बेचने के लिए काशी ही जा रहा था। रास्ते मे बिचारे की यह दुर्दशा हो गयी !

सेठजी ने जब देखा कि देवल की गाड़ी को रास्ते से हटाये बिना उनकी गाड़ी के जाने का कोई उपाय नही है तो वे बड़े झुंझला गये। उन्होने अपने नौकर को हुक्म दिया, "जा, उसकी गाड़ी के बोरों को उठाकर नीचे फेंक दे और गाड़ी को एक तरफ खींचकर हमारी गाड़ी आगे निकाल ले चल।"

किसान ने गिड़गिड़ाकर विनय के साथ कहा, "सेठजी, एक मामूली खेतिहर हूँ—बहुत ही गरीब हूँ। वर्षा के पानी से रास्ता कीचड़ से भर गया है। बोरे अगर नीचे गिरेंगे तो हमारा सारा चावल खराब हो जायेगा। आप ज़रा रुकिये, मैं जिस तरह से होगा उसी तरह अभी अपनी गाड़ी को इस ढाल से हटाकर आपके लिए रास्ता कर देता हूँ।" किसान की कातर प्रार्थना सेठजी के कानों मे नही घुसी। और भी बिगड़कर उन्होने नौकर को कड़ा हुक्म दिया, "अबे, देखता क्या है, हमारा हुक्म बजा ! चल, उसका बोरा-बस्ता फेंककर गाड़ी को आगे बढ़ा।" नौकर गाड़ी पर से बोरों को नीचे फेंककर, गाड़ी को एक तरफ ठेलकर अपनी गाड़ी निकाल ले गया।

श्रमण नारद गाड़ी से कूदकर बोले, "सेठजी माफ कीजिए, मैं और आपके साथ नही जा सकता। मैं और भी आपके साथ जाता, पर अब नहीं। आप जिस किसान की गाड़ी उलटाकर आगे ले जा रहे है, उसके साथ आपका नजदीकी रिश्ता है। अपनी गाड़ी मे मुझे जगह देकर आपने मेरा बहुत उपकार किया है। इसीलिए मैं आपका ऋणी हूँ। आपके इस ऋण को मुझे चुकाना होगा। इस आपके निकट सम्बन्धी किसान की सहायता करके मैं इस ऋण को चुकाऊँगा। इसकी यदि कुछ भलाई मैं कर सका, इसे कुछ भी फायदा दिलवा सका, तो सेठजी, इससे आपका भी उपकार होगा। आपने इस किसान को बहुत नुकसान पहुँचाया है, इससे आपका भी बड़ा नुकसान हुआ है। इसीलिए आपको इस नुकसान से बचाने के लिए हमें भरसक कोशिश करनी पड़ेगी।" सेठजी के कानों मे ये बातें नही गयीं। उनकी गाड़ी आगे निकल गयी।

श्रमण नारद देवल के पास गये। दोनो जने मिलकर, बोरों को उठाकर, उनमें का भीगा चावल एक जगह और बचा हुआ दूसरी जगह ठीक करके बांधने लगे। गाड़ी को भी दोनो ने पकड़ करके उठाया। ठीक करके बोरों को चढ़ाया। देवल ने सोचा कि निश्चय ही यह संन्यासी एक परोपकारी महापुरुष है। इसीलिए उनका यथोचित सम्मान करके पूछा, "महाशय, मुझे जहाँ तक याद है तहाँ तक देखता हूँ, मैंने तो कभी भी इन सेठजी की किसी दिन कुछ भी बुराई नही की। मुझसे कुछ भी इनका नुकसान नही हुआ। फिर भी उन्होंने मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया ?"

नारद बोले, "सुनो भाई, इस समय तुम जो कुछ भोग रहे हो, वह तुम्हारे पहले के किये कर्मों का फल है। मनुष्य जैसा बोता है, फसल भी वैसी ही काटता है।"

देवल गाड़ी मरम्मत करके चला; नारद भी साथ-ही-साथ पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर जाने पर दोनों बैल भड़क उठे। देवल सामने सांप की तरह की एक लम्बी चीज देखकर डरा। नारद ने नजदीक जाकर अच्छी तरह देखकर कहा, "यह एक लम्बा थैला है, देखो इसमें अशर्फियां भरी हैं।" देखकर वे समझ गये कि यह सेठजी का थैला है। यह कब गिर पड़ा, सेठजी यह भी नहीं समझ पाये हैं। थैले को उठाकर देवल के हाथ में देकर उन्होंने कहा, "जब तुम काशी पहुँचना तो खोज-कर सेठजी के हाथ में इसे दे देना। उनका नाम पाण्डु सेठ है और उनके नौकर का नाम महादत्त। उनसे कहना कि वे तुम्हारे साथ जो अन्याय कर गये हैं उसे मन में न लायें। कहना कि मैं उस बात को भूल गया हूँ। देवल, तुम सेठजी के सभी अपराध क्षमा करना।"

नारद यही कहकर चले गये; देवल अपनी गाड़ी लेकर आगे बढ़ा।

काशी में मल्लिक नामक एक सौदागर थे। पाण्डु सेठ काशी में इन्हीं की आढ़त में कारोबार करते थे। इसीलिए दोनों में खूब प्रेम था। पाण्डु जब इनके पास आये तो ये रोते-रोते बोले, 'भाई, हम भारी विपत में पड़ गये हैं। तुम्हारे साथ आगे मैं कार-बार कर सकूंगा, ऐसी आशा मुझे नहीं है। राजमहल में खुद राजा के लिए चावल पठाने का मैंने वायदा किया है। कल सबेरे ही मुझे सारा चावल देना पड़ेगा, किन्तु आज मेरे हाथ में चावल का एक कन भी नहीं है। इसी शहर में एक बड़े व्यापारी हैं, उनके साथ मेरी होड़ रहती है। उन्होंने राजमहल के मेरे वादे की बात किसी तरह जानकर शहर के आसपास के सभी अच्छे चावल महँगे दाम पर खरीद लिये हैं। मैं और अधिक दाम देने पर भी कहीं भी कुछ नहीं पा रहा हूँ। यही सोचता हूँ कि कल चावल कैसे दूंगा। जान पड़ता है, अब इज्जत नहीं रहेगी। हमारा अब कुशल नहीं है। अगर विधाता किसी तरह कल एक गाड़ी चावल जुटा दे तो बच जाऊं, नहीं तो मुझे अब मरना होगा।"

मल्लिक के यह बात कहते ही पाण्डु को अपने अशर्फियों के थैले की बात याद आयी। वे व्यस्त होकर गाड़ी में जो कुछ था, एक-एक करके खोज गये, किन्तु पाया कुछ भी नहीं। उन्हें शक हुआ कि उनके नौकर महादत्त ने चोरी की है। बिचारा महादत्त पुलिस के हाथ में पड़ा। वह कितना भी क्यों न कहे कि उसने अशर्फियों का थैला नहीं लिया, मगर पुलिस छोड़नेवाली नहीं थी, जितना हो सका उसने मारपीट शुरू कर दी। मगर जब उसने सचमुच ही चोरी नहीं की थी तो कैसे स्वीकार कर लेता कि उसी ने लिया है! वह सोचने लगा—'हाय, मैंने ऐसा कौन-सा खराब काम किया है, जिसके फलस्वरूप मेरी यह दुर्गति हो रही है! भाई किसान, मैंने सेठजी की बात मानकर बिना कारण तुम्हें कष्ट दिया है, तुम मुझे क्षमा करो!'

पुलिस जिस समय महादत्त को लेकर मारपीट रही थी, उसी समय देवल वहाँ आ गया। पाण्डु पहले से ही वहाँ थे। देवल ने अशर्फियों का थैला उनके पास रख-

कर बताया कि किस प्रकार उसने उसे पाया था। पुलिस महादत्त को अधिक देर तक नही अटका सकी, उसने महादत्त को छोड़ दिया। देवल भी वहाँ और न ठहरकर चला गया।

इधर मल्लिक को खबर मिली कि देवल के पास एक गाडी खूब अच्छा चावल है। उन्होंने उसी समय उस चावल को खूब अच्छा दाम देकर खरीद लिया और राजमहल में पठवा दिया। देवल भी आशा से अधिक दाम पाकर आनन्द के साथ अपने गाँव को रवाना हुआ।

पाण्डु ने जब देखा कि उनका खोया हुआ थैला मिला है और उनके आढ़तदार मल्लिक भी विपत्ति से उद्धार पा गये है, तो उनका हृदय आनन्द से भर गया। वे सोचने लगे, 'अगर आज यह किसान न आता तो न मैं मोहरो का थैला ही पाता और न मल्लिक की विपत्ति ही जाती। मैने इस किसान के साथ कैसा खराब व्यवहार किया। इसे कितना कष्ट दिया है, किन्तु इसने मेरे साथ कैसा अच्छा व्यवहार किया! वे सब बातें आज इसके मन मे है ही नही। यह खूब भलामानस है। एक साधारण किसान कैसे इतना भला आदमी हुआ? मालूम होता है, उस संन्यासी के गुण से ही ऐसा हुआ है। पारसमणि के सिवा लोहा को कौन सोना कर सकता है!' यह सब सोचकर पाण्डु के मन मे उस सन्यासी से एक बार भेंट करने की प्रबल इच्छा हुई। वे उन्हें खोजने लगे, पर कही भी संन्यासी दिखायी नही पड़े।

उस समय काशी में बौद्ध सन्यासियो के ठहरने के लिए बड़े-बड़े मठ थे। इसीलिए पाण्डु के मन में सहज ही यह बात उठी कि श्रमण नारद इन्ही मे से किसी एक मठ में मिल सकते है। मठ का दूसरा नाम विहार है। तब पाण्डु ने एक विहार से दूसरे मे खोजते-खोजते श्रमण नारद को देखा और उनको प्रणाम किया। फिर दोनों मे कौन कैसा है, कैसा नही, इत्यादि नाना बातें हुई।

बातों ही बातों में श्रमण नारद ने कहा, "सेठजी, अधिक कहने से आप इस समय नहीं समझेंगे, पीछे समझ सकेंगे। इसीलिए इस समय एक मामूली बात कहता हूँ। आप इसे याद रखकर चलें, तो सब ओर से आपका भला होगा। सेठजी, जब आप किसी को दुःख पहुँचाने जायें तो अपने मन में पहले यह सवाल कीजिए कि 'अगर दूसरा कोई मुझे ठीक ऐसा ही कष्ट दे तो क्या मुझे अच्छा लगेगा?' यदि अच्छा लगे तो आप दूसरे को दुःख दें और यदि अच्छा न लगे तो आप भी दूसरे को दुःख नही दे सकते। सेठजी, एक और बात आप मन में पूछें कि 'यदि मेरी कोई सेवा करे तो मुझे अच्छा लगेगा कि नही?' यदि अच्छा लगे तो आप भी दूसरो की सेवा करने के अवसर से नही चूकिये। सेठजी, आप जैसा बीज बोयेंगे, वैसा ही फल भी होगा। दूसरे को दुःख देकर उसमे अपने दुःख का बीज लगाया जाता है। इसी तरह दूसरे को सुख देकर अपने सुख का बीज बोया जाता है।"

पाण्डु सेठ ने कौशाम्बी में एक बड़ा विहार बनवाया है। सैकड़ों बौद्ध भिक्षु वहाँ वास करते हैं। बहुत दूर-दूर से बहुत-से लोग यहाँ विद्या प्राप्त करने आते हैं। लोग यहाँ धर्म की बातें सुनकर आनन्द पाते हैं।

व्यवसाय-वाणिज्य मे पाण्डु सेठ इस समय खूब बड़े हो गये हैं। उनका नाम सभी जानते हैं। एक बार कौशाम्बी के राजा ने आज्ञा दी कि पाण्डु सेठ के द्वारा एक सोने का मुकुट बनवाना होगा, जिसमे अनेक तरह के हीरा-मोती के काम होने चाहिए जिससे वह खूब सुन्दर हो। दाम चाहे जितना भी अधिक क्यों न हो, कोई हर्ज नही।

राजमहल से सेठजी के पास खबर गयी। सेठजी ने भी थोड़े ही दिनों मे एक खूब सुन्दर मुकुट तैयार करा लिया। जब वे इस मुकुट को लेकर कौशाम्बी जाने लगे तो साथ मे और भी कई तरह के जवाहरात ले लिये, क्योंकि वहाँ इनकी बिक्री सहज ही मे हो सकती थी। बहुत रुपये का सामान साथ में होने के कारण सेठजी ने साथ में बीस-पच्चीस सिपाही भी ले लिये, क्योंकि मुमकिन था कि रास्ते मे कोई बिपद आ पड़े।

कौशाम्बी के रास्ते मे एक जगह थोड़ी खतरनाक थी। वहाँ रास्ते के दोनो ओर पहाड़ हैं, रास्ता बीच से होकर जाता है। इसी जगह एक छोटे से गाँव में कई डाकू रहते थे। अवसर पाकर राहगीरो को मारपीटकर उनका सामान लूट लेना ही उनका काम था। सेठजी जब इस स्थान पर पहुँचे तो पचास-साठ डाकुओं ने आकर उन्हें घेर लिया। सिपाही उनके साथ खूब लड़े मगर कुछ कर न सके। सेठजी के पास जो कुछ था, डाकू लूटकर ले गये। उनका सबकुछ चला गया। मुकुट के साथ जो जवाहरात लाये थे वह भी गया, कुछ भी नहीं बचा। सिर पर हाथ रखकर वे जमीन पर बैठ गये।

सेठजी के मन मे खूब चोट लगी, किन्तु वे चुपचाप रह गये। बाहर कुछ भी प्रकट नही होने दिया। उन्होने सोचा, 'एक दिन मैने भी कम अत्याचार नही किये है, कितने लोगों को कितना कष्ट दिया है, यह बात आज मैं समझ रहा हूँ; मैंने जो बीज बोया है उसी का यह फल मिल रहा है।' सेठजी ने आज समझा कि दु:ख क्या वस्तु है। वे समझ गये कि दूसरे को कष्ट देने से उसे कैसा लगता है। पहले के किये हुए बुरे कामों के पछतावे से जल-जलकर उनका मन साफ होने लगा। उनके हृदय में इस समय दया का स्रोत दिखायी दिया। अब गरीब हो जाने के कारण उनका कष्ट दूर हो गया।

कौशाम्बी के जिस रास्ते मे डाकुओं ने पाण्डु का धन-रत्न आदि लूट लिया था, उसी रास्ते से एक बौद्ध संन्यासी जा रहे थे। उनके पास एक भिक्षापात्र और एक छोटी पोटली थी। पोटली एक बेशकीमती कपड़े से बँधी थी। इस कपड़े मे हाथ की लिखी कई पुस्तकें बँधी थीं। इस वस्त्र को किसी भक्त गृहस्थ ने दिया था। यह बेशकीमती कपड़ा ही भिक्षु की विपत्ति का कारण हुआ। डाकुओं ने दूर से ही देखकर सोचा कि इस पोटली मे कुछ बेशकीमती चीज है। किन्तु उसे लूटकर जब

उन्होंने खोलकर देखा तो उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। फिर उन्होंने पोथियों को खोलकर फेंक दिया और लौटती बार भिक्षु को खूब पीटकर चलते बने।

पीड़ा के मारे भिक्षु हिल भी नहीं सकते थे, सारी रात वहीं पड़े रहे। दूसरे दिन सवेरे किसी तरह उठकर फिर धीरे-धीरे रास्ता पकड़कर चलने लगे। जरा आगे बढ़कर ही उन्होंने जंगल में आदमियों की चिल्लाहट और तलवारों की झन-झनाहट की आवाज सुनी। वे जरा रुककर खड़े हो गये। जंगल के भीतर से देखा गया कि डाकू ही आपस में लड़ रहे हैं। एक ओर अकेला आदमी है और दूसरी ओर और सभी। देखने ही से समझ में आ जाता है कि जो आदमी अकेला लड़ रहा है, वह औरों से कहीं अधिक जोरावर है। फिर भी वह अधिक देर तक नहीं लड़ सका। उसको मुर्दे की तरह पड़ा देखकर और सभी चले गये। इनके दल के कई आदमी भी गिर गये थे। अकेले ही उस आदमी ने इन्हें लम्बा कर दिया था।

सब डाकुओं के चले जाने पर भिक्षु धीरे-धीरे उनके पास गये। उन्होंने जाकर देखा कि केवल उस आदमी को छोड़कर और सभी मर गये हैं। इस नरहत्या से उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। तब वे समीप के झरने से थोड़ा-सा जल ले आकर उस जीवित आदमी के मुंह-आँख आदि में देकर उपचार करने लगे। थोड़ी देर बाद ही उसे चैतन्य हुआ। भिक्षु ने उस समय किसी एक दरख्त की पत्तियां लाकर उसका रस निकालकर उस आदमी के शरीर के क्षत स्थानों पर लगा दिया।

आदमी फिर भी पड़ा ही था। उसने धीरे-धीरे आँख खोलकर भिक्षु की ओर देखा, फिर बोला, "कल अपने साथियों के साथ मैंने एक भिक्षु को खूब मारा था। क्या आप ही वह भिक्षु हैं? आप ही मेरे उन अत्याचारों के बदले में यह उपकार करने आये हैं? आपके ले आये हुए इस जल से मेरी प्यास जायेगी सही, पर भाई, अब मेरे जीने की कोई आशा नहीं है। मैंने ही अपने उन साथियों को मारने के नाना किस्म के दाव-पेंच सिखाये थे, मगर उन कुत्तों ने मुझसे सीखी हुई विद्या से मुझी को मारा।"

भिक्षु ने कहा, "भाई, जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता भी है। यह बात अक्षरशः ठीक है। तुमने अपने साथियों को मारामारी, लूटपाट वगैरह सिखाया है, वही सीखकर उन्होंने तुम्हें ही मारा है। तुम अगर उनको दया की सीख देते तो तुम्हारे ऊपर वे दया ही करते।"

उसने कहा, "हां, आपकी बात ठीक है। मेरी यह दशा ठीक ही हुई है। मैंने कितना अन्याय, कितना अत्याचार किया है, मुझे उसका फल भोगना ही पड़ेगा। हमारे पाप का बोझा बड़ा भारी हो गया है। बताइए बाबाजी, यह कैसे हल्का होगा?"

भिक्षु ने कहा, "उपाय तो खूब सहज है। पाप करने की इच्छा को एकदम जड़मूल से दूर करके फेंक दो और सभी जीवों के प्रति दया का व्यवहार रखो।"

डाकू ने पहले जो कुछ खराब काम किये, एक-एक करके सभी उसे याद आने लगे। वह इससे व्याकुल हो उठा और बोला, "मुझे अपने किये का प्रायश्चित

करना पड़ेगा। मैंने बहुत पाप किये हैं। सुनिए महाशय, मैं अपनी सारी कथा आपको खोलकर कहता हूँ। पाण्डु नामक एक बड़े सेठ हैं। इनका नाम सभी जानते है। मैं उन्ही का नौकर था। मेरा नाम महादत्त है। वे मुझसे जब जो कुछ करने को कहते थे, मैं उसी काम को तभी, इच्छा न रहने पर भी, यह सोचकर करता था कि मैं उनका नौकर हूँ। एक दिन उन्होंने व्यर्थ ही मुझे चोरी के अपराध में पुलिस के हाथ पकडवा दिया। पुलिस ने उनके सामने मुझे ऐसी मार दी कि जिसका नाम हो! मैं प्राय: मर ही चुका था। आखिरकार जब सच्ची बात मालूम हो गयी और सबने जान लिया कि मैं चोर नहीं हूँ, तब पुलिस ने मुझे छोड़ दिया। सेठजी के ऊपर मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैं उनसे कुछ भी न कहकर उसी समय एक ओर बाहर हो पड़ा। बाहर होकर मैं एक डाकुओं के दल में आ मिला। कुछ दिन बाद ही मैं उनका सरदार हो गया। एक दिन खबर मिली कि वह सेठ एक बेशकीमती मुकुट और साथ ही बहुत रुपयों के जवाहरात लेकर कौशाम्बी जा रहे हैं। सुनते ही अपना दल-बल लेकर जो कुछ उनके पास था, सभी लूट लिया। आज आप दया करके उनके पास जाइए और मेरी ओर से उनसे कहिए कि आपने जो मेरे ऊपर बिना कारण अत्याचार किया था उसका बदला लेने की इच्छा मेरे मन में बराबर बनी रही। आज मेरे मन से वह सभी कुछ धुल-पुंछ गया है। मैंने आपका सामान लूटकर जो अपराध किया, उसके लिए क्षमाप्रार्थना करता हूँ। आप मुझे दया करके क्षमा करें।

"बाबाजी, मैं जिस समय उनका नौकर था, उस समय वे ही मेरे आदर्श थे। उस समय उनका हृदय पत्थर की तरह कठिन था। उनकी नकल करके मै भी वैसा ही हो गया था। इधर सुना है, सेठजी अब पहले की तरह नहीं हैं। उनका हृदय इस समय दया से भरा है। दूसरों का उपकार करना ही इस समय उनका काम है। जिन कामो से लोगों की भलाई होती है, उन्हीं को वे करते फिरते हैं। इस समय उनकी बुद्धि धर्म की ओर है। उन्होंने इस समय वह धन संग्रह किया है जिसे चोर नही चुरा सकते, जो अन्य किसी उपाय से नष्ट नही हो सकता। किन्तु मेरा हृदय अब भी कितना खराब है, अब भी मैं अन्धकार में ही पड़ा हूँ। किन्तु और नहीं, मेरे हृदय में पाप जिससे न रहे! हाय, मेरा समय अब ज्यादा नहीं है। मैं कुछ भी भला काम न कर सका। बाबाजी, जाइए, आप जितना शीघ्र हो सके सेठजी के पास जाइए। उनको बता दीजिए कि उनका वह मुकुट और जवाहरात सब पास की इसी गुफा में मिट्टी के नीचे गड़े है। मैं और मेरे दो और साथियों के सिवा दूसरा कोई इस बात को नही जानता। मेरे वे साथी मर गये है। इस समय वे जितना शीघ्र हो सके, आकर इसे ले जायें।"

यह बात कहते-कहते महादत्त की जीभ बन्द हो आयी। वह और कुछ न बोल सका। क्षण-भर मे ही संन्यासी की गोद मे सिर रखकर वह सदा के लिए सो गया। यह सन्यासी हम लोगो के परिचित वही श्रमण नारद के सिवा और कोई नहीं हैं। उन्होने कौशाम्बी जाकर सेठजी से सारी बातें कह सुनायी। सुनकर उन्हें महादत्त

उसे सुलाकर रानी ने कमरे को ऊष्ण किया। कुछ समय पश्चात् नीमू को धीरे-धीरे होश आने लगा। सचेतावस्था में आते ही वह इधर-उधर ताकने लगा। अपने-आपको एक सुसज्जित कमरे में पड़ा देख और एक भद्र महिला को शुश्रूषा में लगा देखकर उसको आश्चर्य हुआ। वह कह उठा, "देवीजी, मैं तो भंगी हूँ। आप भूल कर रही हैं। मेरे कारण आपकी वस्तुएँ अपवित्र हो गयी होंगी···"

रानी ने नीमू को आगे नहीं बोलने दिया। उसके हृदय में आज स्वर्गीय आनन्द की लहरें उठ रही थीं। वह कहने लगी, "तुम कोई भी हो; सो जाओ भैया। मैं आज तक यही जानती थी कि केवल मैं ही पतिता हूँ।" और उसने अपने-आपको घृणा-भरी दृष्टि से देखते हुए मानो अपने मुख पर लगे हुए कलंक को छिपाने के लिए दोनों हाथों से उसे ढँक लिया।

अब नीमू जहाँ-कहीं भी जाता है, रानी की बड़ाई करते-करते उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं। वह अनपढ़ केवल इतना ही समझ सका है कि मनुष्य का भीतर-बाहर एक-सा नहीं होता। साधु में एक पापी छिपा रह सकता है और पापी में साधु पुरुष।

वह जब कभी अपनी बहिन रानी के पास जाता है, तो रानी को एक देवी समझ, प्रेम से गद्‌गद हो, उसके चरणों पर लोट-पोट हो जाता है। रानी केवल इतना ही कह पाती है, "नीमू, क्या तू पागल हो गया?" और नीमू के मुख पर सदा यही उत्तर रहता है, "हाँ बहिन, तुम्हीं ने तो मुझे पागल बनना सिखलाया है।"

दिन बीतते जा रहे थे। उनका भाई-बहिन का नाता गाढ़ा होता जा रहा था।

अचानक एक दिन नीमू ने शहर में यह सुना कि उसकी रानी बहिन एक खून के मुकदमे में बन्दी बना ली गयी है। वह पागल की भाँति वहीं बैठ गया···और कुछ न सोच सका। कुछ क्षणों के पश्चात् उसके मुँह से एकाएक यह शब्द निकल पड़े, 'आज मेरी परीक्षा का दिन है।'

दौड़ता, हाँफता किसी प्रकार वह अपनी झोपड़ी तक गया। अपनी स्त्री से विदा माँग, बच्चों को प्रेम-भरी दृष्टि से देख, वह उलटे पाँव ही घर से लौटा। उसके हृदय में कृतज्ञता का रक्त बड़ी द्रुत-गति से नाड़ियों में चक्कर काट रहा था। आज उसको प्राणों की बाजी लगानी थी। उसके लिए पाँच मील की राह पचास मील के समान प्रतीत हुई। कभी दौड़ता हुआ और कभी चिल्लाता हुआ वह जेल के सींकचों से आकर टकराया, जहाँ रानी एक तपस्विनी की भाँति शान्त मुद्रा धारण किये हुए बैठी थी। वह सोच रही थी—'दुनिया! स्वार्थी दुनिया! जो मनुष्य मेरे तलुए सहलाने में अपना भाग्य समझते थे, उनमें से आज कोई भी सान्त्वना-भरा एक शब्द तक नहीं कहता। हाय री विडम्बना! बड़े-बड़े रईस, ठाकुर, सेठ···' और तभी उसका ध्यान टूटा। उसने सुना, "बहिन!"

वह चौंकी, किन्तु नीमू को सामने देखकर वह मौन हो गयी। नीमू हाँफ रहा

था। भर्राये हुए स्वर में उसने पूछा, "बहिन, यह तुमने क्या किया ?"

रानी के भी नेत्रों में जल भर आया। गला साफ कर वह कहने लगी, "भाई, वह दुष्ट मेरा धन-जेवर सबकुछ ले जा रहा था—न जाने क्यों! उसके पश्चात् हाथ में छुरा लेकर मुझ पर झपटना चाहा। किन्तु हम वेश्याएँ उन चालों को कब दाँव देनेवाली हैं! ज्यों ही मेरे समीप आना चाहा, मैं प्रेम-भरी आँखों से उसे देख, उससे लिपट गयी। उसका हिंसात्मक भाव एक क्षण में ही मोम की भाँति पिघल गया। मेरे नाट्य को उसने सच्चा ही समझा। पर मुझे तो उस हत्यारे को दण्ड देना था। अवसर पाकर उसके छुरे से ही उसको अपना रास्ता दिखा दिया। बताओ भाई, क्या यह मैंने बुरा किया ?"

नीमू से अब नहीं रहा गया। उसका प्रेम-रूपी जौहर फूट पड़ा। वह इतना कहकर कि "प्यारी बहिन, मेरे होते तेरा कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता।" पागल की भाँति वहाँ से दौड़ पड़ा। रानी पुकारती रही—अपने को कोसती रही। पर वह तो···।

इजलास में भीड़ लग रही थी। न्यायाधीश ने फैसला पढ़ा, "इस शहर की प्रसिद्ध वेश्या रानी ने एक मनुष्य का खून किया था—उसी मामले में उस पर मुकदमा दायर किया गया। सब बयानों से यही प्रतीत होता है कि आम राह पर लाश पड़ी मिली और पुलिस की जाँच-पड़ताल से वह छुरा भी, जिससे कि उसने खून किया था, मुलजिमा के घर में ही पड़ा मिला। इन सब बातों के अतिरिक्त मुलजिमा स्वयं खूनी होना स्वीकार करती है। रानी के लिए अपनी जान-माल की रक्षा करना निहायत जरूरी था; किन्तु बिना किन्हीं पूरे सबूतों के यह नहीं माना जा सकता कि मुलजिमा ने खून अपनी ही रक्षा के लिए किया था। कानून तो उसे खूनी ही ठहरायेगा। इसलिए अदालत मुलजिमा को···।"

इसी समय भीड़ में खलबली मची। एक आवाज आयी, "खूनी मैं हूँ! मैंने उसका खून किया था।" इसके साथ ही नीमू न्यायाधीश के सम्मुख आ खड़ा हुआ। रानी नीमू को देखकर घबरायी और बड़बड़ाती रही, "यह झूठा है। खूनी मैं हूँ। वह खूनी नहीं है···"

न्यायाधीश ने शोरगुल बन्द करके पूछा, "अच्छा, तुम्हारा नाम ?"

"नीमू।"

"जात ?"

"भंगी।"

राज वकील ने शपथ दिलाकर प्रश्न किया, "इसके पहले कि हम तुम्हें खूनी ठहरायें, अपने पूरे सबूत पेश करो।"

सबसे पहले नीमू ने उस रात की घटना का वर्णन किया, जबकि उसका और रानी का मेल-जोल हुआ था। वह कह रहा था, "उस मेल-जोल के पश्चात् मैं

उसे सुलाकर रानी ने कमरे को ऊष्ण किया। कुछ समय पश्चात् नीमू को धीरे-धीरे होश आने लगा। सचेतावस्था मे आते ही वह इधर-उधर ताकने लगा। अपने-आपको एक सुसज्जित कमरे में पड़ा देख और एक भद्र महिला को शुश्रूषा में लगा देखकर उसको आश्चर्य हुआ। वह कह उठा,"देवीजी, मैं तो भंगी हूँ। आप भूलकर रही है। मेरे कारण आपकी वस्तुएँ अपवित्र हो गयी होंगी···'

रानी ने नीमू को आगे नहीं बोलने दिया। उसके हृदय मे आज स्वर्गीय आनन्द की लहरें उठ रही थी। वह कहने लगी,"तुम कोई भी हो; सो जाओ भैया। मैं आज तक यही जानती थी कि केवल मैं ही पतिता हूँ।" और उसने अपने-आपको घृणा-भरी दृष्टि मे देखते हुए मानो अपने मुख पर लगे हुए कलंक को छिपाने के लिए दोनों हाथो से उसे ढँक लिया।

अब नीमू जहाँ-कही भी जाता है, रानी की बड़ाई करते-करते उसकी आँखो मे आँसू भर आते है। वह अनपढ केवल इतना ही समझ सका है कि मनुष्य का भीतर-बाहर एक-सा नही होता। साधु में एक पापी छिपा रह सकता है और पापी मे साधु पुरुष।

वह जब कभी अपनी बहिन रानी के पास जाता है, तो रानी को एक देवी समझ, प्रेम से गद्‌गद हो, उसके चरणों पर लोट-पोट हो जाता है। रानी केवल इतना ही कह पाती है, "नीमू, क्या तू पागल हो गया ?" और नीमू के मुख पर सदा यही उत्तर रहता है, "हाँ बहिन, तुम्ही ने तो मुझे पागल बनना सिखलाया है।"

दिन बीतते जा रहे थे। उनका भाई-बहिन का नाता गाढा होता जा रहा था।

अचानक एक दिन नीमू ने शहर में यह सुना कि उसकी रानी बहिन एक खून के मुकदमे में बन्दी बना ली गयी है। वह पागल की भाँति वही बैठ गया···और कुछ न सोच सका। कुछ क्षणों के पश्चात् उसके मुँह से एकाएक यह शब्द निकल पड़े, 'आज मेरी परीक्षा का दिन है।'

दौड़ता, हाँफता किसी प्रकार वह अपनी झोपड़ी तक गया। अपनी स्त्री से विदा माँग, बच्चों को प्रेम-भरी दृष्टि से देख, वह उलटे पांव ही घर से लौटा। उसके हृदय मे कृतज्ञता का रक्त बड़ी द्रुत-गति से नाड़ियो में चक्कर काट रहा था। आज उसको प्राणों की बाजी लगानी थी। उसके लिए पाँच मील की राह पचास मील के समान प्रतीत हुई। कभी दौड़ता हुआ और कभी चिल्लाता हुआ वह जेल के सीकचो से आकर टकराया, जहाँ रानी एक तपस्विनी की भाँति शान्त मुद्रा धारण किये हुए बैठी थी। वह सोच रही थी—'दुनिया ! स्वार्थी दुनिया ! जो मनुष्य मेरे तलुए सहलाने में अपना भाग्य समझते थे, उनमें से आज कोई भी सान्त्वना-भरा एक शब्द तक नही कहता। हाय री विडम्बना ! बड़े-बड़े रईस, ठाकुर, सेठ···' और तभी उसका ध्यान टूटा। उसने सुना, "बहिन !"

वह चौंकी, किन्तु नीमू को सामने देखकर वह मौन हो गयी। नीमू हाँफ रहा

था। भर्राये हुए स्वर में उसने पूछा, "बहिन, यह तुमने क्या किया ?"

रानी के भी नेत्रों में जल भर आया। गला साफ कर वह कहने लगी, "भाई, वह दुष्ट मेरा धन-जेवर सबकुछ ले जा रहा था—न जाने क्यों ! उसके पश्चात् हाथ में छुरा लेकर मुझ पर झपटना चाहा। किन्तु हम वेश्याएँ उन चालों को व व दांव देनेवाली हैं ! ज्यों ही मेरे समीप आना चाहा, मैं प्रेम-भरी आँखों से उसे देख, उससे लिपट गयी। उसका हिंसात्मक भाव एक क्षण में ही मोम की भांति पिघल गया। मेरे नाट्य को उसने सच्चा ही समझा। पर मुझे तो उस हत्यारे को दण्ड देना था। अवसर पाकर उसके छुरे से ही उसको अपना रास्ता दिखा दिया। बताओ भाई, क्या यह मैंने बुरा किया ?"

नीमू से अब नहीं रहा गया। उसका प्रेम-रूपी जौहर फूट पड़ा। वह इतना कहकर कि "प्यारी बहिन, मेरे होते तेरा कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता।" पागल की भांति वहां से दौड़ पड़ा। रानी पुकारती रही—अपने को कोसती रही। पर वह तो…।

इजलास में भीड़ लग रही थी। न्यायाधीश ने फैसला पढा, "इस शहर की प्रसिद्ध वेश्या रानी ने एक मनुष्य का खून किया था—उसी मामले में उस पर मुकदमा दायर किया गया। सब बयानों से यही प्रतीत होता है कि आम राह पर लाश पड़ी मिली और पुलिस की जाँच-पड़ताल से वह छुरा भी, जिससे कि उसने खून किया था, मुलजिमा के घर में ही पडा मिला। इन सब बातों के अतिरिक्त मुलजिमा स्वयं खूनी होना स्वीकार करती है। रानी के लिए अपनी जान-माल की रक्षा करना निहायत जरूरी था; किन्तु बिना किन्हीं पूरे सबूतों के यह नहीं माना जा सकता कि मुलजिमा ने खून अपनी ही रक्षा के लिए किया था। कानून तो उसे खूनी ही ठहरायेगा। इसलिए अदालत मुलजिमा को…।"

इसी समय भीड़ में खलबली मची। एक आवाज आयी, "खूनी मैं हूँ ! मैंने उसका खून किया था।" इसके साथ ही नीमू न्यायाधीश के सम्मुख आ खड़ा हुआ। रानी नीमू को देखकर घबरायी और बड़बड़ाती रही, "यह झूठा है। खूनी मैं हूँ। वह खूनी नहीं है…"

न्यायाधीश ने शोरगुल बन्द करके पूछा, "अच्छा, तुम्हारा नाम ?"

"नीमू।"

"जात ?"

"भंगी।"

राज वकील ने शपथ दिलाकर प्रश्न किया, "इसके पहले कि हम तुम्हें खूनी ठहरायें, अपने पूरे सबूत पेश करो।"

सबसे पहले नीमू ने उस रात की घटना का वर्णन किया, जबकि उसका और रानी का मेल-जोल हुआ था। वह कह रहा था, "उस मेल-जोल के पश्चात् मैं

रानीजी के यहाँ अधिकतर आया-जाया करता था। वह मुझसे बहुत प्रेम करती थीं और मैं भी। मैं उनको बहिन समझता और वह मुझे भाई।

"जिस दिन मैंने उस मनुष्य का खून किया, उसी दिन मैं रानीजी के यहाँ अपने काम से निपटकर, मिलने जा रहा था। जब मैं उनके कमरे के समीप पहुँचा तो वहाँ मुझे चिल्लाहट की आवाज सुनायी दी। मैंने सब दरवाजों को बन्द पाया। परन्तु दरवाजों की सूराखों से मैं भलीभाँति देख सका कि एक मनुष्य हाथ में छुरा लिये हुए मेरी बहिन पर वार करना चाह रहा था।

"भाग्यवश एक खिड़की, जो कि बहुत ऊँची थी, खुली मिली। अपने प्राणों को हथेली पर रखकर मैं कमरे में कूद गया, और बड़ी कठिनाई का सामना करते हुए, मैंने उस मनुष्य के हाथ से छुरा छीनकर, उसके कलेजे में भोंक दिया।"

नीमू कुछ रुका। पर राज वकील तो उसके पीछे हाथ धोकर पड़े हुए थे। वे बोले, "इससे यह नहीं माना जा सकता कि खून तुम्हीं ने किया। पूरे सबूत पेश करो।"

वह फिर से अपने-आपको सँभालकर कहने लगा, "सुनते जाइए सरकार, उसके पश्चात् घबरायी हुई-सी बहिन मेरे पास आयीं और कहने लगीं, 'भाई, यह तुमने क्या किया ? मैं ही उसको सीधा कर लेती। किन्तु किसी बात की चिन्ता न करो। अब तुम यहाँ से चले जाओ···क्या सोच रहे हो नीमू ? आज तुम्हारी बहिन अपना फर्ज अदा करेगी। जाओ···भागो।'

"परन्तु मैं वहाँ उसी तरह चुपचाप खड़ा रहा। वह कब माननेवाली थी ! उन्होंने फिर समझाते हुए कहा, 'भाई, मैं अकेली हूँ। तुम्हारे नन्हे-नन्हे बाल-बच्चे हैं, स्त्री है और एक विवाह करने योग्य लड़की। तुम यहाँ ठहरकर सबको तबाह और बरबाद कर दोगे। इस छुरे को उस कोने में डाल दो। जाओ···दौड़ो।'

"बस, इसके पश्चात् मैं एक कायर की भाँति अपनी बहिन को काल के हाथों में सौंपकर चला गया। किन्तु बार-बार मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही थी। दो-दो ऋणों का बोझ मेरे लिए असह्य था। इसीलिए मैं अदालत में हाजिर हुआ। रानी बहिन सब झूठ बोलती हैं। वह खूनी नहीं हैं। वह देवी हैं।"

नीमू को हिरासत में ले लिया गया।

न्यायाधीश ने रानी की पीठ फटकारते हुए कहा, "रानी, वास्तव में तुम रानी हो !"

लेकिन रानी चिल्लाती रही, "नीमू सब झूठ बोल रहा है। उसने सब बातें बनाकर कही हैं। वह केवल मुझे बचाना चाहता है। उसका सब बयान झूठा है। खून मैंने किया है। न्याय कीजिए···"

किन्तु अब उसकी कौन सुनता है ?

['शान' छद्मनाम से लिखी आरम्भिक कहानी]

फलित ज्योतिष

श्री गणेशाय नमः

गुंजन मिलिन्दमुदितं चपलाश्लेपाऽतिमंजुलं किमपि
अधिकालिन्दीकुंजं मरकतपुञ्जं परञ्जयति।

वक्तव्य

एक चक्र चल रहा है। कहाँ, कब, किसने चलाया—नहीं मालूम। पर, चल रहा है। ज्योतिष का स्फोट और विकास इसी चक्र की एक घटना है। आकस्मिक कहिए, स्थिरीकृत कहिए, स्वतः समुद्भूत कहिए, जो इच्छा हो कहिए, पर ज्योतिष का स्फोट और विकास मानवजाति के इतिहास में एक अद्‌भुत बात है। ग्रीस, स्पार्टा, बेबिलोनिया, इजिप्ट—सभी प्राचीन देशों में ज्योतिषिक चमत्कार की कथाएँ आप पायेंगे। हमारा बूढ़ा देश तो इसमें सबका उस्ताद ही है!

जिस रूप में फलित ज्योतिष संस्कृत के ग्रन्थों में लिपिबद्ध है, वह समूचा भारतीय ही नहीं है। ग्रीस की बू उसमें आती है, स्पार्टा और बेबिलोन की चटक भी उसमें है और अरब की पालिश भी है। पर, यह ज्योतिष भारतीय ज्योतिष का विकृत आवरण है। अन्तस्तल में तो अथर्ववेद की वही सुधास्निग्ध धारा प्रवाहित है। तात्पर्य यह कि शुद्ध भारतीय ज्योतिष, वाह्य वैदेशिक आवरणों में ढक गया है। विद्वानों का काम उसका संशोधन करना है।

संशोधन करना तो कर्त्तव्य है अवश्य, पर पहली बात उसका परिचय पाना है। यह निबन्ध न तो संशोधन का है, न परिचय का। तो, इसकी जरूरत? जरूरत है। इस देश में ज्योतिष ने बड़ी दूर तक अधिकार जमाया है। खाना, सोना, उठना, बैठना, विवाह, जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म—सर्वत्र ज्योतिष की मुहर है। भारतीय जीवन ज्योतिष का आधार नहीं है, बल्कि ज्योतिष ही भारतीय जीवन का आधार है। इस सम्बन्ध को कायम रखना कर्त्तव्य है, ज्योतिष की रक्षा के लिए नहीं, भारतीय जीवन की रक्षा के लिए। संशोधन और परिचय तो ज्योतिष की रक्षा के लिए हैं।

वह होगा कि नहीं, कौन जानता है! विद्वानों ने संशोधन में परिश्रम किया है—सफलता भी प्राप्त की है, पर पूरी नहीं। उसका उद्योग होना चाहिए। करने का विचार भी है, पर—लीलामय की अभिलषित लीला के सामने मनुष्य का विचार कौन-सी चीज है! किस मनुष्य ने उस अद्‌भुत चक्र की परिचालना का

विचार किया था, जिसका स्वाभाविक परिणाम यह जगत् है ? यह तो केवल एक क्रीड़ाकारी की अभिलाषा है। हमारा विचार किस काम का ? हाँ, अगर उनका भी विचार हो, तो बात ही अलग है।

प्रस्तुत पुस्तक संग्रह मात्र है। शुभाशुभ निर्देश ही इसकी मुख्य बात है। फलित ज्योतिष की सभी तो नहीं, पर अधिकांश बातें इसमें हैं। जो अनावश्यक थीं, उन्हें छोड़ दिया। समय आज ही तो समाप्त नहीं हुआ जाता। पाठकों ने पसन्द किया, तो लीलामय को क्या पड़ी है कि बैठे-बैठे बनती हुई एक क्रीड़ा के एक आनन्द को यों ही जाने दें ! फिर देखा जायेगा ।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

ज्योतिष का सामान्य परिचय

असंख्य ज्योतिःपुंज से परिपूर्ण आकाश को किसने देखकर भगवान् की लीलामय विभूति से अपने को आश्चर्यमग्न नहीं कर दिया होगा ! इसी दिव्य ज्योति से परिपूर्ण आकाश का सम्बन्ध हमारे ज्योतिःशास्त्र से है। इसमें का प्रत्येक ज्वलन्त पिण्ड, इसमें का प्रत्येक परिवर्त्तनशील वर्ण, ज्योतिःशास्त्र के विद्यार्थी के निकट एक अध्ययन की सामग्री है। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में उन प्रत्येक ताराओं से हमारा कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहेगा। हमे उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य नक्षत्र और ग्रहों से ही काम चलाना पड़ेगा।

ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने बहुत छानबीन के पश्चात् आकाश के ताराओं के कई भेद किये हैं। इनमें से कुछ ऐसी ताराएँ है जो आकाश में स्थिर मालूम पड़ती हैं। यह बात नहीं है कि वे स्थिर हों, उनकी कुछ गति है अवश्य, पर वह इतनी अल्प है कि सैकड़ों वर्षों में भी इसका कुछ मान नहीं होता। इन्हें शास्त्रकारों ने 'नक्षत्र' कहा है। इस पुस्तक में मुख्यतः हमे 27 नक्षत्रों की ही आवश्यकता पड़ेगी। ये नक्षत्र क्रान्तिवृत्त के आसपास स्थित है। प्रत्येक नक्षत्र के चार-चार चरण होते हैं। इस प्रकार समस्त नक्षत्र-मण्डल 108 चरणों का हुआ। प्रत्येक नौ चरणों की अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है। इस प्रकार क्रान्तिवृत्त सत्ताईस नक्षत्रों और बारह राशियों में विभक्त है। इनके नाम तथा इनके विषय में विशेष स्पष्टीकरण आगे चलकर किया जायगा।

दूसरे प्रकार की ताराएँ गतिशील हैं। ध्यान से देखने से मालूम होता है कि ये एक नक्षत्र पर से धीरे-धीरे दूसरे नक्षत्र की ओर अग्रसर हो रही हैं। इन्हें 'ग्रह' कहते है। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह प्रत्येक नक्षत्र और प्रत्येक राशि पर जाता है। नक्षत्रों के नाम इस प्रकार हैं :

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरः, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वा भाद्रपद

उत्तरा भाद्रपदा और रेवती ।[1]

राशियों के नाम इस प्रकार है :

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुः, मकर, कुम्भ और मीन।

ग्रहों के नाम इस प्रकार है :

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु।

जिस मार्ग मे सूर्य घूमता है, उसे 'क्रान्तिवृत्त' कहते हैं। इस क्रान्तिवृत्त में 360 अंश हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि 27 नक्षत्र और 12 राशि इसी में स्थित हैं। हिसाब लगाकर देखा जाय तो प्रत्येक राशि 30 अंश की और प्रत्येक नक्षत्र 13 अंश 20 कला का होता है। सूर्य और चन्द्रमा के मुक्त अंशों का अन्तर जब 12 अंश होता है तो एक तिथि होती है। तिथि के आधे को 'करण' कहते हैं। 'भद्रा' जिसकी पूछताछ रोज होती रहती है, एक करण ही है। इसी तरह सूर्य और चन्द्रमा के अंशों के योग पर से 'योग' उत्पन्न होता है। योगों की संख्या भी सत्ताईस ही मान ली गयी है। योगों के नाम इस प्रकार हैं :

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतिपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति।

करणों मे दो भेद है—(1) चल, और (2) स्थिर।

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिक्, विष्टि—ये सात चर और शकुनि, चतुष्पाद्, नाग और किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण हैं। आगे चलकर हम एक चक्र देंगे जिससे करणों की स्थिति स्पष्ट हो जायेगी।

पंचांग का सामान्य परिचय

तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—ये ही ज्योतिषशास्त्र के प्रधान पाँच अंग हैं। प्रचलित पंचांगों मे तिथि के कोष्ठक के आगे वार का कोष्ठक और उसके आगे उसका मान दिया रहता है। मान 'दण्ड' और 'पल' मे दिया जाता है। ज्योतिषशास्त्र की परिभाषा के अनुसार दिन-रात मिलाकर 60 दण्ड होते है। प्रत्येक दण्ड मे 60 पल और पल मे 60 विपल होते है। इसी मान के अनुसार तिथियों का मान दिया रहता है। नक्षत्र, योग और करण के कोष्ठकों के सामने भी उनका मान दण्ड-पल में दिया रहता है।

बात साफ करने के लिए हम एक उदाहरण देते है। कल्पना कीजिए कि अष्टमी के कोष्ठक के सामने 15।16 लिखा है और नवमी के कोष्ठक के सामने 18।20,

1. इनके अतिरिक्त अभिजित् नामक एक और नक्षत्र है। वस्तुत यह कोई स्वतन्त्र नक्षत्र नहीं है, बल्कि उत्तराषाढा का अन्तिम चरण और श्रवण की आरम्भ की चार घड़ियाँ मिलाकर ही यह नक्षत्र संगठित किया गया है।

तो इसका अर्थ यह है कि प्रथम दिन अष्टमी 15 दण्ड 16 पल रही। इसके बाद उसी दिन नवमी का भोग शुरू हुआ और दूसरे दिन 18 दण्ड 20 पल तक नवमी ही रही। अर्थात् नवमी का समूचा भोग (60—15।16) + 18।20 = 63 दण्ड 4 पल हुआ। इसका मतलब यह है कि 60 दण्ड जो कि दिन-रात का मान है, उसमे से अष्टमी का भोग घटा दिया गया। यह नवमी का प्रथम दिन का भोग हुआ। दूसरे दिन का भोग पंचांग मे लिखा ही है। इन दोनों को जोड़ देने से नवमी का पूरा भोग मालूम हो गया। इसी प्रकार नक्षत्रों का भी ज्ञान कर लेना चाहिए।

ऊपर बताये हुए पाँच अंग ही पंचांग की मुख्य बात है। इस पुस्तक की अधिकांश बातें इन्हीं पाँचों से सम्बन्ध रखेंगी। इसके बाद पंचाग में कई बातें लिखी जाती हैं। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्र, राशि आदि बातें पंचांग मे साफ-साफ लिखी रहती हैं। दिनमान भी दण्ड-पल में लिखा रहता है। इसे 60 दण्ड में से घटा देने से रात्रिमान बन जाता है। परन्तु इन सारी बातों से कही अधिक महत्त्व की बात है ग्रहस्पष्ट। प्रायः सात-सात दिन के अन्तर पर के ग्रह स्पष्ट किये रहते है। अपने मन चाहे समय पर के ग्रह बना लेने के लिए उनकी दैनिक गति भी दी रहती है। आगे हम इसकी रीति भी स्पष्ट कर देंगे।

सूर्य जब मेष राशि पर आता है तो मेष संक्रान्ति होती है। फिर वह क्रमशः वृष, मिथुन, कर्क, सिंह और कन्या राशियों पर आता जाता है। एक राशि को तै करने मे सूर्य को 1 महीने का समय लग जाता है, अतः इन 6 राशियो को तै करने में भी उसे 6 महीने लग जाते हैं। इसे उत्तर गोल कहते है। इसी प्रकार तुला संक्रान्ति से लेकर 6 राशियाँ दक्षिण गोल कहलाती है। पंचांग मे यह लिखा रहता है।

इसी प्रकार जब सूर्य मकर पर आता है तो मकर संक्रान्ति शुरू होती है और मकर से लेकर 6 राशि तक उत्तरायण और कर्क से लेकर 6 राशि तक दक्षिणायन कहलाता है।

किसी-किसी पंचांग मे लग्न निकालकर लिखा रहता है, पर किसी-किसी में नही लिखा रहता। लग्न सारिणी तो प्रत्येक पंचांग में रहती है। उसी पर से लग्न साधन कर लेना चाहिए। लग्न बहुत उपयोगी वस्तु है। इस पुस्तक में यथास्थान उदाहरण देकर लग्न निकालने की विधि बतायी जायेगी। पंचांग के सम्बन्ध की इन सामान्य बातों की जानकारी हो जाने पर कोई भी मनुष्य बहुत आसानी से आगे बताये नियमों के अनुसार मुहूर्त्त जान सकता है।

तिथियों के बारे में

किसी भी शुभ मुहूर्त्त के लिए यह जरूरी है कि यह जान लिया जाय कि वह किस वार, किस तिथि, किस नक्षत्र, किस लग्न में करने को विहित है। पर प्रत्येक प्रकार के मुहूर्त्त के लिए उसकी अलग विशेषताएँ याद रखना सबके लिए कठिन है। अतः कुछ संज्ञाओं द्वारा तिथ्यादि का शुभाशुभ निर्देश कर दिया जाता है। अगला

कोष्ठक ध्यानपूर्वक देख लेने से कौन-सी तिथि शुभ है और कौन-सी नहीं, यह ज्ञान हो जायगा। इसी प्रकार तिथियों के देवताओं को देखने से, उस देवता-सम्बन्धी अनुष्ठान आदि उसी तिथि में करना चाहिए, यह भी स्पष्ट हो जायेगा।

तिथि	देवता	संज्ञा	फल
1	अग्नि	नंदा	शु.
2	ब्रह्मा	भद्रा	शु.
3	गौरी	जया	शु.
4	गणेश	रिक्ता	अशु.
5	सर्प	पूर्णा	शु.
6	कार्तिकेय	नं.	शु.
7	सूर्य	भ.	शु.
8	शिव	ज.	शु.
9	दुर्गा	रि.	अशु.
10	यम	पू.	शु.
11	विश्वेदेव	नं.	शु.
12	विष्णु	भ.	शु.
13	काम	ज.	शु.
14	ईश	रि.	अशु.
15	चन्द्र	पू.	शु.
अ. मा. उ.	पितर	पू.	अशु.

करणों के बारे में

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्ध से लेकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के पूर्वार्ध तक वव आदि 7 करणों की आठ आवृत्ति होती हैं। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमा के पूर्वार्ध में चतुष्पात्, उत्तरार्ध में नाग और शुक्लपक्ष के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न करण होता है।

नक्षत्रों के बारे में

यह पहले ही बताया गया है कि प्रत्येक नक्षत्र चार चरणों में विभक्त किया गया है। सुभीते के लिए प्रत्येक चरण का नाम भी रख दिया गया है जो चक्र से स्पष्ट होगा। मुहूर्त बताने के लिए नक्षत्रों की बड़ी आवश्यकता होती है। उन्हें पृथक्-पृथक् याद रखना कठिन है, अतः शास्त्रकारों ने उनकी संज्ञा, प्रकृति आदि का वर्गीकरण किया है। निम्नांकित कोष्ठक इस बात के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। जिज्ञासुओं को इसे ध्यान में रखना चाहिए।

नक्षत्र	चरण	देवता	शुभाशुभ	जाति	संज्ञा	मुख
अश्विनी	चू चे चो ला	अश्वि.	शुभ	वैश्य	लघु, क्षिप्र	तिर्यक्
भर.	ली लू ले लो	यम	नाशक	चाण्डाल	क्रूर, उग्र	अधः
कृ.	अ ई ऊ ए	अग्नि	अशुभ	ब्राह्मण	मिश्र, साधारण	"
रो.	ओ वा वी वू	ब्रह्मा	शुभ	शूद्र	ध्रुव, स्थिर	ऊर्ध्व
मृ.	वे वो का की	चन्द्र	शुभ	कृषक	मृदु, मैत्र	तिर्यक्
आर्द्रा	कू घ ङ छ	शिव	अशुभ	क्रूर जाति	तीक्ष्ण, दारुण	ऊर्ध्व
पुन.	के को हा ही	अदिति	शुभ	वैश्य	चर, चल	तिर्यक्
पुष्य	हू हे हो डा	गुरु	शुभ	क्षत्रिय	लघु, क्षिप्र	ऊर्ध्व
आश्ले.	डी डू डे डो	सर्प	अशुभ	चाण्डाल	दारुण, तीव्र	अधः
मघा	मा मी मू मे	पितर	शोकद	शूद्र	क्रूर, उग्र	"
पू. फा.	मो टा टी टू	भग	अशुभ	ब्राह्मण	क्रूर, उग्र	"
उ. फा.	टे टो पा पी	अर्यमा	शुभ	क्षत्रिय	ध्रुव, स्थिर	ऊर्ध्व
हस्त	पु षा ण ठ	सूर्य	शुभ	वैश्य	क्षिप्र, लघु	तिर्यक्
चित्रा	पे पो रा री	त्वष्टा	शुभ	कृषक	मृदु, मैत्र	"
स्वाति	रू रे रो ता	वायु	शुभ	क्रूर जाति	चर, चल	"
विशा.	ती तू ते तो	इन्द्राग्नी	अशुभ	चाण्डाल	मिश्र, साधारण	अधः

नक्षत्र	चरण	देवता	शुभाशुभ	जाति	संज्ञा	मुख
अनु.	ना नी नू ने	मित्र	शुभ	शूद्र	मृदु, मैत्र	तिर्यक
ज्ये.	नो या यी यू	इन्द्र	शुभ	कृषक	दारुण, तीक्ष्ण	"
मू.	ये यो भा भी	राक्षस	क्षय	क्रूर	दारुण, तीक्ष्ण	अध:
पू. षा.	भू ध फ ढ	जल	धन हानि	ब्राह्मण	क्रूर, उग्र	ऊर्ध्व
उ. षा.	भे भो जा जी	विश्वेदेव, विष्णु	हानि	क्षत्रिय	ध्रुव, स्थिर	"
श्र.	खी खू खे खो	वासव	वृद्धि	चाण्डाल	चर, चल	"
ध.	गा गी गू गे	वरुण	कन्या	कृषक	" "	"
शत.	गो सा सी सू	अजैक पाद	शुभ	क्रूर जात	" "	"
पू. भा	से सो दा दी	अजैक पाद	अशुभ	ब्राह्मण	क्रूर, उग्र	अध:
उ. भा.	दू थ झ ञ	अहिर्बुध्न्य	शुभ	क्षत्रिय	ध्रुव, स्थिर	ऊर्ध्व
रेवती	दे दो चा ची	पूषा	शुभ	शूद्र	मृदु, मैत्र	तिर्यक

नक्षत्र की संज्ञाओं का प्रयोजन

नक्षत्रों की जो संज्ञाएँ इस कोष्ठक में दी गयी हैं, उनका प्रयोजन यह है कि संज्ञाओं के अर्थ के अनुसार कार्य उन्हीं नक्षत्रों में होने चाहिए। उदाहरणार्थ मकान बनाना स्थिर कार्य है। मकान जितना ही स्थिर या टिकाऊ हो, उतना ही अच्छा। इसलिए स्थिर संज्ञक नक्षत्र में ही मकान बनाना ठीक है। इसी प्रकार अन्य कार्य के लिए भी समझ लेना चाहिए।

अन्य प्रकार की संज्ञाएँ

नक्षत्रों की संज्ञाएँ और भी अनेक प्रकार की हैं। उदाहरणार्थ, अन्धाक्ष, चपलाक्ष, काण और सुलोचन नाम की संज्ञाएँ भी हैं। इनके जानने का प्रकार यह है। रोहिणी से नक्षत्रों की चार-चार संख्याएँ करके 7 आवृत्ति कर जाइए और उन्हें क्रमश. अन्धाक्ष, चपलाक्ष, काण और सुलोचन समझते जाइए। इन संज्ञाओं का प्रयोजन केवल इतना ही है कि यदि कोई वस्तु भूल गयी हो तो उसके जानने के लिए यह जानना जरूरी होता है कि वह वस्तु किस नक्षत्र में खो गयी है और वह मिलेगी या नहीं। निम्नांकित चक्र इस बात को स्पष्ट कर देगा।

अन्धाक्ष	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	वि.	पू. षा.	ध.	रे.	नष्ट लाभ
चपलाक्ष	मृग.	आ.	हस्त	अनु.	उ. षा.	श.	अ.	प्रयत्न से लाभ
काण	आर्द्रा	म.	चित्रा	ज्येष्ठा	अ.	पू. भा	भ.	दूर का श्रवण
सुलोचन	पुन.	पू. फा.	स्वाति	मू.	श्र.	उ. भा	कृ.	अप्राप्ति

इस प्रकार नक्षत्रों की और भी कितनी ही संज्ञाएँ भिन्न-भिन्न प्रयोजन के लिए हैं। पर उनका प्रयोजन अभी आगे चलकर होगा। यथास्थान हम उनकी चर्चा करेंगे।

राशियों के बारे में

नक्षत्रों के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह केवल मुहूर्त-ज्ञान के लिए ही अधिक उपयोगी है। किन्तु एक अत्यावश्यक बात राशि और ग्रहों के स्वरूप की है। जन्म-पत्र, वर्षफल, मासफल, [illegible] आदि अनेक बातों में राशियों के स्वरूप आदि की आवश्यकता होती है। इसीलिए उपयोगी समझकर उनका यह वर्णन दिया जाता है। राशि-सम्बन्धी इन बातों का प्रयोजन आगे चलकर स्पष्ट होगा।

राशि	लिंग	संज्ञा	संज्ञा	दिक्	संग	अंग	पद	वर्ण	स्वभाव	शरीर	स्थान	शब्द	समय	कान्ति	स्पर्श	सम/ विषम	जाति	मास	उदय
मेष	पुरुष	चर	अग्नि	पूर्व	अल्प	दृढ़	4	पीत	उग्र	पित्त	पर्वत	अति	दिन	रुक्ष	गर्म	विषम	क्षत्रिय	वैशाख	पृष्ठ
वृष	स्त्री	स्थिर	क्षिति	दक्षिण	मध्य	श्लथ	4	श्वेत	शीतल	वात	सुन्दर	अति	रात्रि	,,	शुभ	सम	वैश्य	जेठ	पृ.
मिथुन	पु.	द्विस्वभाव	वायु	प.	मध्य	,,	2	हरित	उग्र	,,	वन	दीर्घ	दि.	चिक्कण	उष्ण	वि.	शूद्र	आषा.	शीर्ष
कर्क	स्त्री	च.	जल	उत्तर	बहु	,,	बहु	पाटल	मृदु	कफ	जल	हीन	रा.	,,	शुभ	स.	विप्र	श्रा.	पृ.
सिंह	पु.	स्थि.	अग्नि	पू.	अल्प	दृढ़	4	पीतरक्त	उग्र	पित्त	शैल	दीर्घ	दि.	रुक्ष	उष्ण	वि.	क्ष.	भाद्र.	शी.
कन्या	स्त्री	द्वि.	क्षिति	द.	अल्प	श्लथ	2	पिंगल	शीत	वात	सुस्थान	अर्धा	रा.	,,	सौम्य	स.	वै.	आश्वि.	शी.
तुला	पु.	च.	वायु	प.	अल्प	,,	2	चित्र	उग्र	,,	वन	०	दि.	चिक्कण	उष्ण	वि.	शू.	कार्तिक	शी.
वृश्चि.	स्त्री	स्थि.	जल	उ.	बहु	,,	बहु	शुक्ल	,,	कफ	जल	०	रा.	,,	सौम्य	स.	वि.	अग्र.	शी.
धनु	पु.	द्वि.	अग्नि	पू.	अल्प	दृढ़	2	पीतरक्त	,,	पित्त	शैल	अति	दि.	स्वर्ण	उष्ण	वि.	क्ष.	पौष	पृ.
मकर	स्त्री	च.	क्षिति	द.	अल्प	श्लथ	4	पिंगल	शीत	वात	सुस्थान	आर्ध	रा.	रुक्ष	सौम्य	स.	वै.	माघ	,,
कुम्भ	पु.	स्थि.	वायु	प.	मध्य	,,	०	कर्बुर	उग्र	मिश्र	वन	,,	दि.	चिक्कण	उष्ण	वि.	शू.	फागु.	शी.
मीन	स्त्री	द्वि.	जल	उ.	बहु	,,	०	पिंगल	स्थिर	कफ	जल	,,	रा.	,,	सौम्य	स.	वि.	चैत्र	पृ.

ग्रहों के बारे में

पहले ही बताया जा चुका है कि ग्रह नौ हैं। इनमें चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र—ये चार शुभ ग्रह और बाकी क्रूर ग्रह हैं। राशियों की तरह ग्रहों का भी स्वरूप आदि निश्चय किया गया है। वह निम्नांकित कोष्ठक से स्पष्ट होगा।

ग्रह	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि	राहु	केतु
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	शूद्र	विप्र	विप्र	शूद्र, निषाद	अन्त्यज	अन्त्यज
लिंग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	क्लीव	पुरुष	स्त्री	क्लीव	पुरुष	पुरुष
दिक्	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ईशान	अग्नि	पश्चिम	नैर्ऋत्य	नैर्ऋत्य
आकृति	चतुष्कोण	स्थूल	चतुष्कोण	गोल	गोल	मनुष्य सम	दीर्घ	मस्तक	सर्पाकार
स्वर्णादि	स्वर्ण	रौप्य	सुवर्ण	कांस्य	सुवर्ण	रौप्य, हीरा	लौह	लौह, अस्थि	लौह
धातुद्रव्य	ताम्र	मणि	स्वर्ण	पित्तल	रौप्य	मुक्ता	आदि	०	०
समय	दोपहर	अपराह्न	मध्याह्न	प्रभात	प्रातः	अपराह्न	सन्ध्या	सन्ध्या	०
अधीन	चतुष्पद	सर्प	चतुष्पद	नर	द्विपद्	द्विपद्	उत्करम्	अपद	अपद
स्वभाव	क्रूर	तपस्वी	कर्मकार	शुभ	शुभ	शुभ	क्रूर	क्रूर	क्रूर
स्थान	पशुभूमि	जलभूमि	दग्धभू	ऊंची जगह	गांव	भीगी जगह	वायु	—	—
विहार	देवालय	—	—	—	धनागार	शयनागार	नीची भूमि	—	—
शरीर	अस्थि	रक्त	मज्जा	त्वक्	मेद	शुक्र	स्नायु	—	—

ग्रह	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि	राहु	केतु
धातु	पित्त	कफ, वात	पित्त, रक्त	त्रिधातु	त्रिधातु	कफ	वायु	वायु	वायु
रस	तिक्त	लवण	कटु	सर्वरस	मधुर	अम्ल	कषाय	कषाय	कषाय
वय	वृद्ध	युवा	युवा	बालक	वृद्ध	युवा	जरा	वृद्ध	वृद्ध
वर्ण	पाटल	गौर	ताम्र	नील, हरित	पीत	श्वेत	नील	धूम्र	धूम्र
गुण	सत्त्व	सत्त्व	तम	रजः	सत्त्व	रजः	तमः	—	—
अधिष्ठाता	मूलवस्तु	गेह	रक्त वस्त्र	श्मशान	मनुष्यादि	नर	भंजि	तत्त्व	—
प्रकृति	स्थिर	स्थिर	उग्र	सौम्य	सौम्य	सौम्य	उग्र	—	—
स्वामी	अग्नि	जल	कार्तिकेय	विष्णु	इन्द्र	शची	ब्रह्मा	यमः	—
गृह	5	4	1 । 8	3 । 6	9 । 12	2 । 7	10 । 11	6	12
गुण	सत्त्व	सत्त्व	तमः	रज	सत्त्व	रजः	तमः	तमः	तमः
वस्त्र	स्थूल	नूतन	दग्ध	आर्द्र	कृष्ण	स्थूल	जीर्ण	जीर्ण	जीर्ण

ग्रहों का उच्च-नीच

वैसे तो गणित की दृष्टि से ग्रहों का उच्च-नीच सदा बदलता रहता है, पर फलादेश के लिए ज्योतिषियों ने इसकी एक निश्चित संज्ञा मान ली है। जैसे सूर्य का मेष राशि में 10 अंक परमोच्च और तुला में दश अंश परम नीच स्थान है। यह संज्ञा केवल फल कहने के लिए है। वस्तुत: मिथुन का सूर्य गणित की दृष्टि से आजकल उच्च का है। आजकल कितने ही प्रकाण्ड ज्योतिषी इसी गणितागत उच्च को तथ्य मानते हैं। अशेष शास्त्राध्यापक पं. रामयत्न ओझा (प्रधान ज्योतिषाध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी) इस मत के अग्रगण्य पोषक हैं। जो हो, हम यहाँ प्रचलित संज्ञाओं को नीचे के कोष्ठक में दे देते हैं।

ग्रह	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	बृ.	शुक्र	शनि	राहु	केतु
उच्च	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला	मिथुन	धनु
राशि	10	3	28	15	5	27	20	15	15
नीच	तुला	वृ.	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष		
राशि	10	3	28	15	5	27	20		

तिथि, नक्षत्र, राशि और ग्रहों के बारे इतनी जानकारी रखने के बाद मनुष्य साधारणतया मुहूर्त्त का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अगले प्रकरण मे हम मुहूर्त बताने के सरल और संक्षिप्त उपायों को लिखेंगे। इस बात का ध्यान सदा रखा जायेगा कि अनावश्यक वाग्-विस्तार न होने पाये और आवश्यक बात छूटने भी न पाये।

मुहूर्त्त प्रकरण

शास्त्रकारों ने प्रत्येक शुभाशुभ कार्य के लिए अलग-अलग मुहूर्त्त निश्चित किये हैं। उनमें तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न इन चार बातों की ही प्रधानता रहती है। आगे चलकर हम एक-एक करके सभी आवश्यक मुहूर्त्तों को बतायेंगे। पर आरम्भ में कुछ ऐसी बातों की जानकारी आवश्यक है, जिनकी जरूरत प्राय: सबमें पड़ती है। उन बातों को बार-बार नहीं लिखा जायेगा।

चन्द्रमा की राशियों का फल

पंचांग में जो नक्षत्र लिखा रहता है, वह चन्द्रमा का नक्षत्र कहलाता है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा जितनी देर तक किसी नक्षत्र पर भोगता है, उतना ही उक्त

नक्षत्र का मान पत्रे में लिखा रहता है। सूर्य किस नक्षत्र में है, यह भी पत्रे की पंक्ति मे लिखा रहता है। चूंकि सूर्य करीब-करीब एक पक्ष तक नक्षत्र का भोग करता है, अतः नित्य उसके लिखने की प्रथा नही है। पत्रा मे चन्द्रमा का राशि-संचार भी लिखा रहता है। इसका अर्थ यह है कि चन्द्रमा अमुक राशि पर अमुक दिन के अमुक समय में गया है। चन्द्रमा की राशि न भी लिखी हो तो भी नक्षत्रों के हिसाब से राशि का ज्ञान किया जा सकता है। चन्द्रमा की राशि पर से कई आवश्यक कार्य किये जाते है।

चन्द्रमा की दिशा

इन्ही राशियो पर से चन्द्रमा की दिशा का ज्ञान किया जाता है। किस राशि पर का चन्द्रमा किस दिशा का होता है, यह सहज ही में ज्ञान हो सकता है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर—यही दिशाओं का क्रम है। चन्द्रमा एक-एक राशि को इसी क्रम से तै करता है। अर्थात् मेष—पूर्व, वृष—दक्षिण, मिथुन—पश्चिम और कर्क—उत्तर; फिर सिंह—पूर्व, कन्या—दक्षिण, इत्यादि। यह बात निम्नांकित चक्र से स्पष्ट हो जायेगी।

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
मेष	वृष	मिथुन	कर्क
सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक
धनु	मकर	कुम्भ	मीन

इसका फल

प्रत्येक शुभ कार्य में सम्मुख की दिशा का तथा दाहिनी ओर का चन्द्रमा शुभ और पीछे की दिशा का तथा बायी ओर का अशुभ होता है।

चन्द्र-राशियों का एक और प्रयोजन

जिस नक्षत्र मे मनुष्य का जन्म होता है, उसे जन्म-नक्षत्र तथा जिस राशि का वह नक्षत्र होता है, उसे जन्म-राशि कहते हैं। प्रत्येक कार्य में यह देख लिया जाता है कि जन्मराशि से अभीष्ट समय की राशि कौन-सी पडती है। जैसे जन्मराशि अगर कर्क हो और अभीष्ट समय की राशि मकर हो, तो कर्क से मकर सप्तम राशि होगी। प्राय. प्रत्येक कार्य मे चतुर्थ, अष्टम और बारहवें चन्द्रमा खराब और बाकी अच्छे समझे जाते हैं।

सामान्य निषिद्ध बातें

बिना कहे हुए भी समझ लेना चाहिए कि भद्रा, व्यतिपात, शूल, गण्डप्रभृति दुर्योग, पिता की मृत्यु का दिन, जन्मदिन और जन्मनक्षत्र, कुल का निषिद्ध दिन, छींक

आदि से बाधा प्राप्त दिन आदि का किसी भी शुभकार्य में त्याग कर देना चाहिए।

मुहूर्त अवतरणिका

बालक के जन्म से लेकर वृद्धावस्था पर्यन्त जितने भी शुभ कर्म होते हैं, आगे चल-कर एक-एक करके सबके मुहूर्त हम लिखेंगे। यहाँ पर बालक का जन्म माता के ऋतुमती होने पर निर्भर है और ऋतुकाल के लिए रजोदर्शन का शुभाशुभ ज्ञान जरूरी है। अतः रजोदर्शन से ही हम आरम्भ कर रहे हैं।

पहली बार के रजोदर्शन के बारे में

वैशाख, फाल्गुन, माघ, अगहन, सावन और क्वार के शुक्लपक्ष में स्त्री ने जब श्वेत वस्त्र धारण किया हो तो इस प्रथम बार के रजोदर्शन को शुभ कहा गया है।

1।2।3।5।7।10।11।12।13।15 तिथियाँ श्रेष्ठ हैं। सोम, बुध, गुरु, शुक्र—ये वार श्रेष्ठ हैं।

श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, मृगशिरः, रेवती, चित्रा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, स्वाति—ये श्रेष्ठ नक्षत्र है। मूल, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, कृत्तिका—ये मध्यम नक्षत्र है। बाकी खराब।

वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला और मीन—ये लग्न शुभ हैं।

इसमें ग्रह संख्या का विचार भी किया जाता है। विवाह के लिए जो ग्रह संख्या बतायी गयी है, वही इसके लिए भी समझ लेनी चाहिए। यह संख्या विवाह-प्रकरण में बतायी जायेगी।

द्वादशी, रिक्ता तिथि, भद्रा, निद्रा की अवस्था, व्यतिपात, ग्रहण, वैधृति, दूसरे के घर में, पिता के घर में, राह में, कुदेश में, काला वस्त्र पहने हुए रजोदर्शन अशुभ है। इसके लिए शान्ति करनी चाहिए।

ऋतुमती के स्नान का मुहूर्त

हस्त, स्वाति, अश्विनी, मृगशिरः, अनुराधा, धनिष्ठा, रोहिणी, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा—इन नक्षत्रों तथा शुभ तिथियों, शुभ वारों और शुभ लग्नों में स्नान करना चाहिए।

ऋतुमती स्त्री चौथे दिन तो पति-स्पृश्य हो जाती है, पर देव-कार्य, पितृ-कार्य में पाँचवें दिन शुद्ध होती है।

गर्भाधान का मुहूर्त

गर्भाधान के लिए तीनों प्रकार का गण्डान्त वर्जित है। जन्मनक्षत्र, मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती, ग्रहण का दिन, दिवा, परिघ, व्यतिपात, वैधृति, श्राद्धदिन, उत्पाता-हत नक्षत्र त्याज्य हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई बातें निन्द्य है; जैसे, जन्मराशि से षष्ठ या अष्टम में पापग्रह का होना, भद्रा, अमावस्या, 4।8।9।14 तिथियाँ,

मंगल और शनिवार, रजोदर्शन की चौथी रात—ये सब गर्भाधान के लिए अशुभ हैं।

तीनों उत्तरा, मूल हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाति, शतभिषा, धनिष्ठा इन नक्षत्रों में लग्न से, 1।4।5।7।9।10 इन गृहों में शुभग्रह के रहने से और 3।6। 11 इनमें पापग्रहों के रहने से उत्तम होता है। सू. मं. गु. इन वारों में, विषमराशि के नवांश में चन्द्रमा हो, तो युग्म राशि में गर्भाधान श्रेष्ठ है। चित्रा, पुष्य, अश्विनी नक्षत्र मध्यम हैं।

गण्डान्त तीन प्रकार के है—तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगण्डान्त और लग्नगण्डान्त।

तिथिगण्डान्त : नन्दा (1,6,11) तिथियों की आदि की एक घड़ी और पूर्णा (5, 10,15) तिथियों की अन्त की एक घड़ी गण्डान्त होती है।

नक्षत्रगण्डान्त : अश्विनी, मघा के आदि की तीन घड़ियाँ, आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती के अन्त की 5 घड़ियाँ तथा सारा मूल नक्षत्र नक्षत्रगण्ड कहा गया है।

लग्नगण्डान्त : कर्क, मीन और वृश्चिक के अन्तिम 30 पल और धनु, मेष और सिंह के आदि 30 पल गण्ड हैं।

पुंसवन और सीमन्त का मुहूर्त

गर्भ से द्वितीय और तृतीय मास मे पुंसवन तथा षष्ठ, अष्टम अथवा चतुर्थ मास मे मासाधिपति के बलवान होने पर सीमन्तसंस्कार करना चाहिए। इसमे शुक्र, वृहस्पति के वृद्धत्वादि दोष का बिल्कुल विचार नही करना चाहिए।

श्रेष्ठ वार : रवि, मंगल और वृहस्पति। किसी-किसी के मत से बुध, सोम और शुक्र। पर. तारा-शुद्धि आवश्यक है।

श्रेष्ठ नक्षत्र : मृ., पुष्य, अनु., ह., रे., रो., शत.।

श्रेष्ठ तिथियाँ : 1।2।3।5।7।10।11।13। कृष्णपक्ष में केवल दशमी तक की तिथियाँ ही लेनी चाहिए।

लग्न शुद्धि : पुरुष राशि का लग्न और उसी का नवमांश श्रेष्ठ है। लग्न से 1।4।5।7।9।10 में शुभग्रह तथा 3।6।11 मे पापग्रह का रहना श्रेष्ठ है। 5।8।1 में कोई भी पापग्रह नही होना चाहिए।

जात कर्म का कृत्य

बालक का जन्म सुनकर पिता को सचैल स्नान करना चाहिए।

स्तनपान का मुहूर्त

अश्वि., रो., पुन., पुष्य., उ. फा., हस्त, चित्रा, अनु., उषा., श्र., ध., श., उ. भा., रेवती तथा शुभ वार और तिथियाँ प्रशस्त हैं।

सूतिका के स्नान का मुहूर्त

रे., उत्तरा 3, रो., मृ., हस्त, स्वाति, अश्वि., अनु. ये नक्षत्र तथा 1।2।3।5।7।

10।11।13।15 ये तिथियाँ, रवि, गुरु, मं. वार को सूतिका को स्नान कराना चाहिए। लग्न से पंचम स्थान में कोई ग्रह नहीं होना चाहिए। लग्न पर शुभ ग्रहों का रहना और देखना शुभ है।

ताराएँ नौ हैं। जन्म नक्षत्र से इष्ट नक्षत्र तक गिन जाइए। उनके नाम है क्रमश.—1. जन्म, 2. सम्वत्, 3. विपत्, 4. क्षेम, 5. प्रत्यरि, 6. साधक, 7. वध, 8. मित्र, 9. परममित्र। इनका फल नाम के अर्थ के समान ही है। जन्मनक्षत्र से इष्ट नक्षत्र तक इनकी तीन आवृत्ति होती है।

दोलारोहण का मुहूर्त्त

बालक के जन्मदिन से 10।12।16।18।32 इन दिनों में शुभ ग्रहों के वासर को; मृ., रे. चि. अनु. हस्त. अश्वि. पुष्य, अभि., रो. इन नक्षत्रों में रिक्तता (4।9।14) को छोड़कर अन्य तिथियों में उसे पालने पर झुलाना चाहिए।

लग्नशुद्धि : लग्न में शुभग्रह हों या उनकी दृष्टि हो। लग्न से 1।4।5।6।7।9। 10।11 में शुभग्रह हो और 3।6।11 में पापग्रह हों तो श्रेष्ठ है।

पालने पर झुलाने के लिए जहाँ इन सब बातों पर ध्यान रखने की जरूरत है, वहाँ एक और बात का भी ध्यान रखना चाहिए। पहले ऊपर कहे अनुसार शुभ नक्षत्रों में से किसी एक को चुन लेना चाहिए। फिर यह देखना चाहिए कि उस दिन सूर्य किस नक्षत्र पर है। सूर्य के नक्षत्र पर से अभीष्ट नक्षत्र तक गिन जाना चाहिए, फिर निम्नांकित चक्र के अनुसार देखना चाहिए। फल शुभ हो तो ठीक है, नहीं तो फिर दूसरे नक्षत्र को खोजना चाहिए।

सूर्य के नक्षत्र से चान्द्र नक्षत्र यदि

	5 के भीतर हों	तो	फल	नैरुज्य	
और उसके बाद के	5	"	"	"	मरण
" " "	5	"	"	"	क्रूरता
" " "	5	"	"	"	व्याधि
" " "	7	"	"	"	सौख्य होता है।

बालक को भूमि पर बैठाने का मुहूर्त्त

जन्म से पाँचवें महीने पृथ्वी और वराह भगवान् की पूजा करके उत्तरा-3, रोहिणी, मृ., ज्ये. अनु., अश्वि, हस्त, पुष्य, अभि., इन नक्षत्रों में बालक के कटि में सूत्र बाँधकर भूमि पर बैठाना चाहिए। इसी समय बालक के सामने सोना, पुस्तक आदि विविध द्रव्य रख देना चाहिए। बालक जिसे उठा ले, समझना चाहिए कि भविष्य में बालक की जीविका उसी से चलेगी।

घर से निकालने का मुहूर्त्त

जन्म से चौथे महीने यात्रा के लिए बताये गये मुहूर्त्त के अनुसार बालक को घर से निकालना श्रेष्ठ है।

नामकरण का मुहूर्त

सूतक समाप्त होते ही खानदानी आचार के अनुसार नामकरण होना चाहिए। बारहवें दिन नामकरण होना चाहिए। यह अनेक आचार्यों की राय है। दशम, षोड्श, अष्टादश, बीसवाँ आदि कई दिन बताये गये हैं। मुहूर्त के लिए—

श्रेष्ठ वार : चं., बुध., बृह., शुक्र।
श्रेष्ठ नक्षत्र : श., मृ., रे., चि., अनु. उत्तरा 3, रो., ह., अश्वि, पुष्य, अभि., स्वा., पुन., श्र., ध. ये नक्षत्रों में शुभ हैं।
श्रेष्ठ तिथियाँ : 1।2।3।5।7।10।11।13 ये तिथियों में श्रेष्ठ हैं।
शुभ लग्न : 2।5।8।11 ये लग्न शुभ हैं।
लग्नशुद्धि : लग्न से 1।4।5।7।9।10 में शुभग्रह एवं
लग्न से 3।6।11 में पापग्रह हो तो उत्तम।

बालक के दाँत जमने का फल

जन्म से महीने	फल
1	स्वयं का नाश
2	छोटे भाई का नाश
3	बहन का नाश
4	माँ का नाश
5	जेठे भाई का नाश
6	सुन्दर भाग
7	पिता से सुख
8	पुष्टता
9	लक्ष्मी
10	सुख
11	सुख
12	धन

अन्नप्राशन का मुहूर्त

बालक को छठे महीने से लेकर सम महीनों (जैसे आठवाँ, दसवाँ, इत्यादि) में तथा बालिकाओं को पाँचवें महीने से लेकर विषम महीनों में अन्न खिलाना चाहिए। श्रेष्ठ नक्षत्र—रो., उत्तरा-3, मृ., रे., चि., अनु., ह., पुष्य., अश्वि., अभि., पुन., स्वा., श्र., ध., श. ये शुभ हैं।

श्रेष्ठ तिथियाँ : 2।3।5।7।10।13।15 इन तिथियों में शुभ।
श्रेष्ठ वार : चं, बु., बृ., शु.।
लग्न : 4।8।12 को छोड़कर अन्य लग्न श्रेष्ठ हैं।
लग्नशुद्धि : लग्न से 1।2।4।5।7।9 में शुभग्रह तथा 2।6।11 में पापग्रह हों और दशम लग्न शुद्ध हो तो श्रेष्ठ है। 1।6।8।10 इन स्थानों में चन्द्रमा का न रहना श्रेष्ठ है।

कर्णवेध का मुहूर्त

कर्णवेध जन्म से बारहवें या सोलहवें दिन या उसके बाद छठे या 8वें महीने और उसके बाद विषम वर्षों में होना चाहिए। चैत्र, पौष, अमावस्या, रिक्ता तिथि

(4।9।14), जन्ममास, चतुर्मासा, समवर्ष और जन्म-तारा को छोड़कर कर्णवेध निम्नांकित मुहूर्त्तों के मुताबिक होना चाहिए।

श्रेष्ठ तिथियाँ : 1।2।3।5।7।8।9।10।12।13।15 तिथियाँ और कृष्णपक्ष में केवल दशमी की ही तिथियाँ।

श्रेष्ठ वार : चं., बु., बृ., शु.।

श्रेष्ठ नक्षत्र : पुन., अश्वि., ह., पुष्य, अभि., मृ., चि., अनु., रे., श्र., ध।

शुभलग्न : 2।5।8।11। अष्टम स्थान में कोई ग्रह न होना चाहिए।

लग्नशुद्धि : लग्न में वृहस्पति हो, लग्न से 1।3।4।5।7।9।10।11 में शुभ-ग्रह तथा 3।6।11 में पापग्रह हो तो अच्छा।

चौल-कर्म (बाल उतारने) का मुहूर्त्त

तीन वर्ष के बाद विषम वर्ष में बालक का चौल-कर्म होना चाहिए। 'मनुस्मृति' में प्रथम वर्ष में भी यह संस्कार करना श्रेष्ठ बताया गया है। महीना चैत्र का न हो और सूर्य दक्षिणायन का न हो तो उत्तम।

श्रेष्ठ वार : चं., बु., बृ., शु.।

श्रेष्ठ नक्षत्र : ज्ये., मृ., रे., चि., ह., अश्वि., पुष्य., स्वा., पुन., श्र., ध., श.।

श्रेष्ठ तिथियाँ : 2।3।5।7।10।11।13

शुभ लग्न : 2।3।4।6।7।9।12

लग्नशुद्धि : लग्न से 1।2।4।5।7।9।10वें स्थानों में शुभग्रह 3।6।11 में पापग्रह हों तो उत्तम। 6।8।12वें स्थानों में चन्द्र-शुक्र न हो तो अत्युत्तम।

अक्षरारम्भ का मुहूर्त्त

पाँचवें वर्ष में रवि जब उत्तरायण के हों तब गणेशादि पूजन के उपरान्त देवनागरी अक्षरों से बालक का अक्षरारम्भ करना चाहिए।

श्रेष्ठ तिथियाँ—2।3।5।10।11।12।

श्रेष्ठ वार : चं., बु., गु., शु., शुक्लपक्ष।

श्रेष्ठ लग्न : 2।1।6।9।12

विद्यारम्भ का मुहूर्त्त

श्रेष्ठ वार : सू. बु., बृ., शु.।

श्रेष्ठ नक्षत्र : अ., मृ., आ., पुन., पु., आश्ले., पू.फा., ह., चि., रे., स्वा., मू., पूषा., श्र., ध., श., पू.भा., अनु., रोहिणी, तीनों उत्तरा।

श्रेष्ठ तिथियाँ : 2।3।5।6।10।11।12 शुक्ल पक्ष में, पंचमी तक कृष्ण पक्ष।

श्रेष्ठ लग्न : 2।3।6।9।12

लग्नशुद्धि : लग्न से अष्टम में कोई ग्रह न हो, 1।2।4।5।7।9।10 में शुभ-ग्रह हों और 3।6।11 में पापग्रह हो तो अच्छा।

व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) का मुहूर्त

व्रतबन्ध के लिए ब्रह्मचारी की जन्मराशि से और विवाह के लिए कन्या की जन्म-राशि से गुरु का बलाबल देखा जाता है। वह इस चक्र से स्पष्ट होगा।

श्रेष्ठ	2।5।7।9।11
पूजा योग्य	1।3।10।6
निन्दित	4।8।12

इसका मतलब यह है कि ब्रह्मचारी की जन्म-राशि से यदि वृहस्पति दूसरे, पाँचवें आदि स्थान में हों तो श्रेष्ठ फलदायक होते है, पर यदि पहले, तीसरे आदि मे हों तो पूजा करके शान्ति करा लेनी चाहिए; पर चतुर्थ, अष्टम और द्वादश का गुरु ठीक नही है। कुछ लोग द्विगुण पूजन कराके काम चला लेते हैं।

अन्य बातें : सूर्य उत्तरायण के हों, गुरु-शुक्र का वृद्धत्व, अस्त या बाल्य दोष न हो तो माघादि पाँच महीनों मे व्रतबन्ध होना चाहिए। कर्क और मीन के सूर्य होने पर प्रायः कोई शुभ कर्म नही होता, पर चैत्र के महीने में मीन के भी सूर्य हों और चन्द्रमा को रवि और गुरु का बल मिलता हो तो ब्राह्मण वर्ण का व्रतबन्ध शास्त्र-विहित है। गुरु-बल का चक्र ऊपर दिया गया है, रवि और चन्द्र का नीचे दिया जाता है।

रवि	चन्द्र	ग्रह
3।6।10।11	3।6।7।10।11	श्रेष्ठ स्थान
1।2।5।7।9	1।2।4।9	पूजा स्थान
4।8।12	4।8।12	निन्दित स्थान

इस योग को 'गुर्वंक' योग या 'गुर्वादित्य' योग कहते है। जब सूर्य की राशि (सिंह) पर वृहस्पति जाता है तो एक साल तक और जब गुरु की राशि (कर्क, मीन) पर सूर्य जाता है तो एक-एक मास तक का समय शुभ कार्य में निषिद्ध समझा जाता है।

श्रेष्ठ नक्षत्र : अश्वि. रो., मृ., आ., पु., आश्ले., पू.फा., उ.फा., हस्त., चि., स्वा., अनु., मू., पूषा., उषा., श्र., ध., शत., पू. भा., उ. भा., रे. इन नक्षत्रों में यदि वेध न हो तो श्रेष्ठ है। वेध विवाह-प्रकरण में बताया जायगा।

श्रेष्ठ तिथियाँ : शुक्ल पक्ष मे 2।3।5।10।11।12 और कृष्णपक्ष में 2।3। 5 तिथियाँ श्रेष्ठ है।

श्रेष्ठ वार : सू., चं., बु., वृ., शु. वाणादि दोष से रहित ग्रहण करना चाहिए। वाणादि दोषो की चर्चा विवाह-प्रकरण मे होगी।

लग्नशुद्धि : 3।6।11 में पापग्रह हों, चन्द्रमा 2,7,10 या 3रे स्थान में हो, शुभ ग्रह 1।4।7।10।5।9 मे हों तो शुभ हैं। लग्न से च., शु., वृह, और लग्नेश

6।8 में निन्दित है। लग्न से चन्द्रमा और शुक्र बारहवें में निन्दित है। लग्न से 1।5।8 में पापग्रह और 6।8।12 में शुभग्रह अनिष्टकारक हैं। लग्न में सूर्य श्रेष्ठ है।

उपसंहार

ऊपर जिन संस्कारों और शुभकार्यों का मुहूर्त्त बताया गया है, अगर वे सब न मिलें तो अधिक-से-अधिक को ग्रहण करना चाहिए।

विवाह प्रकरण

विवाह के लिए पहले कन्या और वर का गुण मेलापक किया जाता है। इसमें 1. वर्ण, 2. वश्य, 3. तारा, 4. योनि, 5. ग्रहमैत्री, 6. गण, 7. भकूट और 8. नाड़ी—इन आठ बातों की आवश्यकता है। इनमें वर्ण का 1, वश्य का 2, तारा का 3, इस तरह क्रमशः एक से दूसरे का गुण 1 अधिक होता है।

वर्ण

निम्नलिखित चक्र से वर्णज्ञान किया जा सकता है :

वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
रा	कर्क	मेष	वृष	मिथुन
शि	वृश्चिक	सिंह	कन्या	तुला
यां	मीन	धन	मकर	कुम्भ

फल

उत्तम वर्ण का वर होना चाहिए। कन्या समान वर्ण की अथवा नीचे के वर्ण की हो तो शुभ है, अन्यथा ठीक नहीं।

शतपद चक्र

आगे चलकर एक शतपद चक्र दिया गया है। सावधानी से देखने पर इससे वर्ण, वश्य आदि का स्पष्ट ज्ञान हो जायेगा। कहीं-कहीं एक ही नक्षत्र के कुछ चरण दूसरी संज्ञा के है और कुछ दूसरी के। इसीलिए जिन संज्ञाओं के आगे अंक दे दिया गया है उसका अर्थ यह है कि उक्त नक्षत्र, उक्त संख्या तुल्य चरण पहली संज्ञा के और बाकी दूसरी संज्ञा के हैं। उदाहरण के लिए, विशाखा नक्षत्र के वर्ण कोष्ठ में

नक्षत्र	अक्षर	रा.	वर्ण	वश्य	योनि	राशीश	गण	नाड़ी
अ	चु चे चो ला	मे	क्ष	च	अश्व	मं	देव	आदि
भर.	ली लू ले लो	मे.	क्ष	च	गज	मं	मनु	मध्य
कृ.	अ ई ऊ ए	मे 1 वृ3	क्ष 1 व 3	च	छाग	मं 1 शु 3	रा.	अन्त
रो.	ओ व वी वू	वृ	वै	च	सर्प	शु	मनु	अन्त
मृ.	वे वो का की	वृ 2 मि 2	वै 2 शू 2	च 2 न 2	सर्प	शु 2 बु 2	देव	मध्य
आ.	कू घ ङ छ	मि	शू	न	श्वा	बु	मनु	आदि
पुन.	के को हा ही	मि 3 क 1	शू 3 ब्रा 1	न 3	मा	बु 3 च 1	दे	आ
पुष्य	हू हे हो डा	क	ब्रा	की 1	छाग	चं	दे	म
आश्ले.	डी डू डे डो	क	ब्रा	की	मार्जार	चं	राक्ष	अं
म.	म मी मू मे	सिं	क्ष	च	मूषक	सू	रा	अं
पूफा.	मो टा टी टू	सिं	क्ष	च	मूषक	सू	मनु	मध्य
उफ.	टे टो पा पी	सिं 1 क 3	क्ष 1 वै 3	च 1 न 3	गौ	सू 1 बु 3	म	आ
ह.	पू ष ण ठ	कं	वै	न	महिष	बु	दे	आ
चि.	पे पो रा री	क 2 तु 2	वै 2 शू 2	न	व्याघ्र	बु 2 शु 2	रा	म

नक्षत्र	अक्षर	रा.	वर्ण	वश्य	योनि	राशीश	गण	नाड़ी
स्वा.	रू रे रो ता	तु	शू	न	महिप	शु	दे	अं
वि.	ती तू ते तो	तु 3 वृ 1	शू 3 ब्रा 1	न 3 की 1	व्याघ्र	शु 3 मं 1	रा	अं
अनु.	ना नी नु ने	वृ	ब्रा	की	मृग	मं	दे	म
ज्ये.	नो य यी यू	वृ	ब्रा	की	मृग	मं	रा	आ
मू.	ये यो भा भी	ध	क्ष	च	श्वा	बृ	रा	आ
पूषा.	भू ध फ ढ	ध	क्ष	च	मर्कट	बृ	न	म
उषा.	भे भो ज जी	ध 1 म 3	क्ष 1 वै 3	च 1 ज 3	नकुल	बृ 1 श 3	न	अं
श्र.	खी खू खे खो	म	वै	ज	मर्कट	श	दे	अं
ध.	ग गी गू गे	म 2 कु 2	वै 2 शू 2	ज 2 न 2	सिंह	श	रा	म
श.	गो स सी सू	कुं	शू	न	अश्व	श	रा	आ
पूभा.	से सो दा दी	कु 3 मी 1	शू 3 ब्रा 1	न 3 ज 1	सिं	श 3 बृ 1	न	आ
उभा.	दू थ झ ञ	मी	ब्रा	ज	गो	बृ	न	म
रे.	दे दो चा ची	मी	ब्रा	ज	गज	बृ.	दे	अं

'शू. 3, ब्रा 1' ऐसा लिखा है। इसका अर्थ यह है कि विशाखा के तीन चरण शूद्र-वर्ण के और एक चरण ब्राह्मण वर्ण का है। इसी तरह राशीश कोष्ठक में 'शु. 3, मं. 1' लिखा है। अर्थात् तीन चरण के स्वामी शुक्र और एक के मंगल हैं।

पृष्ठ 170-71 पर दिये चक्र पर से वर्ण आदि का ज्ञान करके आगे के दिये चक्रों से गुण की संख्या निकालकर सबको जोड़ देना चाहिए। यदि गुणों की संख्या 18 या इससे अधिक हो तो विवाह शुभद होगा।

वर्ण गुण का चक्र

वर का वर्ण

	ब्रा	क्ष.	वै.	शू.	
कन्या	1	0	0	0	ब्रा
का	1	1	0	0	क्ष
वर्ण	1	1	1	0	वै
	1	1	1	1	शू

गण के गुण का चक्र

वर

		देव	मनु.	राक्ष.
कन्या	देव	6	5	1
	मनुष्य	6	6	0
	राक्षस	0	0	6

नाड़ी गुण-चक्र

वर

		आ.	म.	अं
कन्या	आदि	0	8	8
	मध्य	8	0	8
	अन्त	8	8	0

वश्य गुण का चक्र

वर

		च	मा	ज	व	की
कन्या	चतुष्पद्	2	1	1	0	1
	मानव	1	2	॥	0	1
	जलचर	1	॥	2	1	1
	वनचर	0	0	1	2	0
	कीट	1	1	1	0	2

तारा गुण का चक्र

वर

	1	2	3	4	5	6	7	8	9
1	3	3	1॥	3	1॥	3	1॥	3	3
न्या 2	3	3	1॥	3	1॥	3	1॥	3	3
3	1॥	1॥	0	1॥	0	1॥	0	1॥	1॥
4	3	3	1॥	3	1॥	3	1॥	3	3
5	1॥	1॥	0	1॥	0	1॥	0	1॥	1॥
6	3	3	1॥	3	1॥	3	1॥	3	3
7	1॥	1॥	0	1॥	0	1॥	0	1॥	1॥
8	3	3	1॥	3	1॥	3	1॥	3	3
9	3	3	1॥	3	1॥	3	1॥	3	3

नैसर्गिक ग्रह-मैत्री

ग्रह	मित्र	सम	शत्रु
सू.	चं. मं. वृ.	बु	शु. श.
चन्द्र	सू. बु.	मं. वृ. शु. श.	
मंगल	सू. च. वृ	शु. श.	बुध
बुध	सू. शु.	मं. वृ. श.	चं.
वृ.	सू. चं. मं.	श.	बु. शु.
शु.	बुध. श.	मं. वृ.	सू. चं.
शनि	बु. शु.	वृ.	सू. चं. मं.

ग्रह-मैत्री के गुण का चक्र

वर

	सू.	चं	मं	बु.	वृ.	शु.	श.
सूर्य	5	5	5	4	5	0	0
चन्द्र	5	5	4	1	4	॥	॥
मंगल	5	4	5	॥	5	3	॥
बुध	4	1	॥	5	॥	5	4
वृह	5	4	5	॥	5	॥	3
शुक्र	0	॥	3	5	॥	5	5
शनि	0	॥	॥	4	3	5	5

योनिगुण का चक्र

	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषिक	गो	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	4	2	3	2	2	3	3	2	0	1	3	2	2	1
गज	2	4	3	2	2	3	3	3	3	1	3	2	2	0
मेष	3	3	4	2	2	3	3	3	3	1	3	0	1	1
सर्प	2	2	2	4	2	1	1	2	2	2	1	1	0	2
श्वान	2	2	2	2	4	1	1	2	2	2	0	2	2	2
मार्जार	3	3	3	1	1	4	0	3	3	2	3	2	2	2
मूषिक	3	2	2	1	1	0	4	3	3	2	3	2	1	2
गो	2	3	3	2	2	3	3	4	3	0	3	2	2	1
महिष	0	3	3	2	2	3	3	3	4	1	3	2	2	1
व्याघ्र	1	1	1	2	2	2	2	0	1	4	1	2	2	3
मृग	3	3	3	2	0	3	3	3	3	1	4	2	2	1
वानर	2	2	0	1	2	2	2	2	2	2	2	4	2	2
नकुल	2	2	2	0	2	2	1	2	2	2	2	2	4	2
सिंह	1	0	1	2	2	2	2	1	1	3	1	2	2	4

वर्गकूट

निम्नांकित चक्र से वर और कन्या के नाम के प्रारम्भिक अक्षर पर से उनका वर्ग देखकर यह विचार कर लेना चाहिए कि उनमे मेल होगा या नहीं। इन वर्गों में से प्रत्येक का पाँचवाँ उसका शत्रु होता है।

वर्ग	ऊनति
अ	गरुड
क	विड़ाल
च	सिंह
ट	श्वान
त	सर्प
प	मूषक
य	मृग
श	मेढ़ा

इस प्रकार सब समझकर विवाह का प्रस्ताव करें।

अन्य आवश्यक बातें

कन्या का विधवा योग और वर का अल्पायु योग तथा सन्तान योग आदि का विचार आगे बताये गये जातक प्रकरण के नियमों के अनुसार खूब अच्छी तरह कर लेना चाहिए।

वर-वरण (तिलक) का मुहूर्त

वर-वरण ब्राह्मण को या कन्या के भाई को यज्ञोपवीत, वस्त्र आदि से रो., उत्तरा 3, पूर्वा 3 और कृत्तिका इन नक्षत्रों में करना चाहिए।

विवाह के नक्षत्र

वेधरहित मृग., हस्त, मूल, अनु., मघा, रो., रे., उ3, और स्वाति नक्षत्रों, शुभवार और शुभ तिथियों मे विवाह श्रेष्ठ है।

विवाह के मास

मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष और मेष के सूर्य में विवाह शुभ हैं। मिथुन के सूर्य हो तो आषाढ़ के शुक्ल प्रतिपत् से दशमी पर्यन्त श्रेष्ठ है। वृश्चिक, मकर और मेष के सूर्य हो तो कार्तिक, पौष और चैत्र मे भी विवाह हो सकता है।

वेध का ज्ञान

सप्तशलाका चक्र
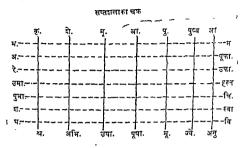
यह सप्तशलाका चक्र है। वैवाहिक को यदि यह देखना हो कि अभीष्ट नक्षत्र विद्ध है या नहीं, तो उस नक्षत्र पर से गयी हुई रेखा के ठीक सामनेवाले नक्षत्र पर कौन-सा ग्रह है यह देखना चाहिए। यदि उस पर कोई पापग्रह हो तो वह पापविद्ध होने के कारण त्याज्य है। जैसे शतभिषक् नक्षत्र पर यदि शनि हो तो स्वाति नक्षत्र किसी शुभकार्य के लिए ठीक नहीं है। यह चक्र अन्य शुभकार्यों के लिए है। विवाह के लिए निम्नांकित पंचशलाका चक्र द्रष्टव्य है। यह पंचशलाका चक्र भी वेध देखने के लिए है।
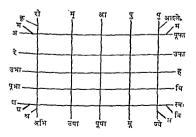
ग्रह मेलापक

कन्या की जन्मकुण्डली में लग्न और चन्द्रमा से 1।12।4।7 या 8वें स्थान में यदि मंगल हो तो कन्या पति का नाश करती है और यदि पति की कुण्डली में इन्हीं स्थानों में मंगल हो तो वह पत्नी का नाशक होता है। इसीलिए यदि कन्या की कुण्डली में ऐसा योग हो तो खोजकर ऐसे वर के साथ उसका विवाह करना चाहिए जिसकी कुण्डली मे यही योग पड़ता हो। दूसरा परिहार यह है कि पुरुष की कुण्डली मे यदि सप्तम स्थान में, लग्न में, दशम, अष्टम, द्वादश में शनि हो तो उक्त मंगल का दोष नहीं लगने पाता। यदि कन्या की कुण्डली में सप्तमेष शुक्र, वृहस्पति या चन्द्रमा हो तो वह सौभाग्य योग भौम दोष का नाशक होता है।

मेलापक की विशेषता

जन्मराशि से ही वर और कन्या का गुण मेलापन करना चाहिए। पर यदि जन्म-राशि मालूम न हो, तो नाम की राशि से ही गुण मेलापन कराना चाहिए। एक की जन्मराशि से और दूसरे की नामराशि से गणना का विचार ठीक नहीं है। दोनों की नामराशि या दोनों की जन्मराशि, यही गणना का उत्तम मार्ग है।

रवि, चन्द्र और गुरु का बल

यज्ञोपवीत के प्रकरण में रवि, चन्द्र, गुरु के बल की बात लिखी गयी है। कन्या का गुरु-बल, कुमार का सूर्य-बल और दोनो का चन्द्र-बल विचार लेना चाहिए।

वधूप्रवेश और द्विरागमन

कुछ लोगों को भ्रम है कि वधूप्रवेश कन्या के प्रथम आगमन को कहते हैं और द्विरागमन दूसरी बार के आगमन को, पर यह निरा भ्रम-ही-भ्रम है। वस्तुतः एक वर्ष के भीतर या सोलह दिन के भीतर की यात्रा का नाम वधूप्रवेश है। इसमे केवल वधूप्रवेश के मुहूर्त्त मात्र का विचार करना चाहिए। प्रथम वर्ष के बाद पहली यात्रा निवृत्त होकर द्वितीय यात्रा शुरू हो जाती है, इसलिए तृतीय और पंचम वर्ष में शुक्र-दोष का विचार किया जाता है। पांच वर्ष के बाद तो शुक्र-दोष का भी विचार नहीं करना चाहिए। इस विषय पर ज्योतिषाचार्य पं. रामयत्न ओझा (प्रधानाध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी) ने विद्वत्तापूर्ण व्यवस्था लिखी है। पं. विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री की व्यवस्था भी द्रष्टव्य है।

शुक्र-दोष का विचार

सम्मुख और दाहिनी ओर का शुक्र गर्भिणी, शिशु और नवविवाहिता वधू के लिए निषिद्ध है। पर युद्ध के समय, दुष्काल में, आपत्ति के समय और पिता के घर में ही कन्या के पूर्ण युवती हो जाने पर उक्त दोष नहीं लिया जाता।

वधूप्रवेश और द्विरागमन का मुहूर्त्त

विवाह के दिन से 2।4।5।6।7।8।9।10।12।14वें दिन की यात्रा शुभ है। इसके बाद विषम मास और विषम वर्ष में होना चाहिए।

श्रेष्ठ तिथियाँ : 1।2।3।5।7।8।10।12।13।15

श्रेष्ठ वार : चं., बु., वृ., शुक्र., श.

श्रेष्ठ नक्षत्र : उत्तरा 3, रो., अश्वि., अस्त, पुष्य, अभि.. मृग., रे., चि.,अनु., श्र , ध., मू., म. स्वा.

शुभ लग्न : 2।3।5।6।8।9।11।12

लग्नशुद्धि : लग्न से 1।2।3।5।7।10।11वें स्थान में शुभ ग्रह और 3।6।-11 में पापग्रह श्रेष्ठ हैं। चतुर्थ और अष्टम मे कोई ग्रह न हो तो अच्छा।

द्विरागमन के विहित मास : कुम्भ, वृश्चिक और मेष के सूर्य द्विरागमन में श्रेष्ठ हैं।

यात्रा-प्रकरण

यात्रा के नक्षत्र : अश्वि., पुन., अनु., मृग., रे., ह., श्र., धनि., ये नक्षत्र श्रेष्ठ है। रो., पूर्वा 3, उत्तरा 3, ज्ये., मू., श., ये नक्षत्र मध्यम है। मघा, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा,आश्ले., चि., वि., स्वा. य अधम है।

सर्वदा शुभ नक्षत्र : अश्वि., हस्त, अनुराधा और पुष्य शुभ नक्षत्र हैं और इनमें चारों दिशा की यात्रा सब प्रकार की रुकावट रहते हुए भी श्रेष्ठ है।

यदि आवश्यक हो तो निम्नांकित नक्षत्रों की यात्रा भी शुभ हो सकती है, पर उनके आरम्भ की कुछ घटियों का त्याग कर देना चाहिए। वे घटियाँ भी यहाँ लिख दी गयी हैं।

तीनों पूर्वा में 16 घटी, कृत्तिका में 21, मघा में 11, भरणी में 7, स्वाति में 14, ज्येष्ठा मे 14, विशाखा में 14, आश्लेषा मे 14 और चित्रा में 40।

दिक्शूल

नीचे के चक्र से दिशा और विदिशाओं के शूल का ज्ञान होगा। इन दिनों को उस दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायु	उत्तर	ईशान
चं. श.	चं वृ.	वृह.	सू. शु.	सू. शु.	मं.	मं बु.	बु. श.

नक्षत्र शूल

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
ज्येष्ठ	पू. भा.	रोहिणी	उ. फा.

समय-शूल

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
प्रातः	मध्याह्न	सन्ध्या	आधी रात

स्त्री-पुरुष का घात-चन्द्रमा

निम्नांकित चक्र से स्त्री-पुरुषों के अलग-अलग घात-चन्द्र दिये गये हैं। इसका मतलब यह है कि यदि पुरुष की जन्मराशि कर्क हो तो उसे सिंह राशि के चन्द्रमा में यात्रा न करनी चाहिए; क्योंकि सिंह का चन्द्रमा उसकी जन्मराशि से दूसरा पड़ता है। इसी प्रकार स्त्री को मीन में यात्रा न करनी चाहिए; क्योंकि वह उसकी राशि से नवम पड़ता है और नवम का चन्द्रमा उसके लिए घातक है।

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
स्त्री-घात	1	8	7	9	4	3	6	2	10	11	5	2
पुरुष-घात	1	5	9	2	6	10	3	7	4	8	11	12

पथिराहु चक्र

अश्वि.	पुष्य	आश्ले.	वि.	अनु.	ध.	श.	धर्मनक्षत्र
भर.	पुन.	मघा	स्वा.	ज्ये.	श्रवण	पूभा.	अर्थनक्षत्र
कृ.	आर्द्रा	पूफा.	चि.	मू.	अभि.	उभा.	कामनक्षत्र
रो.	मृग.	उ. फा.	हस्त	पूषा.	उषा.	रेवती.	मोक्षनक्षत्र

प्रयोजन

सूर्य धर्मनक्षत्र में हो और चन्द्रमा धन (अर्थ) और मोक्ष में तो फल शुभ, सूर्य अर्थ-नक्षत्र में हो तो चन्द्रमा धर्म और मोक्ष में शुभ फलदायक होता है। सूर्य कामनक्षत्र में हो तो मोक्ष और अर्थ का चन्द्रमा श्रेष्ठ है। मोक्ष-नक्षत्र में सूर्य हो तो धर्म का चन्द्रमा श्रेष्ठ है। अन्यत्र अशुभ है।

कुल, अकुल और कुलाकुल गण

अकुल गण के नक्षत्र—स्वा., म., आश्ले., ध., रे., अनु., ह., पुन., उ 3, रोहिणी

वार : सू. चं. वृ. श.

तिथि : 1।3।5।7।9।11।13।15

इसमें यात्रा करने से यायी (मुद्दई) की जीत होती है। कुल अकुल गण के

नक्षत्र— मूल, आर्द्रा, अभि., शत.

वार—बुध

तिथि—2।6।10

इसमें यात्रा करने से यायी और स्थायी (मुद्दई और मुद्दालेह) में सुलह हो जाती है।

कुल गढा के नक्षत्र—पूर्वा 3, अश्वि., पुष्य, मघा, मृग., श्र., कृ., विशा., ज्येष्ठा और चित्रा

वार—मंगल और शुक्र

तिथि—4।8।12।14

इसमें यात्रा करने से स्थायी (मुद्दालेह) की जीत होती है।

प्रस्थान

अभीष्ट दिन को यात्रा का मुहूर्त्त न मिलने से प्रस्थान रखा जाता है। अपने शरीर का वस्त्र, अलंकार या यज्ञोपवीत आदि से प्रस्थान किया जाता है। निम्नांकित चक्र से स्पष्ट होगा कि किस दिशा में प्रस्थान कितने दिन पहले तक रखा जा सकता है।

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
7 दि	5 दि.	3 दिन	2 दिन

गमन में वर्जित

पिता और पुत्र को, दो सगे भाइयो को, तीन ब्राह्मणों को तथा नौ स्त्रियों को एक साथ यात्रा नहीं करनी चाहिए।

काल-योग

रविवार को उत्तर में, सोमवार को वायव्य में, मंगलवार को पश्चिम में, बुध को नैऋत्य में, गुरुवार को दक्षिण में, शुक्रवार को अग्निकोण में और शनिवार को पूर्व में काल-योग रहता है।

शुभाशुभ लग्न

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	दिशा
1।5।9	2।6।10	3।7।11	4।8।12	शुभ
2।6।10	3।7।11	4।8।12	1।5।9	मध्यम
4।8।12	1।5।9	2।6।10	3।7।11	भय
3।7।11	4।8।12	1।5।9	2।6।10	महाभय

शुभ शकुन

ब्राह्मण, अश्व, गज, फल, अन्न, दधि, धेनु, सरसों, कमल, वेश्या, बाघ, मयूर, नकुल, सिंहासन, शस्त्र, मांस, मत्स्य, ऐनक, सबालक-स्त्री, बँधा पशु, कन्या, सोत्साह वचन, पर्णघट, ईख, रत्न, पगड़ी, स्वच्छ वस्त्र, श्वेत बैल, मदिरा, काजल, श्वेतवस्त्र के साथ धोती, गोरोचन, बिना रोदन की मुद्रा, पताका, मेघ, वेदशब्द, मंगलवाद्य, भरद्वाज पक्षी, पालकी, पीछे से खाली घड़ा, कोकिला, कबूतरी, पल्ली, शूकरी, छुछुन्दरी, कपोत, निचिर, हंस और बायीं ओर का गधे का शब्द यात्रा में शुभ हैं।

अशुभ शकुन

बाँझ स्त्री, चर्म, तुप, अस्थि, सर्प, तावण, निर्धूम अग्नि, ईंधन, नपुंसक, विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, औषध, सर्प, जटावान्, कषाय वस्त्रधारी संन्यासी, रोगी, नंगा, तैलाभ्यंग, अंगभंग, जातिच्युत, भूखा, खून, स्त्री-पुष्प, गिरगिट, छींक, गृहदाह, बिल्ली का युद्ध, लाल वस्त्र, गुड़, तक्र, पंक, कुंजा, कृष्ण अन्न, महिष-युद्ध, वमन, दाहिने गर्दभ शब्द, क्रोधी, गर्भवती, मुण्डी, आर्द्रांबर, दुष्ट वाणी, अन्ध, बधिर, रजस्वला, गोधा, जाहक, शूकर, शशक, वानर, ऋक्ष, ये सब यात्रा में अशुभ हैं।

नदी पार करते समय, युद्ध से भागते समय, भूली चीज खोजते समय अशुभ शकुन शुभफलदायक होते हैं।

वास्तु प्रकरण

भूमि का शुभाशुभ ज्ञान

सायंकाल को एक हाथ का गहरा, उतना ही लम्बा और उतना ही चौड़ा गड्ढा खोदकर उसमें पानी भर देना चाहिए। सवेरे यदि पानी शेष रह जाय तो भूमि शुभ, सूख जाय तो मध्यम और सूखकर फट जाय तो निकृष्ट समझना चाहिए। जिस पृथ्वी से सुन्दर गन्ध निकलती हो वह उत्तम, निर्गन्ध हो वह मध्यम और दुर्गन्ध निकलती हो वह अधम समझी जानी चाहिए।

पिण्डानयन की सुगम रीति

जिस भूमि पर मकान बनाना हो उसकी लम्बाई-चौड़ाई स्वामी के हाथ से नाप कर गुणा कर देना चाहिए। इसी को पिण्ड कहते है। इस पर से आय-व्यय का ज्ञान करना चाहिए।

आय आदि का ज्ञान

पिण्ड को नौ जगह रखकर 1।2।6।8।3।8।8।4।8 से गुणा करके क्रमश. 8।7।9। 12।8।27।15।27।120 से अलग-अलग भाग देना चाहिए। जो शेष बचे उसे क्रम से आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग, आयु समझना चाहिए। बहुत ऋण और कम द्रव्य का गृह असत् समझना चाहिए। गृह और गृहस्वामी का नक्षत्र एक न हो तो अच्छा। विवाह के प्रकरण में बतायी विधि से गणना बन जानी चाहिए। वार मे क्रमशः रवि, सोम आदि वार लेना चाहिए। अर्थात् 1 बचे तो रविवार, 2 बचे तो सोमवार इत्यादि। आय से क्रमशः 1 काक, 2 हस्ती, 3 गर्दभ, 4 वृष, 5 अश्व, 6 हरि, 7 धूम्र, 8 ध्वज समझना चाहिए।

आय का प्रयोजन

काक—शयन के लिए श्रेष्ठ है, पक्षी आदि के घर मे भी।
हस्ती—वाणी, कूप, तड़ाग आदि मे श्रेष्ठ है।
गर्दभ—वेश्यागृह में।
वृष—भोजनपात्र में।
अश्व—यवन, अन्त्यज आदि के घर में।
हरि—आसन में।
धूम्र—अग्नि-शाला, पाकगृह आदि में या अग्नि जीवियों के घर में।
ध्वज—शाला आदि में।

राहु मुख और उसका फल

चक्र में लिखी हुई राशियों के सूर्य होने पर उन-उन दिशाओं मे राहु का मुख रहता है। जिधर राहु का मुख हो, उसी ओर खोदकर नीव डालनी चाहिए।

	ईशानकोण	वायुकोण	नैऋत्यकोण	अग्निकोण
देवालयारम्भ	मीन, मेष, वृष	मिथुन, कर्क, सिंह	कन्या, तुला, वृ.	धन, मकर, कुम्भ
जलाशयारम्भ	मकर, कुम्भ, मीन	मेष, वृष, मिथुन	कर्क, सिंह, कन्या	तुला, वृ., ध.
गृहारम्भ	सिंह, कन्या तुला	वृश्चि., धन मक.	कुम्भ, मीन मेष	वृष, मिथुन कर्क

कश्यप ऋषि का मत

क्षेत्र, नीव, शिलान्यास, स्तम्भारोपण—ये कार्य पूर्व और दक्षिण में ही होने चाहिए।

चैत्रादिमास में गृहनिर्माण का फल

महीने	फल	महीने	फल
चैत्र	शोक	क्वार	युद्ध
वैशाख	धान्य	कातिक	मृत्य नाश
जेठ	पशुमरण	अगहन	धन
आषाढ	हरण	पौष	लक्ष्मी-लाभ
श्रावण	द्रव्य वृद्धि	माघ	अग्नि से डर
भादो	नाश	फाल्गुन	लक्ष्मी-लाभ

गृहारम्भ का मूहुर्त्त

श्रेष्ठ नक्षत्र—उत्तरा 3, मृग, पुष्य, अनु., ध., श., चि., ह., स्वा., श., रे.।
पचक को छोड़कर यही नक्षत्र द्वार-स्थापन मे भी ग्राह्य है।

श्रेष्ठ मास—वैशा., श्रा., मार्ग, पौष, फाल्गुन में सूर्य के मेष, कर्क, सिंह, वृ., म., कुम्भ हों।

श्रेष्ठ वार—चं. बृ. वृ. शु. शनि।

श्रेष्ठ तिथियाँ—2।3।5।7।10।11।13।15

श्रेष्ठ लग्न—2।3।5।6।8।9।11।12

लग्नशुद्धि —लग्न से 1।4।7।10।5।9 में शुभग्रह तथा 3।6।11 में पापग्रह हों, 8वें और बारहवें में कोई ग्रह न हो तो श्रेष्ठ है।

पक्ष—शुक्ल।

मठ-देवालयादि के लिए

इन्ही नक्षत्रो मे मठ, देवालय आदि की भी स्थापना करानी चाहिए। मठादि श्रवण नक्षत्र मे भी होते है।

मंगलवार, रविवार, अमावस्या, रिक्ता (4।9।14) तिथि और चर लग्न में गृहारम्भ किसी समय नहीं कराना चाहिए।

वत्स चक्र

गृहारम्भ के लिए निम्नांकित वत्स चक्र से भी नक्षत्र-शोधन कर लेना चाहिए। अभीष्ट नक्षत्र जिस दिन पड़ता हो, उस दिन का सूर्य-नक्षत्र जान कर, सूर्य-नक्षत्र

से अभीष्ट नक्षत्र तक गिन जाना चाहिए और इस चक्र के अनुसार फल देख लेना चाहिए।

स्थान	नक्षत्र	फल
शिर	3	अग्निदाह
चरण	4	अशुभ
पृष्ठपाद	4	स्थिरता
पीठ	3	लक्ष्मी
दक्षिणकुक्षि	4	लाभ
पूंछ	3	स्वामिनाश
कमर, कुक्षि	4	निर्धनता
मुख	3	पीड़ा
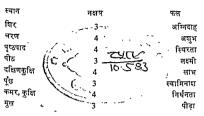
गृह-प्रवेश

निम्नांकित चक्र की गणना भी सूर्य-नक्षत्र से अभीष्ट नक्षत्र तक करके गृह-प्रवेश का मुहूर्त जानना चाहिए।

कुम्भ चक्र			कूप-चक्र		
स्थान	नक्षत्र	फल	दिशा	नक्षत्र	फल
मुख	1	अग्निदाह	मध्य	3	स्वादु जल
पूर्व	4	उद्वास	पूर्व	3	खण्डित जल
दक्षिण	4	लाभ	अग्नि	3	स्वादु
पश्चिम	4	लक्ष्मी	दक्षिण	3	निर्जल
उत्तर	4	कलह	नैऋत्य	3	स्वादु
गर्भ	4	विनाश	पश्चिम	3	खारा
नीचे	3	स्थिरता	वायु	3	थोड़ा पानी
कंठ	3	शुभ	उत्तर	3	मीठा
			ईशान	3	खारा

कूप-चक्र की गणना भी सूर्य-नक्षत्र से ही अभीष्ट नक्षत्र पर्यन्त की जाती है।

द्वार के विषय में

आगे 'सूर्य-नक्षत्र' से यह वाक्य लिख देने से पाठकों को यह समझ लेना होगा कि पहले ही के नियमों के अनुसार सूर्य-नक्षत्र से अभीष्ट नक्षत्र पर्यन्त की गणना अभीष्ट है।

द्वार-शाखा-चक्र
(सूर्य-नक्षत्र से)

स्थान	नक्षत्र	फल
शिर मे	4	लक्ष्मी
कोने मे	8	उद्वास
शाखा	8	सुख
देहली में	3	गृहस्वामी का नाश
बीच मे	4	सुख

द्वार-चक्र
(सूर्य-नक्षत्र से)

नक्षत्र	फल
4	राज्यलाभ
2	हानि
4	धनलाभ
2	भय
4	मृत्युभय
2	मृत्यु
4	द्रव्यलाभ
2	शोक
3	भय

ग्रामवास का विचार

ग्राम के नक्षत्र से बसनेवाले के नक्षत्र तक गिन जाइए और निम्नांकित चक्र के अनुसार फल समझिए।

7	7	7	7
धन	हानि	सुख	पर्यटन

कूप का दूसरा चक्र
(इसकी गणना रोहिणी नक्षत्र से की जायेगी)

स्थान	नक्षत्र	फल
मध्य	3	शीघ्र स्वादु जल
पूर्व	3	निर्जल
अग्नि	3	शीघ्र जल
दक्षिण	3	निर्जल
नैऋत्य	3	मधुर जल
पश्चिम	3	निर्मल जल
वायु	3	निर्जल
उत्तर	3	मधुर जल
ईशान	3	खारा जल

जलाशय के बारे में

तड़ाग-चक्र

(सूर्य नक्षत्र से अभीष्ट नक्षत्र पर्यन्त)

दि.	नक्षत्र	फल
पूर्व	2	जल शेष
अग्नि	3	अधिक जल
दक्षिण	2	जल नाश
नैऋत्य	2	अमृत जल
पश्चिम	3	स्वादु जल
वायु	2	जल शेष
उत्तर	3	स्थिर जल
ईशान	2	नष्ट जल
मध्य	5	पूरा जल
वाह्य	3	अमृत जल

वापी-चक्र

(इसकी गणना रोहिणी नक्षत्र से करनी चाहिए)

स्थान	नक्षत्र	फल
कोष्ठ	4	शुभफल
नाभि	4	बुद्धिनाश
हृदय	4	स्थिरता
मध्य	4	कलह
नेत्र	4	धन
वाम चरण	4	अनर्थ
दक्षिण चरण	4	अनर्थ

जलाशयारम्भ का मुहूर्त

श्रेष्ठ नक्षत्र—हस्त, अनु., रे., उ. 3, ध., श., म., रो., पुष्य, मृग, पूपा. में जब गुरु और शुक्र का वृद्धत्व अस्त आदि न हो।

श्रेष्ठ वार—चं., बु., वृ., शु.

श्रेष्ठ तिथियाँ—1।2।3।5।6।7।8।10।11।12।13।15

लग्न शुद्धि—लग्न में बुध या बृहस्पति हों, 3।6।11 में पापग्रह हों, 11वें चन्द्रमा हों तो जलाशयारम्भ शुभद होता है।

जलाशय, ब गीचा और देवता की प्रतिष्ठा

उत्तरायण के सूर्य हों (मीन संक्रान्ति को छोड़कर) बृह. शुक्र, मंगल उदित हों और बलवान हो।

श्रेष्ठ नक्षत्र—मृग., रे., चि., अनु., हस्त, अश्वि., पुष्य, स्वा., पुन., म., ध.।

लग्नशुद्धि—लग्न से केन्द्र (1।4।7।10) और कोण (5।9) स्थानों मे शुभग्रह और 3।6।11 स्थानों में पापग्रह शुभ हैं।

गृहप्रवेश का मुहूर्त

श्रेष्ठ मास—वैशाख, जेठ, माघ, फाल्गुन मास में नूतन गृह मे तथा पुराने गृह मे सावन, अगहन और कार्तिक महीनों में भी गृहप्रवेश शुभद है।

श्रेष्ठ नक्षत्र—उत्तरा 3, रोहिणी, क्रु, मृग., चि., रेवती में जब पहले के कुम्भचक्र से नक्षत्र-शुद्धि मिल जाती हो।

श्रेष्ठ वार—मं. बु. बृ. शु. श.।

श्रेष्ठ तिथियाँ—1।2।3।5।6।7।8।10।11।12।13

लग्न—2।5।8 शुभ, 3।6।9 मध्यम।

लग्नशुद्धि—जन्मराशि, लग्न।

राहु के नक्षत्र से अभीष्ट नक्षत्र पर्यन्त गणना करके फल जानना चाहिए।

8	3	1	3	1	3	1	3	4
अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ

हल-प्रवहण का मुहूर्त

अनु., ज्ये., मू., पूषा., म., पुन., पुष्य, हस्त, स्वा., श्र., रो., मृग., रे., उत्तरा 3, इन नक्षत्रों मे वृष, कन्या, मीन लग्न मे हल-प्रवहण उत्तम है। 4।6।9।14।12।15।30 इन तिथियों को छोड़ देना चाहिए। सूर्य के नक्षत्र से इष्ट दिन के नक्षत्र तक गिनकर इस चक्र से फल जानना चाहिए :

3	3	3	3	3	3	3	3	3
हानि	लाभ	हानि	लाभ	हानि	लाभ	हानि	लाभ	हानि

हवन-चक्र

रवि नक्षत्र पर से चन्द्र नक्षत्र तक

3	3	3	3	3	3	3	3	3	नक्षत्र
र.	बु.	शु.	श.	चं.	मं.	बृ.	रा.	के.	ग्रह
अशु.	शु.	शु.	अशु.	शु.	अशु.	शु.	अशु.	अशु.	फल

चुल्ली-चक्र

चूल्हा बनाने के लिए निम्नांकित चक्र काम मे लाना चाहिए। इसकी गणना भी

रवि नक्षत्र से ही की जानी चाहिए।

पृष्ठ	शीर्ष	बाहु	गर्भ	हस्त	पाद	स्थान
6	4	8	5	2	2	नक्षत्र
श्रीलाभ	मृत्यु	सुख	विनाश	सुभ्रांग्र	स्त्रीनाश	फल

विंशोत्तरी दशा-प्रकरण

कृत्तिका से लेकर नौ-नौ नक्षत्रों की तीन आवृत्ति कर जाइए। वह क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु और शुक्र की महादशा होगी। इस बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ एक चक्र दे देते है।

नक्षत्र	ग्रह	दशा वर्ष
कृ. उफा. उपा.	सूर्य	6 वर्ष
रोहिणी, हस्त, श्र.	चन्द्र	10 वर्ष
मृग. चि. ध.	मंगल	7 वर्ष
आर्द्रा, स्वा. श.	राहु	18 वर्ष
पुन. विशा. पूभा.	बृहस्पति	16 वर्ष
पुष्य, अनु. उभा.	शनि	19 वर्ष
आश्ले. ज्ये. रे.	बुध	17 वर्ष
मघा., मू. अश्वि.	केतु	7 वर्ष
पूफा. पूषा. भर.	शुक्र	20 वर्ष

इस चक्र के अनुसार जन्म-नक्षत्र पर से यह देख लेना चाहिए कि किस ग्रह की महादशा में जन्म है। फिर उस नक्षत्र का सम्पूर्ण भोग तथा इष्टकाल पर्यन्त की व्यतीत घटी जानकर अनुपात से यह मालूम कर लेना चाहिए कि उस ग्रह की दशा का कौन-सा भाग बीत चुका है और कौन-सा बाकी है। उसके बाद चक्र में कहे हुए विधान से उसके बादवाले ग्रह की महादशा शुरू होगी, और फिर उसके बादवाले की।

उदाहरण

एक उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए, किसी का जन्म रोहिणी नक्षत्र में हुआ है। रोहिणी का सम्पूर्ण भोग, मान लीजिए, 62 दण्ड है। और जन्म के समय रोहिणी 31 दण्ड बीत चुकी है। हम जानते हैं कि रोहिणी में जिसका जन्म होगा उसका जन्म चन्द्रमा की महादशा में होगा। चन्द्रमा की महादशा का सम्पूर्ण वर्षमान 10 है। अब अनुमान कीजिए। रोहिणी के 62 दण्ड भोग होने पर तो

ग्रह की दशा 10 वर्ष की है तो 31 दण्ड में क्या है ? फल मिला 5 वर्ष। अर्थात् चन्द्रमा की दशा पाँच वर्ष तो वीत चुकी है। बाकी 5 वर्ष और हैं। इन पाँच वर्षों के बाद फिर मगल की महादशा 7 वर्ष तक रहेगी और फिर राहु की 18 वर्ष, इत्यादि।

अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा

प्रत्येक ग्रह की दशा मे नवों ग्रहो की अन्तर्दशा बीतती है। उसका मान भी अनुपात से ही निकाला जाता है। जैसे, चन्द्रमा की महादशा मे प्रत्येक ग्रह की अगर अन्तर्दशा निकालनी हो, तो इस प्रकार अनुपात करेंगे—यदि 120 वर्ष पूर्ण दशा मे रवि की दशा 6 वर्ष है तो चन्द्रमा के 10 वर्ष मे क्या ? इसी प्रकार अन्य ग्रहों मे अन्य ग्रह की 'अन्तर्दशा' निकल आती है। फिर प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में उसकी प्रत्यन्तर्दशा भी निकाली जाती है। उसका भी अनुपात इसी ढंग का है। पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ अन्तर्दशाएँ निकालकर रख देते हैं।

सूर्य की दशा में अन्तर्दशाएँ

ग्रह	वर्ष मास दिन
सूर्य	0 । 3 । 18
चन्द्र	0 । 6 । 0
मंगल	0 । 4 । 6
राहु	0 ।10। 24
गुरु	0 । 9 । 18
शनि	0 ।11। 12
बुध	0 ।10। 6
केतु	0 । 4 । 6
शुक्र	1 । 0 । 0

चन्द्रमा में अन्तर्दशा

ग्रह	वर्ष मास दिन
चन्द्र	0 । 10 । 0
मंगल	0 । 7 । 0
राहु	1 । 6 । 0
वृ.	1 । 4 । 0
शनि	1 । 7 । 0
बुध	1 । 5 । 0
के.	0 । 7 । 0
शु.	1 । 8 । 0
सू.	0 । 6 । 0

मंगल में अन्तर्दशा

ग्रह	वर्ष मास दिन
मंगल	0 । 4 । 27
रा.	1 । 0 । 18
वृ.	0 ।11। 6
श.	1 । 1 । 9
बु.	0 ।11। 27
कें.	0 । 4 । 27
शु.	1 । 2 । 0
सू.	0 । 4 । 6
चं.	0 । 7 । 0

राहु में अन्तर्दशाएँ

ग्रह	वर्ष	मास	दिन
राहु	2	8	12
बृह.	2	4	24
शनि	2	10	6
बुध	2	6	18
केतु	1	0	18
शु.	3	0	0
सू.	0	10	24
चं.	1	6	0
मं.	1	0	18

शनि में अन्तर्दशाएँ

ग्रह	वर्ष	मास	दिन
श.	3	0	3
बु.	2	8	9
के.	1	1	9
शु.	3	2	0
सू.	0	11	12
चं.	1	7	0
मं.	1	1	9
रा.	2	10	6
बृह.	2	6	12

ग्रह	वर्ष	मास	दिन
के.	0	4	27
शु.	1	2	0
सू.	0	4	6
चं.	0	7	0
मं.	0	4	27
रा.	1	0	18
बृ.	0	11	6
श.	1	1	9
बु.	0	11	27

बृहस्पति में अन्तर्दशाएँ

ग्रह	वर्ष	मास	दिन
बृह.	2	1	18
श.	2	6	12
बु.	2	3	6
के.	0	11	6
शु.	2	8	0
सू.	0	9	18
चं	1	4	0
मं.	0	11	6
रा.	2	4	24

बुध में अन्तर्दशाएँ

ग्रह	वर्ष	मास	दिन
बुध	2	4	27
केतु	0	11	27
शुक्र	2	10	0
सू.	0	10	6
च.	1	5	0
मं.	0	11	27
राहु	2	6	18
बृ.	2	3	6
श.	2	8	9

ग्रह	वर्ष	मास	दिन
शु.	3	4	0
सू.	1	0	0
चं.	1	8	0
मं.	1	2	0
रा.	3	0	0
बृ.	2	8	0
श.	3	2	0
बु.	2	10	0
कें.	1	2	0

अष्टोत्तरी महादशा

पहले जिस विंशोत्तरी महादशा का विस्तार किया गया है, उसमें परमायु 120 वर्ष माना गया है। कुछ लोगों का मत है कि वह दशा द्वापर युग के लिए थी, कलि में अष्टोत्तरी महादशा ही ग्राह्य है। अष्टोत्तरी महादशा में परमायु 108 वर्ष मानी गयी है। जो कुछ भी हो, अधिकांश विद्वान् विंशोत्तरी दशा का ही व्यवहार करते हैं, पर हमने अष्टोत्तरी महादशा का उल्लेख कर देना भी यहाँ उचित समझा है। दशा

का व्यतीत या भोग्य वर्ष आदि निकालने की सारी विधि इसमें भी वही है, जो विशोत्तरी महादशा में।

नक्षत्र	ग्रह	दशावर्ष
आर्द्रा. पुन. पुष्य, आश्ले.	सू.	6 वर्ष
भ. पूफा. उफा.	चं.	15 वर्ष
हस्त. चि. स्वा. वि.	मं.	8 वर्ष
अनु. ज्ये. मूल	बु.	17 वर्ष
पूषा. उषा. अभि. श्र.	श.	10 वर्ष
ध. श. पूभा.	वृह.	19 वर्ष
उभा., रे., अश्वि, भर.	रा.	12 वर्ष
कृ. रो मृ.	शुक्र	21 वर्ष

योगिनीदशा

योगिनियाँ 8 है। मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा और संकटा। किन नक्षत्रों में जन्म होने से किस योगिनी की दशा होती है, उसका स्वामी कौन ग्रह है, उसका वर्षमान क्या है, यह निम्नांकित चक्र से स्पष्ट हो जायेगा।

मंग.	पिंग.	धा.	भ्रा.	भद्रि.	उल्का	सि.	संकटा	योगिनी
चन्द्र.	सू.	वृह.	मं.	बु.	शनि	शुक्र	केतु.	स्वामी
1 वर्ष	2	3	4	5	6	7	8	वर्षमान
श्र.	ध.	शत.	अश्वि.	भ म.	कृ.	रो.	मृग.	नक्षत्र
आर्द्रा	पुन.	पुष्य	आश्ले.	ज्ये.	पूफा.	उफा.	हस्त	
चित्रा	स्वा.	विशा.	अनु.	पूभा. उभा.	मू., रे,	पूषा.	उषा.	

ग्रह-गोचर-फल

ग्रह	शुभ स्थान	पूजायोग्यस्थान	अनिष्टकर
सू.	3।6।10।11	1।2।5।7।9	4।8।12
चं.	1।2।3।5।6।7।9।10।11	—	4।8।12
मं.	3।6।10।11	1।2।5।7।9	4।8।12
बु.	2।6।10।11	1।3।5।7।9	4।8।12
गु.	2।7।9।5।11	1।3।6।10	4।8।12
शु.	1।2।3।9।11	5।6।7।10	4।8।12
श.रा.के	3।6।10।11	1।2।5।7।9	4।8।12

उक्त फल देखने की रीति यह है। यदि किसी काल के ग्रहों का गोचर फल देखना हो तो पहले यह देखिए कि वह ग्रह किस राशि पर है, फिर अपनी जन्म-राशि से उस राशि तक गिन जाइये। जो संख्या आये उसके अनुसार फल देखिए।

ग्रह यदि अरिष्ट हों तो निम्नांकित मणियों के धारण, वस्तुओं के दान तथा जप आदि से उन्हें शान्त किया जाना चाहिए।

धारण योग्य मणियाँ

सूर्य—माणिक्य, विद्रुम। चन्द्र—मुक्ताफल, रौप्य। मंगल—मूँगा, विद्रुम। बुध—पन्ना, सुवर्ण। गुरु—पुखराज, मोती। शुक्र—हीरा, चाँदी। शनि—नीलम, लोहा। राहु—गोमेद, लाजावर्त्त। केतु—वैडूर्य, लाजावर्त्त।

दान की सामग्री

सूर्य के लिए—मणि, गेहूँ, गुड़, गाय, बछड़ा, नया घर, कमल, रक्त चन्दन, लाल वस्त्र, सोना, ताँबा, केशर, मूँगा।

चन्द्रमा के लिए—बाँस की बनी चीजें, सफेद चीजें—वस्त्र, चावल, चन्दन, पुष्प—चीनी, चाँदी, घी, दही, बैल, शंख, मोती, कपूर।

मंगल के लिए—विद्रुम, पृथ्वी, लाल चीजें, मसूरदाल, गेहूँ, लाल बैल, गुड़, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, फूल, सोना, ताँबा, केशर, कस्तूरी।

बुध के लिए—काँसा, हरा वस्त्र, मूंग, हाथी दाँत, पन्ना, सोना, सब तरह के फूल, रत्न, कपूर, शस्त्र, फल, भोजन।

बृहस्पति के लिए—पीली चीजें जैसे पीला धान्य, वस्त्र, सोना, घी, पीला फूल-फल, पुखराज, हल्दी, घोड़ा, पुस्तक, मधु, नमक, चीनी, भूमि, छाता।

शुक्र के लिए—श्वेत चीजें जैसे चावल, चन्दन, वस्त्र, पुष्प, चाँदी, हीरा, घी, सोना, सफेद घोड़ा, दही, चीनी, सुगन्ध, गो, भूमि।

शनि के लिए—उड़द, तैल, नीलम, काली चीजें—तिल, वस्त्र, कुरथी, लोहा, भैंस, कम्बल, काली गाय, काला फूल, जूता, कस्तूरी, सोना।

राहु के लिए—उड़द, सप्तधान्य, कृष्णपुष्प, खड्ग, लोहा, सूप, कम्बल, काला घोड़ा।

केतु के लिए—राहु की चीजों के समान ही, किन्तु घोड़े की जगह बकरा।

साढ़ साती के शनि

जन्मराशि से 12वें, पहले और दूसरे के शनि लगातार साढ़े सात वर्ष तक खराब रहते हैं।

ग्रहशान्ति की दवाएँ

सरसों, देवदारु, हल्दी, लोध, शरपुंखा, कूट, तीर्थजल, धान का लावा, बला, लजालू, नागरमोथा, कंगुनी—इनके पानी से स्नान करने से ग्रह-बाधा दूर होती है।

शुक्र और गुरु का बाल्य-वृद्धत्व

शुक्र और वृहस्पति उदय होने के तीन दिन बाद तक बालक और अस्त होने के तीन दिन पूर्व से ही वृद्ध हो जाते हैं। इस बाल्य और वृद्धत्व दोष में कोई भी शुभकार्य वर्जित है।

प्रबन्ध चिन्तामणि से सम्बद्ध

पुरातन प्रबन्ध संग्रह

[P, B, BR, G, PS संज्ञक संग्रह-ग्रन्थों से संगृहीत]
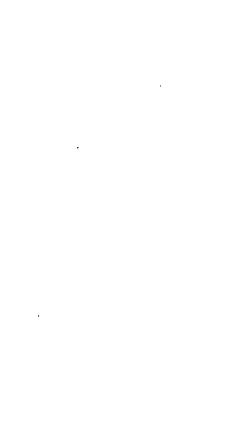
1. विक्रमार्क के प्रबन्ध

विक्रमार्क के सत्त्व-सम्बन्धी प्रबन्ध (B.)

1. राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी को ऋणमुक्त किया।

2. हूणवंश में समुत्पन्न, गन्धर्वसेन के पुत्र राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी को ऋणमुक्त किया।

1. विक्रमादित्य नामक (एक मनुष्य), जिसके वंश में कोई नहीं रह गया था, अपनी माता के साथ उज्जयिनी में रहता था। उसका एक भट्टमात्र नामक मित्र था। एक बार विक्रमादित्य द्रव्यार्जन के लिए माँ से पूछकर अपने मित्र के साथ चला। हीरे की खान को याद करके उसी जगह के लिए प्रस्थान किया। क्रमशः रोहण-पर्वत पर गया और वहीं पर रात में एक गाँव में ठहर गया। प्रातःकाल खनित्र लेकर रोहण-पर्वत पर गया। वहाँ का नियम है कि तीनों शाम 'हा दैव' कहकर हाथ से सिर ठोका जाता है। इसलिए भट्टमात्र ने सोचा कि यह तो सत्ववान् है, किसी अपूर्व वार्त्ता के बिना 'हा दैव' नहीं कहेगा। इसलिए उसने कहा, 'देव ! उज्जयिनी से एक आदमी आया है, उसने तुम्हारी माता का मृत्यु-संवाद कहा है।' यह सुनकर विक्रमादित्य ने 'हा दैव' कहकर हाथ से कुदाल फेंक दिया। उसी की चोट से एक दिव्य रत्न प्रादुर्भूत हुआ। विक्रम ने जब उसे उठाया तो मित्र ने कहा, 'घर पर कुशल है, कोई नहीं आया है।' 'तो फिर झूठ क्यों बोले ?' फिर इस श्लोक को पढ़ते हुए विक्रमादित्य ने हाथ से (उस रत्न को) दूर फेंक दिया :

(3) "दीनों के दारिद्र्य-रूपी व्रण को आरोग्य करनेवाले इस रोहण-पर्वत को धिक्कार है जो अर्थियों को 'हा दैव' कहने पर दान देता है।"

यह कहकर जैसा आया था, वैसे ही चला गया। फिर उज्जयिनी में आया तो डुग्गी बजती सुनी। किसी आदमी से पूछा, 'इसका कारण क्या है ?' उसने कहा, 'इससे राजा खोजा जा रहा है ?' 'सो क्या ?' 'यहाँ जो राजा होता है वह रात में मर जाता है।' विक्रम ने कहा, 'मैं होऊँगा।' उसके ऐसा कहने पर प्रधानों ने उसे राज-पद पर स्थापित किया। विक्रमादित्य ने सन्ध्या होने के बाद नैवेद्य

बनवाये। पुष्प आदि सभी सामग्री सज्जित की। शय्या के पास पुष्पगृह बनाया, वहाँ नाना प्रकार के नैवेद्य उपहार करके स्वयं तलवार खींचकर जागता रहा। इधर खिड़की के छेद से धुआँ निकला, फिर क्रमशः 'बर्बर' नामक बेताल प्रकट हुआ। नैवेद्य और विलेपन का इच्छा-पूर्वक उपभोग किया। फिर सन्तुष्ट होकर विक्रम को बुलाकर बोला, 'राजन्! तेरी भक्ति से मैं सन्तुष्ट हुआ। तू राज्य कर। पर यह (नैवेद्यादि) प्रतिदिन देना।' उसके चले जाने पर राजा सोया। प्रात:काल राजा को ले जानेवाले आये। उन्होंने राजा को जीवित देखकर हर्ष-कोलाहल किया। प्रधान पुरुषों ने राजा का अभिषेक किया। रोज-रोज नैवेद्य बनाया जाने लगा। एक बार राजा ने बर्बर से पूछा कि 'तुम कौन हो?' उसने कहा, 'इन्द्रसेवक।' 'तो फिर मेरी बात मानकर इन्द्र से पूछकर कल बताना कि विक्रम की आयु कितनी है?' उसने दूसरे दिन बताया कि 'सौ वर्ष। न अधिक न कम।' 'तो फिर इन्द्र से कहकर मेरी (आयु) दो वर्ष बढ़वा देना।' उसने कहा, 'इन्द्र के किये भी आयु इससे अधिक नही होगी।' 'तो दो वर्ष कम करा दो।' 'यह भी नही हो सकता।' यह सोचकर दूसरे दिन (राजा ने) नैवेद्य नहीं कराया। वह बेताल क्षुधित होकर राजा से बोला, 'तुम अपनी बात से टल गये। अतः हथियार उठाओ।' हथियार लेने पर राजा ने उसे पृथ्वी पर गिराकर उसके कण्ठ में अपना पैर रखा। उसने कहा, 'मारो मत, मैं तुम्हारा दास हूँ। स्मरण करते ही आ जाऊँगा।'

2. एक बार अग्निक के बेताल ने कहा, 'तुम नारी हृदय को तो जानते हो पर चरित्र को नही।' एक बार इस बात की खोज मे राजा चला। वहाँ एक ब्राह्मण था, उसकी लड़की कुमारी थी। राजा ने भोजन के लिए ब्राह्मण से माँगा। कुमारी ने··· (यहाँ मूल प्रति मे, जान पड़ता है, कुछ पाठ छूट गया है।)···सोचा, मृत्यु उपस्थित है। सेवा (करने को) कहा है। तुम्हारा किंकर हूँ। मुझे क्यों मारते हो? उसने (स्त्री) कहा, 'तो नीचे मुख करके गिरो।' फिर उस (स्त्री) ने दधि का भाण्ड आगे कर दिया। मुख को खुरच (?) भी दिया। उस आदमी ने पूछा, 'यह क्या बात है?'···स्वस्थ होने पर वह आदमी चला गया। उस स्त्री ने कहा, 'तुम स्त्री के हृदय को तो जानते हो, पर चरित्र नही जानते।' राजा स्त्री-हृदय की परीक्षा करके अपने राज्य मे गया।

3. इधर एक दिन की बात है कि नगर में राज के मान्य दन्तक नामक सेठ ने गृह बनाने के लिए जमीन ली। कारीगरों को बुलाकर कहा, 'ऐसा घर बनाओ जिसमें सात पीढ़ी खाये-पीये। द्रव्य यथेष्ट दूँगा।' दैवज्ञों को बुलाकर शुभ मुहूर्त में नींव रखी। अच्छी ईंटों तथा सुन्दर लकड़ी से सप्तखण्ड मकान, राजभवन के समान बनवाया। बन जाने पर सूत्र-धारों (कारीगरों) ने कहा, 'यह ऐसा बना है जिसमे धनिक के भाग्य से सुवर्ण-पुरुष गिरेगा।' उसने उन कारीगरो का सत्कार किया। ज्योतिषियो ने मुहूर्त दिया। गृह-प्रवेश के समय राजा तक सभी लोगों को भोजन कराया। ब्राह्मणों को दान दिया। बाद में जब रात को सोया तो 'गिरता हूँ' इस प्रकार का शब्द सुना। सोचा कि यह नये गृह मे···दूसरी बोल में भी सुना, 'गिरता

हूँ।' तब नौकरों से बोला, 'अरे, उठो, बाहर निकल जाओ। यह गिरेगा।' जब उठा तो 'गिरता हूँ' 'यह शब्द सुनकर बाहर निकल गया। कुपित हो राजा के पास गया और बोला, 'महाराज, तुम्हारे राज्य के कारीगरो और दैवज्ञों ने मुझे ठग लिया।' 'सो कैसे ?' उसने सारा हाल कहा। राजा ने कारीगरो से पूछा, (उन्होने कहा—) 'महाराज, इस (प्रासाद) मे कोई दोष नही है। यह ऐसा है जिसमे सुवर्ण पुरुष गिरता है। '···वास करते हो या नही ? उसने कहा, 'महाराज, मैं तृप्त हुआ।' राजा ने द्रव्य दिया। रात में आरती करने के बाद उसमे गया। शय्या के पास खड्ग खीचकर पड़ा रहा। 'गिरता हूँ' इस प्रकार तीन स्वर सुने। कहा, 'गिरो।' शय्या के आगे सुवर्ण-पुरुष गिरा। प्रातःकाल राजा ने दन्तक को और सबको भी दिखाया। पछताते हुए उस (दन्तक) ने कहा, 'महाराज, जैसा आपका सत्व (साहस) और भाग्य है, वैसा किसी का नही। सत्व से ही सुवर्ण नर की प्राप्ति हुई है।

इस प्रकार श्री विक्रमादित्य का सत्व-प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

दरिद्र खरीदने का प्रबन्ध (B, BR)

4. एक बार सब देश-देशान्तर मे यह बात फैल गयी कि उज्जयिनी में सबकुछ बिक जाता है। एक राजा ने कहा, 'मैं ऐसी चीज भेजूँ जिसे कोई न ले।' उसने लोहे का दरिद्र-पुरुष बनवाया। उसके एक हाथ मे था सूर्य, दूसरे मे झाड़। ऐसा करके एक व्यापारी को दिया। 'उज्जयिनी मे जाकर सब चीजें बेचकर इसे दिखाना। कीमत एक लाख बताना। यदि कोई न ले तो राजा की ड्योढ़ी पर आवाज देकर नगर को दोष देना और लौट आना।' उसने वहाँ जाकर सबकुछ बेचा। व्यवहारियो ने पूछा कि 'इस गाड़ी मे क्या है ? दिखाओ।' उसने दरिद्र-नर को दिखाया। 'यह क्या है ?' नाम बताने पर सब कोई आँख बन्द करके खिसकने लगे। उसने कहा, 'एक लाख देकर इसे ग्रहण करो। नगर पर दोष न आने दो।' उसके ऐसा कहने पर भी लोग दूर से निकल गये। उसने राजा के द्वार पर आकर कहा, 'हमारा दरिद्र-नर कोई नही ले रहा है। पुर को दोष देकर जा रहा हूँ।' राजा ने बुलाया। वह दरिद्र का पुतला लेकर आया। सभा के सभ्य लोगों ने आँखें बन्द कर ली। राजा ने एक लाख देकर खरीद लिया। भाण्डागार मे रखवा दिया। इधर रात के प्रथम प्रहर में एक पुरुष आकर राजा से बोला, 'महाराज, मैं जा रहा हूँ।' 'तुम कौन हो ?' 'गजाधिष्ठाता।' 'क्यों जाते हो ?' 'दरिद्र खरीदने से। जहाँ दरिद्र है वहाँ हाथी कहाँ ?' 'तो जाओ।' उसके चले जाने पर दूसरे प्रहर मे एक स्त्री ने कहा, 'महाराज, जा रही हूँ।' 'तुम कौन हो ?' 'श्री'। 'क्यों (जाती हो)।' 'दारिद्र्य खरीदने पर श्री कहाँ ? मेरा दल जा रहा है।'. 'शीघ्र जाओ।' इसके बाद चतुर्थ प्रहर में एक पुरुष आकर बोला, 'महाराज, विदा दो।' 'तुम कौन हो ?' 'साहस पुरुष।' राजा बोला, 'तुम मत जाओ।' 'आपने दारिद्र्य क्यों खरीदा ? जहाँ यह है वहाँ साहस कहाँ ?' राजा ने कहा, 'जब साहस था तभी तो

खरीदा। जिनके पास नहीं था उन्होंने क्यों नहीं खरीदा? जाओगे तो तब जब विक्रमादित्य मर जायगा।' यह कहकर छुरी निकाल ली। साहस पुरुष ने कहा, 'महाराज, ऐसा मत करो। मेरे रहने पर मेरे सभी साथी रहेंगे।' प्रात.काल राजा ने दरिद्र के पुतले को सभा में मँगाकर रात का वृत्तान्त बताकर दूर कर दिया।

इस प्रकार दरिद्रक्रय का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

बीकम जुआड़ी का प्रबन्ध (B)

5. इसी प्रकार एक बार राजा अन्धकार-वस्त्र (काला) धारण करके नगर में घूमते-घूमते एक दिव्यरूपा स्त्री को देखकर बोला, 'देवि, कहाँ जा रही हो?' उसने कहा, 'तुम्हारे ही पास।' राजा ने कहा, 'तो चलो।' वह आगे-आगे और राजा पीछे-पीछे चला। एक प्रासाद में गये। वहाँ पहरा देनेवाली स्त्रियाँ तलवार खींचकर बैठी थी। पर चित्रलिखित की नाईं। वहाँ कुत्ते भी थे, पर वे भी वैसे ही। वह भीतर घुसी। राजा भी घुसा। वह उसे (राजा को) पंचम-भूमि में लिवा ले गयी। वहाँ स्नान-सामग्री के साथ राजा को स्नान कराया। वह छलपूर्वक राजा को वंचित करके भीतर पलंग पर बैठ गयी। राजा द्वार पर आकर हक्का-बक्का होकर खड़ा हो गया। दो पलंग देखकर उसे सन्देह हुआ कि किस पलंग पर जाऊँ। वहाँ दो स्त्रियाँ बैठी थी। राजा को सन्देह-परायण देखकर मालकिन ने कहा, 'अरे! यह किस नर-पशु को ले आयी है? इसे बाहर निकालकर किसी पुरुष को ले आओ।' दासी उठकर राजा को बाहर कर आयी। राजा सोचने लगा—'भला मुझे छोड़कर किस सहृदय को ले आयेगी?' इसके बाद चतुष्पथ में घूमने लगा। इधर वीकम नामक जुआड़ी जुआ से उठा। कान्दविक (भड़भूजा?) का घर बन्द था। बाहर से बोला, 'द्वार खोलो।' 'द्वार तुम्हारे लिए कौन खोले? मेरा त्रगंटक लेना चाहते हो क्या?' उसने कहा, 'बड़ा भूखा हूँ।' 'पैसा दो। बाहर ही रहो, वहीं अन्न देता हूँ।' उसने कुछ द्रव्य दिया। कान्दविक ने कहा, 'कैसे लोगे? बर्तन दो।' इस पर उसने कहा, 'लेकर चला जाऊँगा। इसलिये खप्पर में दो।' उसने दिया। लेकर प्याऊ की ओर जा रहा था, तब तक उस चेरी को जाती देखकर पूछा, 'अरी दासी, कहाँ जा रही है?' उसने कहा, 'तुम्हीं को लाने के लिए।' 'तो भोज्य ग्रहण कर।' उस दासी ने कहा, 'छोड़ दो, वहाँ भी भोजन होगा।' उस दासी के साथ चला। राजा पीछे लगा। वहाँ ले जाकर उसने नहवाया, वस्त्र दिया और भोजन कराया। राजा के देखते-देखते वह (दासी) उसकी आँख बचाकर पलंग पर बैठ गयी। राजा के चिन्तातुर होने पर वह भीतर प्रवेश करके एक पलंग पर जा बैठा। वह स्त्री उठी। पान लेकर आगे का अंश काटकर दिया, उसने भी वृन्त काटकर फिर से दे दिया। उस स्त्री ने कहा, 'सोओ।' वह पलंग पर कुछ दृष्टि देकर सिरहाने सिर करके सो गया। राजा विस्मित हुआ। इसने स्वामिनी को कैसे पहचाना? पान ही काटकर क्यों लौटा दिया? अथवा सिरहाना कैसे पहचान गया? वह केलिप्रवृत्त हुआ। राजा अपने स्थान पर गया। प्रात.काल वीकम को खोजवाया। वह प्रपा (प्याऊ)

पर जाकर सोया था। रात की बात पूछने पर भी नहीं बताया। राजा ने शूली देने को भेज दिया। (और कह दिया कि) 'यदि रात की बात बताये तो शूली न देना। वह शूली देने को ले जाया जाने लगा। पहरेदार ने कहा कि 'राजा रात की बात पूछता है। यह नहीं बताता।' खिड़की से उस स्त्री ने यह बात सुनी। उसे देखा। दासी से बोली, 'उसके सामने दो बेल के फल तोड़ आ री।' उस (दासी) के ऐसा करने पर उसने कहा कि 'राजा के पास ले चलो, कहूँगा।' राजा ने बुलवाया। 'अरे, मैंने तो उसे दासी नहीं कहा। तूने कैसे समझा कि वह दासी है ?' उसने कहा,'महाराज, दासियों को सुगन्धित वस्तु अन्त में मिलती है। इसलिए उनके शरीर में अम्ल गन्ध होता है। इसीलिए उसे 'चेरी' कहा'। 'वहाँ के पहरेदारों को क्या किया गया है कि वे साँस भी नहीं लेते ?' 'धूप से।' 'स्वामिनी और दासी के पलगों को कैसे पहचाना?' 'महाराज ! उत्तम पुरुष का पलंग घर के दाहिनी ओर होता है।' 'पान जो काट-काटकर तुम्हारे सामने दिये, सो ?' 'इसलिए कि सिर जाने पर भी नहीं कहूँगा।' 'तो फिर क्यों कहता है ?' 'उसी ने कहा है।' 'सो कैसे ?' 'दासी भेजकर मेरे सामने ही एक बेल के फल को दूसरे फल से तोड़वा दिया है।' पलंग का सिरहाना या पादान कैसे जाना ?' 'महाराज ! पलंग के सिरहाने···' उसकी ऐसी बातें सुनकर राजा ने कहा, 'जुआ खेलना छोड़ दो। तुम सदा मेरे पुत्र की नाईं मेरे पास रहो।' उसे प्रसाद का पात्र बनाया।

इस प्रकार बीकम द्यूतकार का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

6. एक बार विक्रमादित्य जब माता को प्रणाम करने गया तो माँ ने आशीर्वाद दिया कि 'वत्स ! तुम्हें स्त्रियों जैसा साहस हो।' राजा ने कहा, 'माँ, यह साहस कैसा ? स्त्री तो तृण के समान है।' देवी बोली, 'दिखा दूँगी, बेटा ! सवेरे प्रतोली (ड्योढ़ी) के द्वार पर तम्बू लगाके रहना।' राजा वहाँ गया। इसके बाद देवी ने एक मालिन से पूछा, 'री, यहाँ मुख्य व्यवहारी कौन है ? किसके घर पर गृहिणी की रक्षा ज्यादा होती है ?' उसने कहा, 'देवि, सोमभद्र सेठ के घर।' 'तू वहाँ जा।' उसने कहा, 'फूल लेकर जाती हूँ।' 'उसकी गृहिणी से कहना कि विक्रमादित्य तुम्हें चाहता है।' उसने वहाँ जाकर निवेदन किया। उसने कहा, 'मैं तो सातवें कोठे से नीचे नहीं उतर सकती।' मालिन ने देवी से कहा। देवी ने दूसरे दिन भेजा। 'मैं रस्सी भिजवा दूँगी, उसकी सहायता से तू आ जाना।' उसने मान लिया। मालिन फूल की जगह रस्सी लेकर गयी। उसे दिया। उस स्त्री ने रस्सी को खम्भे में बाँध कर बाहर फेंका। देवी के आदेश से राजा ने उसे गुड्डर के खम्भे में बाँध दिया। पति के सो जाने पर वह अपवरक से होकर बाहर आयी। राजा के सेज में पास उतरकर राजा के पास गयी। राजा ने पूछा, 'तुम कौन हो देवि !' 'व्यवहारी की स्त्री।' राजा ने कहा कि 'सपतिका स्त्री में तो मेरी अभिलाषा नहीं होगी।' वह उसी प्रयोग से घर गयी। सोये हुए पति को मारकर फिर लौट आयी। राजा ने कहा, 'पति-घातिनी को मैं नहीं चाहता।' उस स्त्री ने कहा, 'महाराज, पर जो हो गया। अब दूसरा तो कुछ हो नहीं सकता। पर प्रातःकाल मेरा साहस देखना।'

वह घर गयी। रस्सी फेंककर चिल्लाने लगी कि 'दौड़ो-दौड़ो। किसी ने सेठ को मार डाला।' कोलाहल होने पर लोग एकत्र हुए। किसी ने न जाना कि क्या बात है। वह केश खोलकर काष्ठ चिता पर चढ़ने को तैयार हो गयी। लोग वारण करने लगे, पर वह न लौटी। इधर प्रातःकाल राजा लोक-मुख से सुनकर उसके घर आया। राजा ने उससे कहा, 'रात की बात तो उस प्रकार की है। इस समय लौटो। मेरे शरीर को सजा दो। कोई नहीं जान पायगा।' 'महाराज, ऐसा न कहें। बीड़ा दीजिए। इस व्रत का उद्यापन यही है।' राजा ने उसे विदा किया। वह पति के साथ अग्नि-प्रवेश कर गयी। राजा माता को प्रणाम करने गया। (माता ने आशीर्वाद दिया—) 'बेटा, तुझे स्त्री का साहस हो।' राजा बोला, 'देवि, यह ठीक है, मैंने देख लिया।'

इस प्रकार स्त्री-साहस प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

7. एक बार राजा विक्रमादित्य ने महारानी को बायाँ पैर धोने को पहले दिया। उसने कहा, 'यदि स्त्री-चरित्र जानते हो तो ही बायाँ पैर पहले धोऊँगी।' राजा इस बात की खोज में चला। रास्ते में किसी नगर में एक पनहारिन को देखा। उसने कहा, 'कहाँ से आ रहे हो?' राजा ने कहा,'उज्जयिनी से।' 'कहाँ जाओगे?' 'स्त्री-चरित्र की खोज में।' 'तो मेरे साथ मेरे घर आओ, जिससे यहीं बता दूँ। पर जैसा मैं कहूँ, पिछलग्गू जैसा तुम भी वैसा ही कहना।' राजा को वह घर ले गयी। सब कुटुम्ब से कहा कि 'यह मेरा भाई है, लड़कपन से ही मामा के घर पला है। आज मुझसे मिलने आया है।' राजा ने प्रणाम किया। उस स्त्री के पति को भी भगिनी-पति समझकर प्रणाम किया। उसने राजा को गौरवपूर्वक भोजन कराया। रात में उस स्त्री ने अपने पति से कहा कि 'हम दोनों का तो जीवन-भर सम्बन्ध है, पर आज भाई मिला है। एकान्त में जाकर इसके पास घर की सुख-दुःख की बात सुनूँ। दिन में बोलने की भी फुरसत न मिली।' उपवरक के भीतर राजा की शय्या थी। राजा बहनोई से बात करके सोने गया। वह स्वयं शय्या छोड़कर भीतर आयी। पति के आगे बोली''''जनापवाद न हो।' उस (राजा?) ने कहा, 'मेरे रहते जनापवाद कैसा?' उस स्त्री ने कहा, 'ऐसा ही करो।' वैसा ही करने के बाद बातचीत के अनन्तर उसने कहा, 'मेरी इच्छा पूरी करो।' राजा ने कहा, 'तुम मेरी बहन हो।' उसने कहा, 'क्यों, तुम ठहरे राही; कौन भाई, कौन बहन?' उस स्त्री (राजा?) ने कहा, (तुमने) 'जबान से कही है। अब हम अकृत्य (कैसे) करें?' 'नहीं मानोगे तो देखो जो होता है।' उसने चिल्लाना शुरू किया—'दौड़ो, दौड़ो, जल्दी करो। दरवाजा खोलो।' राजा ने विनष्ट बात को सोचकर भी कहा, 'मारो मत, जो कहोगी सो करूँगा।' 'तो नीचे गिरके साँस बन्द कर लो।' उस (स्त्री) ने पैर से आघात करके पहले के रखे हुए पुष्पगुच्छ को गिरा दिया। राजा का मुँह खुरच दिया। तब तक पति ने द्वार खोला। दीपक जलाया। लोगों ने पूछा, 'क्या है?' 'मैं पापिष्ठा क्या जानूँ? मेरे इस भाई को पानीय रस हो गया है। इसे अचानक पेट में व्यथा हो गयी। मैं भीत होकर चिल्लायी।' जल ले आकर मुँह

धोया। शकटिका (गाड़ी) में रखकर पेट सेंका। राजा साँस ही नहीं लेता था। भीतर से उसने सब किसी को निकाल दिया। 'क्षण-भर तक सुखासिका (आराम देना) है, निर्जन होने पर इसे नींद आयेगी।' ऐसा कहके जब लोग चले गये तो दरवाजा बन्द करके बोली, 'यह है स्त्री चरित्र ! समझे या नही ?' राजा ने अपना कुल आदि तथा आगमन का कारण बताया। प्रात.काल विदा लेकर उस स्त्री को अँगूठी का रत्न देकर अपने नगर मे गया। पत्नी को वृत्तान्त बताया। उसने कहा, 'बायाँ चरण कैसे देते हो ?' राजा ने कहा, 'अब से नही दूँगा।'

इस प्रकार स्त्री-चरित प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

देह-लक्षण का प्रबन्ध

8. एक बार राजा राज-दरबार मे जा रहा था, इसी समय एक पण्डित ने उसे देखा। उसे देखकर पण्डित ने सिर हिलाया। राजा दरबार करके धवल-गृह मे गया। किसी ने कहा, 'कोई देशान्तरीय पण्डित चौराहे पर सामुद्रिकशास्त्र की पुस्तकों को जला रहा है।' राजा ने बुलवाया (पूछा—) 'क्यो जला रहे हो ?' 'महाराज, मैंने जन्म से लेकर इसी का अभ्यास किया है। तुम्हारा शरीर देखकर इसमे विरक्ति हो गयी है। तुम्हारे शरीर में ऐसा कोई लक्षण नही है जिससे कुछ कल्याणमय काल आने की सम्भावना हो। परन्तु तुम राजराजेश्वर हो।' राजा ने कहा, 'फिर से मेरे सारे शरीर के लक्षणों को देखो।' देह देखकर उसने फिर से मुँह मोड़ लिया (बिचकाया ?)। राजा ने पूछा, (इस पर पण्डित बोला—) 'महाराज ! क्या बताऊँ, कुछ भी नही देख रहा हूँ।' 'फिर से कुछ गुप्त या प्रकट बात स्मरण करो।' उसने कहा, 'यदि बायी कुक्षि में कर्बुर मन्त्र है तो सब-कुछ है। पर यह मैं नही जानता।' महाराज ने कहा, 'जानोगे।' छुरी लेकर राजा ने जो चीरा तो उसने हाथ पकड़कर कहा, 'महाराज, सब लक्षण हैं।' 'सो कैसे ?' 'यदि सत्व है तो सब-कुछ है। महाराज, मैं भिखमंगा हूँ, मेरी बात से ऐसा करने लगे ! कहा भी है— सत्व मे सबकुछ रखा हुआ है।' राजा ने उसे पुरस्कार देकर विदा किया।

इस प्रकार देह-लक्षण का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

9. एक बार विक्रमादित्य ने भट्टमात्र से कहा, 'अजी, 'मनि-मनु' किसे कहते हैं ?' 'महाराज, दिखा दूंगा। नगर के बाहर पधारिए।' दोनो ही नगर के बाहर गये। उसी समय एक काष्ठ भारवाहक को देखा। भट्ट ने कहा, 'महाराज, इसके ऊपर आपका चित्त कैसा है ? यह आपको कैसा लगता है ?' 'अच्छा नही।' भट्ट ने उससे कहा, 'अरे तेरा काठ कौन लेगा ? आज राजा मर गया।' उसने कहा, 'तुम्हारी जबान मे घी-शक्कर (तुम्हारी जिह्वा को बलि मिले) ! आज विशेष भाव से मेरी लकड़ी महँगे दाम पर बिकेगी। बहुत-से लोग चितारोहण करेंगे।' राजा और भट्ट आगे बढ़े। आगे एक महरिया (अहीरिन) आ रही थी। भट्ट ने कहा, 'अरी, भीतर कहाँ जा रही है ? आज राजा मर गया है, तेरा दही कौन खरीदेगा ?' उसने उसी समय गोलिका (दही का बर्तन) छोड़ दी और रोने लगी।

भट्ट ने पूछा, 'राजा ने तुझे क्या दिया था ?' 'कुछ भी नहीं। वह पृथ्वी का आधार था।' राजा की ओर देखकर भट्ट ने कहा, 'यह आदमी पीछे से आया है, इसने राजा का कल्याण कहा है।' यह प्रसन्न हुई। राजा ने उसे अँगूठी का रत्न देकर भेजा। इसलिए 'मन' में 'मन' होता है। (भट्टमात्र ने कहा) राजा अपने घर गया।

इस प्रकार 'मनि-मनु' सम्बन्धी प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

10. एक बार राजदरबार में जाते समय राजा ने एक ब्राह्मण को कण चुनते देखकर कहा,

(4) 'अपने पेट भरने मे भी जो असमर्थ हैं उनके पैदा होने से क्या लाभ ?'

ब्राह्मण —'जो सुसमर्थ होकर भी परोपकारी नहीं है उनसे भी कुछ लाभ नही है।'

(5) 'उनसे भी कुछ लाभ नही' यह सुनकर महाराज देवदेव विक्रमादित्य ने सौ हाथी तथा दो कोटि उत्तम सुवर्ण दिये।

विक्रमादित्य के पुत्र विक्रमसेन-सम्बन्धी प्रबन्ध

11. इसके अनन्तर जब विक्रमादित्य का स्वर्गवास हुआ तो विक्रमसेन कुमार के राज्याभिषेक के समय पुरोहित ने आशीर्वाद दिया कि 'महाराज, तुम विक्रमादित्य से भी अधिक होगे। उस समय राज्य की अधिष्ठात्री देवियों से अधिष्ठित सिंहासन में की चार पुतलियाँ हँस पड़ीं। राजा ने पूछा, 'हँसती क्यों हो ?' वे बोलीं, 'महाराज, उसके साथ समानता तो हो ही नहीं सकती, अधिकता कहाँ से होगी ?'

1. पहली बोली, "तुम्हारा पिता (अपूर्व समाचार कहनेवाले को) वार्ता सुनकर पाँच सौ दीनार दिया करता था। यह सुनकर 'खापरका' नामक चोर ने पाँच सौ दीनार माँगे। (एक वार्ता भी कहो—)

'महाराज! गन्धवह श्मशान के तीर पर पाताल विवर है। उस विवर (बिल) में देवी हरि सिद्धि के द्वारा फेंके हुए दीप को पड़ते हुए मैंने देखा। उसी के पीछे-पीछे मैं भी उसमें कूद पड़ा। पाताल मे एक दिव्य महल देखा। उसी के बगल मे एक आदमी दिखायी दिया। उससे मैंने पूछा कि 'तुम यहाँ किस वास्ते (खड़े हो ?)' उसने कहा, 'इस महल में शापभ्रष्टा देवी रहती है। जो इसमें झाँप देता है, वह उसका सौ वर्ष तक पति होता है। इसलिए मैं उसे पाने की इच्छा से हूँ।(G. पर साहस नहीं है।) उसके ऐसा कहने पर राजा ने उसे 500 दीनार दिये और उसी खर्पर के दिखाये मार्ग से वह शीघ्र ही जाकर उस कड़ाही मे कूद पड़ा। उस स्त्री ने उसे जिलाया। जब वह राजा को वरण करने लगी तो राजा ने कहा, 'इस आदमी को वरण करो। मेरा काम पूरा हो गया।' ऐसा कहकर परोपकार करके अपने नगर मे आया। ऐसा जो परोपकारी था (G. उससे अधिक यह क्या होगा!)"

2. दूसरी ने कहा, "एक बार काशी से दो ब्राह्मण आये। राजा ने अपूर्व वार्त्ता पूछी। उन दोनों ने कहा, 'हमारे देश में पाताल-विवर है। वहाँ एक अन्धा राक्षस रहता है। हमारा स्वामी यशोवर्मा वहीं के एक तेल की कड़ाही में झाँप देता है (G. देकर अपने मांस से राक्षस को वारण कराता है।) वह राक्षस फिर उसे जिला देता है। प्रतिदिन रात को सात अपवरक का सुवर्ण बनाता है। राजा भी प्रातःकाल (उस सोने को) दान कर देता है।' यह सुनकर उन दोनों ब्राह्मणों को एक सहस्र दीनार दिये। राजा ने वहाँ जाकर कड़ाह में झाँप दिया। राक्षस ने खाया और जिलाया। राक्षस के अन्ध शाप का अन्त हुआ। आँखों से देखकर विक्रम से बोला, 'तुम्हारे साहस से सन्तुष्ट हूँ।' 'पर यदि सन्तुष्ट हो तो इस राजा को बिना कड़ाह में झाँप दिये ही सुवर्ण देना।' ऐसा कहकर परोपकार करके स्वस्थान को गया। सो भला कैसे तुम विक्रम से अधिक होगे ?"

3. तीसरी ने कहा, "एक बार किसी ने कहा, 'महाराज, तुम पर-काय-प्रवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेश करनेवाली) विद्या नहीं जानते।' राजा ने कहा, 'कौन जानता है ?' 'श्रीपर्वत पर भैरवानन्द है, वह जानता है।' राजा (उस) गंजे सिर-वाले कुम्हार को लेकर वहाँ गया। योगी मिला, उसने शुश्रूषा से प्रसन्न होकर कहा, 'विद्या ग्रहण करो।' (राजा बोला—) 'पहले मेरे मित्र को दीजिए।' उसने कहा, 'यह तो कुपात्र है, विद्या के योग्य नहीं है।' राजा ने आग्रह करके (उसे विद्या) दिलायी। राजा अवन्ती में गया और दरवाजे पर ठहरकर किसी आदमी से नगर की खबर पूछी। उसने कहा, 'राजा (विक्रमादित्य) का पट्ट हस्ती आज मर गया है।' राजा ने अन्तःपुर की परीक्षा के लिए मित्र से कहा, 'अजी, अगर मेरे शरीर की रक्षा करो, तो मैं परीक्षा करूँ।' उसने कहा, 'करूँगा।' शरीर को एकान्त स्थान में रख, उसे पहरे पर रखकर, हाथी में प्रवेश किया, हाथी को सजीव कर दिया। वह (हस्ती) अपने पैरों नगर के भीतर गया। इधर मित्र ने सोचा—'इस मुण्ड शरीर को छोड़-कर राजा के शरीर में प्रवेश करके भोग भोगूँ।' वह अपना शरीर छोड, राजा के शरीर में प्रवेश कर नगर में आया। 'राजा के आगे पर हाथी जी गया'—यह देख-कर इनाम दिये गये। हाथी ने सोचा—'यह पापी मुझ पर चढ़ेगा'— यह सोचकर खम्भा उखाड़कर बाहर जाके प्राणत्याग किया। इधर शिकार करते समय एक शिकारी तोतों को मार रहा था। राजा का जीव एक तोते के शरीर में प्रवेश कर गया। वह तोता बहेलिये से बोला, 'अरे, तोतों को मत मार। मुझे ले। यदि द्रव्य की स्पृहा है तो नगर में चल। पर मैं जहाँ कहूँ, वहाँ बेचना।' सब लोग तोते को माँगने लगे, पर बहेलिया नहीं बेचता। शुक भी नहीं बोलता। पटरानी की दासी ने माँगा। बहेलिये ने पूछा, 'दे दूँ ?' 'हाँ, दे दो।' दासी से बहुत-से दीनार लेकर उसको दे दिया। महारानी तोते को देखकर आकृष्ट हुई। सोने के पिंजड़े में रखा। राजा अन्तःपुर में आया। रानी ने उसे देखकर खिन्न होकर कहा, 'महाराज, तुम्हारे देशान्तर जाने पर मैंने सोचा था कि अगर महाराज कुशल से लौटे तो तब से एक मास ब्रह्मचर्यपूर्वक रहूँगी। फिर इसके बाद कुलदेवी की पूजा करके नियम भंग

करूँगी ।' वह लौट गया। लोग सोचने लगे—'राजा दूसरा ही कैसे हो गया ? देह तो वही है, पर अच्छी तरह कुछ नही जाना जाता।' इधर शुक ने रानी को संस्कृत और प्राकृत काव्यों से इस प्रकार प्रसन्न किया कि उसने कहा, 'तुम्हारे जीने से ही जीती हूँ।' इधर देवी ने शुक को बुलाया। उसने कहा, 'देवि, बिल्ली से डरता हूँ।' देवी ने कहा, 'यदि मरोगे तो तुम्हारे साथ ही मैं भी मरूँगी।' एक बार शुक ने परीक्षार्थ मरी हुई छिपकली को देखकर शुक-शरीर त्याग करके उसमें प्रवेश किया और दीवाल पर (छिपकली के रूप मे) चढ़ गया। शुक को मरा देख देवी उसी के साथ चितारोहण को तैयार हुई। राजा ने मना किया। रानी ने कहा, 'यदि तोता जी जाय तो जीयूँगी, नहीं तो नहीं।' राजा अपवरिका में अपना शरीर छोड़कर शुक के शरीर में प्रविष्ट हुआ। इधर विक्रमादित्य छिपकली का शरीर छोडकर अपना शरीर धारण करके बाहर आया। शुक जी गया, पर देवी द्वारा दृष्ट होकर भी सुखी नही हुआ। राजा को देखकर (रानी) तत्काल उठी। राजा ने शुक से बातें की। वह बोला, 'महाराज, मेरा मुँह नहीं देखना चाहिए। मुझे बायें पैर से मारके छोड़ दीजिए।' राजा ने कहा, 'तुम्हारे सान्निध्य से मैंने देवी की परीक्षा ली है।' वह शुक-शरीर ब्राह्मण हुआ।

(6) ब्राह्मण को पहरे पर रखकर राजा ने विद्याबल से अपने हाथी के शरीर मे प्रवेश किया। ब्राह्मण राजा के शरीर मे प्रवेश कर गया। फिर वह क्रीड़ा-शुक हुआ। फिर अपने जीव को जब राजा ने छिपकली के शरीर मे प्रवेश कराया तो देवी ने समझा कि उसकी मृत्यु हो गयी। तब वह ब्राह्मण शुक के शरीर को जीवित करने गया, तब तक श्री विक्रमादित्य ने अपना शरीर पाया।*

ऐसा जो परोपकारी हो उसके समान तुम कैसे होगे ?"

4. चौथी ने कहा, "एक बार विक्रमादित्य ने उत्तम महल बनवाया। राजा वहाँ गया। उस पर दो चटक पक्षी बैठे थे। चटक ने कहा, 'अच्छा मकान है।'

* G. संज्ञक संग्रह में यह कथा कुछ भिन्न रूप से लिखी पायी जाती है। जैसे :

तीसरी ने कहा, "एक बार विक्रमादित्य अपने नगर के रहनेवाले खल्वाट कुम्भकार के साथ देशान्तर गया। वहाँ परकायप्रवेश विद्या को जाननेवाला एक योगी मिला। राजा ने उसकी सेवा की। सन्तुष्ट होकर वह विद्या देने लगा। राजा ने कहा, 'पहले मेरे मित्र को दो।' उसने कहा, 'वह तो अयोग्य है।' राजा ने आग्रह करके उसे भी दिलवायी।

अवन्ती मे जाकर राजा राज करने लगा। एक बार पट्ट अश्व मरा। विद्या-परीक्षा के लिए राजा ने उस घोडे मे अपना जीव रखा। कुम्भकार ने भी अपना जीव राजा के शरीर में। कुम्भकार राज करने लगा। घोड़ा मरवा देने की सोची। राजा का जीव पहले से मरे हुए एक शुक के देह मे प्रविष्ट हुआ। शुक भी सोमदत्त सेठ की स्त्री (जिसका पति परदेश गया था) काम-सेना के घर गया। वह उसके चातुर्य से प्रसन्न हुई. रानी के समीप न जाती। फिर सेठ आया। वह रानी के पास गयी। उसने न आने का कारण पूछा। उसने शुक के चातुर्य को कारण कहा। रानी ने शुक माँगा। शुक देकर रानी प्रसन्न की गयी। राजा ने एक बार शुक होकर रानी के स्नेह की परीक्षा के लिए छिपकली के शरीर मे →

उसकी स्त्री ने कहा, 'स्त्री-राज्य में जैसा लीलादेवी का घर है, यह वैसा ही है।' राजा ने यह बात सुनी। राजा वहाँ जाने को उत्सुक हुआ। किन्तु स्थान को जानता नहीं था। राजा को चिन्तित देखकर भट्टमात्र उसका आशय समझ उस स्थान को देखने की इच्छा से चला। उसके मार्ग मे लवण-समुद्र मिला। उसे पार कर आगे जाकर रात को मदन के मन्दिर में ठहरा। अर्ध-रात्रि को दिव्यालंकार-विभूषित सखीवृन्द आया, जिसका आगमन घोड़ों की हिनहिनाहट से पहले ही सूचित हो गया था। उस झुण्ड की स्वामिनी ने कामदेव की पूजा की। जब वे लौटने लगी तो उनमें से एक के घोड़े की पूँछ से चिपटकर वह वहाँ गया। दासियों ने देखा। उसे स्वामिनी के पास ले गयीं। उसे स्नान आदि कराया। रात मे वहीं सोया। सोती हुई वह बोली, 'मेरा पति होगा विक्रमादित्य, अथवा वह जो मुझे चार शब्दो से जगा देगा।' यह कहकर सो गयी। उसने सोचा,—'क्या यह चार शब्दो से भी नहीं जगेगी ? तो मैं ही इसे जगाऊँगा।' शब्द किये। वह न जगी। तब पैर का अँगूठा चापने लगा। तब पैर से आहट करके वहाँ फेंका जहाँ विक्रमादित्य सोया था। राजा ने पूछा, 'यह क्या बात है ?' उसने सारा हाल कहा। राजा अग्निक बेताल पर आरोहण करके वहाँ गया। बेताल छिप रहा। राजा को दासियाँ वहाँ ले गयीं। उसने उपचार किया। उसके रूप को देखकर उसके प्रति अनुरक्त हुई। पर शयन करते समय पहले ही जैसी प्रतिज्ञा की।

A. राजा ने दीपस्थ बेताल से कहा, 'हे दीप, आज तो कुवास हुआ। जिसके घर आया वह तो बोलती ही नही। इसलिए तुम कोई कथा कहो।' उसने कहा, 'महाराज, कोई ब्राह्मण है जिसकी पुत्री चार वरो को दी गयी। एक को पिता ने, दूसरे को माता ने, तीसरे को मामा ने और चौथे को भाई ने। इस प्रकार चारों को दी गयी। चारों आये। विवाद होने पर लड़की ने चितारोहण किया। एक चिता में उसी के साथ प्रवेश कर गया। एक देशान्तर को गया। एक हड्डी लेकर गंगा में गया। एक कुटिया बनाकर वहीं रहकर श्मशान की रक्षा करने लगा। देशान्तर जानेवाले ने संजीवनी विद्या सीखी। चारों इकट्ठे हुए। देशान्तरी ने संजीवनी विद्या से उसे जिलाया। फिर झगड़ा हुआ। 'हे राजन्, वह चारो में से किसकी पत्नी होगी ?' राजा ने कहा, 'मैं नही जानता। तुम्हीं कहो।' उसने कहा, 'जो चिता के साथ उठा, वह तो भाई हुआ; जो अस्थि ले गया, वह पुत्र। जिसने जिलाया, वह पिता और जिसने भस्मरक्षा की, वह पालक होने के कारण पति हुआ।'

B. दूसरे प्रहर में राजा ने ताम्बूल-स्थगिका (पानदान !) से कहा, 'री, कोई

→ प्रवेश किया। रानी ने चिता पर आरोहण करना शुरू किया। राजा के जीव ने शुक को जिलाया। तब वह बोला। शुक ने सारा वृत्तान्त रानी से कहा। रानी ने कुम्भकार का सत्कार किया। सन्तुष्ट होकर अपनी विद्या दिखाने के लिए उसने शुक बकरे के देह में अपना जीव निवेश किया। राजा अपने शरीर में आया। बकरा तो मन में कांपने लगा। राजा ने कहा, 'मत डरो, मैं तुम्हारे समान नहीं हूँ। दयालु हूँ। तुम सुखपूर्वक जिओ, चरो, पानी पियो।' फिर उसके समान तुम कैसे होगे ?"

कथा कह।' वेतालाधिष्ठित होकर उसने भी कहा, "किसी नगर में एक विधवा ब्राह्मणी थी। जार से उसे एक पुत्री हुई। रात मे उसे त्याग करने के लिए वह बाहर हुई। इधर वहीं कोई आदमी शूल द्वारा विद्ध होकर जीवित ही (छटपटा) रहा था। उसके पैर से टकराया। उसने कहा, 'कौन पापी है, जो दुःखी को भी दुख देता है!' उसने कहा, 'उसे क्या दु:ख है?' 'देह-पीड़ादिक एक और अनपत्य दूसरा।' चोर ने कहा, 'तुम भी कहो, तुम कौन हो? यहाँ कैसे आयी हो?' उसने भी अपना चरित्र कहा। शूलस्थ पुरुष ने कहा, 'मुझसे इसका विवाह कर दो। मैंने नगर से चुराकर जो धन पृथ्वी में गाड़ रखा है, उसे इसके क्रय मे ग्रहण करो।' ब्राह्मणी बोली, 'तुम तो मरोगे। पुत्री छोटी है, पुत्र कहाँ से होगा?' उसने कहा, 'जब इसका ऋतुकाल आये तो किसी को द्रव्य देकर पुत्रोत्पत्ति करा लेना।' उसने सब किया। जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो माँ ने प्रच्छन्न भाव से राजा के द्वार पर छोड़ दिया। किसी ने राजा से कहा। अपुत्र राजा ने उसका पालन किया और राज्य दिया। राजा मर गया। वह पिता का श्राद्ध करने गंगा में गया। जल से तीन हाथ निकले। राजा विस्मित हुआ कि किस हाथ में पिण्डदान करूँ। वेताल ने कहा, 'महाराज, कहो। वह किसके हाथ मे पिण्ड दे?' राजा ने कहा, 'चोर के। जिसने विवाह किया था और जिसका धन था।'"

C. राजा ने सुवर्णपालक से (भी कथा कहने को) कहा। उसने भी एक कथा कही, "किसी ग्राम में एक कुलपुत्र था। उसका विवाह एक दूसरे ग्राम में हुआ। उसकी पत्नी श्वशुर-गृह में नहीं जाती थी। इसलिए लोग उस (कुल-पुत्र) की दिल्लगी उड़ाया करते। एक बार लोगों ने उसे ससुराल भेजा, वह एक मित्र के साथ वहाँ ले आने के लिए गया। मार्ग में तालाब के किनारे एक यक्ष-मन्दिर था। यक्ष को नमस्कार करके बोला, 'महाराज, यदि मेरी पत्नी आयेगी तो आते समय मैं अपना सिर दूँगा।' उस यक्ष के प्रभाव से श्वसुर-कुल में उसका सत्कार हुआ। वह स्त्री होकर उसके साथ चली। रास्ता चलते-चलते नदी पार करके वह यक्ष को नमस्कार करने गया। यक्ष के आगे स्त्री-लाभ के कारण सिर काट दिया। वह न आया तो मित्र ने उसका अनुगमन किया। उसे मरा देख जनापवाद से भीत होकर उसने भी अपना सिर काट दिया। उसके भी न लौटने पर स्त्री भी गयी। दोनों को उस अवस्था में देखा। सोचने लगी—'लोग तो पहले से मुझे पतिद्वेषिणी कहते हैं, अब पतिघातिनी कहेंगे।' इसलिए वह भी सिर काटने को प्रवृत्त हुई। यक्ष ने उससे कहा, 'साहस मत करो।' उसने कहा, 'दोनों को जिलाओ।' उस यक्ष ने कहा, 'दोनो के धड़ों पर अपना-अपना सिर रखो। उसने उत्सुकतावश एक का सिर दूसरे के धड़ पर रख दिया। दोनो ही जी गये। परस्पर भार्या के लिए विवाद हुआ। एक कहता है, 'मेरी', दूसरा कहता है, 'मेरी'! वेताल ने कहा, 'अच्छा महाराज, वह किसकी स्त्री होगी?' राजा ने कहा, 'जिसका सिर उसकी स्त्री; क्योंकि (सारे) शरीर में सिर ही प्रधान है। यह बात प्रसिद्ध है।'"

D. वेताल से आविष्ट कर्पूर समुद्गक से राजा ने पूछा, 'अरे, कोई कथा

कहूं।' 'महाराज, किसी नगर में चार कलामर्मज्ञ चले। एक काठ बनानेवाला बढ़ई था, दूसरा था सोनार, तीसरा शाला-पति और चौथा ब्राह्मण। रात में किसी वन में रहे। प्रथम प्रहर में बढ़ई पहरे पर रहा। उसने काठ की एक पुतली बनायी। वह सो गया। दूसरे प्रहर में सोनार उनका पहरा देने लगा। उसने उस पुतली को गहनों से सजाया। तीसरे प्रहर में शाला-पति ने उसे दुकूल पहनाया। और चौथे में ब्राह्मण ने उसे सजीव कर दिया। प्रातःकाल उसे सजीव देखके आपस में विवाद करने लगे।' इतना कहकर उस बेताल ने कहा, 'महाराज विक्रमादित्य! वह किसकी स्त्री होगी?' (नाम सुनकर वह (लीलादेवी) क्षुब्ध हुई।)। 'मैं तो नहीं जानता, कदाचित् यह सोयी हुई स्त्री जानती हो।' (G. वे जब कुछ नहीं कहने पर हुए तो) वह बोली, (हे राजन्) *'किसकी वह पत्नी हुई?'* राजा ने कहा, 'सोनार की। पति के बिना स्त्री का शृंगार कौन करेगा?' उस (लीलादेवी) ने पूछा, 'तुम लोग कौन हो?' दीपस्थ बेताल ने कहा, 'ये तो प्रसिद्ध विक्रमादित्य हैं।' वह प्रसन्न हुई और राजा द्वारा परिणीत भी हुई। (G. उसे लेकर राजा अवन्ती में आये।) जो ऐसा था, हे महाराज, उसके समान कहाँ? अधिक होने की तो बात ही क्या है? इसीलिए हम हँसी।" यह सुनकर विक्रमसेन ने गर्व त्याग दिया।

इस प्रकार विक्रमसेन के गर्व-त्याग का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

12. इसके बाद एक बार विक्रमसेन ने पुरोहित से पूछा, 'यह काष्ठ पुत्तलिकाएँ जो मेरे पिता के इस तरह के अद्भुत गुणों का वर्णन करती है, सो फिर मेरे पिता ही लोक में प्रथम (ऐसे पुरुष) थे?' (G. सो प्रथम बार ही वे ऐसा उत्तम गुणवान् होकर अवतीर्ण हुए थे। मैं समझता हूँ पहले कोई ऐसा गुणी नहीं था।) पुरोहित बोला, 'राजन्, यह अनादि भूमि रत्नगर्भा है। (चतुर्युगी अनादि हैं।) प्रत्येक युग में रत्न उत्पन्न होते हैं। मैं ही प्रधान हूँ, यह गर्व कल्याणकर नहीं है। (G. इस गर्व का निर्वाह नहीं होता।) तुम्हारे पिता के मन में एक बार यह बात आयी कि रामचन्द्र ने जैसे लोगों को सुखी किया था, वैसे ही मैं भी करूँ। (इसके बाद उन्होंने रामायण की व्याख्या करायी।) सो, इस प्रकार कि राम का दान, सभागार-स्थापन, वर्णाश्रम-व्यवस्था, गुरुभक्ति आदि जैसी थी वैसा ही आरम्भ किया। फिर तो वह अपने को 'नूतन राम' रूप से पढ़वाने लगा। मन्त्रियों ने सोचा—यह अनुचित कर रहे हैं (हमारे प्रभु जो अपने को राम-सा मान रहे हैं), क्योंकि —

7. टिटिहरी अपना पैर पसारकर बैठती है ताकि पृथ्वी टूट न जाय। अपने चित्त में कल्पित गर्व किस अन्य पुरुष को नहीं होता? (अवसर पर इसका जवाब दिया जायगा।) एक बार राजा ने कहा, 'ऐसा कोई है जो राम की कोई ऐसी कथा कहे जो पहले मैंने न सुनी हो।' एक वृद्ध मन्त्री ने कहा, 'राजन्, कोशला में एक वृद्ध ब्राह्मण है। वह परम्परा से आयी हुई राम की कुछ कथा कहता है।' (G. बुलाकर पूछा जाय।) राजा ने उसे गौरवपूर्वक बुलवाया और सत्कार किया। कहा भी—'हे वृद्ध, राम की कोई नवीन कथा कहो।' वह बोला, 'महाराज, यदि कोशला में आप आयें तो कुछ अपूर्व (दृश्य) दिखाऊँ। यहाँ रहकर तो नहीं कह

सकता।' राजा मन्त्रियों के ऊपर राज्य का भार छोड़कर सेना लेकर कोशला के प्रति चला। वहाँ जाकर बाहर ठहरा। 'वृद्ध, दिखाओ।' 'महाराज, आदमियों से यहाँ खुदवाओ।' ऐसा करने पर एक सुवर्ण कलश प्रकट हुआ। इसके बाद एक सोने की मढ़िया। फिर खोदने पर···भारी सोने का जूता प्रकट हुआ। वह सोने के तागे से सी गयी थी और सर्वरत्न से खचित थी। विस्मित होकर राजा ने उसे ग्रहण किया और हृदय तथा कण्ठ से लगाया। राजा के वर्णन करने पर ब्राह्मण ने कहा, 'महाराज, यह चर्मकार की स्त्री का जूता है, इसे स्पर्श नहीं करना चाहिए।' राजा ने कहा, 'वह चमारिन भी धन्य है जिसका जूता ऐसा है। पर बताओ, कैसी (इसकी कथा है)?' 'महाराज, श्रीरामचन्द्र जब थे तो यह चमारों के घर थे। यह उनमें से एक का घर था। उसकी स्त्री बड़ी लाड़िली थी, अतः स्वाभिमानी थी। (पति के प्रति) विनीत नहीं थी। उसे पति ने डाँटा और शिक्षा दी। यह भी कहा कि 'मेरे घर से चली जा।' वह एक जूता छोड़कर एक ही को पैर में लगाकर पिता के घर गयी। पति का किया हुआ अपमान (पिता से) कहा, पिता ने दो दिन रखने के बाद कहा, 'बेटी, कुल-स्त्रियों की शरण पति ही है। तू वहीं जा।' वह, दो-तीन बार कहने पर भी न गयी। तब पिता ने कहा, 'बेटी, श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और प्रिया (सीता) के साथ आकर तेरा अनुनय करेंगे?' उस मिथ्याभिमानिनी ने कहा, 'जब आयेगा तभी जाऊँगी (G. नहीं तो नहीं)।' यह बात गुप्तचरों ने सुनी। उन्होंने राजा से निवेदन किया। श्रीरामचन्द्र उससे यह सुनकर उसके घर के दरवाजे पर गये। उस चमार ने कहा, 'देव, पधारिए, मुझ रंक के घर आज कल्पद्रुम का आगमन हुआ है।' 'तुम्हारी पुत्री को ले आने के लिए हम लोग आये हैं।' उस स्त्री की माँ ने उसे तुरन्त पतिगृह को पहुँचाया। उत्सुकतापूर्वक जाते समय वह स्त्री इस जूती को भूल गयी।* सुनकर महाराज (श्री रामचन्द्र) अपने स्थान को गये। महाराज, ऐसा था रामराज्य!' यह सुनकर विक्रमादित्य अपना गर्व-त्याग करके अपनी पुरी को आया।

* इन चिह्नों के अन्तर्गत पाठ के स्थान में G संग्रह में कुछ अधिक और विस्तृत पाठ पाया जाता है। जैसे—

"इसके बाद प्रजावत्सल महाराज श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण के साथ, प्रातःकाल उस चमार के घर आये। उसके भीतर प्रवेश किया, विस्मित चमारों ने उनकी पूजा की और पूछा, 'महाराज, इन हम कीड़ों के प्रति कैसे प्रसाद किया? यह तो स्वप्न में सम्भव नहीं था कि महाराज हमारे यहाँ उपस्थित होंगे।' आगमन का क्या कारण है?' श्रीरामचन्द्र बोले, 'तुम्हारी पुत्री को श्वसुर-कुल में भेजने को आया हूँ। उस बिचारी की ऐसी ही प्रतिज्ञा है।' तब तो उसका पिता बड़ा प्रसन्न हुआ और मकान में जाकर पुत्री से बोला, 'मुग्धे, तेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। देवी के साथ रामदेव भी आये हैं। आ, उस जगत्पति की वन्दना कर।' फिर सन्तुष्ट होकर राम के पास आयी। उनकी वन्दना की। प्रजाबन्धु (श्रीराम) ने कहा, 'पुत्रि, श्वसुराल जाओ।' उसने कहा, 'जो आज्ञा।' (वह पतिगृह गयी) राम अपने स्थान पर आये।'दूसरा जूता भी वहाँ खोदने पर श्री विक्रमादित्य को मिलेगा।

→

इस प्रकार विक्रमादित्य-सम्बन्धी विविधप्रबन्ध (समाप्त हुए)।

G. संग्रह में का विक्रमादित्य-चरित

13 श्री विक्रमादित्य के सभागार में आनेवाले तीर्थयात्री नित्य मर जाते थे। उस अपवाद-दोष के भय से राजा छिप रहा। तब नागराज आये। राजा ने पूछा, 'बिना कारण नित्य ही तुम तीर्थयात्रियों को क्यों मारते हो ?' उसने कहा, '(कहो,) पात्र क्या है ?' राजा ने कहा, 'भोगीन्द्र (बहुधा.)।' इससे सन्तुष्ट होकर उसने मनुष्य पात्रों की रक्षा की।

14. किसी सामुद्रिक शास्त्र जाननेवाले ने दोपहर को चौराहे पर किसी लकड़हारे के चरण-लक्षण को पृथ्वी पर प्रतिबिम्बित देखकर शास्त्र को मिथ्या समझ पुस्तकों के साथ राजद्वार में चितारोहण करना शुरू किया। तब राजा ने पूछा, 'मेरा लक्षण बताओ।' उसने कहा, 'एक भी नहीं है।' 'फिर राज्य कैसे हुआ ?' फिर बोला, 'यदि वाम कुक्षि में करण्ड अन्न हो तो (राज्य) होगा।' तब राजा ने छुरी लेकर कहा, 'स्थान दिखाओ !' उसने कहा, 'सत्व से ही राज्य होता है।' राजा ने भी दरिद्र के मुख में कणिक गोलिका ( ) का प्रयोग करके उसके तालु में काक-पद दिखाया।

15. एक बार सिद्धसेन दिवाकर ने गुरुचरण की सवाहना करते समय गुरु से कहा, 'यदि आप आदेश करें तो मैं आगम को संस्कृत में करूँ।' गुरु ने कहा, 'तुम्हें महा-पाप हो गया। तुम गच्छ योग्य नहीं हो, जाओ।' उसने कहा, 'मुझे प्रायश्चित दीजिए।' गुरु ने कहा, 'जहाँ जैन धर्म नहीं है, वहाँ उसकी प्रभावना विस्तार करके लौट आओ।' यह सुनकर वह अवधूत भेष बनाकर चला। इसके सात वर्ष बाद मालव देश में गूढ महाकाल प्रासाद में शिव की ओर चरण करके सो गया। रोकने पर भी वैसा ही किया। इसी बीच रक्षक पुरुषों को भेजकर राजा ने उसके प्रति उपद्रव किया। तब तक अन्तःपुर में आग लग गयी। तब राजा ने आकर पूछा, 'शिव को

→ महाराज, वहाँ खोदा जाय।' राजा वहाँ गया। उसे खुदवाया। दूसरा जूता भी मिला। सोने का घर भी देखा। इसी तरह अन्य चीजें भी उस ब्राह्मण ने खुदवायी। उस हेम को ले लिया। राजा ने पूछा, 'ब्राह्मण ! इस तरह ठीक-ठीक कैसे जानते हो ?' विप्र ने कहा, 'मैंने पूर्वजों की परम्परा से यह बात जानी और आपसे कही है। पर गर्व मत करो। वह राम वही थे। उनकी आज्ञा से जल और अग्नि स्तम्भित हो जाते थे। उनके आज्ञा देने पर गिरती हुई दीवालें नहीं गिरती थीं। 42 प्रकार के लूता, 27 प्रकार के अन्धगड़, 108 तरह के फोड़े और विद्रुर-दोष सब नष्ट होते थे। जो उनकी देवी सीता थी, जो उनके भाई थे, जो उनके हनुमान-सुग्रीव आदि भक्त थे, उनकी महिमा तो सौ वर्ष में बृहस्पति भी नहीं कह सकते।' यह सुनकर विक्रम ने गर्व त्याग किया। 'अभिनवराम' के विरुद का भी निषेध कर दिया। फिर उज्जयिनी में आये। यथाशक्ति लोक का उद्धार करने लगे। उस समय अग्निक वेताल और पुरुष-सिद्धि के द्वारा जो सुवर्ण सिद्धि हुई थी, उससे विक्रमादित्य की समृद्धि निरुपम थी। इसलिए विक्रम धन्य ही हैं। उससे अधिक अन्य राजा तो करोड़ों हुए हैं। यह सुनकर विक्रमसेन विवेकी हो गया।

नमस्कार क्यों नही करते ?' उसने कहा, 'मेरा नमस्कार यह नहीं सह सकता।' राजा ने कहा, 'करो।' उसने सब लोगों के सामने 'द्वात्रिंशतिका' बनायी। तब लिंग में से अवन्ती सुकुमाल की 32 स्त्रियों के बनाये प्रासाद में श्री पार्श्वनाथ बिम्ब प्रकट हुआ। उसे नमस्कार किया, (बोला—) 'हमारा नमस्कार यह सहेगा।' तब से गूढ़ महाकाल हुए (?)

16. एक बार राजा को सब कवियों को दान करते देख चार शैव तपस्वी विचारे कविता करने के लिए वन में गये। वहाँ जाकर उन्होंने हाथी का वर्णन आरम्भ किया। एक-एक पहर में एक-एक चरण बनाया। सो इस प्रकार—

चार पाँव हैं, बीच में दुड्गुस दुड्गुस।
जाता है, जाता है और फिर गड्ड घुसर।
अगली और पिछली दुम हिलाता है।···

चौथे पहर में चौथा पद नहीं बन रहा था, तब श्री कालिदास कवि ने वृक्ष के ओट से कहा—

'अन्धकार में भी···'

इसे सुनकर चौथे तपस्वी ने कहा, 'मेरे पर सरस्वती की कृपा हुई है।' उन्होंने राजा से कहा। राजा ने कहा, 'चौथा चरण इनका नही हो सकता। यह उपमा कालिदास की ही हो सकती है, दूसरे की नही।'

17. इसके बाद 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के नव सर्गों में शृंगार और सुरत के वर्णन से कुपित होकर पार्वती ने कालिदास कवि को शाप दिया कि 'तू स्त्री-व्यसन से मरेगा।' इसीलिए वह वेश्या-व्यसनी हुआ। राजा श्री विक्रमादित्य ने व्यसनी समझकर उसका तिरस्कार किया। वह वेश्या-गृह मे (जाकर) रहने लगा। इसी बीच राजपाटिका (दरबार) मे गये हुए राजा ने तालाब मे कम्पमान कमल को देखकर कहा—'पवनस्यागमोनास्ति···।' (पवन का आगम नही है···) किसी भी कवि ने प्रत्युत्तर नही दिया। राजा ने नगर मे डौडी पिटवा दी—'जो कोई समस्या पूरी करेगा उसे एक लाख द्रव्य दिया जायेगा।' इस बात को वेश्या ने कालिदास से कहा। उसने कहा, 'मैं पूरी करके तुम्हें समर्पण करूँगा।' पूरी की। उस (वेश्या) ने सुवर्ण-लोभ से कालिदास को मार डाला। बाद को उसने राजा के सामने समस्या कही कि 'पावकोत्सिष्ट वर्णाभः शर्वरी.।' राजा ने कहा, 'किसने पूरी की ?' उसने कहा, 'मैंने।' 'कान्ते.—इस पद से तो तुमने पद्य-बन्ध नही किया है।' तब उसने कहा, 'कालिदास ने। किन्तु उसे मैंने मार डाला है।' राजा को विषाद हुआ।

18. एक दूसरी बार विक्रमादित्य को रोग पैदा हुआ। वैद्य ने उसकी कुचेष्टा देखकर काक-मांस के भोजन से आरोग्य होना बताया। राजा ने कहा, 'अच्छी बात।' तब वैद्य ने कहा कि 'राजन्, धर्मरूपी औषध का विधान कीजिए। प्रकृति-व्यत्यय हो जाने के कारण अब आप नही जियेंगे।'

इस प्रकार विक्रम प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

19. मरहट्ठ देश में प्रतिष्ठान नामक पत्तन (नगर) है। (वहाँ) नरवाहन नामक राजा था। (उसका) अंगरक्षक था सुभा। उसकी पत्नी मनोरमा थी। गर्भाधान होने पर उसे शुभदोहद हुआ। नैमित्तिक (ज्योतिषी) से पूछा गया। उन्होंने कहा, 'लड़का होगा, पर 16 वर्ष तक भूमिगृह में गुप्त रूप से छिपा रखना चाहिए।' उस राजा ने वैसा ही किया। पाँच वर्ष का होने पर (बालक) कलाभ्यास करने लगा। इधर राजा ने रात को स्त्री-विलाप सुनकर पहरेदारों से कहा, '(यहाँ कौन है?)' सुभट ने कहा, 'महाराज, मैं हूँ।' 'इस स्त्री से पूछकर आओ, क्यों रोती है?' वह गया। नगर मे घूमकर लौट आया। 'महाराज, नगर में कही भी वह न दिखायी दी।' 'तो बाहर जाकर देखो। पूछताछ करो।' वह विद्युत्-किरण से राजा के साथ वहाँ गया। वन में स्त्री को देखकर पूछा, 'क्यों रोती हो?' 'मैं राज्याधिष्ठात्री देवी हूँ।' 'तो रोती क्यों हो?' उसने कहा, 'छः महीने के भीतर राजा मरेगा।'

9. 'वैधव्य के समान स्त्री को अन्य दुःख नही है। वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो पति के सामने ही मर जाती हैं।'

'इसकी निवृत्ति कैसे होगी?' सुभट के ऐसा पूछने पर उसने कहा, 'यदि चामुण्डा के आगे 32 लक्षण-सम्पन्न पुरुष का वध किया जाय तो राजा का कल्याण होगा।' यह कहकर अदृश्य हो गयी। सुभट ने राजा के आगे कहा। राजा अपने स्थान को गया। प्रातःकाल राजा ने सुभट से कहा, 'यदि बत्तीस लक्षण-सम्पन्न पुरुष ले आओ तो आधा राज्य दूँगा।' उसने घर जाकर अपनी पत्नी से अपने पुत्र को माँगा। सोलह वर्ष का पुत्र दिया। राजा से बोला, 'महाराज, स्थान मे किया हुआ···' निकालकर बध्य का वेश बनाकर चामुण्डा के आगे ले गया। राजा वहाँ गया। नैवेद्य के साथ उपहृत किया। माता ने केश पकड़ा, पिता ने खड्ग खींचा। वह···हँसा।

10. 'अगर राजा स्वयं अपने जीवन के लिए और बधिर बने हुए माँ-बाप द्रव्य की इच्छा से मुझे हरण कर रहे हैं, और तुम देवता मनुष्य के मांसरस की स्पृहावाली हो, तो ऐ मेरे प्राण, तुम स्वयं हँसो। शोक की क्या बात है?'

इस सत्व से देवी सन्तुष्ट हुई। (बोली) 'वर माँगो।' उसने यह याचना की— 'किसलिए यहाँ मैं ले आया गया?' देवी ने जब अपना भाव बताया तो कहा कि 'राजा को राज्य दो और तुम जीव-वध से विरत हो।' उस (देवी) ने कहा, 'मैंने राजा को राज्य दिया, जीवों को अभय दिया।' वह जीव-वध से विरत हुई। सब लोग अपने स्थान पर गये। प्रातःकाल लोकापवाद को न सहन कर सकते हुए राजा ने राज्य सातवाहन को देकर स्वयं तापसी दीक्षा ग्रहण की। राजा भी राज्य करता हुआ अपनी माँ के साथ रहने लगा (?)। एक बार राजा ने मन्त्री से पूछा कि

'मेरी आज्ञा कितनी भूमि तक है।' (उसने कहा—) 'देव, मथुरा में नहीं है।' राजा ने सेना भेजी।···होने पर मन्त्री ने दो हिस्से कर दिये, इसलिए दो मथुरा हुईं। सूर्योदय के समय पुत्रजन्म का वर्द्धापन हुआ। द्वितीय प्रहर में कापी मे नौ करोड़ सुवर्ण की प्राप्ति, तृतीय प्रहर मे दक्षिण मथुरा और चतुर्थ प्रहर में उत्तर मथुरा का वर्द्धापन हुआ। इस प्रकार एक ही दिन में चार वर्द्धापन होने पर राजा प्रसन्न होकर सोचने लगा—'मैंने पूर्वजन्म में क्या पुण्य किया था!' प्रातःकाल राजदरबार में गया। गोदावरी के ह्रद में मछली को हँसते देखकर विस्मित होकर घर गया। सब किसी से पूछा, पर कोई नहीं जानता था। इधर श्री कालिकाचार्य का आगमन जानकर उनकी वन्दना करके पूछा। उन्होंने कहा, 'तुम पूर्वजन्म मे यही काष्ठवाहक (लकड़हारा) थे। सो, उस लकड़हारे ने सत्तू देकर इसी शिला-पट्ट पर किसी मुनि को पारण कराया था। मत्स्य ने उसे देखा था। इसीलिए जल-देवता मछली के रूप में हँसा। तुम्हारे दान के प्रभाव से ही वर्द्धापन हुआ है।'

इस प्रकार सातवाहन प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

[किसी कारणवश इस अध्याय के शेष अंश अनूदित होने से रह गये।]

3. वनराज का इतिहास (G)

20. आंबासण के रहनेवाले चापोत्कट जाति के दो भाई थे जिनके नाम चण्ड और चामुण्ड थे। किसी नैमित्तिक ने कहा कि 'चामुण्ड की स्त्री के गर्भ (से उत्पन्न बालक) के द्वारा चण्ड मारा जायेगा', इसलिए उस गर्भवती का उन्होंने त्याग किया। इसके बाद वह पंचासर ग्राम मे गयी। वहाँ चुन-चुनके (उंच्छ वृत्ति से) जीवन धारण करने लगी। एक बार श्रीशील गुणसूरि बाहर गये हुए थे, वहाँ उन्होंने देखा वणच्छाया की वन्दना नहीं कर रही थी। उसे और उसके सुलक्षण बालक को देखकर उसे अपने चैत्य में रखा। कुछ समय के बाद वनराज को, वारण करने पर भी चूहे मारते देखकर गुरु ने निर्वासित कर दिया।···सेहर और सेवर (नामक दो आदमियों) के साथ शरवेश्वर और पंचसरा ग्राम के बीच चौर्यकर्म करता हुआ दो बाण को तोड़नेवाले सेठ जाम्बाक से पूछा। उसने कहा, 'तुम तीन हो इसलिए मैंने दो को तोड़ा है।' (यह कहकर) उसने तीन बाण से परीक्षा दिखायी। उसके साथ उसकी प्रीति हुई। एक दूसरी बार कारक गाँव में सेठ के घर की छत से कूदकर उसका सर्वस्व लेते समय उसका हाथ सन्दूक के भीतर स्थित दही के भाँड पर पड़ा। इसलिए सबकुछ छोड़ दिया। प्रातःकाल उसकी स्त्री देवी

ने दही में उसकी पाँचों अंगुलियों की छाप देखी, वह समझी कि यह कोई कुलीन चोर है। 'चोर के मिलने पर ही खाऊँगी।' इस आशय की शपथ भी उसने कर ली। उसने सातवें दिन आकर उसे बहन मानकर नमस्कार किया। एक बार कान्य-कुब्ज देश की महणक रानी का (पंचकुल) गुजरात का कर उगहने जा रहा था। बीच ही में युद्ध करके वनराज ने सब ले लिया। फिर यह जानकर कि 'एक शशक ने कुत्ते को हरा दिया है', उस वीरस्थान में--जिसे अणहिल्ल नामक पशुपाल ने अर्पण किया था—अणहिल्लपुर की स्थापना की। श्रीदेवी ने वर्द्धापित किया और गुरु ने मन्त्राभिषेक।

4. लाखाक का इतिहास (G)

21. परमार वंश में उत्पन्न कामला नामक कुमारी ने महल में क्रीड़ा करते समय स्तम्भ की भ्रान्ति से फूलड़ नामक पशुपाल को वरण किया। उसका पुत्र हुआ लापाक। उस कच्छ के राजा ने इक्कीस बार मूलराज को हराया। 22वीं बार, लापाक जब कपिलकोट में था, घेर लिया गया। उसने माहेच नामक पदाति को बुला भेजा। बीच में स्थित मूलराज के भिल्लों ने उसके हथियार ले लिये। फिर उसे नि:शस्त्र आया देख लापाक ने राजा से युद्ध किया। लापाक जब रणभूमि में गिर गया तो उसे राजा ने रोषपूर्वक चरण में प्रहार किया। इस पर लापाक की माता ने राजा को शाप दिया। अतः अन्त में उसे फोड़ा हो आया। इसके बाद राजा ने पान में भ्रमरी देखकर स्मार्त्तों (स्मृति ज्ञाताओं) से अपने मरण को शुभ करने के उपाय पूछे। उन्होंने कहा, 'इंगिनी साधन करो।' वैसा ही करने पर सातवें दिन स्वर्ग से विमान आते देखकर प्रसन्न हुआ। फिर दूसरी ओर से गोदान करके मरे हुए चाण्डाल को लेकर आने पर समवेत स्मृतिज्ञाताओं से पूछा, 'ऐसी सुख-मृत्यु के रहते मुझे कष्ट-मृत्यु का आदेश क्यों किया?' उन्होंने कहा, 'महाराज, आपके राज्य में गोदान कौन ग्रहण करेगा?' इस प्रकार वह मर गया।

5. मुंजराज का प्रबन्ध (P)

22 श्रीउज्जयिनी नगरी मे सिंह नामक राजा था। वह एक बार शिकार खेलने गया। वहाँ सरकण्डों के वन में पड़े हुए एक बालक को देखा। राजा ने उसे ग्रहण किया। गुप्त रूप से अन्तःपुर में (उस बालक को) भिजवा दिया। एक रानी ने प्रसव-सम्बन्धी कर्म किये। लड़के को 'मुंज' नाम दिया गया। स्नेह के साथ बढ़ने लगा। इधर राजा को एक दूसरी पत्नी से सिन्धुल नामक पुत्र हुआ। दोनों ही पूर्ण रूप से बड़े हुए और उनके विवाह भी हो गये। इधर राजा भी बूढ़ा हुआ। एक बार मुंज के आवास-स्थान पर गया। घर में मुंज अपनी स्त्री के साथ था। राजा बाहर से ही बोला, 'भीतर कोई है रे!' राजा का शब्द सुनकर मुज शंकित हुआ। प्रिया को भद्रासन के नीचे करके बोला, 'महाराज, भीतर पधारिए।' राजा सिंहासन पर बैठा। कुमार प्रणाम करके भद्रासन पर बैठा। (बोला—) 'कार्य का आदेश कीजिए।' राजा ने कहा, 'राज्य किसे दिया जाय?' मुज बोला, 'पिताजी की जो इच्छा!' (राजा ने कहा—) 'वत्स, तुम मेरे पालित पुत्र हो, किन्तु सिन्धुल अंगज है।' इस व्यतिकर के कहने पर मुंज ने कहा, 'महाराज, राज्य मेरे भाई का ही हो, मैं उसकी सेवा किया करूँगा।' राजा ने कहा, 'ऐसा मत कहो। राज्य तुम्हारा ही है। इस समय अगर परिवर्त्तन करोगे तो लोग नहीं मानेंगे। पर मेरी शिक्षा सुनो। सिन्धुल का अपमान न करना। रुद्रादित्य मन्त्री को भी (उस पद से) न हटाना। गोदावरी पार करके उस पार न जाना।' उसने सब मान लिया। राजा के बाहर जाने पर इस भेद के खुल जाने की आशंका से रानी को तलवार से काट-कर पृथ्वी पर गिरा दिया। उसकी चिल्लाहट सुनकर राजा लौट आया। वधू को (मरी) पड़ी देखकर बोला, 'अरे पापी, तूने कैसा अनर्थ कर डाला! दूसरी शिक्षा के अनुसार भी नहीं चलता। इसलिए अयोग्य होने पर भी अपने वचन-भंग की आशंका से तुझे ही सिंहासन पर बैठाऊँगा।' (इस प्रकार) मुंज का राज्य हुआ। राजा मर गया। मुज सदा सिन्धुल के ऊपर कृपा रखता। सभी लोग सिन्धुल से प्रेम करते। एक मन्त्री ने कहा, 'महाराज, सिन्धुल तुम्हारा विनाश करेगा।' राजा ने उसकी बात मानकर (सिन्धुल की) वृत्ति बन्द कर दी। सिन्धुल अपने वासस्थान पर रहने लगा। एक बार राजा दरबार के लिए जाते समय सिन्धुल (के मकान) की खिड़की के पास आया। ऊपर बैठे हुए सिन्धुल के दाहिने हाथ में दर्पण था। उसने बायें हाथ से हाथी की···पकड़ी। बाद को पूंछ पकड़ ली। हाथी एक पैर भी नहीं चलता।···राजा ने कहा, 'हाथी क्यों नहीं चलता?' (महावत ने कहा—) 'महाराज, पुरुषसिंह से आक्रान्त हुआ है।' तब कुमार को (राजा ने) देखा। (बोला—) 'वत्स, छोड़ दो।' उसने कहा कि 'किसने महाराज से मुझे आपका अभक्त बताया है जो मेरी वृत्ति बन्द कर दी गयी है?' 'हाथी को छोड़ो। दुगुनी वृत्ति ग्रहण करो।' सिन्धुल ने कहा, 'यह हाथी तो टूट गया, दूसरा मँगाइये।'

राजा दूसरे हाथी पर बैठा। वह (पहला) हाथी वहीं गिर गया। राजा ने बन्धु का बल देखकर उसे प्रोत्साहन देना शुरू किया। दुष्ट मन्त्री ने राजा से कहा कि 'महाराज, यह तुम्हें निश्चय मारेगा।' राजा ने उसे देशपट्ट दिया। वह अर्वुद पर्वत पर कासछूद ग्राम में गया। दीपावली के दिन श्मशान मे गया। वहाँ एक सूअर देखकर बाण सन्धान किया। इधर उससे निकटस्थ मृतक जघे के नीचे रखा गया। वह (मृतक) सलसला उठा था। उसने बायें हाथ से उसे रोका—(इस प्रकार) बाण द्वारा शूकर विद्ध हुआ। उसके इस साहस से सन्तुष्ट होकर बोला, 'वर माँगो।' उसने कहा कि 'मालव राज्य दो।' (इस पर वह बोला कि) 'तुम्हारा भाग्य तो नहीं है, पर वहाँ जाओ। तुम्हारे पुत्र को राज्य मिलेगा।' फिर से राजा द्वारा बुलाये जाने पर वह अपने घर गया। राजा ने दुर्जनों की बात में आकर सिन्धुन की आँखें निकलवा लीं। उसका पुत्र हुआ भोज, जो राजा का अतिशय प्रिय था। जब वह युवावस्था की ओर बढ़ने लगा, तो लोग बड़े अनुराग से उसकी सेवा करने लगे। अतः उस कूट मन्त्री ने राजा से कहा, 'महाराज, तुम्हें मारकर भोज राज्य ग्रहण करेगा।' राजा ने रुद्रादित्य मन्त्री के द्वारा प्रच्छन्न भाव से आज्ञा दिलायी। मन्त्री ने एकान्त में ले जाकर राजाज्ञा कही। कुमार ने कहा, 'शीघ्र करो।' (यह पूछे जाने पर कि) 'कुछ राजा से कहलवाओगे?' उसने 'मान्धाता' इत्यादि लिखकर पत्रिका दी। (और कहा कि) 'समय पाकर दिखाना।' मन्त्री ने कहा कि 'तुम्हारे मरने से राज्य डूब जायेगा, इसलिए प्रच्छन्न होकर रहो।' मन्त्री ने (राजा से) निवेदन किया कि 'कार्य कर दिया।' (राजा बोला —) 'उसने कुछ कहा भी है?' तब पत्रिका दिखायी। राजा चिता पर चढ़ने लगा। तब मन्त्री ने कुमार को दिखाया। फिर तो राजा बड़ा प्रसन्न हुआ।

23. कर्नाटक देश के उरंगलपत्तन में तैलपदेव नाम का राजा था। उसका मन्त्री था कमलादित्य। वह मालव-नरेश के साथ वैर प्रारम्भ करने के लिए बुद्धि से अपना नाक-कान कटवाकर राजा द्वारा अपमानित होकर मुंज के पास आया, (बोला कि) 'महाराज! मैंने अपने स्वामी से कहा कि मुंज से वैर त्याग करो। इस पर उसने अपमानित किया।' मुंज ने उसका सत्कार किया। रुद्रादित्य (मन्त्री) ने राजा को रोका। जब राजा ने उसकी हित-बात भी न सुनी तो वह छोड़छाड़कर चुप बैठ गया। कमलादित्य के वचनानुसार राजा गोदावरी के तीर पर सेना लेकर चला। रुद्रादित्य ने भी चिता में प्रवेश किया। कमलादित्य ने सेना को आगे बढ़ाया। मन्त्री की बात से किसी ने भी युद्ध नहीं किया। मुंज भाग खड़ा हुआ। भूखा होकर किसी गाँव में गया। वहाँ के वासी से अन्न माँगते समय किसी गर्वोन्निता ग्वालिन को देखकर यह गाथा पढ़ने लगा—

23. 'ए ग्वालिन, तू मन मे गर्व न कर···'

यह पढ़ते समय राजा के गुप्तचरों ने (उसे पहचानकर गिरफ्तार किया) और ले आकर राजा को अर्पित किया। उसने रक्षणागार में उसे रखा। मृणालवती नामक चेटी को उसकी परिचर्या के लिए नियुक्त किया। राजा उसमें आसक्त

हो गया। इधर रुद्रादित्य ने धारा में भोज को राजा बनाया। वह सेना लेकर गोदावरी के किनारे आकर ठहरा। भोज ने सुरंग बनवायी और एक पुरुष को राजा को ले आने के लिए भेजा। वह पुरुष सुरंग के द्वार से जाकर राजा (मुज) से बोला, 'चलिए।' राजा ने कहा, 'जब तक मृणालवती नहीं आती तब तक ठहरो।' (पुरुष ने कहा—) 'महाराज! चेटी को लेकर क्या करेंगे, चलिए।' राजा के न जाने पर उसे नष्ट-बुद्धि समझकर वह पुरुष चला गया। भोजन लेकर चेटी आयी। राजा को चिन्तित देखकर पूछा, 'महाराज! क्या चिन्ता है?' (मुज) कुछ न बोला। उस दासी ने भोजन में एक मुट्ठी नमक डाल दिया, पर वह न जान सका। अधिक आग्रह से पूछने पर बोला, 'चलो, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।' उसने कहा, 'अपने आभरण लेकर तुरन्त आती हूँ।' जाकर तैलपदेव से सुरंग आदि का (सारा वृत्तान्त) कह सुनाया। राजा ने आकर उसे बाँधा। वध किये जाते समय वह बोला, 'ऊच्ठ ··· (प्रति में इस स्थान पर की पंक्ति खाली पड़ी है, कोई अक्षर नहीं)।'

भिक्षा के लिए घुमाकर, वन में ले जाकर सूली दिलवा दी।

24. मुज, जो यश को पुज, गजपति, अवन्ती का राजा तथा सरस्वती का आवास था, प्राचीन काल की अवस्था जिसने फिर से ला दी थी,—वही कर्णाट देश के राजा से उसके मन्त्री की बुद्धि द्वारा शूलारोपित किया गया। हाय, कर्म की गतियाँ बड़ी टेढ़ी हैं।

25. हाथी गया, घोड़ा गया, नौकर-चाकर गये, अब स्वर्गस्थित होकर मुज महामान्य रुद्रादित्य से मन्त्रणा करता है।

26.

27.

28.

29.

30. हे मुंज, इस बात से उद्विग्न न हो कि मैं इस (मृणालवती) के द्वारा छला गया। राम, रावण और भीम आदि कौन ऐसा है जो स्त्रियों के द्वारा खण्डित नहीं हुआ?

31. जो···दासियों मे रत होते है, वे मनुष्य मुज नरेन्द्र की भाँति भारी परिभव सहन करते हैं।

32. ऐ धनान्ध मूढ पुरुष, इन आपत्तिग्रस्त आदमियों पर क्या हँस रहा है? लक्ष्मी स्थिर नहीं है—इस बात में आश्चर्य क्या है? देखता नहीं इन जल-यन्त्र-चक्र की घटियों को, जो बराबर खाली होकर भरती हैं और भरकर खाली होती हैं?

33.

34.

35.

36.

मुज के पकड़े जाने पर राजपुत्री का वाक्य (यह है)—'ऐ हाथियों के झुण्ड के

मालिक, ऐसी चिन्ता क्यों कर रहे हो ?…॥'

सिन्धुल के वाक्य ये हैं—

37.

38. 55 वर्ष 6 मास 3 दिन 0…

इस प्रकार मुंजराज-प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

6. श्री मानतुंगाचार्य का प्रबन्ध (B)

39. प्रभु श्री मानतुंग की देशना के समय (उद्भासित) उनके दाँतों की किरणों की, जो ज्ञान-समुद्र के शारद् चन्द्र की सहोदर हैं, जय हो।

24. वाराणसी में हर्ष नामक राजा था। वहाँ ब्रह्मक्षत्रिय (जाति का) धनदेव सेठ था। (उसका) पुत्र था मानतुंग। एक बार दिगम्बर चैत्य में जिनेन्द्र को नमस्कार करके वह गुरु के चरणों में गया। (गुरु ने) ज्ञान देकर दीक्षा दी। नाम हुआ चारुकीर्त्ति। स्त्री-मुक्ति और केवलि मुक्ति नहीं मानता था। दिगम्बरता को उसने दुष्कर कर दिया। उसके भगिनीपति लक्ष्मीधर ने गौरव के साथ उसे निमन्त्रित किया, वह घर आया। अशुद्धि (की मार्जना) के लिए जब कमण्डल के जल से आचमन करने लगा तो उसकी बहन जो श्वेताम्बरी की भक्त थी पूतरों (कीड़ों) को देखकर उसके व्रत की निन्दा की। श्वेताम्बरों के पंचस आदि की प्रशंसा करके उसे ज्ञान दिया और कहा कि 'समागत जैनाचार्यों से तुम्हें मिलाऊँगी। पर यह जल जिस जलाशय से ले आये हो, उसी में फेंक आओ। ताकि अन्य जल में मिलकर ये कीड़े न मरने पायें।' दूसरी बार श्री अजीतसिंह सूरि के गंगातीर पर आगमन की बात जब बहन ने बतायी तो मानतुंग ने पूर्वऋषियों की सामाचारी सुनके उनकी दीक्षा लेकर समग्र सिद्धान्त का अध्ययन किया और गुरु का दिया हुआ सूरि-पद ग्रहण करके सुन्दर काव्य करने लगा।

25. इधर उस पुरी में मूर्त्तीब्रह्मा मयूर नामक कवि रहता था, उसकी श्री नाम की एक रूपवती पुत्री थी।

40. ब्रह्मा ने जिसके हाथ, आँख, अधर और मुख को देखकर (क्रमश:) कमल को कीचड़ में, कुवलय को अपार जलवाले हृद में, बिम्बाफल को वन में और चन्द्रमा को आकाश में फेंक दिया। दैवात् बन गयी इस सृष्टि को देखकर 'उसकी सृष्टि पुरानी हो गयी।' (पिता ने) उस कन्या के अनुरूप ही बाण नामक कवि से उसका विवाह किया। फिर हर्ष से भेंट करके उस (बाण) के लिए धान्यादि के पृथक्-पृथक् धवल-गृह बनवा दिये। एक बार बाण की पत्नी कलह करके पितृगृह

को चली गयी। बाण ने सायंकाल आकर मनाना शुरू किया।

41. 'हे स्वामिनि, जगत् के स्वार्थ को विनाश करनेवाले इस शत्रु मान को छोड दो। नौकर, क.मुक और अन्यों के द्वारा प्राप्त सुख की इच्छा रखनेवाले अवहेलना के पात्र नही है।' उसके न मानने पर पण्डित को वाहर भेजकर सखी ने उससे (मान जाने को) कहा। फिर भी वह नहीं मानी। (सखी) बोली भी—

42. 'तेरा प्राणप्रिय मुँह नीचा किये भूमि कुरेद रहा है; वरावर रोदन के कारण सखियों की आँखें सूज आयी है—वे अव तक बिना खाये पड़ी हैं; पिंजड़े के शुकों ने हँसना और पढ़ना सव छोड़ दिया है और तेरी भी यह अवस्था है; —अरी कठिने, अब मान छोड़ दे।' सखी के बाहर आकर कहने पर बाण ने जाकर (कहा—)

43. 'ऐ दुवले शरीरवाली, रात प्रायः बीत चली, चन्द्रमा शीर्ण की नाईं होता जा रहा है, यह प्रदीप भी मानो निद्रा-वश होकर झूल रहा है। मान का अन्त प्रणति से हो जाता है, फिर भी तुमने अव तक मान नहीं छोड़ा। सो ऐ सुन्दर भवोंवाली, तेरे कुचों से भी तेरा हृदय अधिक कठोर है।'

दीवाल के सामने (दूसरी ओर) सोये हुए मयूर ने (कहा)—" 'सुभ्रु' शब्द के स्थान पर 'चण्डि', यह सम्बोधन कहो। क्योंकि इस दृढ़कोपकारिणी के लिए 'चण्डी' शब्द ही उचित है।" पिता की इस बात से उस मानिनी ने लज्जित होकर पति की वात मान ली और सतीत्व के प्रभाव से पिता को शाप दिया कि कोढी हो जाओ।' मयूर को कोढ़ हो जाने पर राजा ने सूर्याराधना के लिए कहा। उसने पट्-पाद रज्जुयन्त्र वाँधकर खैर की आग की चिता बनवाकर सूर्य की स्तुति की। एक-एक छन्द बनाकर एक रज्जुपाद छुरी से काटता जा रहा था। इस प्रकार पाँच काट गया। षष्ठ रज्जु के काटते समय सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे नया शरीर दान किया। मयूर की प्रशंसा होते समय बाण के पक्षवालों ने राजसभा मे (कहा)—

44. 'यद्यपि मयूर की उक्तियाँ हर्ष का उत्कर्ष विधान करती है, फिर भी बाण की विजय के समय वे अन्य के अंश की हकदार नही रहती।'

राजा ने कहा, 'तुम लोग गुणियों के प्रति मत्सर रखते हो। जिसकी शक्ति हो वह कुछ अधिक दिखाये।' तब बाण ने कहा, 'मेरे हाथ-पैर काट दीजिए। ताकि उन्हें नया कर दूँ।' फिर काटे जाने पर चण्डि माँ की स्तुति करने लगा। सातवें अक्षर के समय वे नये हो गये। फिर भी दोनों का विवाद होता रहा। तब राजा ने कहा, 'कश्मीर में श्री सरस्वती विवाद भंग करती हैं। जो हारेगा वह अपनी पुस्तकें जला देगा।' ऐसी प्रतिज्ञा करके राजपुरुषों के साथ कश्मीर जाने पर देवी ने समस्या दीं। पूछने पर बाण ने शीघ्र पूरी की और मयूर ने देर से। पूर्त्ति इस प्रकार थी—

45. कृष्ण के कराघात से मन मे विह्वल होकर चाणूरमल्ल ने आकाश मे सौ चन्द्र देखे।

मयूर ने पराजित होने के कारण आकर पुस्तकें जलायी। 'सूर्यशतक' पुस्तक के अदग्ध रह जाने पर राजा ने दोनों को ही मान देकर सम्मानित किया।

26. एक दूसरी बार राजा ने मन्त्री से कहा, 'देखो, ब्राह्मणों का कैसा प्रभाव है?' मन्त्री ने कहा, 'जैन धर्म में भी बड़ा प्रभाव है। यदि कौतुक हो तो श्री मानतुंग सूरि को बुलाकर देखिए।' राजा ने कहा, 'बुलाओ।' तब मन्त्री जाकर भक्ति-पूर्वक वचनों से दर्शनप्रभाव (की प्रतिष्ठा) के लिए, उनकी इच्छा न रहते हुए भी, ले आया। राजा को धर्मलाभ का आशीर्वाद देकर यथोचित आसन पर बैठे। मयूर और बाण की प्रशंसा करते हुए राजा ने कहा, 'यदि आपको कुछ शक्ति है तो कुछ कौतुक दिखाओ।' गुरु ने कहा, 'हम लोगों को (इन सब बातों से) कोई काम नहीं। जैन मत में तो केवल मोक्ष का अभ्यास किया जाता है। फिर भी (जैन-) शासन के उत्कर्ष के लिए कुछ दिखाऊँगा।' इसके बाद राजा ने उन्हें अन्धकार में आपाद-मस्तक 44 लोहशृंखलाओं से बाँधकर अधरक मे फेंक दिया और ताला देकर छोड़ दिया। फिर (सूरि ने) 'भक्तामरस्तव' बनाया। एक-एक वृत्त पढ़ने पर एक-एक हथकड़ी खुलती जाती थी। हथकड़ियों की संख्या के अनुसार छन्द पढ़े। सूरि मुक्त हुए। ताला टूट गया। स्वयं कपाट खोलकर सभा में आकर राजा को आशीर्वाद दिया। राजा ने अनेक स्तुति करके सविनय प्रणाम किया और बोला कि 'करणीय कार्य का आदेश देने की कृपा कीजिए।' सूरी ने कहा कि 'हमे कोई इच्छा नहीं है। पर आपके कल्याण के लिए कहते हैं। जिन धर्म की शरण में आओ।' राजा ने स्वीकार किया। दान-पात्र के औचित्य के अनुसार तीन प्रकार के देय दान, जीर्णोद्धार, नूतन बिम्ब करण और चैत्यादि धर्म का आदेश करके, प्रभावना करके सूरि अपने आश्रम मे गये। उनका कहा हुआ 'भक्तामरस्तव' आज भी सब उपद्रवों को हरण करता है। एक बार कर्मवश उन्हें कोढ़ हो गया। अनशन ले लिया। धरणेन्द्र का स्मरण किया। प्रत्यक्ष होकर धरणेन्द्र ने उन्हें पार्श्वनाथ का अष्टा-दशाक्षर मन्त्र दिया; क्योंकि उनकी आयु अब भी शेष थी। सूरि उस मन्त्र से गर्भित सर्वोपद्रव का हरण करनेवाला 'भयहरस्तव' बनाकर फिर से नये हो गये।

27. एक बार उस नगर के राजा की सेना विदेश गयी थी। इस समय उसके शत्रुओं ने उसे अल्पबल समझकर, मिलकर उस नगर को घेर लिया। नागरिक लोग व्याकुल हो गये और राजा भयभीत हो गया। नगर के दरवाजे बन्द कर दिये गये। बाण, मयूर आदि पण्डितों को राजा के इस उपसर्ग की शान्ति के लिए आदेश करने पर वे मानो पाताल में प्रवेश करने के लिए भूमि अवलोकन करने लगे। ऐसे समय पर श्री सूरि ने धवल गृह पर आरोहण करके 'भय हर' स्तोत्र को प्रकट किया। उसके प्रभाव से जब वैरी शिथिल हो गये तो गुरु की आज्ञा से उन पर आघात किये बिना राजा ने हाथी-घोड़ा आदि सर्वस्व हरण कर लिया। तब (वे शत्रु) सूरि और राजा को नमस्कार करके, प्रसाद पा-पाकर, अपने-अपने स्थान पर गये। तभी से 'भयहर' स्तोत्र पाठ होने पर सबका भय हरण होता है। इस प्रकार प्रभावना करके अन्त समय जानकर श्री गुणाकर सूरि अपने पद पर न्यास करके अनशन-मरण के द्वारा सूरि-स्वर्ग में गये।

इस प्रकार श्री मानतुंग सूरी का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

7. माघ पण्डित का प्रबन्ध (BR)

28. इसके बाद दत्त के पुत्र माघ का (इतिहास) कहा जाता है—माघ के जन्म के समय उसके पिता ने जातक (जन्म-पत्र-फल) बनवाया। (उसके अनुसार) आयु तो चौरासी वर्ष थी, पर अन्त में चरण की सूजन से मृत्यु थी। अति समृद्धिशाली पिता ने (माघ को) सोलह वर्ष की अवस्था के बाद··· (पर) अत्यन्त खर्चीला होने पर भी इतने से अच्छी तरह निर्वाह कर लेता था। प्रौढ़ होकर वह पढ़ने लगा। कविता करके पिता को दिखाता। (पिता कहता—) 'ऐसी कविता करते हो जो पूर्व कवियों की कविता का शतांश भी नहीं होती।' पुत्र ने 'शिशुपाल वध' नामक काव्य लिखकर चुपके से चूल्हे के ऊपर रखा। एक बार (उस) पुस्तक को धुएँ से पुराने जैसा बनाके पिता को दिखाया। पिता ने पढ़कर सिर हिलाते हुए कहा, 'बच्चा, ऐसी कविता की जाती है।' उसने पूछा, 'पिताजी, अच्छी है?' 'क्या कहना है?' 'तो मैंने ही (ये कविताएँ) की है।' पिता ने कहा, 'मैंने छल किया था, इसीलिए तुम्हारी कविता की सीमा यहाँ तक पहुँच सकी। इसके बाद तुम्हारी कविता (इससे अधिक सुन्दर) नहीं होगी।' पढ़ने के बाद पिता की मृत्यु के अनन्तर वह विलास में प्रवृत्त हो गया। जन्म-पत्रिका देखके सखिल (सुमेर के साथ) हार व्यय करने लगा।

29. उस (माघ) की दोस्ती मालवेश्वर राजा भोज से हुई। एक बार श्री भोज ने माघ को मिलने के लिए बुलाया, वह वहाँ गया। राजा ने गौरव के साथ धवल-गृह में ठहराया। स्नान करते समय पण्डित ने मुँह बिचकाया। जब वह खाने बैठा तो राजा ने स्वर्ग की रसोई की भाँति सुन्दर रसोई परोसी। वह मुँह बिचकाता रहा। राजा ने सोचा कि 'यह अपने घर पर क्या खाता है?' (माघ) उठा। राजा ने पूछा, 'रसोई कैसी रही?' 'महाराज, कदन्न से ही पेट भरा है।'

रात में सोया। पण्डित राजा के निकट ही (सोया) था। रात में पण्डित बार-बार शय्या पर करवटें बदलता और पार्श्व में आघात करता रहा। राजा ने (विचार किया कि) 'घर पर यह क्या खाता है और कैसे सोता है? जाकर यह देखना चाहिए।' प्रातःकाल (उसके) उठने पर राजा ने पूछा, 'निद्रा अच्छी तरह आयी?' (उसने उत्तर दिया) 'महाराज, गधे की भाँति भारग्रस्त को निद्रा कहाँ?' चार दिन ठहरकर पण्डित ने राजा से छुट्टी ली। राजा ने श्रीमाल में भोज स्वामि प्रासाद बनवाया। उसी का पुण्य पण्डित को देकर उसे विदा किया। पण्डित ने कहा, 'महाराज, कभी मेरे ऊपर कृपा करके मेरे नगर में पदार्पण करें।' 'अच्छा' कहकर उसे भेजकर राजा लौटकर घर आया। इधर द्वितीय शीतऋतु में राजा भारी सेना के साथ श्रीमाल आया। माघ ने आगे जाकर सेना समेत राजा को अपने घर पर ही उतारा। राजा आवास देखने लगा। उसने जगह-जगह पर विचित्र कौतुक देखे, स्थान-स्थान पर धूप-घटी की सुगन्धि ली। इस प्रकार संचारभूमि को

कहने पर पण्डित ने कहा, 'सचमुच ही ब्रह्मा ने हम लोगों का उचित मिलन किया है। आज तुम परीक्षा में खरी उतरी। इतने दिनो तक चित्त में यह विकल्प था कि मेरी गृहिणी मेरे अनुरूप है या नही। आज तुम्हारे दान से सन्देह जाता रहा जबकि तुमने गृह की दुरवस्था पर ध्यान नही दिया।'

48. 'द्रव्य नही है, दुराशा भी मुझे नही छोड़ती, मेरा यह दुर्ललित हाथ दान से संकुचित नही होता, माँगना लाघव करनेवाला है, आत्महत्या करने में पाप है, सो हे मेरे प्राण, स्वयं चले जाओ, चिन्ता से क्या होने को है ?'

इसके बाद कुश के बिछौने पर सो गया। चरण मे शोथ हो गया। इसी अवसर कोई क्षुधार्त्त ब्राह्मण पण्डित के घर मे प्रविष्ट हुआ और भोजन माँगा। पण्डित ने कहा—

49. 'क्षुधा से कातर मेरा मकान पूछते-पूछते कही आया है। हे गृहिणी, घर मे क्या कुछ है, जो यह क्षुधार्त्त खाये ?' (गृहिणी ने) मुँह से तो शीघ्रता से कह दिया कि' है', परन्तु विना अक्षरों के ही विलोल नेत्रों से झरती हुई बड़ी-बड़ी बूँदों से 'नही' कहा।

इससे वह याचक विमुख होकर चला गया। पण्डित बोला—

50. 'हे प्राणो, याचक के लौट जाने पर चल दो, चल दो। पीछे भी तो जाना ही है, फिर ऐसा साथी कहाँ मिलेगा ?'

यह कहने के अनन्तर (पण्डित ने) प्राण त्याग किया। पत्नी ने पीछे सहगमन किया। इधर श्री भोजराज धनपूर्ण ऊंटो को लेकर तुरन्त आये। (आकर) पूछा कि 'पण्डित कहाँ है ?' लोगों ने (सब) वृत्तान्त कहा। राजा बोला, 'अरे यह श्रीमाल नही है, भिल्लमाल है, जहाँ मुझ उद्धारक के रहते हुए भी मेरे मित्र को किसी ने कुछ नही दिया। इसलिए यह नगरो में भी अपवित्र है।' शेष कार्य उसी धन से करके मन में यह सोचता हुआ अपनी पुरी को गया—

51. 'चन्द्रमा और सूर्य को भी ग्रहण की पीडा मे पडना; हाथी, साँप और पक्षियों का भी बन्धन में आना और मतिमानो की भी दरिद्रता देखकर मेरा विचार है कि विधि ही बलवान् है।'

52. यदि सूर्य पश्चिम दिशा मे भी उदित होते, यदि पहाड़ के अग्रभाग में पत्थर पर भी कमल खिले, यदि मेरु भी चले और अग्नि भी शीतल हो जाय तो भी यह भावी कर्मरेखा नही टलती।

इस प्रकार माघ पण्डित का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

57. 'बौद्ध धर्म को सुनना चाहिए, जैन धर्म को करना चाहिए। वैदिक धर्म को व्यवहार में लाना चाहिए और परम शिव का ध्यान करना चाहिए। यह कहकर देवी अदृश्य हो गयी। प्रातःकाल राजा ने सबको एकत्र किया और सत्कार करके भेजा।

इस प्रकार षड्दर्शन प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

10. नीलपटवध प्रबन्ध (B)

33. श्री भोजराज के नगर में नीलपटदर्शनवाले थे। वे (इस प्रकार रहते थे), एक स्त्री और एक पुरुष नीली धोती से अपने को ढक लेते थे और बीच में नंगे होकर विहार करते थे। एक बार वे धारा नगरी में पहुँचे। उन्हें वहाँ अपूर्व देखकर (लोग) उनके समीप जाने लगे। वे इस प्रकार कहते, 'हम लोग ईश्वर की सच्ची सन्तान हैं, क्योंकि अर्द्धनारीश्वर रूप से रहते हैं।' एक दिन कौतुकवश भोज की पुत्री आयी और कर्त्तव्य पूछा। उन्होंने कहा, 'हे चारुलोचने, खाओ और पियो। क्योंकि हे सुन्दर शरीरवाली, जो कुछ बीत गया है, वह तुम्हारा नहीं है। हे भीरु, गयी चीज फिर नहीं लौटती। यह शरीर ही सर्वस्व है।'

उस (राजकुमारी) ने कहा, 'आप लोगों का मत स्वीकार करूँगी।' राजा से विदा लेने गयी। (जाकर कहा कि) 'पिताजी, मैं इन नीलपटों का धर्म स्वीकार करूँगी।' राजा ने उन्हें बुलवाया और पूछा, '(आप लोग) सुखी हैं?' मुख्य ने कहा—

59· 'नदियों में शराब नहीं बहती, पर्वत मांसमय नहीं है और न संसार ही स्त्रीमय है। फिर नीलपट कैसे सुखी हों!' राजा ने कहा, 'आप लोग कितने हैं?' 'उनचास जोड़े।' राजा ने कहा, 'सबको बुलाओ, मैं तुम लोगों का भक्त हूँगा।' वे सब एकत्र हुए। राजा ने सब पुरुषों को मार दिया, स्त्रियों को निकालकर मुक्त कर दिया। इस कार्य से उनका बीज भी नष्ट कर दिया।

इस प्रकार नीलपटों के बध का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

11. भोज और गांगेय का प्रबन्ध (B)

34. एक बार वाराणसी के राजा श्री गांगेयकुमार चौदह सौ हाथी, तीन लाख जीन के सहित घोड़े और दो लाख खाली (अर्थात्) इस प्रकार (सब मिलाकर) पाँच लाख घोड़े, इक्कीस लाख मनुष्य—इस प्रकार की सामग्री के साथ मालवाधिपति भोज के प्रति चला। गोला के किनारे पड़ाव डालके ठहरा। इधर राजा भोज ने भी 44 हजार घोड़े, 5 लाख मनुष्य और दो सौ हाथी—इस प्रकार की सामग्री सहित सामने आकर गोदावरी के किनारे पड़ाव डाल दिया। इसके बाद गांगेय के पण्डित परिमल ने भोज के पास 'वक्रोक्ति काव्य' भेजा। राजा कुपित हुआ। पर क्या करता! इसके बाद भोज ने काष्ठधवल पर खड़े होकर देखा। भारी सेना देखकर अपने छित्तिप नामक महा अमात्य को सन्धि के लिए भेजा। वह वहाँ राजा के स्थान पर गया। राजा ने कहा, 'अरे, तेरा स्वामी मेरे सैन्य को नहीं देखता, जो सामने आया?' 'महाराज, सेना का गर्व क्या?' यह बात हो ही रही थी कि राजा ने सेना में कलकल शब्द सुना। पूछा, 'अरे, बात क्या है?' (जवाब मिला) 'हाथी परवश हो गया है, उसी का यह कोलाहल है?' राजा ने यह सुनकर काठ के पिंजड़े में प्रवेश किया और साँकल लगा दी। छित्तिप ने धीरे-से हटकर 'कपसिंह' इस आर्या को कोयले से जूते के निचले तले में लिखकर एक आदमी को (भोज के पास) भेजा। उसने राजा (भोज) को जूता दिखाया। राजा सुसज्जित होकर गांगेय की सेना पर टूट पड़ा। सबकुछ अधिकार कर लिया। भीतर ही राजा भी पकड़ा गया। सोने की बेड़ी में रखकर, हाथी पर चढ़ाकर, राजा को धारा में ले आया गया। धवल-गृह में दूसरे सिंहासन पर उसे बैठाया गया। राजवर्ग के साथ पण्डित परिमल भी आया। राजा भोज ने कहा, 'बैठो पण्डित!' पर वह आसन नहीं छोड़ता। 'यहाँ पहाड़ों में श्रेष्ठ मेरु निवास करता है।' भोज ने कहा,···(?) 'उसका चरित्र क्या है?' पण्डित के 'अयं बराकमेरु.' इस श्लोक के कहने पर राजा ने 'अन्यस्थानं न गत्नुविमलं.' यह श्लोक कहकर पण्डित से कहा, 'कासिकोशिर मांगो।' 'महाराज, इस राजा को छोड़ दीजिए।' भोज ने (राजा को) सिंहासन पर बैठाकर, तिलक करके फिर वाराणसी राज्य में भेजा।

इस प्रकार गांगेय और भोज का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

12. भोजदेव और सुभद्रा का प्रवन्ध (B)

35. गोपगिरि का राजा नरवर्मदेव था। उसकी लड़की का नाम था सुभद्रा। उसने भोजराज का 'अभिनवार्जुन' (नया अर्जुन) यह विरुद पढ़ा जाते सुनकर पिता से कहा,'पिताजी, मुझे भेजिए, राजा भोज या तो मत्स्यबेध करके मुझे ब्याहे या विरुद त्याग दे।' वह आग्रहपूर्वक पिता से आज्ञा लेकर 12 हजार घोड़ों के साथ चली। राजा के आगे कहलवाया कि 'मैं तुम्हें वरण करने आयी हूँ।' सुनकर राजा चिन्तातुर हो उठा। वह गोदावरी के किनारे आकर ठहरी। मत्स्यवेध करो, या विरुद त्याग करो।' सुनकर राजा ने सम्मुख प्रयाण किया और अभ्यास आरम्भ कर दिया। सब कोई तमाशा देखना चाहते थे। कोई सन्धि की बात भी नहीं कर सकता था। छः मास के बाद उस कन्या से फटकारे जाने पर (भोज ने) गोदावरी तीर पर आकर मत्स्यबेध दिया। उसके नीचे तेल की कड़ाही रखी हुई थी। राजा उसके किनारे अपने स्थान पर खड़ा हुआ। कविराजों ने अनेक तरह का वर्णन शुरू किया। वहाँ वृद्ध-सरस्वती इस नाम के आचार्य राजा के सेवक थे। उन्होंने 'विद्धा विद्धा शिलेगं.' यह श्लोक कहा। राजा के मत्स्यबेध करने पर कन्या ने वरमाल डाल दी। राजा ने काव्य का दोष पूछा, पर कोई नहीं बता सका। राजा बोला, 'विद्धा विद्धा यह सुनकर मैंने सोचा कि मेरा काम समाप्त हुआ।' 'भवतु कार्मुक-क्रीड़ितेन' इस (वाक्यांश) के द्वारा छः महीने के बाद भोज की मृत्यु (सूचित होती है)।
....

इसके बाद उस कन्या का विवाह हुआ। छठे महीने में अतिसार से राजा मर गया।

30 (G) संग्रह में प्राप्त राजा भोज का वृत्तान्त

36. ···भोज के जन्मपत्र में 'पंचाशत पंच वर्षाणि' यह श्लोक आने पर उसने ज्योतिषी को रोका। इसके बाद मुंज ने उसी ज्योतिषी से सन्तान के लिए पूछा। उसने कहा,'आप निस्सन्तान ही रहेंगे। श्रावण सुदी पंचमी को प्रथम प्रहर में जो आदमी आपकी समस्या पूरी करेगा, वही राजा होगा।' इस प्रकार निर्णीत दिन को किसी मकान के ऊपर काले पति और गोरी पत्नी को देखकर राजा के मन में समस्या उत्पन्न हुई—'ढुल्लड सामल उघण चम्पावन्नी' (दूल्हा साँवला और दुलहिन चम्पा के रंग की है)। जब किसी ने नहीं पूरा किया तो भोज ने पढ़ते समय इस प्रकार पूरा किया—'छज्जई कणयारह कसवट्टइ दिन्नीण'।··· (भोज को पढ़ानेवाले) पण्डित ने कहा कि मैंने पूरी की है। समस्या राजा को दिखायी गयी। उसे अर्ध राज्य के योग्य समझकर भोज को त्याग करके राजा ने ज्यों ही यौवराज्य देने की अभिलाषा की त्यों ही जालन्धर ने कहा कि 'रानी मुसनाता हैं।'

इसके बाद (मुंज ने) निर्घृण शर्मा को (भोज के) मारने का काम दिया। भोज ने कहा, 'मान्धाता स महीपतिः।' इस तरह सन्तुष्ट होकर राजा ने उसे पुनः मुक्त कर दिया।

37. एक बार श्री भोज ने श्रीपत्तन के अधिपति श्री भीम के पास कुछ पण्डितों को एक गाथा के साथ भेजा। वह गाथा इस प्रकार थी—'हेला निछलिय.।' उसका प्रत्युत्तर न मिलने पर राजा विपराया हुआ। तब पण्डितों ने…के लिए गाथा में संस्कार करना शुरू किया। इस पर सूरि ने कहा, 'जीवित को क्यों मारते हो ? आप लोगों को स्त्री हत्या (का पाप) होगा।' उनके इस प्रकार निषेध करने पर राजा ने सम्मानपूर्वक गुरुवर से प्रत्युत्तर पूछा। इस पर उन्होंने कहा, 'अंध सुयाण कालो.'। इस प्रत्युत्तर से रुष्ट होकर भोज ने उस नगर के ऊपर चढ़ाई करके बाहर पड़ाव डाल दिया। यह जानकर श्री भीम ने 'डामर' नामक सान्धिविग्रहिक को भेजा। राजा भोज उसे कुरूप देखकर हँसा और बोला, 'यौष्माकाधिप'। इसके बाद राजा जब स्नान के लिए उतरा हुआ था और उसके केशों से पानी की बूँदें चू रही थी तो उसने पूछा, 'मन्त्री, भीम डाक नाई क्या करता है ?' उसने कहा, 'अश्वपति, गजपति और नरपति इन तीन राजाओ का सिर मूँड लिया है। चौथे का (सिर) भिगोकर छुरा तेज कर रहा है।' इस कौतुकी से सन्तुष्ट होकर राजा ने उसे अपने पास ही रख लिया। वह नित्य ही कौतुकपूर्ण वक्तृता से राजा को प्रसन्न करने लगा। एक दूसरी बार राजविडम्बन नाटक के अवसर पर भीम का रूप धारण करनेवाले मार्दंगिक को मृदंग बजाते देख राजा ने कहा, 'मन्त्री, भीम डाक के हाथ मृदंग पर अच्छा पड़ते हैं।' उसने कहा, 'महाराज, प्राचीन काल मे भीम द्वारा पार्वती के सामने ताण्डव किये जाते समय इसका अभ्यास किया था। भीम के हाथ ऐसे ही कठोर हैं।' दूसरी बार तैलपदेव के रूपधारी के आने पर मन्त्री से कहा गया—'मन्त्री, देखिए यह आपके देश का राजा है।' ऐसा कहने पर उसने कहा, 'मालूम नही है।' 'मत्स्वामी तैलपदेवो' ऐसा कहने पर राजा ने रुष्ट होकर उसे पितृव्य-वैरी समझकर उसी समय तैलपदेव के ऊपर सेना चला दी। राजा के चलने पर मन्त्री ने कहा, 'महाराज श्री भीम…से आघात करेंगे।' राजा ने कहा, 'जाकर रोको।' 'केवल बात से नही रुकेंगे' ऐसा कहने पर 4 हजार घोड़े, 4 जात्य हस्ती, 9 लाख सुवर्ण यह सब उपहार-स्वरूप भेजा। मन्त्री को साथ मे ले लिया। उसी की बुद्धि से 16 योजन की (दैनिक ?) गति सीखे हुए हजार घोड़ों से, पाद्र देवता को नमस्कार करता हुआ तैलपदेव पकड़ा गया।

38. एक बार मन्त्री डामट के सामने (भोज ने) कहा, 'जितने लोग मालवा में विद्वान हैं उतने और किसी देश मे नही।' इस पर डामट ने कहा, 'गुर्जरदेश मे जैसे लोग—ग्वाले और वैश्य आदि (तक) विद्वान हैं वैसे यहाँ नही।' राजा मौन हो रहा। डामट ने सोचा कि राजा धूर्तता करके रह गया है। फिर कभी यह बात चलादेगा। इसलिए अपने राजा के पास कहवाया कि 'एक विदुषी स्त्री पण्डिता देश की सीमा पर रखना। एक विद्वान् गोपालक के रूप में देश की सीमा पर रखना।' फिर एक

बार भोज ने कहा, 'ले आओ।' प्रधान उन्हीं दोनों को ले आये। पहली भेंट के अवसर पर राजा ने कहा, 'कहो पण्डित, कुछ वर्णन करो।' वह बोला, 'भोजराज मलि' इत्यादि। राजा ने प्रशंसा की। उस स्त्री से (राजा ने) कहा, 'यहाँ क्या?' वह बोली, 'पूछन्ति' इत्यादि।

. 39. एक दूसरी बार आधी रात को परिभ्रमण करते हुए कुलचन्द्र नामक क्षपणक को भोज राजा ने यह पढते हुए सुना—'तिक्खा तुरिय न मारिआ', 'नव जल भरिआ' इत्यादि। बाद को राजा ने अपनी पुत्री का स्वरूप देखकर प्रात.काल उसे बुलाकर गुर्जरदेश पर (आक्रमण करनेवाली) सेना का आधिपत्य दिया। तब उसने कहा, 'देव दीपोत्सवे रम्ये.।' बाद को उसने समग्र गुर्जरदेश विनप्ट कर दिया। श्रीपत्तन के चौराहे पर कौड़ियाँ बोयी। जब वह लौटकर आया तो राजा ने कहा, 'तुमने अच्छा नही किया। आज से मालवदेश का दण्ड गुर्जर को जाया करेगा, क्योंकि कौड़ियाँ मालवदेशीय···हैं।'

40. धारा नगरी में सीता नाम की एक रन्धनी (रसोईदारिन) थी। किसी दूर देश के निवासी ने उसके घर भोजन बनवाया। रात में उसने घी की कुप्पी के बदले कांगनी के तेल की कुप्पी लेकर तेल परसा। वह मर गया। उसे मरा देखकर अपवाद के भय से उसने वही अन्न खाया। उसके प्रभाव से उस पर सरस्वती का प्रसाद हो गया। वह सीता पण्डिता राजा की मान-पात्री हुई। एक बार राजा ने उसके स्तन-युगल देखकर पढ़ा—

60. 'इस कमललोचना के कुचद्वन्द्व का क्या वर्णन किया जाय? सातों द्वीप के कर ग्रहण करनेवाले आप जहाँ कर (हाथ) देते है।'

सीता ने उत्तरार्ध पढ़ा। इसी तरह राजा ने फिर पढ़ा—'सुखाय नमस्तस्म.' इत्यादि। एक दूसरी बार जालान्तर चन्द्रमा के किरण का स्पर्श देखकर उसने यह पढ़ा—'अलंकलंक श्रृंगार.' इत्यादि।

41. एक बार राजा भोज जब राजपाटिका मे जा रहे थे, सभी ने नमस्कार किया। किन्तु बाजार मे स्थित एक पुरुष ने राजा को नमस्कार नही किया। तब राजा ने उसकी ओर देखा। उसने तीन अंगुलियाँ उठायी। राजा ने सोचा कि 'इसने तीन अंगुलियो से क्या इशारा किया!' दूसरे दिन उसी तरह उसने दो अंगुलियाँ और तीसरे दिन एक अंगुली दिखायी। बुलाकर राजा ने पूछा। उसने कहा, 'राजन्, तीन दिन तक एक वूणि (   ) है, राजा की परवा कौन करता है!' इससे सन्तुष्ट होकर राजा ने उसे वर्षाग्राम दिया।

42. किसी पण्डित ने दो श्लोक पढ़े—'ग्रासार्द्धमपि.' इत्यादि, 'यदनस्तमिते.' इत्यादि। इन दोनों को राजा भोज ने अपने दोनों कुण्डलों में खुदवाया। दोनो के दान में दो लाख दिये।

43. श्री भोज ने सिद्धरस की सिद्धि के लिए सात करोड़ सुवर्ण खा लिया; पर रत्ती-भर भी सिद्धि नही हुई। तब उसने रसविडम्बन नाटक करवाया। उसमें पात्र आकर इस प्रकार कहते—

61.

इस पर राजा हँसता। इसी बीच यह सुनकर सिद्धरस योगी आया। दीपक के धूम-वेध से राजा की ताम्र-मण्डिका सोने की कर दी। राजा ने देखा कि क्या बात है। भ्रान्त होकर नाटक रोक दिया। राजा ने कहा, 'जब वह सिद्ध योगी मिलेगा तभी भोजन करूँगा।' तीन दिन बीत जाने पर वह मिला। उसने कहा, 'राजन्, रस देवता है।'

62. अगर कहे कि हैं, तो कुछ दिखायी नही देता, अगर कहें कि नही हैं, तो सद्गुरु अप्रसन्न होते हैं। जो जानता है, वह उसका स्वरूप नही बताता; जो अनजान है, वह बताता है कि इस प्रकार का है।

यह जानकर राजा मान गया।

44. श्री भोज ने लोक का उपकार करने के लिए 107 वैद्यों की वृत्ति बाँध दी। चौराहों के चबूतरों पर जयघण्ट बँधवा दिये, और यह घोषणा कर दी कि रोगी घण्टा बजाये जिसमे वैद्य मिलें और चिकित्सा करें। और यह कि रोगी बल-हट्टों (   ) में दवा और अन्न ग्रहण करें। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर एक बार कोई जलोदरी आया। घण्टा बजाने पर आये हुए वैद्य ने उसे असाध्य रोगी बताया। तब रोगी राजा से मिला। दयावश राजा ने भी कहा, 'वैद्यो, इसे जिलाओ।' 'महाराज, यह हम लोगों से नही जियेगा।' ऐसा कहने पर राजा ने रोगी को पाँच सौ दीनार देकर विदा किया। वह ग्रीष्म-ऋतु की दुपहरिया मे अकेले रास्ते मे बरगद की छाया में विश्राम के लिए गया। वहाँ एक साँप आ रहा था जो उस रोगी की दुर्गन्ध से मर गया। वह भी उदास होकर आत्महत्या के लिए साँप के पीछे दौड़ पड़ा। बाद को उस साँप के वमन किये हुए विष से लिप्त आक के पत्तों को खा गया। उसके खाने से उसे विरेचन हुआ। इसके बाद किसी नायिका ने अपने घर ले जाकर उसे नीरोग किया। लौटकर उसने फिर घण्टा बजाया। उस आवाज से आये हुए वैद्यों ने उसे स्वस्थ देखकर पूछा, 'तूने घण्टा क्यों बजाया?' उसने कहा कि 'मुझे राजा जानता है।' वे उसे राजा के पास ले आये। राजा ने पूछा, 'तुम्हें क्या रोग है?' उसने कहा, 'मैं वैद्यों द्वारा मुक्त वही जलोदरी हूँ। आपकी कृपा से जी गया हूँ।'(राजा के यह पूछने पर कि) 'यह कैसे हुआ?' दोषज्ञ वैद्यों के प्रधान ने कहा, 'यह वही है। यह रोग एक ही औषध से साध्य है। वह औषध कर्मयोग से ही मिला है, धन से नही।' 'कौन-सा औषध?' 'राजन्, ग्रीष्म की दुपहरिया मे काले सर्प के स्वयंमुक्त विष से लिप्त पत्ते ही। उस औषध के बिना यदि यह जीवित हो तो मुझे बताइए।' ऐसा कहने पर राजा ने (रोगी से) पूछा, 'क्यों जी?' उसने कहा, 'हाँ, ऐसा ही है।'

तब राजा ने दोनो को ही इनाम दिया।

45. एक दूसरी बार डाहल-देशीय कर्ण की माँ देमता ने, जो सिद्ध य थी, एक पहर के बाद शुभ लग्न प्राप्त होने के कारण प्रसव के समय तब

लिए कपालासन के द्वारा गर्भ रोक रखा। कर्ण पैदा हुआ, किन्तु वह मर गयी। शुभ लग्न के प्रभाव से 136 राज्यों का चक्रवर्तित्व करने पर भी राजा रोया करता। मन्त्रियो ने कारण पूछा, 'मां स्म सीमन्तिनी क्वचित्.।'

46. एक बार श्री कर्ण ने श्री भोज से कहलवाया कि आपके 104 प्रासाद और गीतबद्ध प्रबन्ध हैं। इसलिए घोड़ों के द्वन्द्व-युद्ध और विद्या-त्याग-युद्ध मे मुझे जीतकर एक अधिक प्रासाद और प्रबन्ध स्वीकार कीजिए। तब पचास हाथ के प्रासाद के प्रतिज्ञा में जब कर्ण ने भोज को जीत लिया, और मन्त्रियों से··· श्री भीम ने श्री कर्ण के पास तोते के चरण में बाँधकर लेख भिजवाया। 'अम्बय-फलम्.' इत्यादि। इस प्रकार मिलकर मालवदेश भंग करने के बाद हिस्से के लिए डामट ने श्री कर्ण को बन्दी किया।

इस प्रकार राजा भोज के विविध प्रबन्ध (समाप्त हुए)।

13. धाराध्वंस प्रबन्ध (B)

47. मालव-मण्डल में उज्जयिनीपुरी दूसरी धारा थी। वहाँ का राजा था यशोवर्म्मा। इधर पत्तन में सिद्धदेव राजा थे। उन्होने मालवा को जीतने के लिए प्रयाण किया। नजदीक पहुँचकर प्रतिज्ञा की कि धारा को जीतकर ही खाऊँगा। इधर धारा में पाँच गव्यूति (दस कोस) तक लोहे की छुरियाँ बिछायी गयी थी और दरवाजे बन्द कर दिये गये थे। बन्द दरवाजों के सामने धनुर्धर पुरुष खड़े थे। वहाँ हाथियों के जाने का भी मार्ग नही था। धारा के निकट भी नही जाया जा सकता था। सिद्धराज के प्रधानो ने कणिका की धारा बनायी। उसके तोड़ने में पाँच सौ परमार लड़कर मरे। बारह वर्ष तक लड़ाई होती रही। जब सिद्धराज खिन्न हो गया तो बर्बरक बेताल ने कहा कि 'महाराज, यदि यशः नामक हाथी मिले और किराड़ू का रहनेवाला जेसल परमार वहाँ भेजा जाय तो हाथी पर चढ़कर वही धारा को जीत सकता है। दूसरा उपाय नही है।' राजा ने कहा, 'वह हाथी कहाँ है?' 'कान्तीपुरी के मदनब्रह्म राजा के पास है।' जैसिहदेव कुछ आदमियों के साथ वहाँ गया। बरसात का समय था; नगर के दरवाजे पर रुका। मांईदेव नामक मन्त्री से मिला। (मन्त्री ने कहा) 'कार्य का आदेश कीजिए।' 'राजा का दर्शन करना चाहते हैं।' 'राजा महानवमी के बिना दर्शन नहीं देते।' जैसिहदेव ठहरा रहा। इधर बहुत पसीना होने के कारण राजा ऊपर की छत पर आया। नगर देखकर नगर के बाहर देखा।

'अरे, नगर के दरवाजे पर यह क्या दिखायी देता है।' 'महाराज, गुजरात

का राजा महाराज के दर्शन करने के लिए आया है।' 'अरे, यह तो राजा नही कबाड़ी है, जो वर्षाकाल मे इस तरह घूमता है। बुलाओ।' जयसिंहदेव उपहार लेकर आया। श्री मदनब्रह्म राजा ने सत्कार किया। आगमन का कारण पूछा। राजा ने कहा, 'यशःपटह हाथी देखना चाहते हैं।' 'किस लिए ?' 'महाराज, उसके बिना द्वादशवार्षिक युद्ध समाप्त नही होता।' राजा ने आज्ञा दी, 'हाथियों को ले आओ।' आदमियों ने कहा, 'प्रसिद्ध हाथियों मे वह नही है।' सिद्धराज का चेहरा काला पड़ गया। इसके बाद एक अघोर ने कहा कि 'महाराज, यश पटह हाथी वह है। उसे मँगाइए।' राजा ने कहा, 'यदि इससे काम चले न तो अन्य हाथी-घोड़े भी ले जाइए।' 'महाराज, इतना ही बहुत है।' राजा ने हाथी सजाकर देते हुए कहा, 'इसके बाद लड़ाई न कीजिएगा; क्योंकि जीवलोक मे थोड़ी उमर है। उसमे यदि राज्य का सुख न भोगा गया तो उससे लाभ ही क्या ?' राजा ने धारा में जाकर सम्मान के साथ जेसल परमार को बुलाया। उसे देखकर चारण ने कहा—
63.

वह यश.पटह पर चढ़कर फाटक पर गया। दरवाजे के सामनेवाले धनुर्धर हाथी को बेधने लगे। वह पीछे खिसका। जेसल ने हाँका। हाथी क्रुद्ध हुआ। कपाट के नीचे जरा-सा सूँड घुस पाया और उसे उखाड़ लिया। फाटक बड़े जोर से गिरा। धारा पर कब्जा हुआ। राजा यशोवर्म्मा पकड़ा गया। जैसिंहदेव अपने उपकारकर्त्ता जेसल की श्राद्ध-क्रिया करके वहाँ से चला।

48. जब वह क्रमश. पुराने शहर में आया, तो ब्राह्मणों ने प्रवेश-उत्सव कराया। इसके बाद श्री युगादिदेव के मन्दिर के आगे जब राजा पहुँचा तो ब्राह्मणों ने कहा कि 'महाराज, देव को नमस्कार कीजिए।' 'क्या ये ब्रह्मा हैं ?' 'महाराज, यह युगादिदेव का मन्दिर है।' 'इसमें अपूर्व क्या है ?' 'महाराज, हमारे नगर मे यही मुख्य देवता हैं।' राजा ने भीतर जाकर देव को नमस्कार किया। मन्दिर के ऊपर ध्वजा देखकर लोगों से पूछा, 'मैंने मालवा में रुद्र महाकाल के सिवाय अन्यत्र कही भी ध्वजा नही देखी। यहाँ कैसे ?' ब्राह्मणों ने कहा, 'उत्तारक मे चलिए ताकि हम बतायें।' तब राजा ब्रह्मदेव-कुल से होता हुआ उत्तारक मे गया। फिर ब्राह्मणों ने श्री युगादिदेव के भाण्डार से गोष्ठिकों (   ) द्वारा मँगाकर कांस्यताला दिखलाया और कहा, 'महाराज, यह वह प्रासाद है जहाँ ऐसे-ऐसे अनेक कांस्यताल थे। ऐसे-ऐसे इक्कीस प्रासाद कलश-समेत पृथ्वी में धँस गये हैं। यह बाईसवाँ है।' राजा आश्चर्यचकित हुआ। युगादिदेव के लिए अधिक दान देकर पत्तन को गया।

इस प्रकार धाराध्वंस का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

14. सिद्धराज की उदारता का प्रबन्ध (B)

49. एक बार सिद्धराज ने···राजा यशोवर्मा को पत्तन दिखलाया। उसने अनेक प्रासादों की परम्परा देखकर कहा, 'महाराज, हमारा वैर खूब अच्छी तरह चलेगा।' 'सो कैसे ?' 'इन देवकुलों में अपरिमित दान दिया गया है। भावी सन्तान इन्हें बन्द कर देगी इसलिए देवद्रव्य-भक्षण करने के कारण नष्ट हो जायेगी।' सहस्रलिंग को देखकर उसने कहा, 'हम लोग देवद्रव्य-भक्षक हैं और आप लोग शिव के स्नान किये हुए जल के पीनेवाले, इसलिए हम दोनों समान हैं।'
64. सिद्धराज के सरोवर के विराजमान रहते, मेरा मन मानसरोवर में नहीं रमता, पम्पासर (कुछ भी) प्रमोद नहीं सम्पादन करता और अच्छोद का स्वच्छ जल भी असार जान पड़ता है।

50 इसके बाद एक दिन सिद्धराज नगर का हाल-चाल जानने के लिए गुप्त रूप से घूम रहा था। व्यवहारगृह की पंक्ति में एक घर में बहुत-से दीपक जलते देखकर प्रातःकाल (उस व्यवहारी को) बुला भिजवाया। उसने भयभीत होकर कारण पूछा। बुलानेवाले ने कहा, 'हम नहीं जानते।' वह गया। राजा ने पूछा, 'तुम्हारे घर में कितने दीपक है ?' उसने कहा, 'चौरासी।' राजा ने कोष से 16 लाख निकलवाकर देकर उसके यहाँ ध्वजा करायी और दीपकों को जलवा दिया।

15. मदनब्रह्म और जयसिंहदेव की प्रीति का प्रबन्ध (B)

51. कान्तीपुरी सब नगरों में श्रेष्ठ थी। उसमें 84 चतुष्पथ थे। चौरासी जैन-मन्दिर और इतने ही शिव-मन्दिर भी थे। वापियाँ भी उतनी ही थी। 84 उद्यान और 84 ही सरोवर—इस प्रकार सभी स्थान चौरासी-चौरासी थे। वहाँ मदनब्रह्म राजा था। उसका गृह धवल (सफेद) था। एक योजन तक के प्राकार थे, जिसमें 17 ड्योढ़ी का राज-प्रासाद था। उसके पश्चिमी प्राकार में एक सर्वऋतु फूलने-फलनेवाला उद्यान था। 17 ड्योढ़ी में 4 गवाक्ष (खिड़कियाँ) थे। पूर्व की ओर 'विमान विभ्रम', दक्षिण की ओर पुष्पाभरण, उत्तर में कैलाश-हास और पश्चिम में गन्धर्व-सर्वस्व—ये चार मुख्य गवाक्ष थे। सभी सोने के बने थे और नाना

कौतुकों से उपशोभित थे। और भी 116 (गवाक्ष) थे। इस तरह सब मिलाकर दुर्ग मे 120 गवाक्ष थे। चारो दिशा में चार वापियां इस प्रकार थी—1. क्षीरोद-वापी, 2. कमलकेदार, 3. हंस-विश्रामवापी, 4. सुधानिधि। फिर धवलगृह के प्रवेशद्वार से सटी हुई नाना रत्नों से निबद्ध चन्द्रज्योत्स्ना नामक वापी नगर के मध्य में थी। उसके चारो ओर पहाड़ बने थे जिन पर लगे सब ऋतुओ के उपयोगी वृक्ष शोभित हो रहे थे। उस राजा के 5 सहस्र अन्त.पुर थे। इसी प्रकार 36000 पिण्ड विलासिनियां (रखेलिनें) थी। चार पटरानियां थीं—1. वावन, 2. चन्दना, 3. सुमाया, और 4. सीधण। बावनदेवी की चार मुख्य वाहिगि (   ) ये थी—1. सुगति, 2. हंसगति, 3. सुललित, 4. लीलावती। चन्दनदेवी की वाहिगि थीं—1. साऊ, 2. सुसीला, 3. दक्षमणि, 4. वल्लभा। सुमायादेवी की चार वाहिगि ये थी—1. फाँऊँ, 2. कपूरी, 3. कामल, 4. कस्तूरी। सीधणदेवी की वाहिगि—1. अमृतमयी, 2. अमृतवत्सला, 3. बचनवत्सला, और 4. सहस-कला। मेरी, हम्मीरी, फतू और फलू—ये चार रानियों की प्रधान कृपापात्र थी। आलि, आलति, अलवि अलवेसरि, वीलू वामणी ये कौतुक-पात्र थी। हाथी 3330, घोड़े 5 लाख, पैदल सेना 21 लाख थी। सब मन्त्रियो मे श्रेष्ठ माँईदेव सर्वमुद्रा-धिकारी था। सेनापति था साँईदेव। वारओलगड (   ) था माधवदेव। वर्ष मे दो सर्वावसर हुआ करते थे, एक महानवमी को, दूसरा चैत्राष्टमी को। इस तरह वह इन्द्र के समान राज्यपालन करता था। 16 सोलही सदा राजा के आगे नाचा करती थी।

52. एक बार गुजरात का अधिपति जयसिंहदेव दिग्विजय करके लौटते समय कान्ती के नजदीक आया। सोचा—'मेरी लड़ाई की अभिलाषा किसी ने पूरी नही की। (कहावत है कि) पुष्पो में जाती पुष्प और नगरों में कान्ती श्रेष्ठ है। तो, इसी को देखा जाय।' यद्यपि राजा के नौकर-चाकर उत्साहहीन थे, फिर भी उन्होंने राजा का अनुसरण किया। क्रमशः वे पुरी के बाहरी दरवाजे के पास पड़ाव डालकर ठहरे। भीतर (इनका आना) कोई नही जान सका। राजा ने बाहर से ही पुरी के प्राकार पर बने हुए सोने के बन्दरों के कंगूरे देखे। पुरी के प्रासादो के दण्डकलश आदि सबकुछ सोने के बने थे, इसलिए वह लंका की भाँति शोभित हो रही थी। सिद्धराज ने सोचा कि हम लोग बिना सोचे-विचारे आये। इधर पुरी का सेनापति सन्नद्ध होकर नगर से बाहर निकल, फेरी देकर भीतर जाया करता। अमात्य ने नगर का (फाटक) रोका। सेना की सब सामग्री तैयार की। इसके बाद मन्त्री ने लेख द्वारा राजा को सूचित किया—'महाराज! नगर के द्वार पर कोई सेना किसी प्रयोजन से आयी है।' राजा ने ऊपर की भूमि से देखा। द्वाररक्षक के पास अपना विचार पत्र के द्वारा भेजा। मन्त्री ने विचार देखकर 16 घोड़े और राजा के योग्य अन्य वस्तु माधवदेव को देकर भेजा। वह सिद्धराज के पास गया। राजा ने कहा, 'यह क्या है?' 'मन्त्री ने आपके पास आतिथ्य भेजा है। आप लोग अतिथि हैं, अतः हमारे सत्कार के योग्य हैं।' राजा ने कहा, 'हम लोग आतिथ्यार्थी

नहीं, युद्धार्थी हैं।' उससे यह सुनकर मन्त्री ने निवेदन किया। मन्त्री ने राजा को सूचित किया। राजा ने पत्र के द्वारा द्वार पर कहला भेजा कि 'बहुत अच्छा। आगामी मंगलवार को तुम्हारी श्रद्धा पूरी करेंगे।' राजा जयसिंहदेव के वचन से मन्त्री ने रणक्षेत्र सज्जित किया। क्षत्रियों ने चारों ओर से वृक्ष काट दिये। मन्त्री ने युद्ध के लिए सैन्य-सामग्री तैयार की। राजा की आज्ञा की ही बाट जोहता रहा। परन्तु राजा कुछ नहीं कहलाता। इधर निर्णीत दिन को जयसिंहदेव ने परमार-वंशीय जगद्देव के सिर (सेनापति को) पगड़ी बाँधी। अन्य भी 15 उसी के समान योद्धा तैयार किये। इधर मंगलवार के दिन कान्ती के राजा ने जगकर दाँत धो, स्नान और शृंगार करके देवपूजन किया। वह देखने ही लायक हुआ। पीछे रसोई बनी। भोजन करके पान खाया, फिर घोड़ों को सजाकर स्वयं सन्नाह पहनी। सोलह स्त्रियों को भी सन्नाह धारण कराया। उनसे युक्त होकर चला। एक युवती स्त्री छत्र धारण किये थी, दो चंवर डाल रही थीं। स्थान-स्थान पर कौतुक देखता हुआ पुरी के भीतर आठ दिन कौतुक के साथ बिताकर नवें दिन बाहर आया। इधर रणभूमि में पर्दा लगा हुआ था, जयसिंहदेव के सुभट भी सन्नद्ध होकर आये। पर्दा हटा तो राजा को स्त्री-वेष्टित देखकर वे पीछे हटे। सिद्धराज राजा ने कहा, 'क्यों, भागते क्यों हो?' जगद्देव ने कहा, 'किसके साथ युद्ध करें? आकर महाराज स्वयं देखें।' तब तो जयदेवसिंह स्वयं घोड़ा छोड़कर पैदल ही दौड़ आया। मदनब्रह्म राजा भी उतरा। दोनों के एक-दूसरे का आलिंगन करने से प्रीति हुई। प्रवेश-महोत्सव होने पर सिद्धराज अनेक कौतुक देखता हुआ, अनेक बाजों को सुनता हुआ राजा के साथ ड्योढ़ी पर आया। इस तरह नव दिन के बाद चन्द्रज्योत्स्ना नामक वापी तक पहुँचे। वहीं दोनों ने स्नान किया। धारागिरि की वाटिका को, जिसके वृक्ष सोने से वेष्टित थे, देखते हुए दोनों धवलगृह तक आये। मन्त्री के मंगलोत्सव कराने के बाद धवलगृह में पहुँचे। सिद्धराज यह सब रमणीयता देखकर ग्रामीण की भाँति आश्चर्यचकित हो रहा। भोजनादि की सामग्री ऐसी थी कि चित्त बड़ा चमत्कृत हुआ। महीने-भर के बाद विदा किया! राजा ने हाथी-घोड़े आदि उपहार में दिये। जयसिंहदेव ने 8 पात्र माँगे। राजा ने दिये। राजा विदा लेकर पत्तन को चला। आठो पात्र जब प्रतोली तक आये तो पालकी आदि समेटकर...तो निकलने पर कहा, 'पत्तन कहाँ है?' लोगों ने कहा, 'पत्तन दूर है।' यह सुनकर छः का हृदय फट गया। इसके बाद दो के ऊपर आच्छादन दिया गया। दो जीवित रहे। वे राजा के साथ क्रमशः पत्तन में आये। एक का नाम था माऊ, दूसरे का पेथु। आज तक माऊहर और पेथूहर पात्र सुने जाते हैं। इस प्रकार श्री जयसिंहदेव कान्ती जाकर आया था।

इस प्रकार मदनब्रह्म और जयसिंहदेव नृपति की प्रीति का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

18. इसके बाद श्री देवाचार्य प्रवन्ध (प्रारम्भ होता है) : (BR)

65. वस्त्र प्रतिष्ठा के आचार्य श्री देवसूरि को नमस्कार है, साधु लोग गुरु-प्रश्नों में
66. जिनकी प्रतिभा की उष्णता से कीर्तिरूपी योग-वस्त्र को त्यागनेवाले नग्न को (कुमुदचन्द्र को) मानो भारती ने लज्जा के कारण छोड़ दिया, वे देवसूरि कल्याणप्रद हों।
67. प्रभाधिनाथ आदिमुनिश्रेष्ठ गुरु-रूप तारकाओं से युक्त, अनन्त लीला से सुशोभित, वृहद्गच्छ नामक गच्छ आकाश की भाँति प्रतीत होता था।
68. उस (आकाशवत् प्रतीयमान गच्छ) में सांसारिक लोगों के मेघ को हरने के लिए बहुत शिष्य-रूपी किरणों के संवरण करनेवाले, विचित्र चरित्रवाले, मुनियों में चन्द्रमा के समान गुरु उदपय हुए।
68.
69.

53. उनके चरित्र को आरम्भ करते हैं। धन्याधार देश के मड्डाहपुर मे प्राग्वाट-वंशीय वीरणाग श्रेष्ठी रहता था। उसकी स्त्री थी जिनदेवी। उसने एक बार स्वप्न में चाँद को मुख मे प्रवेश करते देखा। इसके बाद उसने अपने गुरु श्री मुनि चन्द्रसूरि से कहा। उन्होंने कहा कि 'चन्द्रमा के समान सौम्य पुत्र होगा।' उसने शुभ समय में वैशाख शुद्ध (शुक्ल ?) दशमी को पुत्र जना। नाम रखा पूर्णचन्द्र। एक बार मड्डाहपुर में अमंगल हुआ। लोग इधर-उधर चले गये। वीरणाग भी भृगुकच्छ गया। पूर्णचन्द्र जब आठ वर्ष का हुआ तो शुष्क भक्षिका (चबेना) बेचने लगा। गुरु वहाँ आये। वह चबेना बेचने किसी दूसरे के घर गया। उस घर का मालिक अपने निधान द्रव्य को कोयला हुआ समझकर छोड़ रहा था, इसी समय पूर्णचन्द्र ने कहा, 'स्वर्ण को क्यों त्याग रहे हो ?' उसने कहा कि 'मेरे भाग्य से यह कोयला हो गया है। तुम अपने हाथ में लेकर हमको दो।' उसने दिया। धनिक ने देखा कि सोना है। शुण्ड में भरकर उसे सोना दिया। उसने अपने पिता को दिया। पिता ने गुरु से कहा। गुरु ने कहा, 'यह मामूली लड़का नही है। यदि हमें दो तो बड़ा प्रभावशाली होगा।' पिता ने कहा, 'मैं वृद्ध हूँ, गरीब हूँ, और एक ही लडका है। पूज्यों की बात भी नहीं टाल सकता।' गुरु ने कहा, 'हम पाँच सौ तपोधन है, वे सभी तुम्हारे पुत्र हैं।' उसने स्त्री से पूछकर पुत्र को गुरु को दे दिया। सं. 1152 साल में दीक्षा हुई। बुद्धिमान् होने के कारण सर्वशास्त्र में पारंगत हो गया। 'रामचन्द्र' यह नाम दिया गया। वह महावादी हुआ। पूर्व के धवलकपुर मे धन्य नामक ब्राह्मण को जीता, कश्मीर-देशीय 'सागर' नामक ब्राह्मण को सत्यपुर में जीता। नागपुर मे गुणचन्द्र दिगम्बर को जीता, चित्रकूट में शिवभूति नामक भागवत को जीता; गोपगिरि में गंगाधर ब्राह्मण को, धारा मे धरणीन्धर को, और

पुष्करिणी में पद्माकर को जीता। इधर विमलचन्द्र, हरिश्चन्द्र, पार्श्वचन्द्र, सोमचन्द्र, शान्तिकलश और अशोकचन्द्र आदि इसके सहायक हुए। गुरु ने सं 1162 में अपने पद पर स्थापित किया। नाम हुआ 'देवसूरि'। इसी तरह पत्नी जिनदेवी तथा पुत्री सरस्वती के साथ वीरणाग श्रेष्ठी ने व्रत ग्रहण किया। गुरु ने पुत्री चन्दनवाला को महत्तरा पद दिया।[1]

54. एक दूसरी बार वे धवलक्कक के विहार में गये। वहाँ ऊदाक सेठ ने श्रीसीमन्धर नामक प्रासाद बनवाया था। उसका अभिप्राय इस प्रकार था कि 'सीमन्धर जिसको (प्रतिष्ठा करने को) कहेंगे उसी से प्रतिष्ठा कराऊँगा।' तीन उपवास (उसने) किये। संघ मिलित हुआ। शासनदेवी स्मरण की गयी। कार्य बताने पर देवी ने कहा कि 'श्री संघ कायोत्सर्ग करें'। उसके बल से देवी वहाँ गयी। सीमन्धर को नमस्कार करके पूछा, 'भगवन्, धवलक्ककपुर के सेठ ऊदाक ने आपका प्रासाद बनवाया है, उसकी प्रतिष्ठा कौन कराये?' स्वामी ने कहा, 'श्री-देवाचार्य करें।' लौटकर (यह बात देवी ने) कही। श्री संघ ने कायोत्सर्ग का पारण किया। प्रतिष्ठा हुई। नाम रखा गया 'ऊदा वसही'। इस तरह के अनेक वर्णन हैं, फिर भी कुछ ऐसे वर्णन, जिनका सिलसिला टूट गया है, लिखे जा रहे हैं।

55. इसके बाद वे कर्णावती संघ की प्रार्थना पर कर्णावत पहुँचे। चौमासे भर रहे। श्रीमत् अरिष्टनेमि के मन्दिर में व्याख्यान होता था। इधर कर्णाट देश का गुरु देश-विदेश के 84 वादियों को जीतकर मालव-मण्डल होता हुआ गुजरात को चला। क्रमशः वह 'आसा पल्ली' में पहुँचा। उसके बाद इस प्रकार थे—

72. आठ ब्राह्मणों, नौ बौद्धों, अट्ठारह भागवतों, सोलह शैवों, दस भट्टों, सात गन्धर्वों, सात दिगम्बरों, चार क्षत्रियों, दो योगियों, एक धीवर, एक भील, एक भूमिपति, इन सबको जिसने विजय किया वही कुमुदचन्द्र सबको जीतकर जब अणहिल्लपुर में आया तो वट गच्छ के प्रभु देवसूरि ने उसका मद उतार दिया।

वह वासुपूज्य चैत्य में ठहरा। इनके बाद उसका भक्त दौड़ता हुआ शीघ्र ही उसके पास आया। कुमुद ने पूछा, 'देर से क्यों दिखायी पड़ा?' उसने कहा, श्वेताम्बरीय श्री देवाचार्य के पौषधागार में समर्थन हुआ था। वहीं देर हो गयी।'

1. B संग्रह में इस चरित का आरम्भ कुछ भिन्न पाठ से पाया जाता है। जैसे; मड्डाहड नगर में वीरणाग नामक सेठ निवास करता था जो प्राग्वाट वंश का था, उसकी स्त्री थी जिनदेवी। उन दोनों को शुभ स्वप्न द्वारा सूचित एक रामचन्द्र नामक पुत्र हुआ। एक बार अवर्षण होने के कारण अकाल पड़ गया। यह सुनकर कि भृगुपुर में सुभिक्ष है, सेठ वहाँ गया। रामचन्द्र नौवित्त वाटी में वाणिज्य के लिए कुछ लेकर जाया करता था। एक बार श्री मुनि चन्द्रसूरि विहारार्थ आये। वीरणाग उनकी वन्दना करने आया। इधर सोलह वर्ष के रामचन्द्र के पौषधागार में आकर कहा, 'तात, मैं चने बेचकर उतने ही दाख ले आया हूँ।' गुरु ने लक्षणों को देखकर श्रेष्ठी से कहा, 'सेठ, पुत्र बड़ा भाग्यवान् है। तुम्हारे घर में रहकर तुम्हारे कुल को ही उज्ज्वल करेगा, पर अगर दीक्षा ग्रहण करे तो सारे जैन धर्म का द्योतक होगा।' तब सेठ और सेठानी ने क्षमाश्रमण ( ) दिया। 'भगवन्, पुत्र के साथ ही हम लोगों को भी दीक्षा देने की कृपा कीजिए।'''(इसके आगे B संग्रह फट गया है।)

कुमुद ने कहा, 'मेरे आने पर श्वेताम्बरों का समर्थन ही उचित है, आरम्भण नहीं।' उसने कहा, 'ऐसा न कहो,

73. 'अमृत दूर रहे, इस समय मधु से क्या होने का है ? सुधानिधि (समुद्र) दूर ही रहे, नयी गायों की जरूरत नहीं,—यदि गुरुवर श्री देवसूरि की सूक्तियाँ कानों में पड़ती है।'

यह सुनकर सक्रोध होकर उसने साहारण नामक भट्ट को बुला भेजा। वह पौषधागार में जाकर कुमुदचन्द्र का विरुद कहने लगा—'सकल वादियों के वेताल वादी-रूपी वृक्षों के लिए कालाग्नि, बड़े-बड़े वादियों के मान-रूप पर्वत के लिए दावाग्नि, वादी-रूप हाथियों की घटा के लिए सिंह, वादियों में शेर, मुक्ति-रूपी स्त्री के कण्ठ के अलंकारहार, श्वेताम्बर दर्शन के प्रहसन के सूत्रधार, षड्दर्शन-पाणि श्री कुमुदचन्द्र की जय हो।'

74. 'अजी श्वेताम्बरो, यह तुम लोगों ने क्या कपटाटोप कर रखे हैं, इस संसार-वृक्ष के गहन कोटर में भोलेभाले आदमियों को पतित करते हो। अगर तत्त्वातत्त्व की विचारणा में तुम लोगों को सचमुच कुछ शौक है, तो दिन-रात कुमुदचन्द्र के दोनों चरणों का ध्यान करो।'

तब प्रभु के शिष्य माणिक्य ने कहा—

75. 'अरे, वह कौन है जो सिंह की गर्दन के केसरभार को पैर से छू रहा है ? कौन है जो तेज भाले की नोक से आँख खुजलाना चाहता है ? कौन है जो सर्पराज के सिर के रत्न को भूषण की शोभा के लिए लेना चाहता है ?—वह, जो वन्दनीय श्वेताम्बर धर्म की ऐसी निन्दा करता है।'

एक बार प्रभु की बहन सरस्वती तमुगमनिका ( ) में गयी। कुमुद ने कहा, 'आर्ये, [जरा] नाचो और नग्न परिव्राजक, तुम मृदंग बजाओ।' इसके बाद वह पौषधागार में जाकर रोने लगी। गुरु ने कारण पूछा। उसने कहा—

76. 'हाय, मैं किसको पुकारूँ ?···जो मैंने अपने धर्म दिगम्बर की विडम्बना नहीं !' गुरु ने सोचा—

77. 'आह ! गुरुजनों ने मेरे लिए व्याख्या कर-करके जो श्रम किया था [illegible] फल केवल उनके कण्ठ का सूखना ही हुआ, जो मैं धर्म की इस प्रकार [illegible] के आडम्बर सुन रहा हूँ !'

दुष्टवादी-रूपी हाथियों को संयत करने के लिए अंकुश [illegible] के अभ्युदय की मंगलदूर्वा-स्वरूप गुरुवर देवसूरि [illegible] नयमावतार की स्थिति प्रसार करने लगी।

इसके बाद नयसागर नामक भट्ट को बुलाकर [illegible] (कुमुद) के सामने जाकर गाया—

78. 'हे दिगम्बरशिरोमणे, गुण-पराङ्मुख [illegible] संकज में रम रहता है। इसलिए मद [illegible]

रखो। दम (दमन करना—संयम) मुनियों का भूषण है, पर उलटा होने पर वही 'मद' हो जाता है।'

79. 'हमारे हृदय में दर्प-रूप सर्प के विष का उद्गार नहीं है और न हमने धर्म की बेइज्जती देखना ही लेशमात्र भी सीखा है; सो तुम शीघ्र सिद्धराज के सामने आओ, वहीं युक्ति-रूपी तीक्ष्ण महौषधों के प्रयोग से तुम्हारी गर्दन की खाज हरण करेंगे।'

'यदि तुम्हारी इच्छा वाद करने की हो तो श्रीपत्तन में चलो। वहीं हमारा-तुम्हारा वाद होगा।' इसके बाद एक दिन माणिक्य को देखकर दिगम्बर ने कहा—

80. 'ये श्वेताम्बर मुनि कम्बल और लाठी लिये हुए अविकल गोपाल-रूप धारण किये रहते हैं, सो निर्गुण (1. बिना गुण के, 2 बिना रस्सी के) होने के कारण पृथ्वी पर उच्छृंखल भाव से विचरण करनेवाले तुम्हारे जैसे बैलों की रक्षा करने के लिए ही।'

81. 'उसी तरह दिगम्बरों ने जो स्त्रियों को मुक्तिरत्न का निषेध किया है उसी से रहस्य प्रकट हो जाता है। तो भला कर्कश तर्कक्रीड़ा में पड़ने की यह तुम्हारी अनर्थमूलक अभिलाषा क्यों है ?'

इसके बाद वह शकुनों से निषिद्ध होकर भी श्रीपत्तन को चला। पहले सामने छीक हुई, बिल्ली दिखायी दी ! वह (ऊपर से) उतर भी आयी। कृष्ण सर्प··· गया। इस तरह के शकुनों से निषिद्ध होकर भी नगर में गया। राजा के द्वार पर तिनका और पानी निक्षेप किया। 'महाराज, मेरे साथ वाद करा दीजिए। मैं 'सिद्ध चक्रवर्ती' इस विरुद को नही सह सकता। साथ ही 'गुजरात विवेक-बृहस्पति' है 'और 'पत्तन नर-समुद्र' यह भी नही मानता।' विद्वानों को बुलाकर राजा ने कहा। (वे बोले) 'महाराज, ऐसा कोई नही है जो इसके (मेरे) साथ वाद करे।' उन सब (विद्वानों ने) यह भी कहा कि 'महाराज, देवाचार्य को छोड़कर अन्य किसी की शक्ति इसे जीतने की नही है।' इसके बाद संघ को बुलाकर कहा कि 'ऐसा करो कि देवाचार्य कर्णावती से आयें।' श्रीसंघ ने विज्ञप्ति तथा एक विश्वस्त आदमी उन्हें ले आने को भेजा। उन्होंने सारा वृत्तान्त कहा।

82. 'हे वत्स,···प्रतिवादी-रूपी मगरों से आकुल इस संसार-सागर के जैन-धर्म-रूप जहाज के तुम्ही कर्णधार हो।'

83. अर्हित शासन (धर्म) की प्रभावन-रूपी कमलनयना (स्त्री) के साथ देवाचार्य के बल से युक्त पाणिग्रहण (विवाह) महोत्सव है—

इस प्रकार का स्वरूप समझकर शुभ दिन को जब शुभ शकुन अनुकूल थे तो पत्तन की ओर चले।

84. चाप दिखायी पड़ा, मोर की आवाज सुनायी दी, विषम हरिणों की श्रेणी दाहिनी ओर होकर निकल गयी। चन्द्रमा के क्षेत्र (कर्क) मे सूर्य लग्न स्थित था (कर्क लग्न में सूर्य लग्नस्थ होकर पड़ा था) और स्वभावतः मन्द वायु पीछे की ओर से लग रही थी।

क्रमशः पत्तन में पहुँचे। राजा ने प्रवेशोत्सव कराया। कुमुदचन्द्र ने लंचा ( ) देकर बारही ( ) बदल ली। केवल भाण्डागारिक कपर्दी, वाहुक नामक शल्य-हस्त और वाहुड़देव नामक मन्त्री ने ऐसा नही किया। तब कुमुदचन्द्र ने राजा की माता मणयल्ल देवी से कहा, 'मैं तुम्हारे भाई जयकेशी राजा का प्रिय हूँ।' इसके बाद करण में अपने-अपने मत को बतानेवाले पत्र लिखने के लिए दोनों गये। इसके बाद गांगिल पण्डित ने श्री देवसूरि को उद्देश्य करके दिल्लगी की—

85. 'तुर्कों की सन्तान जैसा एक अद्भुत वेश है, काँख के नीचे लटकती हुई पुरानी ऊन की पोटली मृत पशु की छाया का आश्रयण कर रही है, हाथों में अन्धों जैसी लकड़ी है और सिर के बाल लुंचित (नुचे हुए) हैं। इसमे उचित इतना ही है कि मुख, जिसमे से मल निकल-सा रहा है, वस्त्र खण्ड से ढका है।

86. 'जिनके दाँतों की पंक्ति मलमण्डली की वृद्धि से स्थूल हो रही है, जो भक्षण-भोजन मे केवल आचमन मात्र से अविरत पवित्रता ले आते हैं, जिनके शरीर की शुद्धि के विषय मे तो जल ही साक्षी है, वे श्वेताम्बर भी, यह आश्चर्य है कि राज-दरबार में, वाद का उत्सव करना चाहते हैं।'

तब प्रभु बोले—

87. 'अहा ! ···के शरीर के खून से वस्त्र को रँगनेवाले, सुन्दर मांस के भक्षण में विचक्षण, और विद्वन्मण्डली की निन्दा में पण्डित—इन ब्राह्मण-प्रवरों की पवित्रता बड़ी उत्तम है !

88. 'करोड़ों स्वर्गधाम इस (गाय) की कुक्षि में बसते हैं, प्राणी इनकी पूँछ पकड़-कर शीघ्र ही वैतरणी से तर जाते हैं, इस प्रकार ब्राह्मण पद-पद पर गौ की स्तुति करता है, पर हम इसका कारण नहीं समझते कि क्यों अपने घर से उसे एक तृण ग्रहण करते देख कठोर दण्डप्रहार से उसका ताड़न करता है।'

···यह कहकर राजा ने पौषध से गांगिल को दण्डपट्ट दिया। तब कुमुदचन्द्र ने अपनी प्रतिज्ञा कही—

89. 'इस राज-सभा मे अपनी भुजा मैंने ऊपर उठायी है। वह वादी जिसमे शक्ति हो, बोले। मुझ वितण्डावाद की विद्या में धुरन्धर से वाद करने को इस समुद्रवेष्टन (भूमण्डल) पर कोई विद्वान् (प्रतिद्वन्द्वी) नही है।

90. 'बृहस्पति तो पड़ा रहे और इन्द्र बिचारा कर ही क्या सकता है ? (इन बिचारों की तो बात ही क्या है !) वादियों में सिंह-स्वरूप मुझ वादी के रहते महेश्वर भी एक अक्षर नही जानता।'

श्री देवाचार्य ने कुमुद से कहा—

91. 'हम स्त्री को नही प्राप्त करते और न सुगन्धि और घी से युक्त गर्मागर्म भोजन ही खाते हैं। हे मित्र, उन बातों में विवाद का कार्य नही है। स्वधर्म के प्रकाशन के लिए (हम वाद) करते हैं।'

(दोनों ने) अपना-अपना मत प्रकट करने के लिए पत्र लिखा।

कुमुद ने कहा—

92. 'केवली होकर भोग नहीं करता, सचीवर का निर्वाण नही होता, स्त्रीजन्म में सिद्धि नही प्राप्त होती—यह कुमुदचन्द्र का मत है।'

देवाचार्य ने कहा—

93. 'केवली होकर भी भोग करता है, सचीवर का निर्वाण होता है, स्त्रीजन्म मे भी सिद्धि होती है—यह देवसूरि का मत है।'

(कुमुद) गुजरात का विवेक वृहस्पति होना, राजा का सिद्ध चक्रवर्ती होना और पत्तन का नर-समुद्र होना, न सहता हुआ विवाद करने लगा। सं. 1182 वर्ष के वैशाख की पूर्णिमा के दिन वाद के लिए दोनों आहूत हुए थे। पहले दिगम्बर आया। श्री देवसूरि शुभ शकुनो से प्रेरित होकर वाद को गये। क्रमशः दोनों सभा में पहुँचे। कुमुद ने आशीर्वाद दिया। प्रभु ने भी। वाद को पाँच सौ गद्य का उपन्यास दिया। उसका पाँच सौ से उत्तर दिया गया। फिर पाँच सौ उपन्यस्त हुए। इस प्रकार वहाँ 25 दिन तक विवाद होता रहा। कुमुद तीन बार निग्रह-स्थान पर आया (मुँह वन्द हो-हो गया)। क्रमश. सभी राजा-रानी आदि ने मान लिया कि कुमुद-चन्द्र हार गया और इसीलिए उसे देशनिकाला दिया। अशोकवनिका मे जाकर कुमुद का हृदय फट गया। राजा ने उसका सर्वस्व लेकर प्रभु को उपहार मे दे दिया।

94. ....

श्री गुरु से राजा ने कहा, 'भगवन्, यह आपने ही अर्जन किया है सो ग्रहण कीजिए।' सूरि बोले—

95. 'हम लोग भैक्ष्य (भिक्षा का अन्न) खाते है, जीर्ण वस्त्र पहनते है और भूमि पर सो रहते हैं। हम धन लेकर क्या करेंगे?'

राजा ने भारी उत्सव कराके सूरि को पौषधागार में भेजा।

96. रमणीय श्रीसिद्धपुर में देवसूरि गुरु के वचन से सिद्ध नृप ने तुर्यगति(मोक्ष) पाने के लिए 'तुर्यद्वार' नामक चैत्य वनवाया। (श्री वादि देवसूरि के सदुपदेश से जिस सिद्धराज जयसिंहदेव का चित्त सुवासित हुआ था, उसने सं. 1183 में पत्तन में श्रीऋषभदेव का मन्दिर बनवाया जिसमें ऋषभदेव का बिम्ब 84 अंगुल का था। नाम हुआ राज विहार।)

इस प्रकार देवाचार्य का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

17. आरासणीय नेमिचैत्य का प्रबन्ध (P)

56. एक बार महं. गोगा का पुत्र पासिल दुर्बल होने के कारण आरासणपुर से कूपिका लेकर पत्तन में आया। वहाँ राजविहार मे देव को नमस्कार करके बिम्ब मापने लगा। इधर छाड़ा ठक्कुर की पुत्री ने, जो देवालय मे आयी थी उसे देखा और पूछा, 'क्यों भाई, बिम्ब का माप ले रहे हो। क्या ऐसा नया बनाओगे?' उसने कहा, 'बहन, यदि बनायेंगे तो प्रतिष्ठा के समय आना।' 'बहुत अच्छा।' वह अपने नगर में गया। बिम्ब रचना में अन्य कोई उपाय न पाकर अम्बाबिदेवी के मन्दिर में उपवास करना शुरू किया। दस उपवास के बाद देवी प्रत्यक्ष होकर बोली। 'वर माँगो।' उसने कहा, 'देवि, ऐसा करो जिसमे मैं राजविहार के समान प्रासाद बनवा सकूँ।' देवी ने एक स्थान बताया और वहाँ खनि दिखा दी। (यह भी कहा कि) 'लेकिन, सोलह पहर तक ही तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा, बाद को नहीं।' इसके बाद वर पाकर वह संघ के साथ चला। रास्ते मे बुद्धि करके चौराहे पर बैठ गया। 'इतने दिन तक देवी के लिए (मैंने उपवास किया), अब सघ पर उपवास करूँगा।'

'कैसे?' 'यदि सब कोई अपने-अपने जनसमुदाय के साथ सोलह पहर सान्निध्य करेगा तभी भोजन करूँगा, नहीं तो नहीं।' संघ ने मान लिया। पारण के बाद लोगों को लेकर खनि के पास गया। खोदना शुरू किया। खोदते-खोदते तीन पहर बीत गया। इसलिए उसके गुरु उसे खोजते-खोजते आये। पासिल ने वन्दना की। उन्होने पूछा, 'मनोरथ पूर्ण हुआ?' उसने कहा, 'देव और गुरु के प्रसाद से।' देवी रुष्ट हो गयी कि 'यह मेरा प्रसाद नहीं कहता, कहता है इनका प्रसाद! "जल्दी निकलो।' खान गिर गयी। 45 सहस्र विमल दीनार निकले। ईंट का मन्दिर बनाना शुरू किया। बिम्ब बनवाया। 2 हजार दीनार बच रहे। सोचा कि बिम्ब प्रतिष्ठा कराऊँ। यह सोचकर पत्तन मे गया और छाड़ा ठक्कुर की प्रतोली में ठहरा। जब भीतर नहीं घुस सका तो बड़े जोर से चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। ठक्कुर ने बीच मे ही छुड़ा दिया। नमस्कार करने पर ठक्कुर ने कहा, 'कहाँ से आ रहे हो?' 'छाड़ापुत्री बाई हाँसी है उसी से मिलने।' ठक्कुर ने पुत्री को बुलाया। 'बेटी, तुम्हारा भाई—(आया है)।' उसने नमस्कार करके कहा, 'मुझे नहीं जानती? राजविहार मे बिम्ब मापते समय जिसे देखा था, मैं वही हूँ। मैंने बिम्ब बनवाया है। प्रतिष्ठा में चलो।' तब श्री देवसूरि के साथ सेठ की पुत्री चली। पिता ने उसे भेज दिया। सं. 1193 मे प्रतिष्ठा हुई। उस लड़की ने वहाँ के बाकी काम सम्पूर्ण किये। भगिनी होकर उसने मण्डप बनाया।' । लाग द्रव्य की लागत हुई। वह मेघनाद हुआ।

97. श्री नेमिनाथ प्रभु का ऊँचा यह मन्दिर गोगाक के पुत्र पासिल नामक सुपण्डित श्रद्धावान मन्त्री ने बनाया और निग्रन्थ चूड़ामणि श्री गुरुवर मुनि चन्द्रसूरि

के शिष्य श्री वादीन्द्र श्री देवसूरि ने नेमिनाथ की प्रतिष्ठा करायी।
98. सं. 1193 वैशाख शुक्ल दशमी बृहस्पति को नगर श्रेष्ठा आरासण में नेमिनाथ की प्रतिष्ठा हुई।

इस प्रकार आरासणीय श्री नेमिचैत्य का प्रवन्ध (समाप्त हुआ)।

18. मन्त्री सान्तू का प्रवन्ध (B, BR)

58. श्रीपत्तन में जयसिंघदेव का सान्तू नामक मन्त्री सर्वमुद्राधिकारी और श्री देवसूरि का भक्त था। उसने राजप्रासाद जैसा महल बनवाया। गुरु को देखने के लिए बुलाया। मन्त्री ने अग्रसर होकर दिखाया। पूछा, 'प्रभो! महल कैसा है?' इस पर शिष्य माणिक्य ने कहा, 'यदि पौषधशाला होता तो वर्णन करता।' मन्त्री ने क्षमाश्रमण दिया कि 'यह पौषधशाला ही हो।' तत्पश्चात् वह मुख्य पौषधशाला हो गयी। उस पौषधशाला के उभय पार्श्व में पुरुष की ऊँचाई के दर्पण थे ताकि श्रावक लोग धर्मध्यान के बाद मुँह देखें। इसी तरह बाँका और निहाण नामक ग्रामों में दो प्रासाद बनवाये। एक में स्तपन (स्नान) करके दूसरे मे जो दो कोस पर था सुरंग के रास्ते से जाया जाता था। एक बार मन्त्री का राजा के साथ मनमुटाव हुआ। मन्त्री नाराज होकर अपने परिच्छदों के साथ मालव देश को चला। राजा ने समझा कि यह मध्यवेदी (विचवैया) है, शीघ्र ही सैन्य आगमन करेगा। उसने उसके साथ गुप्त पुरुषों को भेजा कि 'देखो, वहाँ जाकर क्या करता है?' मन्त्री उज्जयिनी मे राज मन्दिर मे गया। पर राजा को नमस्कार नही किया। पार्श्वस्थों ने कहा, 'मन्त्री, नमस्कार नही करते?' (वह बोला) 'महाराज, श्री वीतराग को देव समझकर नमस्कार कर लिया है गुरु कहकर साधुओं को नमस्कार किया है। राजा तो श्री जयसिंघदेव हैं। दूसरे किसी को सिर नही नवाता।' राजा ने कहा, 'मन्त्री, मुद्रा ग्रहण करो।' 'महाराज, हमारा स्वामी किसी कारणवश रुष्ट है। कल ही मुझे बुलायेगा।' तत्पश्चात् राजा ने गौरव के साथ रखा। गुप्त पुरुषो ने पत्तन में जाकर राजा से कहा। राजा ने शीघ्र ही बुला भेजा। मन्त्री राजा से विदा लेकर चला। मालवा और मेवाड की सन्धि पर आहड़ नामक गाँव मे महं. सान्तू की ढलती वेला मे मृत्यु हुई। मन्त्री ने तभी क्षमापण करके पुत्र को शिक्षा देकर अनशन ग्रहण किया। वयजू नामक पुत्री थी, उसने भी दिया। यह पूछने पर कि 'तात, क्या बाकी रह गया?' मन्त्री ने कहा, 'बेटी, तपोधनों के दर्शन के सिवा और कुछ भी नही।' वह एक वण्ठ को तपोधन वेश धराण कराके सामने ले आयी और बताया। उसका

दर्शन कर मन्त्री ने हृष्ट होकर नमस्कार किया। उसके मुँह से नमस्कार पाया और स्वर्ग को गया। वह उसी तरह मुद्रा धारण किये रहा। चलती बार उसने कहा, 'अरे, वेष त्याग कर, अपना काम कर।' उसने कहा----'जिसके प्रसाद से मन्त्री सान्तू पैरों पर गिरे उस वेश को नहीं त्यागूंगा'। क्रमश. पत्तन में लाया गया और गुरु के पास दीक्षित हुआ। राजा ने मन्त्री के पुत्र देवल को महामान दिया।

इस प्रकार मन्त्री सान्तू का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

19. मन्त्री उदयन का प्रबन्ध (P)

59. बोहित्थ सेठ का पुत्र था अश्वेश्वर। उसका पुत्र यक्षनाग, उसका पुत्र वीरदेव, उसका पुत्र उदयन। उसका पुत्र मन्त्री गुरुवाहणदेव। उसका श्रीकरण हुआ। राजा ने उसे लाट नामक देश का करण भी दिया था, जिसके वश में पाँच मनुष्य थे।

मरुस्थली में जावालिपुर के पास बाघरा नामक ग्राम में उदयन नामक वणिक् रहता था। उसकी भार्या धवलक्कक के साम्ब ठाकुर की पुत्री सुहादेवी थी। वह कूपिका करता था। एक बार सिर पर घृतकूपक रखकर मेघ से अँधियारी रात में, यह समझकर कि सवेरा हो गया है, रामक्षेत्र पर चला। इसके बाद एक खेत में कोलाहल सुनकर धनुष चढ़ाकर पूछा, "तुम लोग कौन हो?" "इस खेत के मालिक के 'कर्म'।" उदयन ने कहा, "इसी के होते हैं या अन्य किसी के भी।" "होते हैं, पर अन्य स्थान पर।" "मेरे कहाँ हैं?" उन्होंने कहा, "आशापल्ली में कर्णदेव है जो दूसरा शालापति तिहुणसीह है।" यह सुनकर वह पीछे लौटा और स्त्री को जगाकर अपने पुत्र वाहड़ और चाहड़ को साथ लेकर आशापल्ली को चला। वहाँ चैत्य में सुण्डु (   ) त्यागकर देव को नमस्कार करने के लिए भीतर गया। वहीं तिहुणसीह की पत्नी देव को नमस्कार करने के लिए अपनी चेटियों सहित आयी थी। उन्हें अपूर्व देखकर उस (तिहुण-पत्नी) ने वन्दना की। पूछा कि, "किसके अतिथि हो?" उदयन बोला, "पहले देव को देखा है, बाद को तुम्हें।" इसके बाद वह बहन की भाँति उसे लिवा ले गयी। वह घर में गयी। द्वारपाल उदयन को नहीं जाने दे रहा था। तब ड्योढ़ी पर से शालापति ने ऊपर बुलाया। उदयन के नमस्कार करने पर पूछा, "अतिथियो, कहाँ से?" "मरुस्थली से आपका ध्यान करके रहने के लिए आये हैं।" "अच्छा हुआ।" सकुटुम्ब उसे भोजनार्थ बैठाया। भोजन के बाद पूछा, "भीतर रहोगे या अलग?" उसने

कहा, "अलग थोड़ी-सी भी जगह दीजिए।" उसने घर के द्वार पर का अपवरक ( ) दिखा दिया। वहाँ भूमिशोधन करके जब दरवाजा बन्द करने लगा तो निधान निकला। वह विलास करने लगा। राजा को यह खबर मिली। शालापति को (राजा ने) बुलाया। उसे माँगा। (उसने कहा) "महाराज, मेरे घर पर एक मरुदेशीय आया है। उसी के घर में कुछ निकला है। सो मैं नहीं जानता।" इसके बाद राजा के आदमी उसे पकड़कर जब ले जा रहे थे तो वह छिपने के लिए सूने बाजार में घुसा। वहाँ भी निधान देखा। राजदरबार में गया। राजा ने कहा, "अरे, निधान दिखा।" उसने कहा, "महाराज, मैं भूखा था, सब खा गया।" तब वह कारागार में डाल दिया गया। जब वह शारीर कर्म के लिए जा रहा था तो उसने निधान ही देखा। दूसरी बार राजा ने कहा, "अरे! देता है?" उसने कहा, "कितने दिखाऊँ!" राजा ने कहा, "यह कैसी बात?" "महाराज, जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहीं-वहीं निधान (देखता हूँ।)" "दिखा।" उसने 5-10 दिखा दिये। उसे भाग्यवान देखकर राजा ने अपनी मुद्रा दी और राणा की पदवी भी।

60. एक बार मन्त्री की पत्नी मर गयी। वाग्भट ने सोचा—'मेरे पिता दुखी हैं। कहीं कन्या देखूँ। वायड़पुर में कोई व्यवहारी है, उसकी कन्या सयानी है।' वाग्भट ने स्वयं जाकर उससे कन्या माँगी। उसने कहा, "किसके लिए।" "मुझी को दो।" उसने दे दी। इसके बाद वाग्भटदेव ने राणा से कहा, "पिताजी, वायड़पुर में जीवित स्वामी श्री मुनिसुव्रत को नमस्कार करने चलिए।" संघ एकत्र करके चल पड़े। वहाँ जाकर पूजा करके भोजन करना शुरू किया। इसके बाद वाग्भट के इशारे पर कोई भी थाली नहीं छूता। "यदि संघ की बात मानो तो सब कोई खाय।" "आदेश कीजिए।" "(यही) कि विवाह करना स्वीकार कीजिए।" मन्त्री ने कहा, "सत्तर वर्ष तो बीत गये। अब कौन-सा अवसर है, कोई बात बिना अवसर के नहीं शोभती।" इसके बाद वाग्भट ने कहा, "ज्ञाति बलवान होती है (उसकी बात माननी चाहिए।) उदयन बोला, "कन्या कौन देगा?" सब ठीक है, केवल आपकी बाट देखी जा रही है।" इसके बाद विवाह हुआ। उसी कन्या का पुत्र हुआ 'राय विड्डार आम्बड।' उसकी दो प्रतिज्ञाएँ थीं—शत्रुंजय के द्वार पर दो वक्त भोजन कराना और श्री मुनि सुव्रत के प्रासाद के उद्धार करने पर स्नान। दोनों अभिग्रह को सत्य करके यथासमय सुगति को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार मन्त्री उदयन का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

इसके बाद वसाह आभड़ का प्रबन्ध (आरम्भ होता है)—B, BR, P

61. श्री अणहिल्लपुर में नागराज नामक एक कोटिध्वज सेठ था। उसकी स्त्री का नाम था लीलादेवी। एक बार सेठ, जब उसकी पत्नी गर्भवती थी, हैजे से मर गया। फिर राज-पुरुषों ने उसकी सम्पत्ति उसे अपुत्र समझकर ले ली। श्रेष्ठिनी धवलक्क में अपने पिता के घर गयी। वहाँ उसे अमारि ( ) का

दोहद (इच्छा) हुआ। पिता ने उसे पूरा किया। यथासमय पुत्र हुआ। उसका नाम रखा अभयकुमार। क्रमशः वह पाँच वर्ष का हुआ। पढ़ने को भेजा गया। पढ़ने लगा। एक बार बालकों ने उसे बे बाप का कहा। उसने माता से पूछा, 'माँ, मेरा पिता कौन है?' उसने अपने पिता को दिखा दिया। उसने कहा, 'ये तो तुम्हारे पिता है, मेरे कहाँ हैं?' उस (माँ) ने जब सारी बातें कही तो बोला कि 'पत्तन में जाऊँगा। यहाँ नहीं रहूँगा।' यह कहकर आग्रह-सहित गया। मातामह ने भेज दिया। वह पत्तन में गया। वहाँ अपने घर में ठहरा। धीरे-धीरे व्यवसाय शुरू किया। लाछलदेवी नामक भार्या से विवाह किया। पूर्वजों का रखा हुआ एक निधान पा गया। व्यवसाय के कारण लक्ष्मी में अपने पिता के समान हो गया। तीन लड़के हुए। इसके बाद व्यवसाय मन्द पड़ जाने से श्री जाने लगी। धीरे-धीरे निर्धन हो गया। पत्नी पुत्रों को लेकर पिता के घर चली गयी। आभड भी अकेले जौहरियों के बाजार में सान घिसने लगा। जौ का माँड़ मिलता था। उसी पर गुजर था। उसे ही पीसकर स्वय पकाकर खाता, इस तरह दुरवस्था बिता रहा था; क्योंकि—

99. जो लक्ष्मी वार्द्धि और माधव, जिन्होंने उसे प्रीति और प्रेम से अंक मे धारण किया था, के यहाँ नहीं ठहरी तो वह अन्य खर्चीले आदमियों के यहाँ क्या ठहरेगी?

एक बार वह कुलगुरु हेमाचार्य के पौषधागार मे गया और लोगों को परिग्रह प्रमाण लेते देख उसने भी माँगा। गुरु ने उससे द्रम्मों का परिमाण पूछा। योग्यता समझकर 9 लाख द्रम्म टीपने को कहा। इसी तरह अन्य वस्तुओं को भी। टिप्पन (गुरु ने) दिया। उसने कहा, 'यह किसी पुण्यवान् का है? मेरी ऐसी योग्यता नहीं है।' गुरु ने कहा, 'होगी। शेष धर्म में देना।' फिर क्रमशः 5 द्रम्म गाँठ मे बाँधा। एक बार चतुष्पद में एक बकरी को 5 दीनार मे खरीदा। गले का आभरण भी साथ ही खरीदा। वैकटिक (मणि काटनेवाले) से उस पाषाण के टुकड़े करवाये। क्रमशः धनी हो उठा। कुटुम्ब मिला। तपोधनों के विहार मे एक घड़ा घी रोज देता। सत्रों का तो ठिकाना ही नहीं। प्रासादों में नित्य पूजा, सदैव सार्धमिकों का सत्कार और वात्सल्य करता। प्रतिवर्ष 2 बार सकल दर्शनों की संघार्चा कराता। अनेक पुस्तक लिखवाये। बहुत-से जीर्णोद्धार भी कराये। बहुत-से बिम्ब बनवाये। इस प्रकार संघ की मुख्यता प्राप्त करके 84 साल के अन्त मे अनशन ग्रहण करने की इच्छा से पुत्रों को बुलाकर बोला, 'ऐ बच्चो, धर्म बही बाँचो।' जब वह पढ़ी जाने लगी तो 'भीमप्री द्राम 98 लाख' यह अंक सुनकर बसाह उदास हो गया। जेठे लड़के असपाल ने कहा, 'बाबूजी, उदास न हों कि मैंने सारा धन खर्च कर दिया। आज भी आदेश कीजिए। आपकी कृपा से सब है।' बसाह बोला, 'ऐ बच्चो, मैं जब गर्भ में था तो मेरे पिता की सारी सम्पत्ति उनके मरने पर राजा ने ले ली थी। पैदा होकर मैंने फिर अर्जन किया और फिर गँवा दी। बड़ा दुःख पाया। फिर जब धन हुआ तो मैं कृपण हो गया। एक करोड भी नहीं पूरा किया।' पुत्रों ने कहा, 'पिताजी, लेकिन करोड़ तो तब पूरा होता जब अष्टोत्तर हो (आठ लाख

अधिक हों।)' तत्काल 10 लेकर सप्तक्षेत्री में उन्होंने व्यय कर दिया। धर्मव्यय में भी आठ लाख (व्यय किया)। इस प्रकार पुण्य करके वह स्वर्ग का भागी बना। पुत्रों में से दो हुए शैव और तीन हुए श्रावक।

इस प्रकार आभड़ वसाह प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

20. मं. सज्जन के कराये हुए रैवत तीर्थ के उद्धार का प्रबन्ध (P)

62. जब सिद्धराज राज्य शासन कर रहे थे, उस समय श्रीमाल जाति के तीन भाई थे—साजण, आम्बा और धवल। इसके बाद श्री जयसिंह ने सज्जन को कार्यवश सुराष्ट्र भेजा। वह श्री रैवत तीर्थ को नमस्कार करने गया। वहाँ जाकुडि नामक अमात्य ने एक प्रासाद बनवाना शुरू किया था। वह मालवा-वासी अमात्य मर गया था। बीच में 135 वर्ष बीत गये थे। तब सज्जन ने उसमें काम शुरू किया। तीन वर्ष का वसूल किया हुआ दो लाख धन खर्च करके प्रासाद बनवाया। बीच में कुछ साल बीत गये। वहाँ के धनियों को बुलाकर कहा, 'मैंने तो प्रासाद बनवाया मगर अगर राजा द्रम्म माँगे तो आप लोग (देना) स्वीकार कर लीजिएगा।' उन्होंने मान लिया। इधर सिद्धराज सोमनाथ की यात्रा मे आया। सभी कर्मचारी मिलने आये। किन्तु सज्जन नही आया। राजा ने उनके न आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा, 'महाराज, उसने तो द्रम्म नष्ट कर दिये हैं, कैसे आयगा?' बाद में सज्जन को बुलावा गया। वह आया। राजा ने पूछा, 'अरे, द्रम्म कहाँ हैं?' 'महाराज, हैं।' 'क्यों नही लाया?' 'महाराज, रैवतक दुर्ग को भाण्डार समझकर वही रख दिया है।' राजा ने कहा, 'वहाँ जाऊँगा तो दिखा देगा!' 'हाँ महाराज, दिखा दूँगा।' राजा वहाँ गया। पूछा, 'कहाँ है?' 'ऊपर आइये।' वैसा ही किया। प्रासाद में नेमि को नमस्कार करके बाहर आया। पूछा, 'किसने यह प्रासाद बनवाया है?' सज्जन ने कहा, 'श्री सिद्धेश ने।' 'मुझे पता भी क्यों नहीं लगा?' 'महाराज, यही वसूल किया है।' राजा उसकी बात नही मानता। (बोला) 'मेरे हुक्म के बिना क्यों बनवाया? द्रम्म ले आओ।' 'ले आता हूँ।' 'सो कैसे?' 'महाराज, यहीं के धनिकों ने स्वीकार किया है।'···महाराज या तो पुण्य ग्रहण करें या द्रम्म!' राजा ने पुण्य अंगीकार किया। (और कहा—) 'परन्तु प्रासाद मेरे नाम से हो।' 'महाराज, आपके नाम से रहेगा। मुझ दास का इसमें क्या है?' राजा ने सन्तुष्ट होकर फिर काम मे नियुक्त किया। अवलोकना शिखर पर चढ़कर दिशाओं को देखा। एक चारण ने कहा—

101. 'जहाँ जाकुडि अमात्य और सज्जन आदि दण्डाधीश ने व्यय करके नेमि-प्रासाद का उद्धार किया उस गिरिनार पर्वत के ईश्वर की जय हो।

102. 'जो प्रभु किसी खान से खोदे नही गये थे, टंक से गढ़े नही गये थे, सूत्र-कला से सूत्रित नहीं किये गये थे, मान से मापे नही गये थे, जिनकी प्रतिष्ठा आचार्य की मन्त्रकला से नही हुई थी, वे प्रभु विश्व (संसार) पर कृपा करके स्वयं आविर्भूत हुए थे।'

21. महं. आम्बाक के बनाये हुए गिरिनार-पाज ( ) का प्रबन्ध (P)

63. यहाँ धवल ने एक प्याऊ करवाया। महं. आम्बाक को श्री कुमारदेव ने सुराष्ट्र के कार्य में नियुक्त किया। उसने जाते समय महं. वाहड़देव को बताया कि मैं वहाँ जाकर रैवत मे पधा( )बनवाऊँगा। मन्त्री ने कहा, 'बनवाना।' बाद को उसने वहाँ एक पुष्करिणी बनवायी। व्यय में 63 लाख द्रम्म लगे। इधर कुमार राजयात्रा में आया।···का बनवाना सुनकर बिगड़ा। जाने लगा तो वाहड़-देव पालकी पर बैठाकर नीचे लाया। (पूछा—) 'यह पधा किसने बनायी है?' 'महाराज ने।' उसने कहा, 'मैंने कब बनवाया?' तब उसने सारा हाल कह सुनाया। सन्तुष्ट होकर राजा ने आम्बाक को फिर से काम पर नियुक्त किया।

इस प्रकार पाजप्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(P) संग्रह में सोनल के वाक्य

············

(G) संग्रह में का सिद्धराज सम्बन्धी वृत्तान्त

65. श्री जयसिंहदेव जब आठ वर्ष के थे तभी श्री कर्णदेव स्वर्गवासी हुए। सान्तू मन्त्री ने आठ वर्ष की अवस्था में ही उन्हे गुणवान् बना दिया। उसने सेना साजकर धारा दुर्ग को तोड़ने की प्रतिज्ञा की। मन्त्री ने तीसरे दिन प्रतिज्ञा पूरी करने की मति दी। इसके बाद कर्णिका ( ) की बनी धारा को तोड़ने में ही 5 सौ परमार मरे। बाद को युद्ध के लिए जब आलिग मन्त्री के साथ मन्त्रणा कर रहा था तो एक चारण ने पढ़ा—

114.

यह सुनकर जैसल को कैद कर लिया गया और उसके पास लेग (हुक्मनामा) भेजा गया। उसने कहा, 'पिता की आज्ञा से आऊँगा।' तब पिता ने आकर कहा,

देवी ने श्री जयसिंहदेव से 72 लाख प्रमाण का वाहुलोड कर छुड़वा दिया (माफ करा दिया)। इसके पश्चात् श्री सोमनाथ के लिंग के लिए एक कोटि सुवर्ण की पूजा का विधान किया। पूर्णमनोरथा होकर गर्व करने लगी। तव देवता ने इस प्रकार कहा कि 'किसी कार्पटिकी के पिण्याक (खली) का पुण्य माँग लो।' उसने पुण्य नहीं दिया। इससे रानी का गर्व टूटा।

68. इसके बाद जब मणयल्लदेवी पापघट का दान करने लगी तो कोई ग्रहण नहीं करता था। मणयल्लदेवी उदास हो गयी। इसी बीच एक ब्राह्मण ने आकर कहा, 'मातः, यदि तीन जन्म का पाप दो तो भी ग्रहण करूँगा।' हर्षित होकर उसने तीन जन्म का पापघट उसे दिया। अन्य सभी लोग विस्मित होकर (उससे) पूछने लगे कि 'तुमने क्या किया? एक ही पापघट का निर्वाह नहीं है, तुमने तीन कैसे ग्रहण किया?' उसने कहा, 'इसके तीनों जन्म में पाप ही नहीं है, सो क्यों न धन ग्रहण करूँ?' सबने मान लिया।

69. कर्णाटक देश का पुलकेशी नामक राजा ग्रीष्मकाल मे (एक वार) राजवाटिका मे गया। एक आम के वृक्ष के नीचे, जिसकी छाया सुन्दर थी और जिसमे फल लगे हुए थे, विश्रम करने लगा। इसी समय दवाग्नि लगी। उस जलते वृक्ष के साथ राजा भी अपने क्षात्रधर्म के भ्रंश होने के भय से जल गया।

उसका लड़का जयकोशी नामक राजा हुआ। उसका क्रीड़ाशुक बड़ा पण्डित था। उसके विना राजा खाता नहीं था। एक वार राजा ने भोजन के अवसर पर शुक को पिंजड़े से बुलाया। उसने कहा कि 'बिल्ली के भय से डर रहा हूँ।' राजा ने बिल्ली को सर्वत्र खोजा। वह दिखायी न पड़ी। फिर बोला, 'आ जाओ।' वह बोला, डरता हूँ।' राजा ने कहा कि 'आ जाओ, अगर तुम्हें बिल्ली खा जायेगी तो तुम्हारे ही साथ चिता पर भस्म हो जाऊँगा।' ऐसा कहने पर वह आया। थाली के नीचे से (झपटकर) मार्जार उसे खा गया। राजा भी अपनी प्रतिज्ञा के भंग होने के भय से साथ ही चिता पर भस्म हो गया।

70. गयणा और मयणा ने इन्द्रजाल विद्या साधी। इसके वाद पत्तन के नये सहस्त्रलिंग सरोवर मे गयण, अपनी विद्या प्रकाशित करने के लिए मकर-रूप धारण करके उपद्रव करने लगा। बहुत उपाय से भी जब वह न मिला तो राजा ने डुग्गी पिटवा दी। छोटे भाई मयण ने इनाम माँगकर उसे निकाला। राजा ने उन्हें खुश किया।

71. श्री सिद्धि और वुद्धि नाम की दो योगिनियों ने, जो केले के पत्ते के आसन पर बैठी थी, श्री सिद्धराज जयसिंह से सिद्धराजत्व (के विषय में) पूछा। राजा उदास हो गया। रात मे वीरचर्या मे सज्जन साकरीपाक को अपने पुत्र के साथ योगिनी के प्रति मल्ल होने की बात कहते सुना। प्रात.काल उसे बुलाकर सम्मानित किया। उसने सात दिन के बाद मिश्री खिलाकर दो चाकू राजा को दूसरे राज्य की भेंट के बहाने दिये। राजा ने दो फल खाकर दोनों लौहमुष्टियाँ योगिनियों को भक्षणार्थ दी। उन दोनों ने नहीं खायी।

72. एक बार महं. गांगाक ने श्री जयसिंहदेव के पास कुछ आम भेजे…

73. एक बार श्री सिद्धराज के द्वादशवार्षिक दिग्विजय करके लौटने पर प्रजा मिलने गयी। राजा ने कुशल पूछा। उन्होंने कहा, 'महाराज, कुशल तो है, पर चित्त में चैन नहीं है।' राजा ने कहा, 'सो क्यों?' उन्होंने कहा, 'राजन्! हम देखना चाहते हैं आपके पुत्र को, जो हमारा रक्षक होगा।' राजा ने इस बात के लिए शकुन जाननेवाले को बुलाके पूछा। उसने 'कुमारपाल का राज्य होगा' यह बताया। राजा ने सोचा—'मेरा राज्य। अकुलीन का होगा। सो इसे मरवा डालूं।' यह सोचकर घातकों को भेजकर त्रिभुवनपाल को मरवा डाला।

(G) संग्रह में हेमचन्द्र सूरि का वृत्तान्त

74. श्री हेम सुरि अष्टमी और चतुर्दशी को श्री जयसिंहदेव के घर जाया करते। पौषधशाला में सभा में नित्य स्थूल-भद्रचरित्र का पाठ करते। एक बार आलिग पुरोहित ने राजा (के आगे कहा—) 'महाराज, यह कैसा असत् प्रलाप है कि सर्वरस के भोजन में और पूर्वपरिचित वेश्यागृह में काम-निग्रह किया जाय? पर क्या किया जाय, वे आपके प्रिय हैं!' राजा ने कहा, 'आचार्य, जब यहाँ आयें तो कहना। परोक्ष में नहीं कहना चाहिए।' सूरि आये। राजा ने कहा, 'आप क्या पाठ करते हैं?' तब सूरि ने संक्षेप में शुरू से आखिर तक स्थूलभद्रचरित्र कह सुनाया। आलिग ने कहा, 'महाराज, विश्वामित्र पराशर प्रभृतय इत्यादि।' गुरु ने कहा, 'सुनो। सिंहोबली. इत्यादि।' तब आलिग ने कहा, क्या किया जाय, हमारे ही शास्त्र पढकर हमी से सामना करते हो?' गुरु ने कहा, 'ऐंद्र व्याकरण क्या आपका है? ऐसा कहो तो आज भी श्रीमातृका को छोड़कर सबकुछ नया बना दूं।' इसके बाद श्री जयसिंहदेव की अभ्यर्थना से व्याकरण बनाया।

75. श्री हेम सूरि के पास कोई वादी छलपूर्वक पूछने आया। पूछा कि 'उर्वशी का शकार कैसा है?' उसमय सूरि का मन सन्देह के दोला पर झूलने लगा। परन्तु चिन्तित होकर भी जब वे पुस्तक देख रहे थे (तब तक एक कार्पटिक आया)। बाद को ऊपर की छत पर लेखक को पढाते हुए कपर्दी नामक भाण्डागारिक ने गुरु को देखा। उसने यह लिखकर पत्रिका इस तरह ऊपर से गिरायी कि पूछनेवाला न देख सका। सो इस प्रकार था—'उरू शेते उर्वशी' ( )। उसे देखकर गुरु वैसे ही स्थित रहे। उसने फिर पूछा। गुरु ने कहा, 'क्या पूछ रहे हो?' उसने कहा, 'उर्वशी का शकार।' गुरु ने कहा, 'तालव्य।' उसने कहा कि 'मैं वादी हूँ।' छल करके आया था। नमस्कार करके चला गया। गुरु ने कहा, 'भाण्डागारिक ने अच्छी चाडा (चाँट) दी।

76. किसी मिथ्यादृष्टि ने व्याख्यान के बाद श्री सूरि से पूछा, 'आप लोग सब रसों को जानते हैं, पर मुझे सन्देह है। विष्ठा का रस कैसा होता है?' गुरु ने कहा, 'तुम सच कहते हो। हम लोग सब रस कहते ही भर हैं, रस के जाननेवाले दूसरे ही होते हैं। हम इस रस का अभिप्राय तो कह देंगे, पर आपने इसे खाया

नही है, इसलिए मानेंगे नहीं। इसलिए आप पहले खा आइए।' इस बात से वह पराजित हो गया।

77. श्री हेमसूरि की माता ने, जिसका नाम पाहिणि था, अनशन स्वीकार किया। वह भूमि पर छोड़ दी गयी। श्री संघ ने तीन करोड़ धर्मव्यय दिया। उसे उससे हर्ष, नही होता था। केवल रोती थी। रोदन का कारण पूछने पर माता ने कहा कि 'मेरी जैसी बहुत मरती हैं, पर उनका कोई नाम भी नही जानता। पर मेरे लिए तीन करोड़ धर्मव्यय हुआ। इस विषय में मेरा पुत्र—श्री हेम सूरि जो कहे वही प्रमाण है। किन्तु जिसे कुछ करना रहता है वह कुछ नही बोलता।' इस पर श्री गुरु ने तीन लाख शास्त्रपुण्य का व्यय दान किया। इसके बाद उसे निर्वाण प्राप्त हुआ। इसके बाद त्रिपुरुष के द्वार पर ब्राह्मणों ने विमान के लिए उपद्रव किया। तब रुष्ट होकर गुरु ने कहा, 'आपण पई प्रभु.' इत्यादि। यह सोचकर'''।

78. एक बार हेमाचार्य छत्रशिला में निविष्ट थे, उस समय उन्होने तेज देखा। (उस तेज को) देखते हुए (हेम सूरि) के पास (वह तेज) आया। मध्यगत पुरुष से (उसकी ?) भेंट हुई। कृष्णचित्र का अर्पण लोभवृद्धि का हेतु है, यह सोचकर निःस्पृह होकर गुरु ने निषेध किया।

22. कुमारपाल की राज्यप्राप्ति का प्रबन्ध (P)

116. संसार में भिक्षा के उपभोग करने मे समर्थ तो बहुत-से आचार्य है, नित्य ही पाप दृष्टियों की ताड़न-विधि में उनके हाथ उग्र रूप से जाग्रत रहा करते हैं; किन्तु चौलुक्य भूपाल के ललाट-रूप प्रस्वर से स्तुत्य वह एक ही हेमचन्द्र गुरु है जिनके चरणकमलों के नख नित्य ही उत्तेजित (तेज समन्वित) रहते हैं।

79. तिहुवणपाल का पुत्र कुमारपाल हुआ। उसकी दो बहनें थी। एक प्रेमलदेवी सपादलक्ष के अधिपति राजा आनाक के साथ ब्याही गयी थी। दूसरी नामलदेवी राजा के महासाधनिक (   ) प्रतापमल्ल के साथ ब्याही गयी थी।

80. एक बार सिद्धराज, जिसे कोई सन्तान नही थी, सोचने लगा—

117. निर्नामता (नाम लोप हो जाने) के समुद्र मे डूबते हुए राज्यरूपी भूमण्डल का उद्धार करने में महात्मा लोगो के पुत्र क्रीड़ा-वराह का कार्य करते हैं।

118. बड़े घड़े के जल में छोटी घटिका (लुटिया) भी एक घड़ी में डूबती है, किन्तु अपुत्री का गोत्र क्षण-भर में निर्नामता (नाम का नष्ट हो जाना) के समुद्र में डूब जाता है।

यह सोचकर देवपत्तन में सोमेश्वर की यात्रा के लिए चल पड़ा। कन्धे पर बहँगी रखकर सोमनाथ के मन्दिर में जाकर उनका आराधन किया। सोमनाथ ने प्रत्यक्ष होकर कहा, 'कैसे कष्ट किया कि यह बहँगी कन्धे पर रखकर आया?' वह बोला, 'पुत्र दीजिए।' 'पुत्र से क्या होगा?' 'राज्य के लिए।' 'तुम्हारा राज्यधर कुमारपाल होगा।'—सोमनाथ ने इस प्रकार कहा। राजा लौटकर सोचने लगा कि 'अगर इसे मरवा दूँ तो सोमनाथ पुत्र देंगे।' यह सोचकर उसे मरवाना शुरू किया। कुमारपाल की उमर उस समय बीस वर्ष की थी, वह नगर से छिपकर निकल भागा। घूमते-घामते सात बार केदार-यात्रा की। बीच-बीच में तपस्वी बनकर छिपकर आया करता। राजा से अपने मारे जाने (की घोषणा सुनकर) गायब हो गया। सज्जन नामक कुम्हार ने उसे कोठी में रखा। उसे चित्रकूट ( ) दे दिया। फिर एक बार अनादि राउल के मठ में घुसा। एक बार हेमगुरु के पौषधागार में घुसा। वहाँ पर उन्होंने कहा, 'सं. 1199 मार्गशीर्ष वदि 4 रविवार को तुम्हारा जन्म है। पर तुम्हें कुछ दिनों का कष्ट है। उस समय पौषधागार में आना।' इधर अनादि राउल साढ़े सात सौ तपस्वियों के साथ राजा के घर भोजन करने गया। राजा ने तपस्वी की बगल में तलवारबन्द सिपाही नियुक्त कर रखे थे। 'जिस तपस्वी का पैर धोते-धोते छोड़कर ऊपर चला जाऊँ उसे मार डालना।' ऐसा करने पर कुमारपाल के भाग्यवश उन आदमियों को यह बात भूल गयी। भोजन के समय (कुमारपाल) एक हाथ पेट पर और दूसरा मुख पर रखकर कै करने के बहाने निकल भागा। श्री हेमसूरि के पौषधागार में गया। 3 दिन तक उपवरक में ताला लगाकर रखा। फिर भाण्डागारिक कपर्दी को दिया। उसने अपने घर में छिपाकर उसे पत्ते के खाँचे में रखकर 20 योजन दूर लेकर छुड़वा दिया। वह कान्ती में गया। उस जगह तालाब में किसी ने किसी चोर का सिर काटकर फेंक दिया। इसके बाद प्रातःकाल ही बोला, 'एक डूब रहा है।' राजा ने अमात्यों से पूछा। अमात्यों ने पण्डितों से। पण्डितों ने एक मास (की मुहलत) माँगी। मुख्य पण्डित स्वगृह सूत्र ( ) करके निकल पड़ा। जंगल में घूमता हुआ रात में एक वृक्ष के कोटर में ठहरा। उस वृक्ष पर भूत रहते थे। छोटे भूतों ने कहा, 'पिता, हमें भूख लगी है।' पिता ने कहा, 'तीन दिन के बाद जाऊँगा।' 'सो क्यों?' 'नजदीक के नगर में राजा ने ब्राह्मणों से सिर के वाक्य का सवाल किया है। वे (सवाल का जवाब) नहीं जानते। राजा उन्हें सकुटुम्ब मार डालेगा।' उन्होंने पूछा, 'क्यों पिता, कारण क्या है?' आग्रह करने पर बोला, 'लोभ से डूबा है।' उस पण्डित ने सुना। घर आया। महीने के अन्त में राजा ने बुलाया। उसने तालाब के किनारे जाके कहा, 'यदि लोभ से डूबता है तो फिर न बोलना।' सिर वैसे ही रहा। राजा ने मन्दिर बनवाया। उसी में सिर की पूजा होने लगी। इसके बाद कुण्डगेश्वर के प्रासाद में श्री सिद्धसेन की लिखी यह गाथा (कुमारपाल ने) देखी।' पुण्णे वास सहस्से।' इस तरह उसे देशान्तर में तीस वर्ष बीते। एक बार उज्जयिनी के चमार हाट में सिद्धराज का मरना सुना। तब उसका मुँह काला हो गया। उस (चमार?)

ने पूछा, 'तुम्हारा मुँह काला क्यों हो गया ? राजा क्या तुम्हारा सगा (सम्बन्धी) है ?' उत्तर दिया, 'राजा के मरने पर कौन दुखी नहीं होता ?' बाद को पत्तन में आया। वहाँ प्रतापमल्ल नामक उसका भगिनीपति था। उसने एक वेश्या घर रख ली। उसने शर्त की कि 'अन्य सभी को पिता के घर भेज दो।' उसके ऐसा करने पर कुमार की बहन नामलदेवी पितृगृह को न देखकर···उसके चरणों पर गिर पड़ी। उसने कहा, 'क्या बात है ?' 'देवी, तुम्हारी दासी होकर रहूँगी।' उस (वेश्या) ने कहा, 'अच्छा रहो।' इधर कुमारपाल बहन के पास आकर बोला, 'मैं भूख से मर रहा हूँ। मेरी दशा देखो।' बहन ने कहा, 'तुम मेरे भाई हो।' उसने वेश्या से कहा, 'मेरे भाई को एक मुट्ठी दाल का आदेश दीजिए।' ऐसा कहने पर वह नित्य ही···में एक मुट्ठी दाल लेता। इधर राजा के मरने पर जो जो उस राज्य पर बैठता उसी को प्रधान लोग हटा देते थे। इस प्रकार सिद्धराज की पादुकाओं से राज्य कराते थे।

एक बार प्रतापमल्ल रात को वैकालिक (सायंकालीन भोजन) करने बैठा। वह वेश्या परसने लगी। नामलदेवी हाथ में दिया लिए···उसे देखकर प्रतापमल्ल बोला, 'री, तेरा भाई कहाँ है ?' उसने वेश्या को देखा। बोली, 'पाणउठ मे रोज एक मुट्ठी दाल लेता है। वहाँ पूछने पर उन लोगों ने बताया कि आज नहीं आया है। उसने खोजने के लिए आदमियों को भेजा। वे आदमी प्याऊ आदि स्थानों पर अनुसन्धान करने लगे। इसके बाद सुना कि एक प्रपा (प्याऊ) पर कुमारपाल एक बोसरिक (नामक ?) ब्राह्मण से बात कर रहा है।—'रे बोसरिक, आज द्यूत में ऐसा फँसा रहा कि दाल भी नहीं लाया।' 'तब सामने के हाट में जाकर दीपच्छाया में हाथ डालकर एक मुट्ठी चना ले आओ।' उसने कहा, 'पागल हुए हो। तुम्हें तो प्रातःकाल पिता का राज्य मिलेगा और पहरेदार मेरा तो हाथ काट लेंगे।' यह सुनकर राजकीय पुरुषों ने कहा—'वह कौन है ?' कुमार ने कहा—'किसे खोज रहे हो ?' 'कुमार को।' 'किस वास्ते ?' 'प्रतापमल्ल बुला रहे हैं। चलो।' इधर बोसरिक ने समझा कि इसे मारने को ले जा रहे है। वह···कुमारपाल ने भी बहनाई को नमस्कार किया। उसने कहा— 'यदि तुम्हें राज्य दिलाऊँ तो मुझे क्या दोगे ?' 'जो कहो, सो!' 'तो यह कि आजीवन मानना और 3 लाख द्रम्म वार्षिक देना। प्रातःकाल राजकुल मे आना।' वह क्षुधार्त्त होकर पड़ा रहा। बोसरि को प्रण मे न देखा। सोचा—'राज्यप्राप्ति में सन्देह है' और बोसरिक भी चला गया। इसके बाद प्रातःकाल दातून करने नगर में प्रवेश किया। उसी समय हाथ में तलवार लिये हुए वैज्ञानिक को देखा। उसने खड्ग दिया और वन्दना की। सोचा—मेरा कार्य तो हो ही गया। शकुन अच्छा है। उसने कुछ माँगा नहीं। आगे मोची ने 2 जूता दिया। दोसिक ने वस्त्र, माली ने फूल, और तमोली ने पान दिया। फिर राजकुल मे गया। प्रतापमल्ल ने प्रधानों से कहा—'कुमार का राज्याभिषेक क्यों नहीं करते ? वह भी तो धनिक (हकदार) है।' उन्होंने कहा—'(सिंहासन पर) बैठाओ।' तब तलवार के बल उसका राज्य हुआ। सं. 1199 में। इसके बाद भी

ने पूछा, 'तुम्हारा मुँह काला क्यों हो गया ? राजा क्या तुम्हारा सगा (सम्बन्धी) है ?' उत्तर दिया, 'राजा के मरने पर कौन दुखी नहीं होता ?' बाद को पत्तन में आया। वहाँ प्रतापमल्ल नामक उसका भगिनीपति था। उसने एक वेश्या घर रख ली। उसने शर्त की कि 'अन्य सभी को पिता के घर भेज दो।' उसके ऐसा करने पर कुमार की बहन नामलदेवी पितृगृह को न देखकर⋯उसके चरणों पर गिर पड़ी। उसने कहा, 'क्या बात है ?' 'देवी, तुम्हारी दासी होकर रहूँगी।' उस (वेश्या) ने कहा, 'अच्छा रहो।' इधर कुमारपाल बहन के पास आकर बोला, 'मैं भूख से मर रहा हूँ। मेरी दशा देखो।' बहन ने कहा, 'तुम मेरे भाई हो।' उसने वेश्या से कहा, 'मेरे भाई को एक मुट्ठी दाल का आदेश दीजिए।' ऐसा कहने पर वह नित्य ही⋯में एक मुट्ठी दाल लेता। इधर राजा के मरने पर जो जो उस राज्य पर बैठता उसी को प्रधान लोग हटा देते थे। इस प्रकार सिद्धराज की पादुकाओं से राज्य कराते थे।

एक बार प्रतापमल्ल रात को वैकालिक (सायंकालीन भोजन) करने बैठा। वह वेश्या परसने लगी। नामलदेवी हाथ में दिया लिए⋯उसे देखकर प्रतापमल्ल बोला, 'री, तेरा भाई कहाँ है ?' उसने वेश्या को देखा। बोली, 'पाणउठ में रोज एक मुट्ठी दाल लेता है। वहाँ पूछने पर उन लोगों ने बताया कि आज नहीं आया है। उसने खोजने के लिए आदमियों को भेजा। वे आदमी प्याऊ आदि स्थानों पर अनुसन्धान करने लगे। इसके बाद सुना कि एक प्रपा (प्याऊ) पर कुमारपाल एक वौसरिक (नामक ?) ब्राह्मण से बात कर रहा है।—'रे वोसरिक, आज द्यूत में ऐसा फँसा रहा कि दाल भी नहीं लाया।' 'तब सामने के हाट में जाकर दीपच्छाया में हाथ डालकर एक मुट्ठी चना ले आओ।' उसने कहा, 'पागल हुए हो। तुम्हें तो प्रातःकाल पिता का राज्य मिलेगा और पहरेदार मेरा तो हाथ काट लेंगे।' यह सुनकर राजकीय पुरुषों ने कहा—'वह कौन है ?' कुमार ने कहा—'किसे खोज रहे हो ?' 'कुमार को।' 'किस वास्ते ?' 'प्रतापमल्ल बुला रहे हैं। चलो।' इधर वोसरिक ने समझा कि इसे मारने को ले जा रहे हैं। वह⋯कुमारपाल ने भी बहनोई को नमस्कार किया। उसने कहा— 'यदि तुम्हें राज्य दिलाऊँ तो मुझे क्या दोगे ?' 'जो कहो, सो !' 'तो यह कि आजीवन मानना और 3 लाख द्रम्म वार्षिक देना। प्रातःकाल राजकुल में आना।' वह क्षुधार्त्त होकर पड़ा रहा। वोसरि को प्रण में न देखा। सोचा—'राज्यप्राप्ति मे सन्देह है' और वोसरिक भी चला गया। इसके बाद प्रातःकाल दातून करने नगर मे प्रवेश किया। उसी समय हाथ में तलवार लिये हुए वैज्ञानिक को देखा। उसने खड्ग दिया और वन्दना की। सोचा—मेरा कार्य तो हो ही गया। शकुन अच्छा है। उसने कुछ माँगा नहीं। आगे मोची ने 2 जूता दिया। दोसिक ने वस्त्र, माली ने फूल, और तमोली ने पान दिया। फिर राजकुल में गया। प्रतापमल्ल ने प्रधानों से कहा—'कुमार का राज्याभिषेक क्यों नहीं करते ? वह भी तो धनिक (हकदार) है।' उन्होने कहा—'(सिंहासन पर) बैठाओ।' तब तलवार के बल उसका राज्य हुआ। सं. 1199 में। इसके बाद भी

119. अम्बड रहा वनिया और मल्लिकार्जुन राजा।···

सिर काटकर···राजा सामने आया। मल्लिकार्जुन ने शिरसा राजा के चरणों की पूजा की। राजा सन्तुष्ट हुआ और अम्बड को लाड देश की मुद्रा दी। हाथी दिया और मल्लिकार्जुन का जय-सूचक कलशस्य ( ) भी। अपना गुप्तोदर आदि भी दिया। इधर हाथी लेकर अम्बड अपने घर गया। वाग्भटदेव को नमस्कार किया। (वह बोला), 'बेटा, देव को नमस्कार करो।' उसके ऐसा करने पर फिर भी मन्त्री बाहड़देव ने कहा, 'इतने दिन तो तुम राजपुत्र थे, अब व्यापारी हुए। इसलिए कुलगुरु श्री हेमगुरु को नमस्कार करो।' पौषधागार में गया। उन्होंने धर्म लाभ तो नहीं दिया। आशीर्वाद दिया। घर जाकर जाभड़ ने कहा कि 'मैं तो पौषधागार में गया था, पर वहाँ गुरु के पास धर्मलाभ मे भी सन्देह है।' मन्त्री वाग्भटदेव ने गुरु से कहा कि 'आपने धर्मलाभ क्यों नहीं दिया?' गुरु ने कहा, 'यदि हमने नहीं कहा था तो भृगुकच्छ में क्यों गया? श्री मुनि सुव्रतस्वामी के प्रासाद का उद्धार कैसे करेगा? अनेक अन्याय करेगा।' मन्त्री वाग्भटदेव ने अम्बड के आगे (यह बात) कही। उसने कहा, 'उद्धार करने से ही वे मेरे गुरु हैं।' प्रासाद से प्रसन्न हुआ। (प्रतिज्ञा की) 'दो बेला मे (प्रासाद का) उद्धार करके ही भोजन करूँगा, पर तुम खाये बिना कुछ भी न बोलना।' तब चलके भृगुपुर गया। प्रवेशोत्सव होने पर मंच पर बैठा। इसके बाद देवी की पुजारिन योगिनियों के साथ (बिना उठे ही) पास-ही-पास आकर सभा में प्रविष्ट हुई। अम्बड ने कर्पूर से मारा और मंच से बाहर गिर गयी। मर गयी। काम शुरू हुआ। एक वर्ष मे पूरा हुआ। एक करोड़ पत्थरों से गढा हुआ मन्दिर और राणा उदयन का मनोरथ भी (साथ-ही-साथ) तैयार हुआ। अम्बड ने श्रीपत्तन में एक विज्ञप्ति श्री कुमारपाल देव को, एक गुरु को, एक वाग्भटदेव को और एक श्री संघ को—इस प्रकार चार विज्ञप्तियाँ भेजी। वाग्भट ने श्री गुरु के सामने विज्ञप्ति रखी। (गुरु ने पूछा) 'यह क्या है?' 'यह अम्बड की विज्ञप्ति है।' 'उसे तो गये एक वर्ष बीत गया। आज विज्ञप्ति कैसी?' 'देखिए। प्रतिष्ठा के अवसर पर आपकी बुलाहट आयी है।' 'मन्त्री, यह क्या सच है?' 'मैं क्या जानूँ? विज्ञप्ति तो यही कहती है।' 'तो चलिए।' राजा गुरु के साथ चल पड़ा। इधर आधे रास्ते में एक आदमी सामने आया कि 'अम्बड (प्रतिष्ठा) नहीं कर सकता।' गुरु संघ को छोड़कर भृगुपुर गये। इसके बाद अम्बड को अति दुर्बल देखा। (गुरु) ध्यान करके देवी प्रासाद मे बैठ गये। इसके बाद मुख्य पुजारिन के पेट में बड़ी पीड़ा हुई, वह कों-को करने लगी। परिचारिका ने आकर प्रभु से कहा, 'हमारी स्वामिनी को छोड दीजिए।' 'तो फिर अम्बड को भी छोड़ दो।' 'वह तो सम्पूर्ण तया···हो गया है और पी लिया गया है।' 'तो यह भी मरे। जी कर क्या करेगी! एक ही साथ जाय।' वह अति पीड़ित होकर प्रभु के पास आकर बोली, 'कृपा करके मुझे छोड़िए।' 'अम्बड को भी छोड़ो।' 'वृक्ष को (कपड़े से या सूने से) लपेटकर घी के कुम्भ मे प्रक्षेप करने पर जो यह कहे कि मुझे मारता है, मुझे खींचता है, तो तुम उसे निकालकर स्नान

कराना।' 'यदि वह कहेगा तो तुम भी अच्छी हो जाओगी।' तीन दिन के बाद अम्वड अच्छा हो गया। वह भी (अच्छी हुई)। इधर श्री संघ के साथ राजा आया। गुरु के साथ अम्वड सम्मुख आया। अम्वड का हाथ पकड़कर गुरु ने (मन्दिर की) प्रदक्षिणा की। प्रासाद को ऊँचा देखकर गुरु ने कहा, 'मैंने देव और गुरु के सिवा अन्य किसी की स्तुति नहीं की, पर तुम्हारे कीर्तन में कुछ कहूँगा।' 'आदेश कीजिए।'

120. 'जहाँ तुम नहीं हो वहाँ सत्ययुग का क्या काम? जहाँ तुम हो, वहाँ कलि क्या कर सकता है? कलि में अगर तुम्हारा जन्म हो सकता है, तो कलि ही रहे। कृतयुग से क्या लाभ?'

24. कुमारपाल की बनवायी हुई अमारि का प्रबन्ध (B, P)

83. इसके उपरान्त एक बार श्री कुमारपाल देव ने अमारि (वध-निषेध) प्रारम्भ की। उस समय आश्विन का शुक्लपक्ष आया। कण्टेश्वरी आदि (देवियों) के पुजारियों ने राजा को सूचित किया कि 'महाराज, सप्तमी को सात सौ पशु (छाग) और सात महिष (भैंसे), अष्टमी को आठ सौ बकरे और आठ भैंसे, तथा नवमी को 9 सौ बकरे और नौ भैंसे देवी को राजा की ओर से दिये जाने चाहिए। पूर्व राजाओं का यही क्रम है।' राजा प्रभु के पास गया। बात बतायी (गुरु ने) कान में (कुछ) कहा। राजा सुनकर उठा। पुजारियों से कहा गया कि 'जो देय है, वह देंगे।' वही के अनुसार पशु देवी के मन्दिर में निक्षेप किये गये। द्वार पर ताला देकर राजा अपने घर आया। प्रातःकाल राजा आया। द्वार खोले गये। भीतर देखा तो पशु जुगाली कर रहे हैं। राजा ने पुजारियों से कहा, 'वे पशु अगर इन देवियों को रुचे होते तो ग्रास कर गयी होतीं। पर उन्होंने खाया नहीं। इसलिए। (मालूम हुआ कि) मांस इन्हें नहीं चाहिए। आप लोगों को चाहिए। इसलिए मैं जीव-वध नहीं करूँगा।' वे बिलखकर रह गये। बकरों के मूल्य के समान धन से नैवेद्य बनाया गया। इसके बाद आश्विन शुक्ल दशमी को राजा उपवास करके रात में चन्द्रशाला में ठहरा। ध्यान करके 'पंच परमेष्ठी पद' मन्त्र जप रहा था। बाहर द्वारपाल थे। बहुत रात बीत गयी।

एक दिव्य स्त्री प्रत्यक्ष होकर बोली, 'राजन्, मैं तुम्हारी कुल-देवी कण्टेश्वरी

हूँ। तुमने हमारा देय भी नहीं दिया।' राजा ने कहा—'मैं दयालु हूँ। इसके बाद से चीटी भी नहीं मारूँगा। पशुओं की तो बात ही क्या है!' यह सुन कर कण्टेश्वरी अति क्रुद्ध हो राजा के सिर में त्रिशूल मारकर चली गई। राजा उसी समय से कुष्ठी हो गया। विखि नामक नौकर से उदयन के पुत्र वाग्भट देव को बुला कर पूछा—'मंत्री, देवी पशु माँगती है, दिये जायें या नहीं।' मंत्री ने चतुरतापूर्वक उत्तर दिया—'महाराज, दिये जायें!' 'मंत्री, तुम वनिये हो। यदि ऐसा कहोगे तो मेरा जीना हो चुका—राज्य पाया, संसार को तारनेवाला धर्म पाया, शत्रुओं को मारा। तुरन्त काठ सजाकर चिता बनाओ। क्योंकि मुझे ऐसा (कोढ़ी) देखकर लोग धर्म का मजाक उड़ायेंगे। गुरु को जाकर बुला लाओ।' राजा से विदा होकर वह गुरु के पास गया। सारी बातें कहीं। गुरु ने पानी मँगाकर कलापनीय (बी—काला पानीय) दिया। उससे पहले देहाभ्यंग किया, बाद को पिया भी। राजा उसी समय शरीर से सोने की कांति वाला हो गया। प्रातःकाल गुरु को नमस्कार करने गया। इसके बाद गुरु ने देशना की। बाद को अमारि के सम्बन्ध में विशेष उद्योग किया। इस प्रकार अमारि (अहिंसा) के विषय कुमार पाल का प्रबन्ध है।

84. एक बार गुरु ने उपदेश दिया—

122. शूर हजारों की संख्या में हैं, पद-पद पर अनेक विद्यावान् पुरुष है, पृथ्वी पर अजस्र धन दान करने वाले धनवान् भी बहुत है, किन्तु अन्य पुरुष को दुःखी जानकर, सुनकर और देखकर जिनका मन उसी के समान हो जाता है, ऐसे सत्पुरुष पाँच-छः ही होंगे।

एक बार गुरु ने चक्रवर्ती भरत की साधार्मिकवत्सलता की कथा कही। यह सुनकर राजा ने प्रति ग्राम और प्रति नगर में साधार्मिक वत्सलता आरम्भ की। यह देखकर श्रीपाल के पुत्र सिद्धपाल कवि ने यह कविता पढी—

123. समुद्र ने अपने तल-देश में मणियो को डालकर, रोहण पर्वत रत्न की खान को धूल से ढककर सुमेरु सोने को अपने आप मे दृढ़ भाव से बाँधकर और कुबेर पृथ्वी के नीचे धन रखकर दूसरों से डरते रहते है। यह कुमार पाल, जो समस्त याचकों को अपना धन दान किया करता है, की तुलना क्या इन कृपणों से होगी?

इस पर से 1 लाख द्रम्म दान मे मिले। पं. श्रीधर ने कहा—

124. पूर्वकाल मे वीर जिनेश्वर भगवान् के स्वयं धर्मोपदेश करने पर भी और उनके जैसे अति बुद्धिमान और निर्भीक मंत्री के रहते हुए भी श्रेणिक राजा जिस (अहिंसा रूपी) कार्य को न कर सका, उस जीवरक्षा को कुमार पाल राजा बिना क्लेश के जिसके वचनामृत को पा कर सका वे है श्री हेमचन्द्र गुरु।

इस पर एक लाख दान मिला।

दूसरे दिन, कथा प्रसंग में प्रभु ने कहा—पूर्वकाल मे भरत नामक राजा ने श्री मालपुर में, श्री शत्रुंजय में, सोपारक और अष्पावद में जीवित स्वामी की प्रतिमायें बनायी। उसके अपने श्री संघ के चलने से उठी हुई धूलि राशि दिङ्मण्डल

धूसर हो गया। संघ पति होकर उसने (प्रभु की) वन्दना की। यह सुनकर श्री कुमार पाल राजा ने अपने ही बनाये हुए देवालय में अर्हन्मूर्त्ति की स्थापना करके सेना समेत शत्रुंजय, उज्जयन आदि तीर्थों की यात्रा के लिए चला। संघ के साथ ये लोग थे—चौबीस महाप्रासादों के बनवाने वाले उदयन सुव वाग्भट, नागराज, सेठ के पुत्र श्रीमान् आभड़, छः भाषाओं के चक्रवर्ती प्राग्वाट श्री पाल, तथा उनका पुत्र, कवि और दाताओं में धुरंधर सिद्धपाल, भाण्डागारिक कपर्दी, परमारवंशी प्रह्लादन-पुर प्रवेश कारक प्रह्लादन, राजा का दौहित्र—प्रताप मल्ल, निन्यानवे लाख सुवर्ण का अधिपति ठक्कर छाडाक, तथा श्राविका देवी भोपा दे, राजकन्या लीलू, राणा ग्रम्बड की माता। वसाह आभड की पुत्री बाई चांपल दे इत्यादि कोटीश्वर लोग थे। सूरिगणों में भी—श्री देवाचार्य, श्री अभयदेव सूरि के शिष्य श्री जिनचन्द्र सूरि, उनके गुरु भाई श्री जिनवल्लभ सूरि, श्री चैत्र गच्छवाले श्री धर्म सूरि, श्री वीरा-चार्य इत्यादि थे। श्री देवसूरि की बहन प्रवर्त्तिनी सरस्वती, श्री हेमचन्द्र सूरि की (बहन) महत्तरा पुष्प चूला आदि साध्वी स्त्रियाँ थीं। एक लाख मनुष्य थे। इस प्रकार के संघ के साथ राजा श्री वर्द्धमान के रास्ते रैवतक गिरि पर गया। स्थान-स्थान पर प्रभावन करता, चैत्य परिपाटी बनवाता, और याचकों को इच्छानुरूप भोजन देता जाता था। संघ श्री साकलिअली पुष्करिणी के किनारे रुका। राजा ने कहा—'पधारिये कि ऊपर चलें।' गुरु ने कहा—'हे कुमार पाल राजन् तुम चलो, हम पीछे से आयेंगे।' कुमार पाल बोला—'गुरु के बिना ऊपर कैसे जाऊँ।' गुरु ने कहा—'यहाँ ऐसा जन प्रवाद है कि जब दो आम पुरुष शिला के नीचे जाते हैं तो अनर्थ होता है। इसलिए तुम लोग पहले जाओ।' राजा धौत वस्त्र धारण करके ऊपर गया। बाद को गुरु भी। सब तीर्थ-कार्य करके राजा वाग्भट देव के द्वारा आम्रमंत्री द्वार विनिर्मित पधा से उतारा गया। इसके बाद राजा तरैटी के जीर्ण दुर्ग में संघ वात्सल्य और संघ-पूजा करके संघ के साथ देव पत्तन में गया। वहाँ भी चन्द्र प्रभा तीर्थ को नमस्कार करके चलकर श्री शत्रुंजय गिरि पर चढ़ा। चैत्य-परिपाटी होने पर भाण्डागारिक कपर्दी ने कहा—

125. चौलुक्य, (कुमार पाल) तुम्हारा वह दाहिना हाथ पहले की हुई प्राणियों की हत्या के पाप (का मित्र) से संसक्त था, वह जिनेन्द्र की पूजा से शुद्ध हुआ। यह बायाँ भी जो उसी की भाँति पापासक्त था, यदि श्री प्रभु हेमचन्द्र के समान यतिपति के हाथों से स्पृष्ट न होता तो कैसे शुद्ध होता।

85. मेसमहाध्वजा, महा पूजा और अमारि (अहिंसा) आदि सबका प्रवर्त्तन किया। माला का उद्घाटन करते समय जब राजा और संघ बैठे तो वाग्भट देव ने चार लाख (दान करने को) कहा। किसी छन्न पुरुष ने आठ लाख (देने को) कहा। इस तरह क्रमशः बढते-बढ़ते एक ने सवा करोड़ कर दिया। राजा ने चकित होकर कहा—उठिये। वह उठा। देखा गया तो वह एक मलिन वस्त्र-धारी बनिया था। राजा ने मंत्री से कहा—द्रम्भ गिन के माला दे दो। मंत्री उसके सहित राजा की पादुका के पास जाकर द्रम्भ उसने सवा करोड़ मूल्य की मणि दिखाई। मंत्री ने

पूछा —तुम्हारे पास यह कैसे आया। उसने कहा कि मेरे पिता का नाम हंस था वे

कर व्यापार किया है। वह सफल भी हुआ है। धन मिला है। उससे सवा करोड़ मूल्य का एक एक रत्न खरीदा है। इस समय तो मेरे धारदादाता युगादिचरण हैं। उन्होंने अनशन किया और कहा कि एक रत्न श्री नेमि को, एक श्री चन्द्रप्रभ को देना और दो को अपने अन्तर्धन में रखना। वाह्यधन भी तुम्हें बहुत है। इस समय यात्रा में मेरी माता साथ ही हैं। उन्हें मैंने कपर्दि भवन में छोड़ रखा है। उन्ही वृद्धा माता को, सर्व तीर्थ से बढ़कर होने के कारण उन्हें ही, पुराण पुरुष को निवेदित यह माला पहनाऊँगा। सुनकर मंत्री हृष्ट हुआ। संघ को सामने ले कर (उसकी माता को) महोत्सव पूर्वक ले आकर संघ के सामने माला पहनाई। उस माणिक्य को सोने में जड़ाकर कण्ठाभरण के मध्य स्थान में बैठाकर श्री युगादि देव को दिया गया। देव'''स्वयं आरती करके संघ उतरा और आगे चला। श्री पत्तन में पहुँचा। संघ वात्सल्य का प्रवर्त्तन हुआ। साधुओं की प्रतिलाभनायें की गई और अमारि तो सर्वदा ही की गई।

इस प्रकार श्री कुमार पाल देव की तीर्थयात्रा का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

25· कुमारपाल के पूर्व जन्म का प्रबन्ध (B)

86. एक बार श्री कुमार पाल ने श्री हेम सूरि से अपने पूर्व जन्म की बात पूछी। इस पर सूरि सिद्धपुर गये। प्राची माधव के आग श्मशान भूमि पर चार उपवास किये हुए श्रावकों को चार दिशाओं में तथा चार तपोधनों को चार विदिशाओं में रखकर स्वयं त्रिभुवन स्वामिनी विद्या को स्मरण किया। देवी ने (आकर) कहा—'स्मरण का कारण बताओ।' उन्होंने राजा का पूर्वजन्म पूछा। देवी बोली—'मेदपाट देश में चित्रकूट के निकटवर्त्ती ऊपर माल पर्वत पर परमार वंशीय जैत्र नामक पल्ली पति था। उसने एक बार धारा के नायक गगनधूलि के दस हजार बैलों के साथ का जत्था लूट लिया। नायक ने भागकर मालवेश से कहा। राजा ने कहा—मैं उसका कुछ नहीं कर सकता। उसने कहा—मैं कर सकता हूँ। सेना लेकर अज्ञात भाव से पल्ली में गया। जैत्र निकल भागा। उसने कीड़ों की तरह उस गाँव के रहनेवालों को मारकर जैत्र की गर्भिणी स्त्री का पेट फाड़कर बालक को पृथ्वी पर पटक दिया। वहाँ से चलकर राजा से अपना वृत्तान्त कहा। राजा

ने उसे अद्रष्टव्य कहकर, तिरस्कार किया। लोग उसकी निन्दा करने लगे। इससे तापसाश्रम में जाकर शुद्धि के लिए तपस्वी हो गया। इसके बाद जैत्र स्थानभ्रष्ट, होकर चोर वृत्ति से जीवन धारण करता हुआ कुछ संगियों से मिल गया। साथी के ठहरने पर भक्त गणो को देव पूजा करके तालाब के किनारे-किनारे जाते देख उन्हीं के साथ चला गया। वे तपोधनों को नमस्कार करके धर्मोपदेश सुनकर क्षमा-श्रमण पूर्वक तपोधनों को लेकर गये। वह यों ही बैठा रहा। तपोधन आये। वह न उठा। 'मेरे भूखे रहते मुनि गण कैसे भोजन करेंगे।' (मुनियों ने) भक्तों को बुला कर उसे दिलवाया। इसके बाद गुरु ने कहा—'तुम चोरी और न दिये हुए पदार्थ के ग्रहण (न करने) का नियम ग्रहण करो।' उसने कहा—'यदि उदरपूर्ति हो तो मैं (ये सब काम) नहीं करूँगा। उन (मुनियों) ने भक्तो के पास से कुछ व्यय दिलवा दिया। वह क्रमश' साथियों से अलग हुआ। गुरु ने नियम स्मरण कराया। वह उरगंल पत्तन में गया। वहाँ ओढर नायक के मकान में बैठा। उसने आकर पूछा—'कहाँ जाओगे?' उसने कहा—'जहाँ पेट भरेगा।' नायक ने उसे रख लिया। शुद्ध वृत्ति से रहने लगा इसलिए विश्वास-पात्र हो गया। एक बार चतुष्पद में···के लिए भेजा गया। इसके बन्द हाटों को बन्द किये जाते देखकर पूछा। उन्होने बताया कि 'सूरि आ रहे हैं।' उन्हीं के आगे जायेंगे। उसने सोचा कि 'मैं भी जाऊँ। कदाचित् वे मेरे गुरु ही हो।' यह समझकर सूरि को लक्ष्य करके नमस्कार किया। गुरु ने कुशल पूछा। वह क्रमशः विसाधन ( ) लेकर गया। नायक ने पूछा। उसने सारा हाल बताया। नायक बहुत भला मानस था, इसीलिए उसी के साथ वहाँ गया। 'न कयं दीणुद्धरणं'—(दीनों का उद्धार नही किया)। इत्यादि व्याख्यान के बाद सुबुद्ध होकर धर्म स्वीकार किया। गुरुओं से बोला—'दक्षिणा माँगिये।' उन्होने कहा—'यहाँ कोई जिन मन्दिर नहीं है। उसे बनवा दो।' ऐसा करने पर प्रासाद प्रतिष्ठा कराई। एक दिन नायक निर्मल वस्त्र धारण करके जैत्र के साथ प्रासाद को गया। उसने पूजा की। जैत्र से बोला—'तुम भी पूजा करो।' उसके पास कुछ द्रव्य था, उसी से पुष्प लेकर पूजा की। पौषधागार मे नायक ने और जैत्र ने भी उपवास किया। पीछे घर जाकर धौत वस्त्र त्याग किया। जैत्र भोजन के लिए बैठा। परसकर ज्योंही बैठा त्यों ही एक भोजनार्थी मुनि आया। समय पाकर अनशन करके स्वर्ग-गामी हुआ। जैत्र भी अनशन करके त्रिभुवन पाल देव का पुत्र हुआ। नायक का जीव जय सिंघ देव हुआ। पूर्व जन्म के पाप से निःसन्तान हुआ। तब गुरु ने राजा से निवेदन किया। राजा प्रसन्न हुआ।

इस प्रकार कुमार पाल देव के पूर्व जन्म का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

26. बत्तीस विहारों की प्रतिष्ठा का प्रबन्ध (B, R)

87. एक बार श्री पत्तन में बत्तीस विहारों की प्रतिष्ठा का महा उत्सव के साथ प्रारम्भ होना सुनकर, वट पद्रपुर निवासी बसाह् कान्हाक अपने बनाये हुए मन्दिर के बिम्ब को लेकर प्रतिष्ठा कराने के लिए श्रीपत्तन में आया। प्रतिष्ठा के लिए हेमाचार्य की अभ्यर्थना की। उन्होने मान लिया। इसके बाद उस दिन बड़ी भीड़ हुई। रात में घड़ी बजी। इधर बसाह् को भोग आदि सामग्री ले आने की बात भूल गई। इस कारण वह उसे ले आने गया। तब तक असमय में ही लग्न की घंटी बज गई। वह आया। भीतर तो घुस न सका। लग्न घंटी सुनकर अत्यन्त उदास हुआ। प्रतिष्ठा हो जाने के बाद भीड़ पतली हो गई। कान्हाक भी भीतर प्रवेश करके गुरु के चरणों में लगकर बड़े जोर से रोने लगा। 'प्रभो, मेरा बिम्ब रह गया।' गुरु ने ऊपर देखा। उस समय लग्न व्यतीत होते देख बोले—'अजी, तुम पुण्यवान् हो। लग्न तो अब है। बिम्ब प्रतिष्ठा का परिच्छेद करो।' पर वह नही माना। गुरु ने प्रतिष्ठा करके कहा—'यदि नहीं मानते तो देवता से ही पूछो कि यह ठीक है या नही।' बिम्ब ने कहा—'ठीक है जी, तुम्हारे बिम्ब की आयु तीन सौ वर्ष है। और इन सब बिम्बों की आयु तीन वर्ष होगी।' इधर कोई व्यवसायी स्तम्भतीर्थ में वाणिज्य करने गया। वहाँ पर उसने श्री देवाचार्य को नमस्कार किया। 'क्या आजकल राजा पुण्य कर्म करता है?' उसने कहा—'बत्तीस विहारों की प्रतिष्ठा हुई है। उस उत्सव का क्या कहना है!' 'लग्न जानते हो?' 'अनुमान है कि अमुक लग्न होगा।' 'यह लग्न हेमाचार्य ने निरूपित किया था या नहीं? यदि निरूपित किया था तो महा अनर्थ हुआ।' वह फिर पत्तन में आया। हेमाचार्य ने पूछा—'श्री देव सूरि को तुमने प्रणाम किया था?' उसने सारी बातें बताईं। 'तुमने कुछ कारण नही पूछा।' 'मैंने समझा कि आपकी उन्नति नहीं सह सकने के कारण कह रहे हैं।' इसके बाद श्री देवाचार्य पत्तन में आये। श्री हेमाचार्य को नमस्कार करने के लिए आते देख कहा—'हे यशोधनो, राजगुरु के बैठने के लिए आसन से आओ।' श्री हेमाचार्य विस्मित हुए। तब [illegible] (देव सूरि ने) कहा—'हे राजगुरु, बैठिये।' हेमाचार्य ने कहा—'प्रभो, मेरे ऊपर [illegible] क्यों है? क्या प्रभु ने मुझे दर्शन विरुद्ध मार्ग में चलते देखा या सुना है?' 'बत्तीस प्रतिष्ठा लग्न आपने निरूपित किया है या नहीं?' 'किया है।' 'इस लग्न में क्रूर ग्रहों का योग है। यह लग्न पहले से [illegible] अनर्थ का कारण है।' 'भगवन्, क्या करें।' गुरु ने कहा—'[illegible] दोष को भी कार्य विचक्षणों को [illegible]। [illegible] कर नये बिंब जावें तो भी [illegible] हैं।' '[illegible] नहीं है।' 'तो कार्यों के [illegible] है [illegible] है?'

इस प्रकार बत्तीस विहारों की प्रतिष्ठा का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)

(G) संग्रह में का कुमार पाल सम्बन्धी वृत्तान्त

88. श्री कुमार पाल भाव स्थिति (   ) में भ्रमण करता हुआ सिद्धपुर में गया। वहाँ शकुन जानने के लिए उसने किसी मरुभूमि निवासी से प्रार्थना की कि 'मेरा (भविष्य) क्या होगा ?' इस बात के लिए वे दोनों बाहर गये। इसके बाद जब देवी को बुलाया गया तो देवी ने आमलसारक में मुनिसुव्रत के चैत्य में दो स्वर, फिर कलश मे तीन और इसके बाद दण्ड में चार स्वर बना दिये। तब उस शाकुनिक ने कहा, 'जिन भक्त होने पर तुम्हें राज्यप्राप्ति होगी और अधिकाधिक उन्नति होगी।'

89. एक बार कुटुम्बी के घर पर कुमार पाल हल चलाने का काम कर रहा था। वह जब सिर पर···का बोझा लिये जा रहा था तो उसके सिर पर दुर्गा (श्याम चिरैया) ने स्वर किया। इस पर उसने शकुनज्ञ से पूछा। उसने कहा—'तुम्हें राज्य मिलेगा। पर तुम्हें संतान न होगी। क्योंकि युगन्धरी (जोंहरी) धान्य सब धान्यों में उत्कृष्ट है, इसलिए तो राज्य होगा, पर उसे तुम प्रभु के लिए ले जा रहे थे, इसलिए तुम्हें सन्तान न होगी।'

90. श्री कुमार पाल जब तपोधन वृत्ति से रह रहा था तो एक बार दरबार के समय श्री पत्तन के रास्ते पर जा रहा था। उस समय श्यामा चिरैया ने पूर्व की ओर बबूल वृक्ष पर बैठकर शब्द किया। इसके बाद बिल मे से निकले हुए सर्प के फण पर···मारवाड़ी से पूछा। उसने कहा—तीन दिन मे तुम्हे राज्य मिलेगा। पर तीन पहर तक विघ्न है। इसके बाद तीसरे पहर में मेघवृष्टि के समय साथी के···कुमार पाल जल बीच से निकल गया तो बारह आदमियों पर बिजली गिरी। इसके बाद तीसरे दिन राज्य हुआ।

91. एक दूसरी बार श्री जयसिंह देव मर गये। इसके बाद अट्ठारह दिन तक खडाऊँ ने राज्य किया। इसके बाद श्री हेमसूरि के बताये हुए दिन आते हुए कुमार पाल कड़ीग्राम के परद प्रासाद में सो गया। वहाँ घूमते घूमते चौकीदार आया। कुमार को चोर समझकर खूब पीटा और वस्त्र कम्बल आदि लेकर छोड़ दिया। प्रातःकाल उठकर पत्तन में अपने बहनोई नड्डुल कान्हड देव के घर गया। तब उसकी बहन ने वस्त्र आदि देकर उसे राज भवन में भेजा। उसके पहले राजा के तीन गृहीत पुत्रों को राज्य देकर फिर उठा लिया गया था। इन कुलक्षणों के कारण (ऐसा किया गया था)। उनमें से एक ने कहा, 'मैं सब को मार डालूंगा'। दूसरे ने कहा, 'जो आप लोग कहेंगे वही करूँगा।' तीसरा (सिंहासन पर) चादर के आँचल से आँसू पोंछता हुआ बैठा। इसी बीच कुमार पाल आया। कान्हड़ ने कहा, 'अच्छा किया जो इस समय आ गये। राज्य पर आप ही (अधिकार करेंगे)।' इस प्रकार निषेध करने पर भी कृष्णदेव (कान्हड़) ने राज्य दिया। इसके बाद 14 राजस्थान महाधर, 4 राउल, 72 मण्डलीक, 84 राणा और 360 सामन्तों के परिवारों को निकाल बाहर किया। इस कारण वे प्रधान नित्य ही कृष्णदेव के पास कहवा पठाते

कि तुमने क्या किया जो इसे राज्य दिया। उसने कहा कि 'मैं नही मारूँगा। तुम लोग मार डालो। मैंने एक उपाय करके राजा को उसके परिवार के साथ राजभवन मे बाहर निकाल दिया है।' उधर राजा (अपनी) दृष्टिकला से (कान्हड़ को ?) भगा हुआ देखकर पीछे लौट आया। महल के पास कान्हड़देव को मरवा डाला और सात सौ गदसंग राजपूतों के हाथ मे दीपिका देकर राजगोध्र ईयाक को सोते पकड़ लिया। एक रात मे ही सारे राज-समूह को वश में कर लिया और राज्य पर बैठा।

92. श्री कुमार पाल ने राज्य पाते ही कडीतल ग्राम के चौकीदार के पास तत्काल ही एक पालकी के साथ बुलावे का लेख भेजा। वह अत्यन्त विस्मित चित्त मे आया। राजा ने उसका सम्मान किया। इससे उसे और भी विस्मय हुआ। इसी बीच…उसने पृष्टि (पीठ ?) दिखलायी। वह कोड़े की मार देखकर उदास भाव से सोचने लगा कि यह मुझे विष देकर मारेगा। इसके बाद राजा ने भोजन के अवसर पर उसे राणा का पद दिया। इस बात से वह उदास होकर तेजोहीन हो गया। राजा बार-बार चरों से पूछता रहता कि 'क्या वह अब भी जीता है !' वह इस प्रकार चौराहे से निकलकर प्रतोली (ड्योढ़ी) के द्वार तक जाते-जाते मर गया। राजा ने कहा, 'आह ! अच्छा ढाढसवाला रहा !' सब लोगों ने पूछा, 'राजन्, यह क्या बात है, हम लोगों ने नही समझा।' इस पर राजा ने सारा वृत्तान्त कह दिया। (और बताया कि) 'इसीलिए मैंने मारने के लिए इसे महत्त्व दिया। जिससे मेरा महत्त्व बढ़े।'

93. एक बार कुमार पाल देव सात दिन से भूखा था। एक गेहूँ के खेत से कुछ बाल लेकर घड़ारी की …रात में ज्यों ही खाने बैठा त्यों ही हलवाहा लाठी उठाकर दौड़ा। परन्तु खेत के मालिक ने उसकी रक्षा की। राज्य मिलने पर (कुमारपाल ने) उस खेतवाले को एक ग्राम, जिसका नाम उसी ने 'कलिगीयक' रखा,…में दिया।

94. एक दूसरी बार श्री कुमार पाल तीन दिन तक भूखा घूमता रहा फिर किसी व्यवहारी के घर में घुस कर बैठ रहा। गृहपति को हिसाब पत्र सम्हालते-सम्हालते रात हो गयी। तब उसने सोचा, 'यदि इसने नही खाया है तो खिलाऊँगा।' इसके बाद पूछकर उसे अपनी प्रिय स्त्री के पास भेजा। उसने नही खिलाया। दूसरी ने प्रसन्नतापूर्वक खिलाया। राज्य मिलने के बाद राजा का एक थाल चुराकर चोरो ने बाजार में उसी सेठ के हाथ बेचा। इसके बाद राजा ने उस व्यवहारी को बुलाया। उसे पहचाना। राजा ने कहा, 'तुम्हारी दो स्त्रियाँ हैं।' उसने कहा, 'जी, हाँ।' राजा ने कहा, 'उन दोनों को बुलाओ। ताकि सपरिवार तुम को दण्ड दूँ।' कुटुम्ब के आने पर राजा ने उसे यह कहकर पुरस्कार दिया कि 'तुमने पहले मेरा उपकार किया है।'

95. प्राचीनकाल में श्री कुमारपाल क्षयाह के दिन पिण्डदान कर रहा था। इसी समय पितामह पिण्ड देने के अवसर पर द्वारभट्ट मयण साहार ने कहा कि,

'राजन्, राज-पितामह (उपाधिधारी) मल्लिकार्जुन को पितरों से मिला लो तो पिण्डदान करो।' यह सुनकर राजा ने पिल्ल को पीछे छोड़ दिया। राजा के बीड़ा देने पर जब सारा राज-मण्डल नीचे ताकने लगा तो अम्बड ने, वाहड़ के वारण करने पर भी बीड़ा उठा लिया। राजा ने सेना और राजागिरी देकर भेजा। लड़ाई छिड़ने पर सारी सेना नष्ट हो गयी। तब तो अम्बड कृष्णगुरुदर ( ) में काले वस्त्र पहनकर, कस्तूरी लेपकर, पत्तों के दोनों में भोजन करने लगा। दिन-रात में किसी को मुँह नहीं दिखाता। राजा को जब मालूम हुआ तो स्वयं आकर सम्मान देकर इस प्रकार बोला, 'मेरी मल्लिकार्जुन से जो लड़ाई छिड़ी है, उसमें तुम्हीं सेनापति बनो।' फिर दूसरे साल 44 हजार घोड़े, 3 लाख पैदल सेना दी। उसने प्रतिज्ञा की कि 'मल्लिकार्जुन को छोड़कर अन्य किसी पर मैं प्रहार नहीं करूँगा।' और शीघ्र ही उसे घेर लिया। युद्ध आरम्भ होने पर अपने पैर को शत्रु के हाथी के दाँत पर रखकर उस पर चढ गया और कोंकण-नरेश (मल्लिकार्जुन) को मार डाला। कोंकण पर अधिकार कर लिया। 18 मोट मोती, संयोगसिद्धि सिप्रा ( ), दो सहस्र किरण वाले ताडंक, अग्निपखालु पछेवडउ, शृंगार कोडी साड़ी, सेडउ पट्टहस्ती, तीन लटवाला अट्ठारह हजार मोतियों का हार, शिव का मरकत का बना हुआ 44 अंगुल का लिंग,—ये सब चीजें ले आकर राजा के चरणों की (मल्लिकार्जुन) के सिर के साथ पूजा की। इसी समय द्वार पर के भाट ने कहा···

96. श्री अम्बड भी रणांगण मे गिरकर बोला—'देवबुद्धि से मेरे लिए एक जिनेन्द्र ही है, गुरु श्री हेम सूरि ही है और स्वामी श्री कुमार पाल ही हैं।' तब किसी कवि ने इस प्रकार कहा, 'वरं भट्टैर्भाव्यम्' इत्यादि।

97. एक बार श्री कुमारपाल ने पृथ्वी को ऋणमुक्त करने के लिए गुरु से सुवर्णसिद्धि का उपाय पूछा। गुरु ने कहा, 'मेरे गुरु जानते है, मै नही।' इस प्रकार प्रबन्ध समझना चाहिए।

98. एक बार श्री कुमारपाल ने अपने और जयसिंहदेव में भेद पूछा। सभ्यों ने कहा, 'श्री सिद्धराज में 98 गुण थे, दो दोष। आप में दो गुण है, अट्ठानवे दोष। आप पराक्रमी और कृतज्ञ है, किन्तु श्री सिद्धराज मत्सरी थे और उनका रोष दीर्घकाल वह बना रहता था।

99. श्री संघ की यात्रा के अवसर पर रैवत गिरि के ऊपर जब छत्रशिला काँपने लगी तो राजा के पूछने पर गुरु ने बताया कि 'यदि बत्तीस लक्षणों से सम्पन्न दो पुरुष शिला के नीचे जाएँगे तो शिला गिर पड़ेगी, इसलिए हम नये रास्ते से देव को नमस्कार करेंगे।' ऐसा कहने पर आम्बाक ने नया रास्ता बनवा दिया।

100. इसके बाद महापूजा के अवसर पर जब महाभोग दिया जा रहा था तो धूप के धूएँ में प्रभु ने श्री सोमनाथ को प्रत्यक्ष किया। देव का आदेश पाकर तभी से, कुमारपाल मज्जा जैन ( ) हो गया।

101. इसके बाद श्री देवेन्द्रसूरि ने श्री सेरीसक तीर्थ निर्माण किया और आकर्षण विद्या के प्रभाव से कान्ती से कई महाबिम्ब आनयन किये। मन में यह चिन्ता हुई कि श्री पत्तन और सेरीसक को एक ही बना दें। इसी बीच गाजणपति राजा के ऊपर चढ़ाई करने की तैयारी करके कुमारपाल भी प्रभु के साथ वहीं आ गया। पहले श्रीदेव-चरणों को नमस्कार करके उसने श्री देवसूरि को नमस्कार किया। श्री देवसूरि ने कहा, 'राजन्, वर्षा ऋतु में चढ़ाई कैसी?' राजा ने कहा, 'इस समय बिना छल के गाजणपति नही मारा जायगा।' सूरि ने कहा, 'सो क्या! आपके गुरु में इतनी-सी भी शक्ति नही है?' राजा चुप हो रहा। तब उन्होंने कहा, 'सेना को आज यहीं रहने दो। मैं गाजणपति को ले आता हूँ।' रात को सूरि ने आकर्षण विधा से देवपूजा करते हुए गाजणपति को खीच लिया। (दोनों में) परस्पर मैत्री हुई। अक्षर लिखकर सन्धिपत्र लिखे गये।

102. अन्तिम समय में राजा को देखकर श्री हेमाचार्य ने गद्गद् भाव से कहा, 'मेरे और आपके बीच छः महीने का ही अन्तर है।' इसके बाद प्रभु के अवसान के अनन्तर रामचन्द्र ने श्री संघ के सामने पढ़ा—'महि वीढह सचराचरह' इत्यादि।

103. इसके बाद 6 मास के अनन्तर श्री कुमारपाल ने भूमि पर युक्त होकर श्री वीतराग के बिम्ब को देखकर इस प्रकार कहा, 'सावय घरं.' इत्यादि। इसी बीच उसने मल्लिकार्जुन के घर से लायी हुई संयोगसिद्धि सिप्रा जलपान के लिए माँगी। अजयपालदेव के कहने से रक्षकों ने उसे नही दिया। तब चारण ने कहा—

"कुयरड कुमर विहार." इत्यादि।

27. अजयपाल प्रबन्ध (P)

104. इसके बाद अजयपाल के द्वारा जब प्रासाद गिराये जाने लगे और (संघ ने) यह सुना कि प्रातःकाल वह सन्नद्ध होकर तारण दुर्ग पर जायगा तो वसाह आभड़—प्रमुख समस्त संघ ने सोचा कि 'देखो, श्री कुमारपालदेव ने प्रासाद बनवाये और उस दुरात्मा ने गिरा दिये। कोई यह नही जानेगा कि राजा श्रावक हुआ भी था या नहीं। अगर तारण दुर्ग प्रासाद की रक्षा की जा सके तो अच्छा हो। सीलणाग कुतिनियो के बिना दूसरा कोई उपाय नही है। उसी के घर चलो। (ऐसा सोचकर) वे वहाँ गये। उसने संघ की अभ्यर्थना की और हाथ जोड़कर कहा, 'मेरे ऊपर बड़ी कृपा हुई। क्या किया जाय?' 'भला तुम जानते हो कि

पूर्वनृप ने प्रासाद बनवाये थे, यह गिरा रहा है। एक तारण दुर्ग बच रहा है, वह भी प्रात.काल गिरेगा। यदि तुम रक्षा कर सको तो (हो !), दूसरा कोई उपाय नही है।' उसने कहा, 'यह आप लोगों की गलती है। पहले ही अगर मुझे बताया गया होता तो एक भी नही गिरने पाता।' 'जो हो गया, सो हो गया। तुम अगर इस एक की रक्षा कर सको तो (समझें) सबकी रक्षा हुई।' उसने संघ का सत्कार करके विसर्जन किया और (स्वयं) वह राजा के पास गया। (बोला—) 'महाराज ! विदा लेकर जा रहा हूँ।' 'अजी, कहाँ जा रहे हो ?' 'महाराज, हम तो जो उपराजते है वह खाते है। सबकुछ खा गया। किसी रायन ( ) मे जाकर तुम्हारे नाम से धन लेकर फिर आऊँगा।' राजा ने कहा, 'यदि पत्तन को छोड़कर तुम अन्यत्र जाओगे तो मैं लज्जित हूँगा। अवसर दूँगा।'

'महाराज, अवसर हो या (नही तो) मैं जाऊँ।' 'अच्छा, तो तैयारी करके सायकाल के बाद आना।' राजा ने सब किसी को बुलाया। देखना शुरू हुआ। इधर सीलण ने ईंटें ले आकर निखायी। मिट्टी के'''रंगस्थल मे आये। और पानी भी (आया)। थवई बुलाया गया। प्रासाद बनाओ। उसने बनाया। एक देवता का स्थान बनाओ। उसने (वह भी) किया। ध्वजारोपण करके बोला, 'महाराज, हाथी तक लक्ष्मी (की सीमा है) और ध्वज तक धर्म (की)। मैं इसे निर्माण करके कृतकृत्य हुआ। अब शयन करूँगा। ऐसा कहकर मुख पर वस्त्र रखकर सो गया। इसके बाद (उसके) लड़के ने आकर देवमन्दिर गिरा दिया। सीलण वस्त्र छोड़कर उठके बोला, 'अरे, किसने यह गिराया है ?' 'आपके जेठे लड़के ने।' सीलण ने उसे थप्पड़ से मारा, 'अरे, तू इस राजा से भी हीन है। इस नृपति ने तो पिता के मरने पर उसकी कीर्तियाँ गिरायी। तूने मेरे जीते ही जी गिरा दी। मेरी मृत्यु की भी प्रतीक्षा नही की।' यह सुनकर राजा की आँखों से आँसू गिरने लगे। (बोला) 'सीलण, क्या कहते हो ?' 'महाराज, विचार कीजिए, यह सच है या झूठ ! गृहस्थ इसलिए कीर्ति बनवाता है कि जब मेरा कोई होगा तो इसकी रक्षा करेगा। आपने जो गिराये सो गिराये, बाकी को रहने दीजिए। एक ही जो बचा है, वह आपके नाम से ही हो। यम-करण (मन्दिर गिराना) रोक दीजिए।' ऐसा करने पर चार प्रासाद बनाये।

इस प्रकार तारणगढ के प्रासाद की रक्षा का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

105. इसके उपरान्त राज्य होने के तीसरे वर्ष पर्यूषण पर्व के उपलक्ष्य में धाग पाद्रीम प्रासाद में श्रावक एकत्र हुए। आभड़ वसाह ने कहा, 'समय देखिए, जहाँ सहस्र तपोधन थे, वहाँ आज एक भी नही है जो मुँह से विरोध भी करे। किसी ने ऐसे आदमी को पत्तन मे देखा सुना है ?' एक ने कान में कहा कि 'राजपुत्रवाटक मे घरिणग नामक सेठ है। उसके गुरु है जो जंघाबल से क्षीण हो गये हैं (चल-फिर नही सकते)। उनको उसने गुप्त रूप से रखा है।' बाद को वसाह उसके घर गया।

उसने उठकर स्वागत किया। 'पधारिए। आज सावत्सरिक पर्व में तपोधनों (का समागम हुआ है)'····'कहाँ है वे तपोधन?' उसने भूमि (के भीतर बने हुए) घर में ले जाकर गुरु को दिखाया। वसाह उनके चरणों पर गिरके रोने लगा··· 'भगवन्, ऐसा कोई नहीं है जो इस दुरात्मा राजा को सीख दे।' गुरु ने कहा, '(मुझमे) शक्ति तो है पर सन्निध्यकर्त्ता कोई दिखायी देता है?' वसाह उसी सेठ को शिक्षा देकर चला गया। गुरु जपने लगे। इसके तीसरे दिन···हुई। क्योंकि धांगा और वइजिलक नाम की दो पदाति हैं। उनकी माता (का नाम) है सुहाग देवी। वे व्यभिचारिणी हैं। राजा ने उन्हें ले आकर अन्धकार मे रखा है।··· वइजलिक पीकर आया। राजा दिल्लगी शुरू होने पर बोला, 'स्वच्छन्द भाव से कुछ माँगो।' उसने कहा, 'महाराज! इस समय दरबार के योग्य (कुछ) दीजिए। राजा ने कहा, 'उपवरिका में जाओ। पर मुँह न देखना।' वह वहाँ गया। इसके बाद पीछे से दीप-कर आया। उसने अपनी माँ को देखा, माँ ने पुत्र को। परस्पर लज्जित हुए। वइजिलक ने धागा के आगे कहा, 'राजा ने ऐसी हँसी की है, मैं अब मरूँगा।' उसने आक्षेप के साथ कहा 'मारूँगा नही कहता, मरूँगा कहता है?' 'इसे हम दोनों मारेंगे।' ऐसा निश्चय करके ठहरे। राजा राजपाटी में निकल के आया। सायंकाल का समय था। पालकी में बैठकर चलता हुआ अँधेरे में ड्योढ़ी में प्रवेश करने लगा। इसी समय वइजिलक जो धांगा के साथ स्थित था, दरवाजे के पास से निकला। दोनों ने मिलकर राजा को मार डाला। हल्ला होने पर वइजिलक भाग निकला, धांगा मारा गया। राजा वही गिर गया। आदमी दशो दिशा में (हत्यारे को पकड़ने के लिए) चले गये। इधर राजा को जब होश हुआ तो उसे प्यास जान पड़ी। कराहता हुआ ड्योढ़ी के समीपस्थ जुलाहे के घर में प्रविष्ट हुआ। एक गढ़े में मुँह लगाया तब तक जुलाहे ने कुत्ता समझकर डण्डा फेंक मारा। उसका सिर फट गया। उस समय बोला—

126. न तो धांगा का दोष है, न वइजिलक का और न सामन्तों का। जिसने मुनिवर को सन्ताप दिया, उसके कर्म का यही फल है।

यह कहकर पीड़ा से मरकर 'श्वम्' (   ) को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार अजयपाल प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रहगत अजयपाल वृत्तान्त

106. श्री अजयपाल ने श्री कपर्दी मन्त्री को अमात्य होने के लिए अनुरोध किया। मन्त्री ने कहा, 'सोचकर महाराज की आज्ञा का पालन करूँगा।' यह कहकर वह जब घर जा रहा था तो ईशान दिशा मे बायी ओर बैल के पाँच स्वर हुए। मन्त्री ने यह बात मारुयक (मारवाडी) शकुनज्ञ से कही। उसने बताया कि (यह शकुन) अच्छा नही है। क्योंकि यह बैल शिव का वाहन है। इसके बाद शिव का धर्म ही विजयी होगा। इसके बाद उसने अमात्य-पद ग्रहण नहीं किया। राजा ने गिरफ्तार किया। वही पर स्थित रामचन्द्र ने कहा, 'जो करिवराण' इत्यादि।

107. श्री हेमचन्द्र, के दो शिष्य थे, रामचन्द्र, और बालचन्द्र, । गुरु ने सुशिष्य जानकर रामचन्द्र को विशेष विद्याएँ दी थीं। मान भी दिया था। इसी कोप से बालचन्द्र निकल पड़ा और उसकी अजयपाल के साथ मित्रता हो गयी। राज्य प्राप्त होने पर अजयपाल ने रामचन्द्र से कहा, 'हेमचन्द्रसूरि की सारी विद्याएँ मेरे मित्र बालचन्द्र को दो।' उसने कहा, 'गुरु की विद्या कुपुत्र को नहीं दी जाती।' राजा ने कहा, 'तो आग में···वह जीभ काटकर बैठते हुए उसने बोधक पंचशती की रचना की।

28. धर्म-स्थिरता के सम्बन्ध में सज्जन दण्डपति का प्रबन्ध (B)

108. इसके बाद सज्जन दण्डपति का प्रबन्ध (इस प्रकार है)—श्रीपत्तन में ग्रथिल भीमदेव राज्य करता था। उसने सहस्रकला नामक वेश्या को अन्तःपुर में रक्खा। वह सारा राज-काज करती थी। सज्जन नामक श्रीमाल-जातीय मज्जा जैन दण्डपति राज्य का अधिकारी (दीवान) था। वह बिना देव की पूजा किये नहीं खाता था, और न परिक्रमा किये बिना सोता था। एक बार पतन पर तुरुष्कों (तुर्कों=मुसलमानों) की सेना चढ़ आयी। सज्जन दण्डपति ने बनास नदी के तीर पर जहाँ गाडर नामक अरघट्ट (घाट) है, रणक्षेत्र सज्जित किया। देवी सहस्रकला भी स्वयं सेना लेकर सज्जन दण्डपति के साथ मैदान में आयी। उसके साथ 24 हजार घोड़े और 32 हजार मनुष्य थे। (सज्जन ने) प्रातःकाल युद्ध होना निश्चित किया। रात में सशस्त्र जागरण किया। वीरों को सनाह (जिरह-बख्तर) समर्पण किये। 18 हाथी और सारे घोड़े सज्जित किये। लगामें पकड़वा दीं। इसके बाद देवी ने सज्जन को सेनानायक के पद पर अभिषिक्त किया। वह भी सनाह धारण करके रात्रि के अन्तिम प्रहर में हाथी पर आरूढ़ हुआ। चारों ओर से सन्नद्ध वीरों से वह घिरा था। इसके बाद मन्त्री ने हाथी पर स्थापनाचार्य को रखकर परिक्रमण किया। पार्श्ववर्त्तियों ने सोचा— 'इससे क्या युद्ध होगा!' उसने सामयिक कृत्य किया। दोनों पक्ष के रण रसोत्सुक वीर आ डटे। भारी युद्ध हुआ सज्जन दण्डपति ने स्वयं उत्थापनिका की। उसके शरीर में दस आघात लगे। किन्तु सेना तितर-बितर हो गयी। लड़ाई समाप्त हुई। देवी स्वयं आकर अपने दुकूल के आँचल से सज्जन का शरीर पोंछकर गुप्तोदर (   ) में ले गयी। इसके

पार्श्ववर्तियों ने कहा, 'देवि, दण्डपति की बात ही कुछ अपूर्व है। रात के अन्तिम पहर में एकेन्द्रिया (द्वीन्द्रिया)' इस प्रकार कह रहा था। प्रात.काल ऐसी लड़ाई लड़ी जैसी किसी ने नही की थी। देवी ने पूछा, 'दण्डपति, क्या बात है ?' 'देवि, रात में अपना काम किया, प्रात:काल आपका। शरीर तो आपका है, उसने जो कुछ किया वह आपका कार्य है। मेरा···वह मेरा है।' इस प्रकार मुसलमानो को जीतकर देवी पत्तन पहुँची। मन्त्री भी शरीर से स्वस्थ हुआ।

इस प्रकार धर्म स्थिरता में सज्जन दण्डपति का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

29. मन्त्री यशोवीर का प्रबन्ध

109. श्री जावालिपुर में श्री समरसिंह राजा का पुत्र था श्री उदयसिंह। उसका मन्त्री था दुसाज, उसका लड़का यशोवीर था। यशोवीर की स्त्री का नाम सुहागदेवी और पुत्र का कर्म्मसिंह था। एक बार संडेश्वर गच्छोद्भव श्री ईश्वरसूरि ने कहा, 'हे मन्त्री, तुम्हारे नगर मे धारागिरिवाटिका है। उस वाटिका मे आज के सोलहवें दिन दोपहर को जो ब्राह्मण आये, उसे देखते ही तुम कहना कि 'पधारिए'। इस समय समय हो गया है, सीतोदान ( ) कीजिए। उसे दही-बाड़े खिलाना और शाक मे नीबू खिलाना। फिर वासन में 1 हजार द्रम्म (3000 ?) रखकर एक तिनपट्टी चादर देना। उसकी खूब अच्छी तरह देखभाल करना।' मन्त्री उस सामग्री को तैयार कर वाटिका में गया और खेलने लगा। इसके बाद नागड नामक भट्टपुत्र तीन दिन भूखा रहने के बाद यह सोचकर कि 'आज यशोवीर हमारा चिन्तित भोजन देगा या उसे वन्दी करूँगा।' मन्त्री को वाटिका मे प्रविष्ट समझकर वहाँ गया। मन्त्री ने देखते ही कहा, 'शीघ्र आकर भोजन कीजिए।' भोजन देखकर वह मुस्य हुआ। मुँह धोकर खाने बैठा। बाद को मन्त्री ने वस्त्र और द्रम्म दिखाये। उसने कहा, 'मन्त्री, तुमने मेरे अभिप्राय को कैसे समझा ? आज मेरे मन में ऐसा विचार आया था कि या तो तुम इन सब चीजो को दोगे या तुम्हे मारूँगा।' मन्त्री ने कहा, 'इसमें जानना क्या है ?' नागड ने कहा, 'मन्त्री, मैं किस प्रकार आपका (प्रति) उपकार कर सकता हूँ ? फिर भी दैव मुझे कुछ देगा, तुम अपने को जना दो।' ऐसा कहकर वह चल गया। कालक्रम से नागड़ श्रीपत्तन मे श्री वीसलदेव राजा अभिषिक्त हुआ। बाद को राउल उदयसिंह का राजादेश वीसल (मूसल ?) देव के प्रति इस प्रकार आया कि 'कंकिडिक (कौड़ीकर ?) दो।' उसने नागड़ से इस झगड़े को कहा। राजा ने रुष्ट होकर ससैन्य

110. मन्त्री यशोवीर ने स्वर्णगिरि तलहटी में 'चन्दनवसही' नामक स्थान में श्री वीर का बिम्ब बनवाया और प्रतिष्ठापित किया। इस पर श्री जयमंगलसूरि ने कहा—

130. हे यशोवीर ! प्रतिष्ठा (इज्जत) के द्वारा जो धन तुमने कमाया उसके लाख गुना यश, वीर की प्रतिष्ठा से पाया।

इसके बाद आलंकारिक श्री माणिक्यसूरि ने कहा—

131. हे यशोवीर, विधि जब तक चन्द्रमा में तुम्हारा नाम नहीं लिखता तब तक भुवन में (तुम्हारे नाम के) आदि दोनों अक्षर भी (य श) नहीं माप सकता।

111. इसके बाद एक दिन गुजरात को हराकर तुर्क लौट रहे थे। सुन्दरि सरित् का जल-पान करके सिराणा गाँव में डेरा डाले थे। वहाँ राउल ने युद्ध करके उन्हें भगा दिया। 'अड्वुक' नामक उनका प्रधान मालिक मारा गया। तब चारण ने कहा—

132.

इसके बाद अपने पराभव को न सहता हुआ जलालदीन सुरत्राण (सुलतान) सं. 1310 के माघमास की पंचमी को स्वयं आकर स्वर्णगिरि पर्वत के शिखर पर पड़ाव डालकर ठहरा। प्रतिदिन'''होने से सुरंग के द्वारा खंडि (किला) गिराने लगा। घर में कंकड़ गिरा। उसके भीतर रहनेवाली सेना के सिपाही भीतर चावल पका रहे थे। बटुली के उछाल से उन्होंने यह बात जान ली। स्वामी के आगे निवेदन किया। राउल ने वापड नामक राजपूत को सन्धि करने के लिए नियुक्त किया। उसने सुलतान को नमस्कार करके कहा, "महाराज, दण्ड दीजिए।" सुलतान ने एक लाख द्रम्म मांगे। वापड़ ने कहा, 'हम लोग द्रम्म नहीं जानते। पारूथक ( ) देंगे !' मुसाहिबों ने कहा, 'महाराज, मान लीजिए।' सुलतान ने मान लिया। उसने कहा, 'महाराज, आप प्रसन्न हों, हाथ दें।' उसने हाथ दिया। इधर संवाददाता ने आकर कहा, 'महाराज, सुरंग गिरा दिये गये।' सुलतान ने कहा, 'तुम्हारी बुद्धि श्रेष्ठ है, भय मत करो। दण्ड ले आओ।' इसके बाद राउल ने कहा, 'मेरे पाँच पुत्र हैं, किसे लेंगे ?' सुलतान ने कहा, 'यशोवीर के पुत्र को दो।' राउल ने मन्त्री की पत्नी से प्रार्थना की। उसने अपने एक पुत्र को दे दिया। सेना उठी। इसके बाद देव-द्विजों का सर्वस्व दे दिया। दण्ड द्वारा उद्धरित धन से उस (सुलतान) ने स्वर्णगिरि पर एक दुर्ग बनवा दिया। राउल ने यशोवीर के पुत्र कर्मसिंह को उसके घर लौट आने पर उपहार में रामशयन ( ) दिया।

इस प्रकार राउल उदयसिंह और मन्त्री यशोवीर का प्रबन्ध (समाप्त हुआ।)

(G) संग्रह में यशोवीर का उल्लेख है। जैसे—

133.

नागड़ मन्त्री को भेजा। सेना सुन्दरसर के किनारे ठहरी। लड़ाई छिड़ी। टंकशाला (टकसाल) गिरने लगी। 6 मास के अन्त में दण्ड देने की अवधि बताकर म···को गया। उदयसिंह ने भी वैसा ही कहा। नागड़ राजा के सामने प्रतिज्ञा करके जावालिपुर को लेने के लिए भारी सेना साजकर चला। क्रमशः स्वर्णगिरि (किले) के पिछवाड़े वाघरा···सेना को ठहराया। ऊपर से राउल ने सबकुछ देखकर यशोवीर से कहा, 'मन्त्री, सर्वस्व देकर भी नागड़ को पीछे फिरा दो। जीते रहने पर सब होगा।' मन्त्री मध्याह्न समय को भव्य (निपटारे) के लिए चला। इधर ड्योढ़ी के सामने ही खेजड़ी (   ) वृक्ष के नीचे गोगामठ में एक चारण था उसने मन्त्री के प्रति ...

127. (दूसा-सोरठा)

मन्त्री ने सोचा—लौटकर इसका कान उखाड़ लूँगा। ··· गया। राणा को प्रतीहार ने विज्ञापित किया—'महाराज, मारुक (मरुदेशीय) राजा राउल का प्रधान आया है।' 'भीतर ले आओ।' इसके बाद मन्त्री प्रणाम करके बैठ गया। राणा ने कहा, 'मन्त्री, तुम्हारा ठाकुर इतने दिनों तक तो विरूप वक्ता (कटु-भाषी, विरुद्ध बोलनेवाला) था, इस समय मेरे आने पर क्या करता है?' 'महाराज, पहुनाई (आतिथ्य) के लिए तैयार बैठा है। शीघ्र चलिए।' 'मन्त्री, मैं नागड़ हूँ, यदि दुर्ग को अलग-अलग तोड़े बिना न आ सकूँ?' मन्त्री ने कहा, '(तो भी) शीघ्र आइए।' यह कहकर मन्त्री निकलकर चला गया। राणक ने पूछा, 'अरे, यह मन्त्री कौन है?' 'महाराज, यशोवीर।' 'तो शीघ्र बुलाओ।' मन्त्री बुलाया गया। राणा ने कहा, 'मन्त्री, मुझे पहचानते हो?' 'महाराज, आपको कौन नहीं जानता?' राणा बोला, 'तुमने जिसे अमुक वर्ष मे बागीचे में कूट करम्ब (   ) खिलाया था! उसे पहचानते हो?' 'महाराज, (क्यों) नहीं पहचानता!' 'मन्त्री, मैं वही हूँ? उस उपकार के लिए तुम एक वक्त भव्य पाओगे। मैं लोहटिक के बिना ही (   ) जाऊँगा। यही तुम्हारा मान है। पर अपने स्वामी को हमारे विरुद्ध बोलते समय निवारण करना।' मन्त्री को (पोशाक) पहनाया (जाकर सम्मानित किया गया)। मन्त्री ने कहा, 'यदि यह बात है, तो अभी पयान करो, ताकि मेरा स्वामी विश्वास करे।' उस समय प्रयाण करके सेना पीछे लौट गयी। मन्त्री चारण के प्रति ईर्ष्या त्याग करता हुआ जब वही आया तब उसने वहीं से कहा—

128.

मन्त्री ने जो पोशाक पाया था उसे वही देकर नगर मे प्रविष्ट हुआ। राउल ने उसे भूषित किया।

129.

110. मन्त्री यशोवीर ने स्वर्णगिरि तलहटी में 'चन्दनवसही' नामक स्थान में श्री वीर का बिम्ब बनवाया और प्रतिष्ठापित किया। इस पर श्री जयमंगलसूरि ने कहा—

130. हे यशोवीर! प्रतिष्ठा (इज्जत) के द्वारा जो धन तुमने कमाया उसके लाख गुना यश, वीर की प्रतिष्ठा से पाया।

इसके बाद आलंकारिक श्री माणिक्यसूरि ने कहा—

131. हे यशोवीर, विधि जब तक चन्द्रमा में तुम्हारा नाम नहीं लिखता तब तक भुवन में (तुम्हारे नाम के) आदि दोनों अक्षर भी (य श) नहीं माप सकता।

111. इसके बाद एक दिन गुजरात को हराकर तुर्क लौट रहे थे। सुन्दरि सरित् का जल-पान करके सिराणा गाँव में डेरा डाले थे। वहाँ राउल ने युद्ध करके उन्हें भगा दिया। 'अड्वुक' नामक उनका प्रधान मालिक मारा गया। तब चारण ने कहा—

132.

इसके बाद अपने पराभव को न सहता हुआ जलालदीन सुरत्राण (सुलतान) सं. 1310 के माघमास की पंचमी को स्वयं आकर स्वर्णगिरि पर्वत के शिखर पर पड़ाव डालकर ठहरा। प्रतिदिन'''होने से सुरंग के द्वारा खंडि (किला) गिराने लगा। घर में कंकड़ गिरा। उसके भीतर रहनेवाली सेना के सिपाही भीतर चावल पका रहे थे। बटुली के उछाल से उन्होंने यह बात जान ली। स्वामी के आगे निवेदन किया। राउल ने बापड़ नामक राजपूत को सन्धि करने के लिए नियुक्त किया। उसने सुलतान को नमस्कार करके कहा, "महाराज, दण्ड दीजिए।" सुलतान ने एक लाख द्रम्म मांगे। बापड़ ने कहा, 'हम लोग द्रम्म नहीं जानते। पारुथक (   ) देंगे'' मुसाहिबों ने कहा, 'महाराज, मान लीजिए।' सुलतान ने मान लिया। उसने कहा, 'महाराज, आप प्रसन्न हों, हाथ दें।' उसने हाथ दिया। इधर संवाददाता ने आकर कहा, 'महाराज, सुरंग गिरा दिये गये।' सुलतान ने कहा, 'तुम्हारी बुद्धि श्रेष्ठ है, भय मत करो। दण्ड ले आओ।' इसके बाद राउल ने कहा, 'मेरे पाँच पुत्र है, किसे लेंगे?' सुलतान ने कहा, 'यशोवीर के पुत्र को दो।' राउल ने मन्त्री की पत्नी से प्रार्थना की। उसने अपने एक पुत्र को दे दिया। सेना उठी। इसके बाद देव-द्विजों का सर्वस्व दे दिया। दण्ड द्वारा उद्धरित धन से उस (सुलतान) ने स्वर्णगिरि पर एक दुर्ग बनवा दिया। राउल ने यशोवीर के पुत्र कर्मसिंह को उसके घर लौट आने पर उपहार में रामशयन (   ) दिया।

इस प्रकार राउल उदयसिंह और मन्त्री यशोवीर का प्रबन्ध (समाप्त हुआ।)

(G) संग्रह में यशोवीर का उल्लेख है। जैसे—

133.

चारणदान न देनेवाले मन्त्री के सामने एक चारण ने पढ़ा। (मन्त्री ने) उसे घोड़ा दे दिया।

134. 'हे यशोवीर, सज्जन लोग चारों ओर तुम्हारे यश की स्तुति कर रहे हैं। इसीलिये, हम जानते हैं कि, सज्जनों से लज्जित होकर तुम कोण (1. गाँव, 2. कोना) में प्रवेश करके स्थित हो।'

मन्त्री यशोवीर ने इस प्रकार पढ़नेवाले भाट को कोण ग्राम का कर दान किया।

30. विमल वसति का प्रबन्ध (B)

112. इसके बाद विमल वसति का प्रबन्ध—

'135. श्री विक्रमादित्य राजा के बाद 108 वर्ष बीतने पर श्री विमलदेव के द्वारा अर्वुद शिखर पर प्रतिष्ठापित श्री आदिदेव की वन्दना करता हूँ।

136. श्री भीमदेव राजा की सेवा को न मानकर (अस्वीकार कर) वह बन्धुराज (विमलदेव) धारा के राजा भोज के पास गया; क्योंकि विपत्ति में अपने वंश की सेवा ही योग्य है।

137. प्रणतजनों के विघ्न, आधि-व्याधि आदि को माता की भाँति नष्ट करनेवाली श्री पुजराज की पुत्री श्री माता तुम लोगों का कल्याण करें।

138. मेरु से, जो मनुष्यो को दुर्लभ है, क्या लाभ ? जिस हिमालय की एकमात्र सम्पत्ति वर्फ है, उसी से क्या लाभ ? सर्व-संकुल मलय पर्वत ही किस काम का है ? नंदिवर्धन के समान पर्वत नही है।

139. अपने घरो पर स्थित राजाओं को भी जो चीज जल्दी नही मिलती, वह चीज इस नदिवर्धन पर्वत पर रहनेवाले शवरों को खेल ही खेल में मिल जाती है।

113. श्री मातादेवी की अम्बा के साथ दैवयोग से मैत्री हो गयी। अम्बा गिरनार (पर्वत) की अधिष्ठात्री देवी हैं। बीच-बीच में प्रीतिवश वह अर्वुद पर्वत पर आती। किन्तु श्री माता एक जैन व्यन्तर (पिशाच) के भय से वहाँ नही जाती थी। एक बार श्री माता ने कहा, 'बहन, यहीं यदि रहो तो हमारी प्रीति निरन्तर बनी रहे।' अम्बा ने कहा, 'जिन भुवन के बिना स्थान नहीं, और वह यहाँ है ही नही।' श्री माता ने कहा, 'मैं द्रव्य सहित भूमि दूँगी। तुम जिन-मन्दिर बनाना। यहाँ बकुल (मौलसिरी) और चम्पे के वृक्ष हैं, उनके नीचे 27 लाख द्रम्मों की निधि है।' अम्बा ने सोचा—'मन्दिर बनायेगा कौन?' इधर धन्धू

परमार श्री भीमदेव के साथ विरोध होने से चन्द्रावती को छोड़कर धारापुरी को जा रहा था। बाद को राजा ने 12 हजार घोड़ों के साथ विमल दण्डनायक को छत्र देकर चन्द्रावती में भेजा।

140. प्राग्वाट वंश का भूषण 'विमल' नामक प्रधान रत्न हुआ, जिसके तेज से कुकाल-रूप अन्धकार में मग्न धर्म भी सहसा आविर्भूत हुआ।

इसके बाद देवी अम्बा प्रासाद (बनवाने) के लिए प्रत्यक्ष होकर विमल दण्डपति से बोली।

141. कहते हैं कि एक दिन अम्बा ने रात मे आकर उस दण्डनायक को आदेश किया कि'···तुम इस पर्वत पर युगादिदेव का सुन्दर मन्दिर बनाओ।'

दण्डपति ने कहा, 'भूमि कहाँ है'? देवी ने कहा, 'श्री माता ने दी है' दण्ड-नायक ने ऊपर जाकर स्थान निश्चित किया। कुंकुम, गोमय आदि से (उपलेय कराया···)···और दिव्य पुष्पदर्शन से भी। पहले धारा मे धन्धू परमार के पास (यह कहलवाकर) आदमी भेजा कि 'अगर आप अनुमति दें तो जैन प्रासाद बनवाऊँ। आप लोगों के साथ सन्धि करूँगा, फिर यह ले आऊँगा।' उसने कहला भेजा कि 'हमारी इसमें सम्मति है।' इधर देवी स्थान दिखाकर रैवत पर चली गयी। यहाँ दिन भर में जितना काम होता था, रात में उतना गिर जाया करता था। काम रुक गया। वहाँ शुभ मुहूर्त्त में प्रासाद बनना आरम्भ हुआ। 6 महीने के बाद देवी आयी। प्रासाद का बनना रुका देखकर बोली, 'क्या बात है जी?' उसने कहा, 'देवी तो अन्यत्र पधार गयी, यह बने कैसे?' देवी ने कहा, "इस देवालय में वालीनाह (   ) है। यह भूमि उसी की है। इसीलिए वह गिरा देता है। प्रातःकाल उपवास करके पूजोपचार लेकर उसका ध्यान करना और उसके आगे बैठना। वह प्रकट होगा। मद्य-मांस माँगेगा। तुम नैवेद्य देकर मनाना। यदि न माने तो तलवार खींचकर कहना—'चले जाओ, नहीं तो मार डालूंगा'। मैं खड्ग में उतरूँगी।" ऐसा किये जाने पर वह···करके नष्ट हो गया। उस देवालय में (विमलदेव ने) क्षेत्रपाल की स्थापना की। उसी के बगल में अम्बा का देवालय बनाया। दण्डनायक के देवतावसर में श्री पार्श्वनाथ का बिम्ब था। इससे उसने युगादिदेव का मन्दिर (ही) बनाया। चार गच्छों के चार आचार्यों ने प्रतिष्ठा करायी। पहले पत्थर का बिम्ब और बाद को तराजू में तौलकर 13 भार पीतल का। पहले ठक्कुर के गृहीत लहर के पुत्र मन्त्री नेढ ने दीक्षा ग्रहण की। श्री भीम ने विमल को गज और छत्र देकर राजा बनाया। उसके पुत्र चाहिल ने रंग मण्डप बनवाया। इस प्रकार प्रासाद बन जाने पर किसी चारण ने कहा—

142.

31. लूणिग वसही प्रबन्ध (P, BR)

114. धवलकपुर में आसराज नामक मन्त्री था। उसकी पत्नी का नाम था कुमार देवी। चार पुत्र थे—1. मन्त्री लूणिग 2. मालदे, 3. वास्तुपाल, और 4. तेजपाल नाम वाले। पर थे निर्धन। एक बार लूणिग बीमार हुआ। अन्तिम अवस्था में वास्तुपाल ने कहा, 'भाई, कुछ द्रव्य-व्यय (दानादि के लिये) कह जाओ।' उसने कहा, 'तीन लाख नवकार गुनना। और कुछ दिखाई पड़ता तो कहता।' 'तो भी कुछ कह जाओ।' लूणिग ने कहा, 'इसमे तो कोई बाधा नही है पर मैं (एक बार) अर्वुद पर्वत पर देव को नमस्कार करने गया था, उस समय मेरा मनोरथ हुआ था कि इस विमल बसहि मे और आलक में एक छोटा-सा बिम्ब भी बनवाऊँगा। यदि कुछ शक्ति हो तो करना। इसमे कोई बाधा देने वाली नही है।' यह कहकर अनशन पूर्वक द्युलोक (स्वर्ग) को गया। बाद को जब काम करने लगा तो अर्वुद पर्वत पर श्री माता अबोटी के पास विमलवसहि की परभूमि को द्रम्मो से पाटकर उसका मूल्य देकर भूमि खरीदी। इस प्रकार 36 बोरे द्रम्म लगे थे। उन्होने (वेचने वालों ने) कहा, 'अब पूरा हो गया। तुम्हारे पास बहुत द्रम्म सामग्री है। तुम पर्वत भी ले लो।' 1286 संवत् में शोभन देव सूत्रधार को बुलाकर प्रासाद प्रारम्भ किया। 1292 ध्वजाएँ आरोपित की गयी। 12 करोड़ 53 लाख द्रव्य इसमें व्यय हुआ। नाम दिया—'लूणिग वसही।' श्री नेमिनाथ की प्रतिमा स्थापित की।

143. विमल नामक दण्डनायक ने विमल पर्वत के अधिपति जिन देव के मन्दिर को पूर्वकाल में बनाया था। उस कौतुकी (वास्तुपाल) ने इस गिरि पर रैवत गिरि के देवता का मन्दिर निर्माण कराया।

उस प्रासाद में मन्त्री यशोवीर ने 13 दोष बताये थे। (1) यह कि विलास मण्डप उचित नही था, (2) स्तम्भों पर बिम्ब, (3) बीच में सिंह, (4) हरिण गवेक्षण, (5) गजशाला द्वार पर होनी चाहिए, पर थी पीछे, (6) तपोधन आकाश में, (7) सीढ़ियाँ छोटी-छोटी, (8) सूत्रधार की माता का छत्र, (9) मुख्य द्वार पुर के बाहर और (10) घण्टा बहुत बड़ा। बाकी तीन दोष इस बात को जाननेवालों से जान लेना चाहिए।

इस प्रकार लूणिग वसही प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(P) संज्ञक पुस्तक मे यही प्रबन्ध निम्नांकित रूप मे पाया जाता है :
एक बार नव लूणिग ने अनशन ग्रहण किया तो उसने धर्मव्यय की बात माँगी कि एकबार मैं श्री अर्वुद पर्वत पर देव को नमस्कार करने गया था। वहाँ ऐसा मेरा मनोरथ था कि 'अगर इस जगह एक बिम्ब की स्थापना करूँ तो अच्छा हो। इसलिये जब तुम लोगो को सामर्थ्य हो···तो वह कुछ कीर्त्ति करा देना'। बाद को जब व्यापार (काम) मिला तो द्रव्य से पृथ्वी खरीदी। यह पृथ्वी द्रम्मो से ढककर मोल ली

गई थी। इस प्रकार द्रम्भमूड़ा 36···कहा। इसके बाद पूरा हुआ। तुम्हारी द्रव्य सामग्री बहुत है। तुम पर्वत भी ले सकते हो। वहाँ 1286 वर्ष में शोभन देव सूत्रकार को बुलाकर प्रासाद शुरू किया···सं. 1292 में ध्वजारोपण किया।

'सँकरी सीढ़ियाँ, बाहर के रास्ते, पीछे शाला, मुनिगण धूप में, बिम्ब स्तम्भों पर, दीर्घ पट्ट, सिंह के आगे मृग, रति के मण्डप, थवई की माता के सिर पर छत्र, अपने पर्वज हाथी पर आरूढ, छोटे-बड़े खम्भे, अक्षर पतले, बाहर कलंक कहे गये हैं।'—मन्त्री यशोवीर ने श्री अर्बुद प्रासाद में इन दोषों को बताया।

32. वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्ध (B. BRP)

144. श्री प्राग्वाट वंश में अणाहिलपुर के पुत्र चण्डप्रसाद हुए, उनके पुत्र सोमवृद्धि का घर था, इसका पुत्र था आशाराज। कहते है कि इसका पुत्र नया अमृत हुआ जिसका यश कालकूट के भक्षण से शिव के कृष्ण वर्ण कण्ठस्थल के विप से उत्पन्न कालिया को नष्ट करनेवाला हुआ।

115. आसराज के प्रबन्ध से वस्तुपाल और तेजपाल की उत्पत्ति जान लेना चाहिए··· (इस जगह जिस आसराज प्रबन्ध की सूचना दी गयी है वह B प्रति के खण्डित होने से उसमें नहीं मिला पर BR संज्ञक संग्रह मे वह मिलता है वही से उतारकर यहाँ दिया जा रहा है—)।

116. इसके बाद आसराज प्रबन्ध इस प्रकार है—*अणाहिलपत्तन मे मल-

* इस प्रबन्ध का वर्णन पी संज्ञक सग्रह में निम्नांकित रूप में है :

एक बार मलधारि गणाधीश श्री हेमप्रभसूरि धवलकापुर मे चार मास ठहरे। उनके व्याख्यान में सब कोई आते थे। वहाँ ठक्कुर तिहुनपाल की पुत्री कुमारदेवी माता के साथ व्याख्यान मे आयी पर वह विधवा थी। गुरु की दृष्टि व्याख्यान के बाद उस तरुणी पर ही रुकी। मन्त्री आशराज ने उपदेश के अन्त में गुरु से कहा, 'भगवन्, चन्द्रमा से अंगार की वृष्टि नही होती, परन्तु पूज्यवर की दृष्टि कुमारदेवी पर क्यो गयी ?' आग्रहपूर्वक पूछने पर बोले—'(पोएस की यह विधवा है) इसकी कुक्षि में 11 रत्न हैं। चार पुत्र और सात पुत्रियाँ। दो पुत्र तो लोकोत्तर होगे। यह सुनकर तिहुणपाल की उलगा (आरम्भ हुई)। उसने आवास लेखक वही दी। वेतन नियत कर दिया। साथ होने पर उस लड़की के साथ उसकी प्रीति हुई। बात मालूम होने पर माता ने पुत्री के साथ पालकी भेजकर उसे विदा किया। वह स्तम्भनट मे गया। वहाँ पुत्र हुए—लूणिग, मल्लदेव, वास्तुपाल, तेजपाल और पुत्रियाँ सात हुईं।

धर्म के विधान में, भुवन का दोप दूर करने मे, विभेद की सन्धि करने मे, सृष्टिकर्त्ता ने मल्लदेव का प्रतिमल्ल नही बनाया।

धारिश्री देवप्रभ (PS हेमप्रभ) सूरि के व्याख्यान के समय 14 सौ गादी बैठे थे। उस व्याख्यान में साधु मदनपाल की पुत्री (PS आभूनन्दिनी; तथा इसी प्रति मे 'तिहुअण पाल-पुत्री' भी लिखा है) बाल-विधवा कुमारदेवी व्याख्यान में बैठी थी। नियोगी अश्वराज वहीं बैठा था। जब वाचक बाँच रहा था उस समय आचार्य की दृष्टि उसी कुमारदेवी पर विश्राम कर रही थी। रसिक अश्वराज ने कारण पूछा। पूज्यों ने इस प्रकार कहा, 'उसके उदर में दो तेजस्वी पुत्र वर्त्तमान हैं जो जैन धर्म का प्रभाव विस्तार करेंगे।' एक बार अश्वराज जब साधु मदनपाल के पास बैठा था, उसे लेखक नहीं मिल रहा था। तब अश्वराज ने व्यवहारी को लेखक खोजकर उसे समर्पण कर दिया। फिर उसे दो द्रम्म रोजाना वेतन देकर (मदनपाल ने) अपने पास रख लिया। पुत्री गृह-व्यापार मे मुख्य थी। एक बार दोनों में प्रेम हो गया। माता ने वृत्तान्त जानकर दस हजार द्रव्य देकर उन्हें सोहालक नामक नगर मे भेज दिया। (PS–'मण्डलीनगरी मे गये।' फिर इसी प्रति मे अन्यत्र लिखा है—'साम्भ तीर्थ में गये।')।

आसराज के चार पुत्र थे। पहला मन्त्री लूणिग, दूसरा मल्लदेव, तीसरा वास्तुपाल और चौथा तेज.पाल। पुत्रियाँ सात थी—

1. साऊ, 2. भाऊ, 3. माऊ, 4. धनदेवी, 5. सोहागा, 6. वयजूका PS तेजूका, 7. पद्मल देवी।

145. श्री वास्तुपाल की पत्नी ललितादेवी नाम से जगत् मे प्रसिद्ध है और उसी प्रकार तेज.पाल की सती पत्नी अनुपम देवी नाम से। लूणिग और मल्लदेव अल्पायु थे। कालक्रम से आसराज पुत्रों के साथ धवलक्कक मे आया। वहीं रहने लगा। दोनों पुत्र व्यवसाय करते।

इस प्रकार आसराज प्रबन्ध समाप्त हुआ।

117. इधर व्याघ्रपल्ली के राणा आनाक, भीमदेव के द्वारा अपमानित होकर देश की सीमा पर गया। दूत द्वारा बुलाये जाने पर भी नही आता। (कहता—) 'राज्य विनष्ट हो गया, क्या आऊँ? किन्तु केवल पैदल रहकर ओं लगा ( ) करूँगा।' यह कहकर पत्तन में आया। उसका 'लूण पसा' (लवणप्रसाद?) नामक पुत्र भाथी चलाया करता था। उसकी दो स्त्रियाँ थी। वीरम और वीरधवल ये दो पुत्र थे। इधर लवणप्रसाद ने वीरम की माता को पुत्रवती होने पर भी त्याग दिया। वह मेहता-वासी त्रिभुवनसिंह के कुटुम्बी के द्वारा पकड़ी गयी। लवणप्रसाद उसे मारने के लिए शाम को उसके घर मे घुसा। इधर स्त्री ने गृहपति को सायंकालीन भोजन के लिए बैठाया था। गृहपति ने पूछा, 'वीरम कहाँ है?' स्त्री ने कहा, 'कही खेलने गया है।' उसने कहा, 'बुलाओ, उसके बिना भोजन नही करूँगा'। स्त्री के आग्रहपूर्वक बैठाने पर भी नही बैठा। इधर लवणप्रसाद ने सोचा—'इसने मेरी स्त्री तो रख ली है, पर मेरे पुत्र के साथ बडा प्रेम करता है। इसलिए इसे कैसे मारा जाय?' यह सोचकर प्रकट हुआ। उसने पूछा, 'तुम कौन हो?' उसने जब अपना परिचय दिया तो दोनों मे परस्पर प्रीति हुई। लवण-

प्रसाद को उसने खिलाया। वस्त्र आदि देकर भेजा। इसके बाद क्रमशः भीमदेव ने उसे राणा बनाया (B, PS—प्रधान बनाया, राणिमा दी।) वह राज्य की देख-रेख करने लगा। (B, PS—राजा स्वयं तो रुग्ण हो गया और लवणप्रसाद ने) राज्य को अपना लिया। इसके बाद राजा के स्वर्गवासी होने पर वही राजा हुआ। वीरम को अपने पास ले आया। वीरधवल को कुमार-भुक्ति में धवलक्कक दे दिया। उसकी प्रिया का नाम था जइतल देवी। (PS—पुत्रस्नेह से लवणप्रसाद धवलक्ककपुर में बहुत रहने लगा। पत्तन में अमात्य लोग ही राज्यकाज की देखरेख करते थे।)

118. इधर वस्तुपाल और तेजःपाल हाट में गये। तेज.पाल की राणा के साथ प्रीति हुई। राजकुल में वस्त्र···एक बार देवपत्तन मे 40 धरणिग ने, जो तेज.पाल के श्वसुर और अनुपमदेवी का जनक था, अपनी पुत्री अनुपमादेवी को ससुराल भेजा। उसने घर आकर सारी चीजें जेठा आदि कुटुम्बियों को दिखायी। उसमें सभी शृंगार कपूर के थे। वस्तुपाल ने तेजःपाल से कहा, 'हम लोग तो बनिया ही हैं। ये शृंगार राजाओं और समर्थ पुरुषों के योग्य हैं। यदि बहू के विचार मे आये तो राणा की पत्नी को दे दिया जाय।'* अनुपमा ने कहा, 'स्त्री का शरीर भर्ता के अधीन है, आभरणों की तो बात ही क्या है!' तब राणा को बुलाकर उसे भोजन कराया और वह दे दिया। राणा देवी (रानी) को देने लगा। रानी ने कहा, 'इन

* इस पाठ की जगह B प्रति मे इस प्रकार का पाठ आ जाता है—'अनुपमदेवी ने कहा, 'स्त्रियो का शरीर भी भर्ता के अधिकार मे है, गहनो की तो बात ही क्या है? विशेष भाव से दो।' वस्तुपाल ने कहा कि 'राणा को निमन्त्रित करके भोजन कराओ।' ऐसा करने की इच्छा करके जब वस्तुपाल हाट मे गया। राणा के पास गया। उसे खिलाया। गहने देखकर देवी (रानी) ने कहा, 'महाराज, ऐसे गहने तो अब तक न देखे हैं, न सुने हैं। यदि तेज.पाल मुद्रा ग्रहण करे तो इसे ग्रहण करूँ।' 'ऐसा ही हो, यही मेरी भी इच्छा है।' तेज.पाल (कहे जाने पर) कहा, 'बड़े भाई से पूछ लूं।' पूछने के लिए घर पर गया। भाई ने कहा, 'मुद्रा से क्या होगा? यदि देता ही है तो कहना कि टीपा कर दो। जो उसमे होगा उसे देकर बाकी हम लोग लेंगे।' 'ऐसा ही हो।' यह कहकर मुद्रा दे दी। व्यापार हुआ। बाद को 'कूर्चाल सरस्वती' इत्यादि विरुद पढ़नेवाले ब्राह्मणो ने मक्खियों के जाल की तरह घेर लिया। अनन्त (सूत्र) बांधे। एक बार कुलगुरु श्री विजयसेनसूरि प्रणाम कराने आये। मं. कुमारदेवी ने नमस्कार किया। बोले, 'मन्त्री नही आया?' 'मन्त्री की वन्दना ग्रहण करने के लिए घर मे पधारिये।' गुरु घर में गये। ऊपर के घर में गये। उसने खिड़की से मन्त्री को ब्राह्मणो से घिरा देखा। इतने पर भी मन्त्री न उठा। गुरु पीछे लौटे। इसके बाद माता ने ऊपर आकर कहा, 'मन्त्री, यह अच्छा है। तुम्हारे ऐसा अजन लगा है कि आये हुए गुरु को भी नही देखते।' मन्त्री ने आदमी भेजकर (गुरु को) रोका। खिड़की से उतरकर नमस्कार करके बोला, 'प्रभो, क्यो पधारे और लौट भी गये?' गुरु ने कहा, 'हम ठक्कुर, चण्डप, चण्डप्रसाद, सोम और आशराज के वंशज, कुमारदेवी के कुक्षि-सरोवर के राजहंस, श्री वस्तुपाल का घर समझकर आये थे। पर आगे शराबी का घर देखा।' मन्त्री ने कहा, 'एक बेला घर में पधारिए।' अपने हाथ से आसन देकर बैठाया। अत्यन्त विनय से पूछा, 'श्री गुरुजी मेरे घर में क्या अनुचित देखा है?' 'यह सुनो—जीवादिश।' इत्यादि।

दोनो को अपनी मुद्रा दो।' तब बड़े भाई से पूछकर, गृह टीपा ( )
दिखलाकर मुद्रा ग्रहण की।

119. इसके बाद वस्तुपाल (PS—'कुचलि-सरस्वती' इस प्रकार के विरुद पढ़ने वाले) ब्राह्मणों द्वारा घेर लिया गया। (PS—अनन्त बांधा।) एक बार कुलगुरु श्री विजयसेनसूरि वन्दना कराने के लिए आये। कुमारदेवी ने नमस्कार किया। पर मन्त्री न आया। मन्त्री से वन्दना कराने घर में गये। खिड़की से मन्त्री को ब्राह्मणों द्वारा घिरा हुआ देखा। इसलिए ऊपर नही गये, वहीं से लौट आये। माता ने कहा, 'मन्त्री, तू ऐसा व्यग्र है कि कुल-गुरु आये और तुमने जाना भी नहीं।' तब मन्त्री दौड़ा। अभ्यर्थना करके ले आया। इस पर गुरु ने कहा कि 'वह आशराज के पुत्र का घर नही है, मद्यप का गृह है। अधिक क्या (कहें) ?' (PS, B—गुरु ने कहा, 'हम ठक्कुर चण्डप्रसाद-सोम-आसराज-वंश के, कुमारदेवी के कुक्षि-रूप सरोवर के राजहंस श्री वस्तुपाल का घर समझकर आये थे। पर आगे मद्यप का घर देखा। मन्त्री ने कहा, 'एक बार घर के भीतर पधारिए।' अपने हाथ से आसन देकर बैठाया। साग्रह पूछा, 'प्रभो, मेरे गृह मे श्रीमद्गुरु ने कौन-सी अयुक्त बात देखी ?' 'यह सुनो—)

146. 'जीयो, आज्ञा दो इत्यादि पुनरुक्त का उच्चारण करते हुए जो लोग वण्ठजनोचित दासता भी करते है, उन्ही के प्रति बड़े लोग जो गुरु-भक्ति करते हैं वह निश्चय ही विभूति-रूपी मद के पीने का विकार है।' 'भगवन्, यदि उपदेश न दें तो ऐसा ही होता है। शिक्षा दीजिए।' (PS—'पहले अनन्त खोलो। उसके दूर करने पर तुम्हारे कुल मे कोई माहेश्वर (शैव) नही हुआ। इसलिए श्रावकत्व अंगीकार करो।) पहले अनन्त दूर किया, तब श्रावकत्व ग्रहण किया। पूजा का निश्चय किया।

147. सो यह कुमारदेवी के कुक्षिरूप सरोवर का कमल, श्री का घर, नीतिमान श्री वस्तुपाल मन्त्री नामक पुत्र पैदा हुआ।

148. विभुता, विक्रम, विद्या, विदग्धता (सहृदयता), वित्त (धन), वितरण (दान) और विवेक—इन सात तरह के विकारों ('वि' अक्षरयुक्त शब्दो) से युक्त होकर भी जिसे विकार नही हुआ।

120. वीरधवल के पास देश तो थोड़े थे, पर खर्च बहुत। यह समझकर पत्तन जाने की इच्छा रखनेवाले राणा को तेजःपाल ने रोका और स्वयं गया। वहाँ सभा में श्री लूणप्रसाद ने कुशल पूछा। 'कुमार क्यों नही आया ?' 'महाराज, श्री वीरधवल ने देवगिरि के ऊपर बीडा मांगा है।' 'क्यों ?' 'व्यय बहुत है, इसलिए देवगिरि पर सेना लेकर चढाई करना चाहता है। उसके बिना व्यय सम्पन्न नहीं होता।' राणा ने कहा, 'यदि वह वहाँ मर (गया) तो व्यय कौन करेगा ?' 'क्या देने पर रुकेगा ?' 'स्तम्भतीर्थ।' कर्मचारियों ने पूछा—'उसकी क्या आमदनी है ?' उन्होंने कहा, '30000 द्रम्म और 32 (B—सौ) वाहन !' राणा ने कहा, 'यदि उस स्थान के देने से धनी हो जाता है तो दो।' 'यह महाप्रसाद है' ऐसा कहकर

तेज-पाल धवलक्क में आया। राजा ने पूछा, 'कुछ मिला ?' 'स्तम्भतीर्थ।' 'उससे क्या होगा—मैंने तुम्हें लंका तो दी पर उससे कुछ खाया-पिया नही जा सकता!' 'सब भला होगा।' यह कहकर मन्त्री वस्तुपाल को 50 घुड़सवार और दो सौ पैदल सेना के साथ स्तम्भतीर्थ भेजा। मन्त्री वहाँ गया। वहाँ के नियोगियो ने कहा कि, 'पहले सईद के गृह मे जाया जाता है, बाद को उत्तारक मे।' मन्त्री न सुनकर अपने उत्तारक में गया। इसके बाद सईद भी मिलने को आया। मन्त्री को नमस्कार करके बैठा। मन्त्री ने ऐसा कुछ सम्भाषण नही किया, परन्तु थोड़ा-सा आदर कर दिया।

149.

इधर दूसरे दिन मन्त्री ने सईद को बुलाया। तीन लाख द्रम्म देकर जल-मण्डपिका माँगी। सईद ने कहा, 'दे दो, मैंने छोड़ दिया।' दूसरे दिन (मन्त्री ने) कहा, *'5 लाख द्रम्भ से स्थल-मण्डपिका माँगी जाती है।'* उसने कहा, 'दे दो।' वह भी छोड दी। अन्य व्यापारों मे भी अपने आदमियो को छुड़वा दिया। इसके बाद सईद ने अपने मित्र मृगुपुर के राजा सण्डेराज शंखलु [B—खण्डेराज संखलउ] को बुलाया। वह समुद्रमार्ग से 2 हजार घोड़ों और 5 हजार मनुष्यो की सेना लेकर उतरा। इधर सईद ने मन्त्री से कहा, 'शंख आ गया है, कुछ देकर विदा कर दो।' मन्त्री ने कहा, 'हमारे घर मे द्रव्य नही है। तुम्हारे गृह मे है, तुम दे दो। हमारी ओर से तो युद्ध ही होगा।' 'तो चलो ताकि युद्ध किया जाय।' मन्त्री ने कहा, 'तुम अपने आदमियों के साथ जाओ। हम अपने आदमियो के साथ जायेंगे।' मन्त्री 50 घुड़सवार और 200 पैदल सेना के साथ बाहर निकला। दोनों सेनाएँ बाहर आयी। इधर मन्त्री ने राजपूतो से कहा, 'पहले (बीड़ा) कौन उठायेगा ?' इसके बाद भुवनपाल चालुक्य (B—चालुक्य वंशज) ने बीड़ा माँगा।' (बोला) "मैंने शंख को (मारने के लिए)चुना।' किसी ने कहा, 'तुम्हारे मर जाने पर मन्त्री क्या मन्दिर बना देगा ?' वह कुछ क्षुब्ध हुआ। मन्त्री ने कहा, 'यदि तुम्हारा कुछ अनिष्ट होगा। तुम्हारे आदमियों का निर्वाह करूँगा और मन्दिर भी बनवा दूँगा।' इसके बाद वह घोड़े पर चढा बोला, 'अरे जो शंख हो वह मेरे सामने आये।' इस पर एक घुड़सवार ने कहा, 'मैं शंख हूँ।' उसे भाले से मार गिराया। दूसरे एक ने (अपने को शंख) कहा। वह भी मार डाला गया। इस तरह 6 को मार डाला। इसके बाद एक और शंख शरीर के पास जाकर सोचा—'अहो, मृगुपुर का मालिक शंख तो एक ही होगा, परन्तु समुद्र के तीर होने से अनेक शंख हैं। मैं तो मार-मारके थक गया हूँ।' उसी समय पैदल सेना ने उसे मार गिराया। शंख ने सोचा—'मेरे तो छः मारे गये पर इस (मन्त्री) का केवल एक।' कुछ फल न देखकर लौट गया। सईद ने कहा, 'कुछ भी देकर लौटा दो।' मन्त्री ने कहा, 'तुमने बुलाया है, तुम दो।' ऐसा कहने पर वह अपने स्थान पर गया। मन्त्री ने भुवनपाल का ऊर्ध्व देहिक करके उसके लिए भुवन पालेश्वर प्रासाद बनवाया। इधर मन्त्री ने तेजःपाल

के पास से 200 घोड़े और 500 पैदल और एक पालकी मँगाई। मन्त्री ने नगर के भीतर बात फैला दी कि राणा वीरधवल आ रहे हैं। यह (खबर फैलाकर) सामने गयी। सईद भी बहुत लोगों के साथ निकला। सुखासन घेर लिया गया। पर राणा नहीं दिखायी दिया। (सबसे कह दिया कि) उत्तारक में दर्शन देगा। वहाँ पर भी दर्शन नहीं मिला। तब डरकर सईद ने शंख को फिर से बुलाया कि 'युद्ध साज से सज्जित होकर आओ'। वह 2 हजार घुड़सवार और 10 हजार पैदल के साथ आया। समुद्र से उतरकर किनारे पर ठहरा। मन्त्री अपने आदमियों के साथ बाहर निकला। उसने शंख को कहला भेजा कि 'तुम तो बलवान् हो, क्षत्रिय हो। सो हमी लोगों में द्वन्द्व युद्ध हो।' वह अत्यन्त बलवान था। प्रसन्न होकर मन्त्री से दो पहर समय माँगा। किनारे पर सेनाओं में युद्ध होता। इस प्रकार तीन दिन तक युद्ध होता रहा। चौथे दिन एक पहर समय बीतने पर मन्त्री ने पीछे से लात मार कर शंख को गिरा दिया और तत्काल सिर काट लिया। तब तो शंख की सेना तितर-बितर होकर भगने लगी। घोड़े आदि लेकर मन्त्री ने छोड़ दिया। उसके मारे जाने पर सईद भग कर समुद्र में चला गया। मन्त्री ने कहा, 'तुम्हें कोई नहीं मारेगा। मैंने तो शंख को मारा है तुम व्यवहारी आदमी क्यों भगे?' उसने कहा, 'यदि तुम मुझे अभय दो तो आऊँ।' मन्त्री ने 'तथास्तु' कहकर बुलाया। भोजन करने को घर पर बुलाया। अंगमर्दकों ने उसको घसीटा। (उसने कहा, 'मन्त्री, यह क्या?' 'मैंने कहा था कि मारूँगा नहीं, जीवित छोड़ दूँगा। इसीलिए तुम जीवित हो।') जीवित छोड़ा जाने पर भी स्वयं ही व्यथा से मर गया। इधर उसके घर पर मनुष्य भेजकर धवलक्कक में कहलवाया कि 'सईद मर गया उसका सर्वस्व राजकुल में ले लिया गया। पर भारी व्यवहारी था उसकी गृह धूलि मेरी हो।' मन्त्री के आगे किसी ने कहा कि 'सईद के वाहन एक बार···लगे थे।

घर जाने पर (घर वालों ने?) पूछा, 'क्या आया?' 'बहुत लक्ष्मी।' उसने कहा, 'समुद्र की धूल भी श्रेष्ठ है।' बखारि (कोठिला) भर दी। एक बार धूल की मंजरी में दीपक लग गया। सारी धूल सोना हो गयी। यह वृत्तान्त मन्त्री ने सुना। इसलिए (धूल) माँगी। राणा ने दे दी। घर को लिखवा लिया। द्रव्य, स्वर्ण, दुकूल, मोती आदि राणा के पास भिजवा दिया। मन्त्री गया। वहाँ कवियों ने कहा—

150. 'जब वे दोनों दल मिले थे और जब शंख चूर्ण किया गया था उसके बाद है श्रीवस्तुपाल मन्त्री! पृथ्वी के मुख पर कोई नया ही रंग है।

121. एक बार दोनों भाई आलोचना (विचार) करने बैठे कि द्रव्य कहाँ रखा जाय। इस प्रकार विचार करते-करते दोपहर हो गया। इधर अनुपमादेवी ने दासी को भेजा कि 'देव-पूजा का समय बीता जा रहा है।' उत्तर न पाकर उसने स्वयं आकर कहा, 'आज किस बात की आलोचना हो रही है!' यदि कहने लायक हो तो कहो।' इस पर तेजःपाल के झुँझला उठने पर मन्त्री ने कहा, 'वत्स, कोप मत करो, यह बहुत बुद्धिमती हैं, बुद्धि पूछो।'

151. काम पड़ने पर मूर्ख से भी बारबार पूछना चाहिए। मन की वृत्ति चपल होती है, वह वृद्धों को भी मोह में डाल देती है।

पूछा, 'न्याय से या अन्याय से हमारे पास लक्ष्मी आयी है। इसी (के रखने) का स्थान देख रहे हैं। पृथ्वी में गाड़ दें या आदमियों के घर में डाल दें। पर कुछ भी घर में नहीं आता।' उसने कहा, 'यदि हमारी बुद्धि (के अनुसार) करो तो अक्षय हो जाय। सब कोई प्रकट देखे, पर कोई भी ले न सकें।' 'सो कैसे ?' मन्दिर बनवा दो। ऊपर सोने के कलश देकर प्रशस्ति में द्रव्यों की संख्या लिख दो। सभी पढ़ेंगे कि इसमें इतना द्रव्य लगा है पर कानी कौड़ी भी न ले सकें।' जेठे ने कहा, 'वहू की यही बात रहे। भाग्यक्षय होने पर अपने आदमी भी दूसरे हो जाते हैं।' इसके बाद स्नान करके देवपूजा करके खाने के बाद पौषधागार में गये। 'गुरु जो कुछ कहेंगे वही बात हम मानेंगे' (यह समझकर) गुरु को प्रणाम किया। उन्होंने कहा—

152. 'हे सूर्य, (पुष्प के) कोशों को खिला दो, और उसमें संसक्त भ्रमर से प्रेम करो, क्योंकि यह दिन तुम्हारा है। फिर जब रात हो जायेगी और अन्धकार हो जायगा तो तुम्हारे समीप कौन आयेगा ?'

नमस्कार करके उठे, बाहर निकले। सोचा—'हमारा भविष्यकाल अच्छा नहीं है।' इसलिए द्रव्य व्यय करने लगे। (*PS*—स्थान-स्थान पर सभागार प्रासाद और पौषधशालाएँ बनाने लगे। साल-भर तीन संघ-पूजा, और 15 यतियों का विहरण।)

122. एक बार मन्त्री सोकर उठा। पिछली रात को सोचने लगा—

153. हमारे पिता आशराज हुए जिनकी···तेजःपाल पुत्र हुआ जो प्रधान-गणों में एकमात्र मन्त्रीश्वर हुआ। उसकी अनुपम गुण-शीला अनुपमा नाम की पत्नी हुई जो प्रत्यक्ष लक्ष्मी थी।

154. श्रेष्ठतर मतिवाला तेज.पाल वीरराज के राज्य का शासन करता है। 'पुण्यवश मुझे यह दिन प्राप्त हुआ है जिसमें स्वजन परिजनों के उत्साह-सहित यह सामग्री प्राप्त है। किन्तु दुःसमयवश यह जन (मैं) खेदमग्न (हो सकता है), अतः गुरु के आदेश को पाकर उसकी बुद्धि अद्भुत कर्म करने को स्फुरित हुई है।'

यह सोचकर ज्यों ही द्वारशाला में आकर बैठता है त्यों ही द्वारपाल ने कहा, 'मन्त्रिन, श्रीपत्तन से गुरु का आशीर्वाद करनेवाला आदमी दर्शन चाहता है।' 'प्रवेश कराओ।' उस पुरुष ने आकर प्रणामपूर्वक हाथ से आशीर्वाद का पत्र दिया—

155. 'हे मन्त्रीश, वे गुरु तुम्हारा कल्याण विस्तार करें जिन्होंने तुम्ही को योग्य समझकर मुझे यहाँ भेजा है।'

मन्त्री ने सम्भ्रमपूर्वक उठकर हाथ जोड़कर पत्र लिया। सिर पर रखकर पढ़ा। कुशलप्रश्न-पूर्वक यह आशीर्वाद पढ़ा—

'जो इस काल में अद्भुत कर्म को पल्लवित करता है.।' इसी तरह—

156. जिन मुनियों के लिए स्वजनों का त्याग करना भूषण है, वृद्धावस्था की कठिनाई काटने को, उन्हे किसी की क्या पड़ी है, फिर भी वे लोग धन्य हैं जो उन लोगों में भी खूब मृदुता ले आ देते हैं। क्योंकि चन्द्रमा चन्द्रकान्त प्रस्तरों (मणियों) को भी गला देता है।

'महामन्त्री, यह 127 संवतसर बीत गता [PS—अत्यन्त तीव्र है], 28 वर्ष तक श्री शत्रुंजय और गिरनार पर्वतो का मार्ग किसी ने नही वहन किया। [PS—मन्त्री चरण (आप) के बिना दूसरा कोई भी एक बार नहीं गया।] वहाँ यात्रा के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए (कीजिए)।

'श्री शत्रुजय का माहात्म्य भी इस प्रकार है—

'यहाँ कल्याणमय, प्रशस्त, पृथ्वीतल का तिलक, रमणीयता की जन्मभूमि, सम्पत्ति का घर और त्रिलोक सम्मानित सुराष्ट्र नामक देश है जिसके दृष्टि-दोषों को लोल लहरों के हाथोंवाला पश्चिम समुद्र फुफकार के आघात से फेनिल लवण (नमक) के समुत्तारण से (नोन की उतराई से) हरण किया करता है। उसमे ये तीर्थ है—

158. 'जो सन्मतिशील पुरुष दान—तप और अहिंसा से प्रेम करता हुआ श्री शत्रुंजय और रैवत गिरि का यात्रोत्सव करता है वह इस तीर्थ के माहात्म्यवश नरक-गति, और तिर्यग्योनि को किसी भी जन्म में स्पर्श (भी) नही करता, क्योंकि उसके दुष्कर्म विध्वस्त हो जाते हैं।

159. 'जहा वासुकि और इन्द्र प्रभृत्ति देवता, भरत और सगर आदि पृथ्वी के इन्द्र चक्रवर्ती, नमि विनमि प्रभृति सभी बड़े-बड़े विद्याधर तथा राम युधिष्ठिर प्रभृति राजा आये थे।

160. '···धर्म रूपी पर्वत···सिद्ध श्री जयसिंहदेव ने इन तीर्थों की यात्रा की थी और कलियुग में कुमारपाल नामक कृपालु पृथ्वीपाल राजर्षि ने श्री प्रभु हेमचन्द्रसूरि के उपदेश वचनों से (प्रभावित होकर) संघ-सहित यात्रा की थी।

161. 'वाग्भटदेव मन्त्री ने इस स्थान पर ऐसा संघ किया था कि वह भविष्य और अतीत (काल के संघों) का उपमान हो गया।

'उन तीर्थों में दुष्काल (बुरे समय) के प्रभाव से—

16 . 'भेड़िये स्नायु से बँधे हुए खोपड़ी के कूटने मे रत होकर मृदंग बजाने-वाले (बने हुए) हैं, अपने घोसलों में स्थित घुग्घू और घर्घर ध्वनि से गान करते हैं, व्याघ्र द्वारा बिखेरे हुए ताजे मांस को खाकर शिवाएँ (शृगालियाँ) नित्य ही नाच रही हैं और वन्दी शृगालों का कलकल यहाँ दर्शनीय उत्सव होता है।

163. 'अपनी उदरपूर्ति के लिए माँ विलाप करते हुए बच्चों को चबा जाती है और मनुष्य मनुष्यों को राक्षस की तरह खा जाते हैं।

164. 'सागरोपमनामक मार्ग में ध्यान करने से 1 सहस्र पल्या के समान और अभिग्रह (दान) से 1 लाख के समान दुष्कर्म क्षीण होते हैं।

165. 'शत्रुंजय में जिन दर्शन के द्वारा दो दुर्गतियाँ नष्ट हो जाती हैं और

पूजा तथा स्नान के विधान से एक हजार पल्या के समान।

'अतः इस प्रकार के तीर्थ जो अपूजित अवस्था में पड़े हुए हैं, उनकी यात्रा के लिए यत्न कीजिए।'

123. इसके बाद मन्त्री ने कहा, 'गुरु को बुलावा भेजा जाय।' (गुरु) बुलाये गये। शुभ मुहूर्त में देवालय प्रारम्भ हुआ। सभी देशों में कुकुम-पत्रियाँ भेजी गयीं।

166. 'वाहन (सवारी) औषध, राह खर्च, सहायता, बैल आदि जिसको जो चीज चाहिये उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक दूंगा।'

(PS—यह सुनकर समृद्धिशाली) लोग यात्रा के लिए एकत्र हुए। इधर कलि ने गर्जन किया—

167. 'अरे बावले लोगो, यदि तुम्हें अपने जीवन से काम है तो अपने-अपने धर्मकृत्यों को सर्वथा त्याग दो, क्योंकि मैं कलिकाल-रूप योद्धा क्रुद्ध हूं।'

(वस्तुपाल) 'हे संघ के लोगो, नित्य नये-नये धर्मो का अनुष्ठान करो। यह मैं, वस्तुपाल कलि राजा के हृदय पर पैर रखकर आ पहुँचा हूँ।'

168. (कलि का कथन) 'क्या वह कलि राजा को नही जानता जो अनुचित धर्मकृत्य को फैला रहा है ?'

(वस्तुपाल का कथन) 'अनुपम सत्यवादी, एकमात्र धर्म-कर्म के आचरण करने-वाले, कलि को ग्रास करने के लिए कालस्वरूप वस्तुपाल को क्या वह (कलि) नही जानता ?'

169. सौ से भी अधिक गुरुगण, हजारो पण्डित साधु और लाखों गृहस्थ वस्तुपाल के संघ मे थे।

लोगों के एकत्र होने पर शुभ लग्न में जब प्रस्थान किया जाने लगा··· किसी ने कहा—

170. 'प्रिये, प्रिये, शीघ्र आओ।' 'नाथ, यह आई।' 'देखो तो कैसा रमणीय देवालय है ?' 'धन्य है वह मन्त्री जिसने इसे बनवाया है !' (PS—इधर संघ-पूजा के लिए देवालय को रथ पर रखा गया। ऊपर तीन छत्र धारण रखे गये। शृगार की हुई सधवा स्त्रियों ने चामरों को पंखा करना शुरू किया। घुंघरू की माला पहनाकर, कुसुम्भी वस्त्र पहनाकर, सजाकर दो बैल रखे गये। मार्गण जनों ने यशोगान आरम्भ किया। मन्त्री के पीछे सहस्र घुड़सवार मिश्रित हुए। स्त्रियों ने गीत आरम्भ किये, भेरी आदि मंगलवाद्य बज उठे।) जब देवालय इस प्रकार चला तो दाहिने दुर्गा दिखायी पड़ी। मन्त्री ने कहा, 'स्थिर हो जाओ।' वहाँ एक मरुदेशीय क्षत्रिय से मन्त्री ने पूछा—'अजी, यह क्या कहती है ?' 'महाराज, यह नूतन बनते हुए गृह पर बैठकर मुदित-भाव से शब्द कर रही है। साढे बारह घरों पर बैठी है, अतएव आपकी साढे बारह यात्राएँ होंगी। (PS—उनमें यह पहली है।)' इसके बाद बहुत-से सूरियों द्वारा अनुमत होकर आगे-आगे सात सौ देवालय चलने लगे। (PS--'कुल्हाड़ी, रास्ता साफ करने के लिए 500 कुदालियाँ, 4000

गाड़ियाँ, 700 पालकियाँ, 1900 छकड़े [?] 333 सूरि, 2200 व्रती, 1100 क्षपणक, 3300 भाट, 64 देवालय (   ), 180 वाहिनी, 550 जैन याचक, 4000 घोड़े, इस प्रकार (सब मिलाकर) 70000 मनुष्य, इतनी सामग्री सहित चला।'] अन्य तीर्थिकों को···करने से ये लोग वारण करते थे। इस प्रकार श्री संघ ने शत्रुंजय के नीचे वर्द्धापनिका की और ऊपर चढ़ा। वहाँ—

171. (उन्होंने) कुंकुम के कर्दम से स्नान किया, कस्तूरी का अग लेप किया, पुष्पों से उत्तम रूप की पूजा की, रम्भा की विभ्रम-लालसावाली चपलांगी ललनाओं ने नृत्य किया, देवेश की शुभ पूजा पट्टांशुकों से की।

वहाँ देवविज्ञप्ति (इस प्रकार की) थी—

172. 'हे रक्षक, हे विमलादि रूपी नन्दन वन के एकमात्र कल्पवृक्ष, मैंने तृष्णा कातर होकर किसका मुँह नही जोहा, किसकी सेवा न की, किनकी स्तुति न की, और किन लोगों की अभ्यर्थना नही की? सो [हे देव] तुम्हें प्राप्त कर मुझे फिर से यह कदर्थना न सहनी पड़े!'

मुत्कलापन (   ) का काव्य इस प्रकार था—

173. 'धन के गर्व से, ईर्ष्या की आग की लपट से गर्म मुखो में, मृगनयनियो के प्रेम से धूमिल शत्रुओं के मुँह में पड़कर त्रैलोक्य ग्लानियुक्त हो गया है। ऐसी अवस्था में हे विमलाद्रि पर्वत के ध्वज, देव, कब इस दृष्टि को पूर्ण प्रस्फुटित चाँदनी में तुम्हारे मुख के ऊपर दूंगा!'

[PS—इस प्रकार आरती करके श्री जिन की मुत्कलापन करके] नीचे सधार्मिक वात्सल्य करले रैवत पर्वत पर चला।

124. [PS—इधर किसी चरटक ने···संघ में चोरी की।]

मन्त्री ने उस प्राकार को घेर लिया और कहा—

174. 'यह मेरे वैरी का स्थान है। यह इसका अपराध-कारण है। अतएव इस प्राकार को चूर्ण करके संघ की परिचालना करूँगा।'

यह कहकर दुर्ग चूर्ण करके आगे चला। कुछ प्रयाणों के बाद जीर्ण दुर्ग को पहुँचा। जीर्ण दुर्ग मे 18 प्रासादो में चैत्य परिपाटी करके [PS—जीर्ण दुर्ग के किनारे (निकट) स्वयं ठहरा और तेजलपुर में पड़ाव डालकर, कुमारदेवी-सर मे स्नान किया। तथा अपने बनवाये हुए पार्श्वनाथ चैत्य में महिमा-विधान करके] जब पर्वत पर चलने को तैयार हुआ तब एकाकी व्रतवालों से कहा, 'यहाँ वस्त्रपथ तीर्थ मे तालाब के पास प्रति मुण्डिक के लिए 5 द्रव्य प्रति मनुष्य के हिसाब से माँगा जाता है। आपका (कौन आदमी) उन्हे देगा?' 'जैसा जानते हो वैसा करो।' उन्होंने कहा, 'मन्त्रिन्, अगर आपकी आज्ञा हो तो हम लोग वारण करें।' मन्त्री ने कहा, 'जो अच्छा लगे करो। मैं तो वृष्ठि-रक्षक हूँ।' वे सज्जित होकर पूर्व की ओर चले। भरटकों ने कहा, 'मुण्डक को देकर जाओ।' उन्होंने कहा, 'मुण्ड (सिर) पर केश हैं, वे आगे भी दे दिये गये है। आप लोगों को क्या दें?' उनके साथ झगड़ा हुआ। व्रतियों ने उन्हे मार गिराया। वे मन्त्री के निकट पुकार करते आये।

मन्त्री ने व्रतियों को डाँटा—'ऐसा क्यों किया ?' 'मन्त्रिन्, इतनी भूमि चलकर हम आये हैं। देव को नमस्कारा किये बिना कैसे भोजन करें, यह सोचकर चले। इन्होंने रोका। देवदर्शन की उत्कण्ठा से कल भी भोजन नही किया था, इसीलिए हम उत्कण्ठित थे, भूखे थे, इन्हे क्या दें ?' (मन्त्री ने कहा—) 'अच्छा नहीं किया जो पहले से ही इन्हें रोक रखा। मेरे आगे भी बात नही की।' उन्होंने कहा, 'मन्त्री, यह देव की लाग (देन) है, उसे कोई हटा नहीं सकता।' मन्त्री बोला, 'यह मेरे भोजन देने का अवसर है, द्रव्य देने का नहीं। भट्टों और द्विजों के लिए अलग-अलग माँगो।' उन्होंने कहा, 'हम लोग कैसे ग्रहण करें ? आपके अनुमत आदमी ही तो देते।' मन्त्री ने कहा, 'यदि मेरा कहना करो तो तुम्हारा भरण-पोषण निर्वाह करूँ।' [PS—यदि एक ग्राम से सन्तुष्ट हो जाओ।]' इसके बाद उन्हे जीर्ण दुर्ग का निकटवर्ती ग्राम दान करके पट्टा तोड़ दिया। सब कोई ऊपर जाकर समाधि लगाकर देव की वन्दना करने लगे। वहाँ—

175. संघ रूप बादल, जिसके गम्भीर गान ही गर्जन-ध्वनि के समान है, सुवर्ण के अलंकारों के तार ही विद्युतलता के समान चमक रहे हैं। दूर से ऊँची भूमि से दान-रूपी वर्षा के बहाने पृथ्वी का ताप हरण कर रहा है।

मुल्कलापन काव्य (इस प्रकार थे)—

176. 'हे स्वामिन्, समुद्र-विजय के पुत्र, संसार के मालिक, मैं और कुछ प्रार्थना नही करता, किन्तु यही (प्रार्थना है) कि तुम्हारी कृपा से ये मेरे मनोरथ-रूपी वृक्ष तुम्हारे दर्शन-रूप अमृत-रस के द्वारा सफल हों।'

वहाँ पूजा-आरती आदि करके मन्त्री संघ के साथ देवपत्तन को गया। वहाँ चन्द्रप्रभ-प्रभास आदि तीर्थों में महिमा करके सोमनाथ की पूजा का विधान करके मन्त्री धवलक्कक को पहुँचा।

177. ब्रह्मा माथे पर भले ही दुर्लिपि लिखे और सभी ग्रह उग्रभाव को प्राप्त हों, पर जब तक यह कृपालु वस्तुपाल है तब तक इसके आश्रितों को कोई कष्ट नही होगा।

178. 'जो लक्ष्मी स्वयं निजपति के पद-कमल में रहनेवाली थी वह, हे वस्तुपाल, तुम्हारे सिर के (उन पैरों पर लगने के बाद) शीघ्र ही तुम्हारे मस्तक पर आ लगी। अब तुम्हारे मस्तक पर रहने के कारण वह सेवकों को सुख देने का कारण हुई।'

179. 'हाथों की प्रभा से जिसने कल्पतरु के प्रवाल को म्लान कर दिया है, जो चौलुक्य नरेश की सभारूप कमलिनी का राजहंस है, जिसने दिङ्मण्डल में अपनी कीर्ति फैला रखी है, उस वस्तुपाल की जय हो।'

180. ···इस प्रकार वहाँ कवियों ने वाक्य कहे।

125. इधर [PS—संघ को भोजन कराके और वस्त्र आदि से सत्कार करके] वगाह आभड़ के पुत्र सा. आसपास को बुलाकर कहा, 'अजी, तुम वगाह के पुत्र (वगाह मुख्य) हो। तुम्हारा शत्रुंजय में क्या लगा है ?' '40 हजार द्रम्म; रैवतक

में 30 हजार।' 'देवपत्तन में क्या (लगा है) ?' उसने कहा, 'उस तीर्थ में हमारा अधिक लगा है।' मन्त्री ने व्यतिकर सुना कि इसके गुरु ब्राह्मण ने कहा था कि प्रिय मेलक में 'तभी स्नान होगा जब पूर्व तीर्थ के प्रायश्चित स्वरूप 1 लाख (द्रव्य) दूध मे धोकर ब्राह्मणों को दोगे।' उसने स्वीकार किया। मन्त्री ने कहा, 'शत्रुंजय—'रैवतक के प्रायश्चित को ग्रहण करनेवाले मेरे रहते ब्राह्मणों को क्यों दिया ? यदि दण्ड दूं तो लोकापवाद होगा। पर तेरा मुंह नही देखना चाहिए। तेरे पिता ने धर्म के लिए 1 करोड़ 8 लाख [PS—सोलह लाख] व्यय किया था और तू ऐसा करता है। अपाक्तेय है और इसके बाद संघ-बाह्य भी हुआ।' यह कहकर उसे त्याग दिया। (वह मन्त्री के चरणों में गिरकर 2 लाख वितरण संघ में हो गया। ब्राह्मणो का नाम भी नहीं लेता। मन्त्री ने संघ के अन्य लोगों को भी अलंकृत कर करके भेजा।)

126. (एक बार देवपत्तन से'''आये। मन्त्री ने कहा, 'देव की अच्छी तरह पूजा होती है न ?' उन्होने कहा, 'नही।' 'क्यों ?'

181. 'हे मन्त्री, तुम्हारे कर्पूर को स्मरण करते हुए पशुपति (शिव) श्वेत भस्म नही धारण करते, और वे प्रभु तुम्हारे दिये हुए दुकूलों की प्रशंसा करते हुए कौपी न पाने पर क्रुद्ध हो उठते हैं; दूध के रस से स्नान (लिप्त) होकर जल से भी विमुख हो गये हैं और हे वस्तुपाल, तुम्हारे द्वारा कर्पूर और अगुरु से प्रसन्न किये हुए शिव गुग्गुल नही सूंघना चाहते।'

उन्हें एक हजार दिये।

127. एक बार मन्त्री तेजःपाल भृगुपुर आये। वहाँ श्री मुनि सुव्रत चैत्याचार्य श्री रासिल्लसूरि ने कहा, 'मन्त्री, एक सन्देशा सुनो।' 'आदेश कीजिए।' 'आज पिछली रात एक वृद्धा युवती ने आकर कहा—

182. 'हे प्राग्वाट (परमार) वंश के ध्वज, कृपालुओं में श्रेष्ठ, तेजःपाल, आज अम्बड की कीर्त्ति तुम्हारे सामने, मेरे मुख से इस प्रकार कहती है—'मैं वृद्धा आजन्म बांस की लाठी टेकती हुई अकेली मारी-मारी फिरी। इस समय, हे पुण्य-पुंज, तुम्हारे सौवर्ण दण्ड की स्पृहा है।' यह कहने पर मन्त्री ने एक देवकुलिका 75 सुवर्ण के दण्ड और कलश के साथ बनाये। उसके बनवाये जाने पर उन्होने कहा—

183. 'कौतुक लोभाविष्ट होकर मैं किस-किस देश मे नही गया। (किन्तु) तेजःपाल के सिवा दूसरा त्यागी नहीं देखा।'

128. इसके बाद एक बार एक एकोद नियोगी ( ) गले मे मिट्टी का पुरवा बांधे मन्त्री के पास आया। (मन्त्री ने उससे आने का कारण) पूछा। (बोला—) 'देव, श्रीपत्तन में राज-दरबार मे मुझे 32 हजार देना है। तुम्हें याद करके आया हूँ।' मन्त्री ने दस हजार दिलवाये। श्रीस्तम्भ मे भृगुपुर जाकर 12 हजार (मांग) ले आकर सोचा—'मांगने से दूसरा कोई (इतना देने मे) समर्थ न होगा'''' 'पहले लेकर भी फिर मांगने मे लज्जित नही होते ?' कहा, 'देव।'

सच्चरित्र मन्त्रियों ने अर्बुद गिरि पर बनवाया।

191. वस्तुपाल *मन्त्री द्वारा* बनवाया हुआ, स्वर्णदण्ड और कलशों से सुशोभित, यह मनोरम नेमि मन्दिर अर्बुद पर्वत के शिखर पर विराज रहा है।

133. एक बार सुराष्ट्र में जब संघ जा रहा था, उस समय आगे जानेवाले अकेले व्रतियों ने नाटिकाओं में मार्ग में उपद्रव किया। इस पर तपस्वियों ने आकर मन्त्री के आगे शिकायत की। मन्त्री ने उत्तारक करने के बाद अनुपमदेवी से कहला भेजा कि आज एकाकी (व्रतियों) को विहार न कराना। दूसरे सभी विहार करके चले गये।···न आने पर अनुपमादेवी ने···उन्हें महंगी चीजों से विहार कराया। स्वयं, समय बहुत बीत जाने पर भोजन के लिए बैठी। मन्त्री ने कहा, 'गृह में जो चीज हल्की होती है, वह हवा से बाहर उड़ जाती है। मैंने किसी कारण से (उन व्रतियों का विहार) रोक रखा था। (मगर अगर तुम इस प्रकार की बात न मानो) तो इस प्रकार कितने दिनों तक निभेगा!' उसने तत्काल ही थाली छोड़कर कहा कि 'जो आप लोगों के बाल्यकाल में हुआ था वह क्या भूल गये?' 'वह क्या?' 'धवलक्कक में जब आप बस रहे थे, उस समय एक बार समय बीत जाने पर दो थके हुए तपस्वी आपके घर पर आये जिन्होंने धर्मलाभ (का आशीर्वचन) कहा था। उस समय करुण भक्त···आते है। और कुछ तो घर में नहीं है। सब कोई खाकर उठ चुके थे। इसलिए मेरे श्वसुर ने आँखें बन्द कर ली, सास नीचे देखने लगीं, तुम दोनों नीचे पृथ्वी में धँसने···जेठानी के साथ मे कटिका ( ) के पीछे बैठी रही। दोनों तपस्वी कोई उत्तर न पाकर चले गये। तब तुम दोनों ने जो कहा था वह स्मरण नहीं है? –'धिक्कार है हमारे जीने को, मृदंग (PS—मातंग-श्वपच) के घर पर भी खाने के बाद कुछ पाया जाता है। हम उनसे भी गये-गुजरे हैं। यदि पृथ्वी फट जाय तो पाताल में प्रवेश कर जायें। जो समय बीत जाने पर आये हुए ये तपस्वी इस प्रकार लौट गये। ऐसा भी कोई समय होगा जब हम भी कुछ करने में समर्थ होंगे। अवश्य ही आप लोगों ने उसे भुला दिया है, जो आज सम्पत्ति पाकर ऐसा विचार कर रहे हो। आप लोगों को दान करने में ही कल्याण है!' यह सुनकर मन्त्री प्रसन्न हो गया। इस प्रकार कहा कि 'मेरे सामने तपस्वियों की शिकायत कोई न करे।' तब सभी दार्शनिकों ने (अनुपमादेवी को) 'षड्दर्शन-माता' कहा। उसके प्रति कंकण का काव्य यह है—

192. 'पीछे से दिया हुआ और दूसरों का दिया हुआ मिलता है या नहीं भी (मिल सकता है), किन्तु अपने हाथों से ही जो दिया हुआ है वही दिया हुआ प्राप्त होता है।'

134. उसने विमलाद्रि पर नन्दीश्वर के उद्यान में नन्दीश्वर का मन्दिर बनवाया। वहाँ उद्यापन किया। इसी विमलाद्रि पर 'अनुपम सर' बनवाया। उसके भरने (जल-पूर्ण होने) पर किसी चारण ने कहा—

193. ···इक्कीस बार कहने पर मन्त्री ने 21 हजार दिलवा दिये।

135. घटकूपपुर में अलंकारशास्त्र के विद्वान् माणिक्यसूरि रहते थे। एक बार

मन्त्री के बुलाने पर भी वे नहीं आये। मन्त्री ने स्वरूप कहलवा भेजा—

194. 'वटकूप-रूपी कूप में पूरा जड़ बुद्धि, माणिक्य नामक मेंढक रहता है जो गर्ववश उचक-उचककर चलता है।'

फिर आचार्य ने प्रतिस्वरूप कहलवाया—

195. 'ऐ धुनिया, गुणसमूह (तागों) के जन्म का हेतु रुई का हृदय विदीर्ण करते हुए बाँस के फराठे को घुमा-घुमाकर तू बढ़-बढ़कर बातें करता है?'

मन्त्री कुछ रुष्ट हुआ और स्तम्भतीर्थ के पौषधागार को लुटवाकर सारी चीजें एकत्र धरवा दी। इसके बाद आचार्य आकर मन्त्री से मिले। बोले, 'मन्त्री, संघ-भाग के उद्धार में धुरीण आपके रहते हमारे पौषधागार में उपद्रव्य क्यों है?' मन्त्री ने कहा, 'पूज्यों का न आना ही इसमें कारण है।' फिर से सब दिलवा दिया। संघ की पूजा के समय उन्होने कहा—

196. 'सैकड़ों सुकृत करनेवाले सुरेशों ने जिनदेव के जन्मकाल मे एक ही वस्त्र दिया, या दीक्षा के समय भी एक ही ध्वज वस्त्र दिया; विधि (ब्रह्मा) ने सूर्यादि ग्रहों को भी एक ही अम्बर (आकाश और वस्त्र) दिया, किन्तु इस समय सत्पात्रों के द्वार बहुत दान करके इन्द्र को भी नीचा दिखानेवाला वस्तुपाल प्रसन्न हो।'

इसके बाद पुस्तकादि देकर क्षमा कराकर विदा किया।

136. इस प्रकार मन्दिर बनवाता, वही-वही निधि निकलता। एक बार श्री शत्रुंजय ने शिखर पर कपर्दि यक्ष का मन्दिर आरम्भ किया। कहा कि 'पत्थर तोड़कर काम करो।' सोचा—'इसमे निधि कैसे प्रकट होगा?' मूल में भी टंकिका से तोड़कर देखा तो नीचे साँप दिखायी दिया। उस समय मन्त्री वही था। स्वयं ही उस आश्चर्य को देखने के लिए आया। जो देखता है तो वह एकावली हार (हो गया था!) हाथ में लिया। सबने देखा। वहाँ कपर्दि की स्तुति इस प्रकार पढ़ी—

197. 'मैं चिन्तामणि को कुछ नहीं गिनता, कल्पद्रुम को कुछ नही समझता। मन मे कामधेनु को भी नही देखता (कुछ विशेष महत्त्व नहीं देता), निधि का ध्यान नही करता, किन्तु दिन-रात अतिरिक्त गुणशाली कपर्दि की ही सेवा करता हूँ।'

इसके बाद प्रासाद बनवाया।

137. एक बार मन्त्री ने सोचा कि श्री शत्रुंजय के कर्मस्थान में जिसे छोड़ जायेंगे वह देवद्रव्य को नष्ट कर देगा। यह सुनकर पौषधागार में श्री विजयसेन सूरि के पास गया। गुरु की वन्दना की। छोटे आचार्य श्री उदयप्रभसूरि की भी (वन्दना की), उन्हें मन्त्री ने सत्रह योजन दूर के किसी विद्वान् को बुलाकर पढ़वाया था। तपोधनों को भी (मन्त्री ने) 25 नमस्कार किये। एक तपोधन को, जो वृद्ध और शान्त था, नमस्कार का प्रत्याख्यान करते देख बोला—"भगवन्, देवद्रव्य की रक्षा या उपेक्षा में से कौन श्रेयस्कर है। यदि रक्षा तो इस वृद्ध तपोधन को देने की कृपा

करूँ जिसे शत्रुंजय हो जाऊँ। दूसरे तो वहाँ खानेवाले ही हैं।' गुरु ने कहा, 'यह ठीक नहीं है।' गुरु को जबर्दस्ती मनाया। उन्होंने तपोधन से कहा, 'मन्त्री यह कार्य देने को कह रहा है।' उसने कहा, 'भगवन्, मैंने तो निस्तार के लिए दीक्षा ली है, द्रव्य का खाकर उसे कैसे मलिन करूँ?' मन्त्री ने कहा, 'यह मालिन्य नहीं, भूषण है, क्योंकि इसमें देवद्रव्य की रक्षा करना है।' आग्रह करके उसे भेजा। वह अपने दर्शनमार्ग मे रहता हुआ देवलोक को देखने लगा। एक बार आदेशवर्ती खादकों ने कहा, 'भगवन्, आप तीर्थ के महाध्यक्ष हैं। आपके पास देव नमस्कार के लिए ठक्कुर और व्यवहारी आते हैं। इन मलिन जीर्ण वस्त्रों का पहनना अच्छा नही है। वस्त्र में क्या दोष है? सुन्दर वस्त्र पहनिए।' उसे (सुन्दर वस्त्र) ग्रहण कराया गया। ऐसे होने के बाद फिर कहा, 'बहुत आदमी आपके साथ पर्यालोचना करते है, फिर उद्गीत वदन होकर रहना क्यों?' इस प्रकार बाद को उसे ताम्बूल (पान) भी ग्रहण कराया। फिर बोले, 'आपकी भिक्षा-बेला के कारण यहाँ काम में बाधा पहुँचती है, रसोई खाने में क्या दोष है?' उसे (इस प्रकार) रसोई का लोलुप भी बनाया। 'भगवन्, देखिए पैर से चलना अच्छा है या पालकी से?' यह भी कराया। एक बार 15 आदमियो को साथ ले पालकी से पालीताराक में जाने लगा। मन्त्री मुखकोश और धौतवसन पहने पैदल ही सामने आये। मन्त्री ने पूछा, 'ये कौन हैं?' आगे के आदमियों ने कहा, 'यह आपके भेजे हुए मठाधीश हैं।' मन्त्री ने पालकी रखवाकर वन्दना की। कहा, 'नीचे का काम करके जरा शीघ्र ऊपर पधारिए।' वह लज्जित हुआ। ऊपर बुलाने पर भी नहीं जाता। और बोला, 'मैंने अनशन ग्रहण किया है। मन्त्री ने मुझे इतने साधुओं के बीच से चुनकर भेजा था, और मेरा यह आचार? आपको और गुरु को मैं मुख कैसे दिखाऊँ? यहाँ के लिए कोई दूसरा कार्यकर्ता तजबीज कीजिए।' ऊपर जाकर अनशन करके स्वर्ग गया। मन्त्री ने यात्रा करके नगर में आकर गुरु से उसका सारा वृत्तान्त कहा। (PS—गुरु ने कहा, 'इसके बाद कोई साधु द्रव्य चिन्ता न करे। यही ऐसा हो गया!')

138. महं. अनुपमदेवी ने 1292 संवत् मे पंचमी उद्यापन किया। उसमें 25 समवसरण, श्री शत्रुंजय में 32 वाटिका, रैवत मे 16, तेजलपुर में पौषधागार और 'कुमर सर' के साथ एक देवमन्दिर (बनवाये)। झीझरीआ ग्राम में प्रासाद, सरोवर, और वापी (बनवायी)। लूणिगवसही के ग्रास के लिए डाक और डमाणी ये दो गाँव दिये। तपोधनो के उपकरण में, प्रत्येक के नाम पात्र और दोरु, झोली, डांडा प्रभृति ग्राम दिये। कोई 13 यात्राएँ (भी) कहते हैं।

[यहाँ B प्रति में यह वर्णन विशेष विस्तार से लिखा पाया जाता है। जैसे···]

139. इसी प्रकार महं. अनुपमदेवी ने 1292 में पंचमी का उद्यापन किया। उसमें पाच रंग के 25 समवसरण करके सूरि को दिये। इसी प्रकार 25 समवसरण महं. कुमारदेवी ने और 25 महं. ललितादेवी ने। इसी प्रकार महं.

आसराज वसही ने अपनी माता के कल्याणार्थ बनवाये। महं. मल्लदेव और महं. लूणिग के कल्याणार्थ अर्वुद पर्वत पर। उसकी सात बहनें थी। उनके कल्याण के लिए सात मन्दिर बनवाये। उनकी सखियों के कल्याणार्थ सात देव-कुलिकाएँ बनवायी। जगन्नाथ की पूजा के लिए श्री शत्रुंजय के तल में 32 वाटिकाएँ बनवायी। रैवत गिरि पर 16, तथा श्रीतेजलपुर में प्रासाद, पौषधागार और कुमार-सर। इसी प्रकार श्रीझरिया ग्राम में प्रासाद, वापी और तालाब। अर्वुद पर्वत पर लूणिग वसही में श्री नेमिपूजा के लिए डाक और डामणी ये दो गाँव दिये। इसी प्रकार 14 तपोधन करण और उनके नाम से दोरड, झोली, डाँडा प्रभृति प्रति-ग्रामणियों की स्थापना की। इस प्रकार सवा लाख सर्वकीर्तन बिम्ब, जो पत्थर और पीतल के थे, बनवाये। 18 करोड़ 96 लाख तो शत्रुंजय के तल मे, 12 करोड़ 80 लाख गिरनार पर्वत पर, 12 करोड़ 53 लाख अर्वुद पर्वत पर, 184 पौषधागार, 500 सिंहासन जो दाँत और काठ के बने थे, पट्टसूत्र (रेशम) के बने हुए 505 समवसरण। तीर्थयात्राएँ बारह की, कोई-कोई साढ़े तेरह भी कहते हैं। 700 ब्रह्म-शाला, 700 सत्राकार, 700 तपस्वियों के मठ, 84 मसजिद, 35 गढ, 64 सरोवर, 700 वापी बनवायी। माहेश्वर (शिव) के 3 हजार नये और पुराने मन्दिरों का उद्धार किया, 1304 शिखरबद्ध जैन प्रासाद, 2300 जीर्णोद्धार और 21 आचार्य पद बनाये। 3 सरस्वती भाण्डार, भृगुपुर स्तम्भतीर्थ और पत्तन मे। 18 करोड़ द्रम्म दण्ड, कलश और पुस्तक में व्यय किया। 1500 तपोधनों का प्रतिदिन विहार, 500 ब्राह्मणों को भोजन, 100 कार्पटिकों को भोजन कराया जाता था। दक्षिण में श्रीपर्वत, पश्चिम मे प्रभास, उत्तर में केदार और पूर्व में वाराणसी। इस प्रकार भूमि मे सब मिलाकर 3 अरब 32 करोड़ 84 लाख 7 हजार 4 सौ 14 (3328407414 द्रम्म)···।

140. भीमराजा के स्वर्गवासी होने पर राणा लवणप्रसाद (उनके) दो पुत्र— वीरम और वीरधवल में से किसी को राज्य पर नहीं बैठा सका। पहला पत्तन दखल करने का प्रेमी था और दूसरा दानी और योद्धा था। इसके बाद एक दिन राणा वीरधवल ने वण्ठ को पान दिया। उसने (उधर-इधर) देखकर एक किनारे (फेंक दिया), इस प्रकार दो-तीन बार किया। राणा ने पूछा, 'क्यों रे, त्याग देता है?' (उसने कहा—) 'स्वामी, इसके भीतर काले-काले कीड़े हैं।' राणा ने मन्त्री से कहा कि मैंने (वस्तुतः) राजा न होकर भी लूति (   ) के द्वारा राजा किया गया है।

141. इसके बाद विश्वमल्ल (वीसल, वीसलिक) जब कुछ जवान हो चला तो धवलक्क से, सबसे पूछकर, मन्त्री को पीछे छोड़ दिया। तेजःपाल को साथ लेकर पत्तन मे गया और राणा तथा वीरम से विदा लेकर बड़ी लावलश्कर के साथ गंगा की ओर चला। इसके बाद मतोड़ा तीर्थ में दानादि करके···भीतर प्रवेश किया। ब्राह्मणों के बोलने पर भी वह न डूबी। तेज.पाल ने कहा, 'हृदय में कुछ दुःख है क्या?' राणा ने कहा, 'राज्य तो वीरम का होगा, वीसलिक (विश्वमल्ल) रोयेगा।' (तेज.पाल बोला) 'मेरे हाथ में जल दो—वीसल को मैं

राज्य दूँगा।' मन्त्री ने इस प्रकार हाथ का जल त्याग किया—'यह चिन्ता न करना।' इसके बाद कुण्डी डूब गयी। तेज.पाल सुकृत्य विधान करके क्रमशः पत्तन में आया। इधर राणा तेजःपाल को आया सुनकर शोक के साथ सभा में बैठा। इतने में तेजःपाल ने···में ही विश्वमल्ल को राणा पदवी का टीका दे दिया। बाजा बजता सुनकर राणा ने पूछा, 'विश्वमल्ल के उत्तारक में यह क्या हो रहा है?' इधर तेजःपाल, राजा के गृह आया। राणा ने पूछा, 'तेजल! बाजा बजने का क्या कारण है?' 'महाराज, विश्वमल्ल को स्वामी (वीरधवल) के पट्ट पर अभिषिक्त किया है।' इस पर गोध्रियक ने कहा, 'राजा उसका अभिषेक करेंगे या तुम?' 'मैं क्यों नहीं?' 'तुम तो पट्ट के पदाति (सेवक) हो।' 'आज अपने स्वामी के लड़के को राणा बनाया है, कल राजा बनाऊँगा।' इस प्रकार जब गोध्रिय और तेजःपाल विवाद करने लगे तो राणा ने रोका। समाचार पूछकर पुत्र का और्ध्वदैहिक (श्राद्ध) किया।

श्री वीरधवल के स्वर्गगमन करने पर मन्त्री वस्तुपाल ने कहा—

198. 'और ऋतु तो क्रमशः आते-जाते रहते हैं, पर ये दो ऋतुएँ आकर फिर नहीं गयी। वीर वीरधवल के बिना लोगों की आँखों में वर्षा और हृदय में ग्रीष्म (सदा बने रहे)।'

यहाँ पर मौजदीन की माता का प्रबन्ध (लिखा जा रहा है)

[यह सम्बन्ध P संज्ञक आदर्श में नहीं लिखा है; पर B संज्ञक आदर्श में पाया जाता है। वहीं से उद्धृत किया जाता है। वह इस प्रकार है:]

142. इसके बाद सुलतान मौजदीन की माता और कादिक हज-यात्रा करने के लिए पत्तन आये। मन्त्री ने प्रवेशोत्सव करके उन्हें पाहुना (अतिथि) बनाकर भेजा। मन्त्री की आज्ञानुसार, स्थान-स्थान पर, गौरव प्राप्त करते हुए, वे हज-यात्रा करके लौटे। (लौटती बार भी) उन्हें नगरप्रवेश (के उपलक्ष में उत्सव) कराके भोजन कराया। माता (सुलतान की) ने कहा कि 'तुम सुलतान से भी अधिक (प्रिय) मेरे पुत्र हो। कुछ माँगो।' 'माँ, नागपुर के निकट मकडाणा गाँव में एक पत्थर की खान है। उसमें के तीन पत्थर अपनी माता से माँगता हूँ।' उसने कहा, 'ऐसा करूँगी कि मेरा पुत्र तुम्हें वह दे दे।' (विदाई के समय भेंट में साढे 500 सौ तेजी भेजा। इसके बाद [illegible] के पास [illegible] से पूछा, 'सुखपूर्वक यात्रा हुई?' (गुरु ने कहा [illegible] की कृपा [illegible] ी क्या

पहुँची। मन्त्री संघ का सम्मेलन करके यात्रा के लिए ऊपर गया। उसने अजलि बाँधकर संघ की विज्ञप्ति की—'संघ ध्यान से सुने। यह मेरा मनोरथ कदापि सिद्धि प्राप्त न हो; क्योंकि पहले के तीर्थ के अनर्थ होने पर यह बिम्ब स्थापित किया जायगा। यह बात युगान्त मे भी न घटे। पर जाना नही जाता। यदि काल-योग से अनर्थ हो जाय तो श्री संघ कृपा करके इस बिम्ब को स्थापित करे।' श्री संघ के अंक (गोद) मे ही यह रखा गया। 'एक फलहिका युगादिदेव की, एक पुण्डरीक की और एक कपर्दी की'—ऐसा कहकर भूमिगृह मे रख दिया।

143. इस प्रकार दोनों मन्त्री पुण्य और राज-काज करते रहे। एक बार लूण (लवण) प्रमाद ने तेजल (तेजपाल) से कहा, 'मन्त्री, किसे राजा बनाया जाय? वीरधवल तो स्वर्गगामी हुआ। उसका लड़का अभी बच्चा है। यदि तुम्हारे विचार मे आये तो वीरम को राज्य दिया जाय।' मन्त्री ने कहा, 'स्वामिन्, मैंने तो अपने स्वामी के पुत्र वीसल को देना स्वीकार किया है।' राणा ने कहा, 'यद्यपि ऐसा है तथापि मेरी बात मानो।' मन्त्री के मान लेने के बाद, रात मे वीरम ने आकर राणा को लात मे मारकर कहा, 'क्यो रे बूढ़े, आज भी राज्य की आशा नहीं छोडता? क्या द्वितीय पुत्र के मरने की भी अपेक्षा कर रहा है?' ऐसा कहकर चला गया। राणा ने सोचा—'इसने कीलिका-भंग की भी इन्तजारी नही की। वह कौन है जो प्रातःकाल पहर-भर के भीतर वीसल को ले आये!' नागल नामक भाट के लड़के ने कहा, 'मैं रात के पिछले पहर धवलक्कक जाऊँगा। उसके बाद वह हाथी पर चढ़कर आयेगा'। उसे लेख देकर भेजा। इसने वीसल को सोते से उठाकर कहा, 'यदि तुम राजा होओ तो मुझे क्या दोगे?' 'तुम्हें मन्त्री बनाऊँगा।' 'तो चलो।' करभी पर चढकर आया। प्रात.काल राणा समस्त परिग्रह को लेकर सहस्रलिंग के किनारे ठहरा था। वीसल ने वहाँ आकर राणा को नमस्कार किया।

इसके बाद राणा ने तिलक करके तूर्यवाद्य के साथ धवलगृह में लाकर सिंहासन पर बैठाया। वीरम जब तक 'क्या-क्या' कर रहा था तब तक बधावे के साथ (लोगो ने) वीसलदेव की आज्ञा सुनी। 12 हजार घोडों के साथ पृथक् होकर रहा। इधर तेजःपाल की बुद्धि से राजा ने सोचा—'वृद्ध का वीरम के ऊपर मोह है, कही इस (वीसल को तिलकदान) को विघटित न कर दे।' यह सोचकर कटोरे मे विष लेकर शाम को राणा के पास गया। राणा ने (उस दिन) सोचा था —'मैंने अच्छा नही किया है। अब भी राज्य प्रात.काल वीरम को दूँगा।' बोला, 'द्वार पर कोई प्रवेश करे तो रोक रखना।' इधर राजा, द्वारियों से रोका जाकर भी भीतर पहुँचकर राणा से बोला, 'तात, यह अमृत है, शीघ्र पी जाइए।' 'वत्स, तुम्हारे विचार में ऐसा आया है?' 'आया है।' 'तो ले आओ।' राणा ने कहा, 'तुमसे राज्य-निर्वाह होगा।' ऐसा कहकर पी गया। तत्काल स्वर्ग गया। तेजःपाल का 'राज्यस्थापनाचार्य' यह विरुद हुआ।

144. इसके बाद मन्त्री की बुद्धि के अनुसार श्री वीसलदेव ने तीसरे दिन वीरम से कहा कि 'वीरम मेरे पिता के समान है। अतः यदि कहे तो राज्य छोड़ दूँ

और उनकी सेवा करूँ।' इसके प्रधानों और महाधरों ने वीरम से कहा, 'महाराज, राजा को मानना चाहिए, जो ऐसा कहता है।' वीरम बोला, 'यदि राजा मुझे पाँच नगर एक प्रह्लादपुर, दूसरा विद्यापुर, तीसरा वर्द्धमानपुर, चौथा धवलक्कक और पाँचवाँ पेटेला उद्रपुर तथा वर्ष में 3 लाख द्रम्म देना स्वीकार कर ले तो उसे प्रणाम करूँ।' राजा ने मान लिया। मन्त्री ने तत्काल उस नगर के पास उसी नाम के पाँच ग्राम बसा दिये। वीरम मिला। राजा को प्रणाम करके वीरमवाटक ( ) मे ठहरा। वीसलदेव का राज्य निष्कण्टक हुआ। नागड़ को मन्त्रीपद दिया गया। मन्त्री ने व्यापार (नौकरी) से छुट्टी ली। राज्य से 'वृद्ध अमात्य' इस प्रकार मान पाकर सेवा करते रहे।

199. मनीषी (पण्डित) दुर्गासिंह ने सूत्र पर वृत्ति की थी, किन्तु मन्त्री वस्तुपाल ने विसूत्र (सम्बन्ध न रहने) होने पर भी वृत्ति की थी।

एक बार वीरम ने पाँचों नगर माँगे। राजा ने पाँच गाँव दिखा दिये। उसने कहा, 'नगर माँगे थे।' राजा ने कहा, 'इन नगरो के दे देने पर क्या बच रहेगा?' 'तो नही रहूँगा।' 'जाओ।' वह नौकर-चाकर समेत मालवा देश की ओर जा रहा था। इसी समय राजा ने जाबालिपुर के चाचिगदेव के द्वारा संड्वाड़ी घाट के पास उसे मरवा डाला।

145. इधर अर्बुद चैत्य पर गजशाला देखकर यशोवीर मन्त्री ने पूछा, 'आपका पूर्वज श्रीकरण कौन है?' पूछा, 'क्यो?' 'श्रीकरण के बिना गजशाला सत्य नही होती।' इसके बाद तेजःपाल ने हाथी मँगा लिया। उसे राजा को उपहार मे देकर वर्ष-भर तक 1 करोड़ सोलह लाख चढावे में दिया। उतना ही व्यय भी दिया। किसी कवि ने राजा से कहा—

200. 'हे वीसल, इतने ही से प्राग्वाट (पवार) और लाट में का अन्तर समझ लो कि एक ने तो हाथी का उपायन दिया और दूसरे ने एक गधा।'

तेजःपाल ने वह हाथी इनाम मे दे दिया, और समराक नामक लाट ने एक बेसर ( )। 36 लाख द्रम्मों का घाटा लगने पर दूसरे साल श्रीकरण त्याग दिया।

201. बौद्धों ने बौद्ध, वैष्णवों ने विष्णु भक्त, शैवों ने शैव, योगियो ने योगी और जैनों ने जैन ही समझकर सत्त्वगुण के आधार वस्तुपाल की स्तुति की।

146. सं. 1298 मे मन्त्री राजा से विदा लेकर चला। नागड़ राणा के साथ मण्डली में गया। वहाँ तपोधनसार के सम्बन्ध में शिक्षा देकर अंकेवालिया नामक ग्राम में···प्रासाद बनवाया। तालाब (भी)। तीन सत्र शालाएँ भी बनवायी।

[B संग्रह में यही वर्णन इस स्थान पर कुछ विस्तारपूर्वक लिखा पाया जाता है। वह इस प्रकार है:]

संवत् 1298 साल मे जातक से आयु का अन्त जानकर राजा से विदा ली। 'महाराज, स्वामी के साथ जो घटी-बढी हुई उसे माफ करें।' राजा (बोला—)'हे मन्त्री, ऐसा क्यों कहते हो?' 'देवसेवा के लिए जा रहा हूँ।' 'मन्त्री, तुम मेरे पिता

चौगस्य के समान हो, तुम्हें कैसे भेजें? कदाचित् तुम्हें जो द्रम्म देते हैं उनके विषय में तुम्हें शंका हो। सो न करना।' 'मेरा शरीर तुम्हारे अधिकार में है। द्रम्म क्या चीज है।' 'द्रम्मों का स्मरण छोड़ दो। पर जाओ मत।' मन्त्री बोला, महाराज, द्रम्मों की क्या बात है? वे तो बाहरी चीज हैं। देह भी तुम्हारे ही निमित्त में योजित है। पर महाराज, जब मृत्यु निकट हो तो देवसेवा ही उचित है।' अश्रुपात करते हुए राजा ने छोड़ दिया। मन्त्री लोगों से क्षमा माँगकर श्रीवस्तुपाल महान् परिच्छेद के साथ श्री शत्रुंजय के ऊपर चला। इधर राणा लावण्य के साथ सभी का प्रणाम सुनकर उसे देखने चला। मार्ग में मिले हुए मन्त्री ने कहा, 'राणा राज-काज बिगड़ रहा है। तुम लोग कृपा के साथ चलना।' उसने कहा, 'तुम्हारे घर पर मैं भिखारी हूँ। तुम्हारे दर्शन से ऐसी दृष्टि मिली। मेरे करने योग्य कुछ काम का निर्देश कीजिए।'

202. सज्जनों के स्मरण रखने योग्य (जिन्होंने) कुछ भी सुकृत नहीं किया, उन मनोरथैक सार (जिनके पास मनोरथ ही एक मात्र सार है) लोगों की उम्र तो गई—व्यर्थ ही बीत गयी।

राणा बोला, 'परन्तु कुछ मन में खटक है। मुझसे क्यों नहीं कहते?' 'महाराज मेरे जाने पर वे बनी दुःखी होंगे।' 'मन्त्री, ऐसा क्यों कहते हो? आपसे अधिक सुखी करूँगा। आप यह चिन्ता न करें।' इस प्रकार राणा विदा लेकर चला गया। मन्त्री अंकेवालिया ग्राम में गया। वहाँ गुरु से बोला, 'भगवन् मुझे अनशन दें।' तेजःपाल की अनुमति से गुरु ने अनशन दिया। मन्त्री क्षमित क्षमणपूर्वक परमेष्ठियों का स्मरण करता हुआ स्वर्ग गया। संस्कार के बाद तेजःपाल ने अस्थियों को श्री शत्रुंजय में भेजा। वहाँ स्वर्गारोहण प्रासाद बनवाया। अंकेवालिया नामक ग्राम में भी प्रासाद बनवाया। सरोवर और सत्रशाला भी। वहाँ तीन धर्मस्थान बनाये। तेजःपाल यात्रा करके पत्तन में आया।

147. व्यापार (नौकरी) में 18 वर्ष लगे। इसके बाद बैठना-उठना चलता रहा। इसी प्रकार सं. 1308 में महं. तेजःपाल ने स्वर्ग जाने के लिए राजा से विदा माँगी। उस समय 27 लाख द्रम्म देय थे। राजा ने छोड़ दिया। इसी प्रकार राजा ने तीन लाख द्रम्म धर्मव्यय के लिए वितरण करके तेजःपाल को भेजा। श्री संघ से क्षमा कराके श्री शंखेश्वर के ऊपर चला। चन्द्रोमाणा नामक गाँव में गया। ज्ञान से लेकर देखा कि चन्द्रोमाणा ग्राम में पिछले पहर में मृत्यु होगी। मन्त्री अनशनपूर्वक द्युलोक को गया। वहाँ तीन कीर्त्तन हुए।

148. इसके बाद मन्त्री के स्वर्गवासी हो जाने पर श्री धर्मघोषसूरि वैराग्य से आचिल वर्द्धमान तप करने लगे। श्री शंखेश्वर और पार्श्वनाथ का अभिग्रह (शपथ) भी ग्रहण किया कि 'तपस्या संपूर्ण होने पर देव को नमस्कार करके पारण करूँगा।' तपस्या सम्पूर्ण होने पर देव को नमस्कार करने चले। मार्ग में श्रान्त होकर, प्यासे होकर एक वृक्ष के नीचे देव को नमस्कार करके अनशन ले प्राण त्याग दिये। शंखेश्वर अधिष्ठाता हुआ। ज्ञान से मन्त्री की गति का अन्वेषण न कर सका। जब न जान सका

तो महाविदेह में थी सीमन्धर को नमस्कार करके पूछा, 'भगवन्, वस्तुपाल का जीव कहाँ गया है ?' स्वामी बोला, 'यहीं पुष्कलावती विजय पुण्डरीकिणी (के गर्भ से) कुरुचन्द्र नामक राजा हुआ है। वह तृतीय जन्म में सिद्ध होगा। अनुपमादेवी का जीव इसी देश में श्रेष्ठी की लड़की हुई है। वह आठ वर्ष की हुई है। हमने उसे दीक्षा दी है। देशोना पूर्वकोटि तप-तपकर सिद्ध होगी। इस प्रकार उस व्यन्तर ने इस भरत में वस्तुपाल और अनुपमादेवी की गति प्रकट की।

इस प्रकार वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

[इस प्रबन्ध के अन्त में P संज्ञक संग्रह में निम्नांकित विशेष विवरण पाया जाता है :]

149. अब आगे का प्रबन्ध कहना चाहिए। वीरधवल ने वामनस्थली में जयतलदेवी के भाई सांगण और चामुण्डराज को मारा। युद्ध होने पर 14 सौ घोड़े (म 5 ज जी C ?)

203.

150. गोध्र का राजा घूघल मण्डलीक तेज.पाल के द्वारा बांधा जाकर धवलकपुर सभा मे लाया गया। तब सोमेश्वर की उक्ति (इस प्रकार थी—)

204. 'जब मार्ग कीचड़ से दुस्तर हो गया हो, जल से भरे हुए सैकड़ों गड्ढों से आकुल हो, गाडीवान थक गया हो, भार बडा विषम हो, सूर्य अस्त हो गया हो, ऐसे कठिन समयों, मैं ऊँचा शब्द करके, तर्जनी उठाकर कहता हूँ कि वीरधवल को छोडकर ऐसा भार वहन करने मे कौन समर्थ है ?'

151. एक बार मन्त्री स्तम्भतीर्थ मे आया। वहाँ आचार्य ने कहा—

205. 'इस असार संसार मे मृगलोचनी (स्त्रियाँ) ही सार हैं।' सुनकर मन्त्री यह सोचकर रुष्ट हुआ कि ये शृंगारी है। आठवें दिन (सुना—) 'जिनकी कुक्षि से है वस्तुपाल, आप जैसे लोग पैदा हुए हैं।' (इस पर) दस हजार दीनार दिये। (गुरु ने) ग्रहण नही किया। मृगुपुर मे लेप्य प्रतिमा की जगह पर इसी द्रव्य से दूसरी प्रतिमा बनवायी।

152. एक बार मन्त्री ने सफेद वाल देखकर सोचा—

206. किसी कला का अध्ययन नही किया, न कुछ तपस्या ही की। पात्रों को कुछ दान भी नही दिया और यह मधुवय बीत गयी।

207. आयु, यौवन और धन जब केवल याद करने भर के लिए रह जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं) उस समय जो मति होती है, वही अगर पहले होती तो परमपद दूर नही था।

153. सघ के प्रारम्भ मे नरचन्द्रसूरि ने कहा—

208. 'परम अर्हत सैकडों राजाओ के स्वामी चौलुक्य जिनेन्द्र की आज्ञा से जानते हुए भी, निर्ग्रन्थ जनो को (जिन भक्तों को) अनघ दान न दे सके, वे अपने चारु चरित्र से स्वर्ग को प्राप्त हुए किन्तु सतपात्रों मे दान देने की इच्छा से, हे

वस्तुपाल, निश्चय ही वे तुम्हारा रूप धारण करके गुर्जरभूमि में अवतीर्ण हुए हैं।'

मन्त्री ने यात्रा के समय वृषभ के प्रति यह श्लोक पढ़ा—'आस्यं कस्य न वीक्षितम्' इत्यादि।

209. जो ध्यान जुआड़ी का जुए के प्रति, विरही का प्रिया के प्रति, बहेलिये का लक्ष्य के प्रति होता है, वही ध्यान तुम्हारे मत में मेरा हो।

रैवत में नेमि के प्रति—

210. वह कल्पद्रुम भी वृक्ष है और अन्य वृक्ष भी वृक्ष हैं, चिन्तामणि भी मणि है और अन्य मणियाँ भी मणि है! धिक्कार है उन्हें जो जाति मात्र देखते हैं, (जिनके लिए) जहाँ भी रैवत पर्वत पर नेमिदेवि हैं (वहाँ बिताया गया) दिन भी दिन है और अन्य दिन भी दिन हैं!

154. एक बार दिल्ली से मौजदीन की सेना चली। 4 प्रयाण होने पर राणा को खबर मिली। वस्तुपाल ने बीड़ा लिया। एक लाख अश्व लेकर अर्बुद गिरि पर उसे मारा। (सेना) तितर-बितर हो गयी। राणा ने परिधान (पहनावा) दिया। कहा, 'त्वमेव में गुणवान्' इत्यादि।

नागपुर का पूनउसा मन्त्रि-संघ में मिला। वहाँ (उसने कहा—) 'अद्य मे फलवती पितुराशा.' (आज मेरे पिता की आशा सफल हुई)। श्री युगादि फलही तथा पुण्डरीक, चक्केश्वरी, तेजपुर बिम्ब और पार्श्वममाय की मूर्त्ति—ये पाँच फलहियाँ खान से मँगायी।···दिल्ली से लौटे हुए मन्त्री को राणा ने दस लाख हेम (सुवर्ण-मुद्रा) दी। उसने उसी समय ब्राह्मणों को दे दी। उस समय के काव्य ये हैं—

211. 'हे मन्त्री, एक द्विजराज (चन्द्र और ब्राह्मण) को देखकर कमलगण संकुचित हो जाते हैं, किन्तु लाख द्विजराजों के आने पर भी तुम्हारा हाथ-रूपी कमल सदा विकसित रहता है।

212. 'हे मन्त्रीश्वर वस्तुपाल, शत्रुओं के उच्चाटन में, स्त्रियों के आकर्षण मे, स्वामी-हृदय को वश में करने में अकेला तुम्हारा शासन ही स्फुरित हो रहा है।'

नानाक नागर ने भी कहा—

213. 'सज्जनों की यह बात सुनकर कि तुम्हीं एकमात्र भुवनोपकारक हो, तुम जो लज्जा से सिर नवाये पृथ्वीतल की ओर देख रहे हो, सो हे वाग्देवीवदनारविन्द के तिलक श्री वस्तुपाल, निश्चय ही पाताल से बलि का उद्धार करने की इच्छा से रास्ता खोज रहे हो।'

इस पर भी सोलह हजार दान दिया।'

155. एक बार अनुपमा अर्बुदचैत्य पर आयी। वहाँ कर्मस्थाय के कारीगरों को निरुत्साह देखकर बोली—

214. 'राजा के भ्रूपल्लव के अन्त में बिना किसी सहारे लटकी हुई अपनी श्री को भी सेवक स्थिर समझते है।'

उसने पूछा, 'शीघ्र हो जाय इसका उपाय क्या है?' उन कारीगरों ने कहा, (हम लोगों की) 'वृत्ति दूनी कर दीजिए।' कर दी गयी। फिर बन गया।

सुकृती हो। तुम्हीं इनकी रक्षा करना।'

[समुद्र की चिट्ठी]

227. 'स्वस्ति। वन से घिरे हुए भूमिरूप वासस्थान से क्षीर और नीर के अधिपति (समुद्र) पृथ्वी पर के राजा के मन्त्री वस्तुपाल को आदर के साथ समझाते हैं कि यह जो हमारी लड़की (लक्ष्मी) है उसमें यदि कोई कुपुरुष-जनित चपलता का दोष हो तो आप उसे नि.शेष भाव से मूलतः मार्जना करें; क्योंकि आप अपने गुणों से सम्पूर्ण जगत् के प्रिय हैं।

228. 'अन्य मन्त्रीगण मुखमुद्रा के साथ हाथ मे मुद्रा धारण करते है किन्तु हे दानी वस्तुपाल, आपके ये दोनों ही (हाथ और मुख) उन्मुद्र (खुले हुए) हैं।

229. 'हे वस्तुपाल, आपकी कीर्ति चन्द्रमा की कान्ति का विभव धारण करती है, प्रताप सूर्य के तेज की प्रौढता धारण किये है। तुम्हारी बुद्धि पण्डितो की आराधना करनेवाली है। तुम्हारा विपम दान कर्ण आदि राजाओं की याद दिलाता है। सो ऐसा तुम्हारे पास कुछ भी नही है जो संसार का प्रिय न हो।

महं यशोवीर ने (कहा—)

230. 'जिस वस्तुपाल ने लक्ष्मी को प्रसन्न करते हुए, रति को शोभित करते हुए, विश्व को वश करते हुए, शिव को प्रसन्न करते हुए, मुनियों को मुदित करते हुए, सज्जनों के चित्त में सदा जाग्रत रहते हुए, युद्ध मे असंख्य बाणों को फेंकते हुए, रूप और श्री को पुष्ट करते हुए, कामदेव की निकटता प्राप्त करके यह द्रव्य-व्यय का विधान किया है।

231. 'हे सचिव, तुम्हारा तटाक (सरोवर) प्रशंसित हंसो, चचल कमलों द्वारा प्रवाहित तरंगों, भीतर अति गहरे जल, चंचल बकों के ग्रास से भीतर लीन (छिपे हुए) मत्स्यो, किनारे पर लगे हुए वृक्षों के नीचे शयन की हुई स्त्रियों के प्रणीत गीतो से खेलते हुए···और चलते हुए चक्रवाकों से सुशोभित हो रहा है।'

यहाँ पर पण्डित सोमेश्वर ने सोलह यमक काव्यों के लिए 16 हजार द्रम्म पाये। (फिर) पं. सोमेश्वर ने···

232. 'शिव (अब भी) दिशाओं का वस्त्र पहने है! यह सूर्य सवारी की विपमता का कष्ट अब भी वहन कर रहे हैं, लहू की आशंका से चन्द्रमा उतरता हुआ विचरण कर रहा है और नाग लोग गरुड़ से भय पा रहे हैं! (इधर) रत्नों का घर समुद्र पडा हुआ है और सुमेरु पर आज भी सोना है। फिर मैंने क्या दिया, किसकी रक्षा की और उपार्जन ही क्या किया जिस पर घमण्ड करूँ?

233. 'कलि को ग्रास करने मे सदा जाग्रत जिनके हाथों में कृपाण खेलता रहता है, अपने तेज की लहर से जिसने शत्रुओं के प्रताप को पी लिया है, जो युद्ध की वीरता के आरम्भ में अपने निर्दम्भ केलि से जयलक्ष्मी को प्रसन्न करके उसका कामुक बना है, उस वस्तुपाल की जय हो।

234. 'हे वस्तुपाल, यदि प्रख्यात चरित्रपुरुषों के साथ तुम्हारी तुलना हो सके तो वह कृत (सत्य) युग के कृती पुरुषों से ही हो। हे च[illegible], इस समय चतु-

215. इधर समुद्र है, इधर मृत्यु है, इधर वृद्धावस्था है, इधर व्याधि है; हाय, इन चारों से जन्तुगण सदा पीड़ित होते रहते हैं !

156. यशोवीर ने पहली भेंट के अवसर पर श्री वस्तुपाल से कहा था—

216. हम लोग कानो की परम्परा से आयी हुई आपकी कल्याण-कीर्त्ति सुनकर प्रीति हुए थे। आज आपके दर्शन के समय हमारा मन तृप्त नही होता।···

157. मन्त्री राजा से विदा लेकर परिजन सहित अकेवालिया ग्राम में गया।

217. 'मेरे जन्मधारणकरण-रूपी रोग के नाश के लिए गुरु ही वैद्य हो, युगादिनाथ का ध्यान रसायन हो और समस्त भूत मात्र पर दया ही पथ्य हो।

218. 'लक्ष्मी मिली, सुख भी मिला, पुत्रों का मुख भी देख लिया और जैन दर्शन की पूजा की। मुझे अब मृत्यु का भय नहीं है।'

उस समय अनशन के समय मन्त्री की चिन्ता (यही थी)।

219. 'जिन्होने सज्जन जनो के स्मरण करने योग्य कुछ भी सुकृत नही किया उन मनोरथ-भर सार रखनेवाले (मुझ जैसे) मनुष्यों की उम्र यो ही (व्यर्थ) गयी।

220. 'मैंने जिन-धर्म की सेवा से जो धन पैदा किया, उसके द्वारा जन्म-जन्मान्तर मे जिन-धर्म की सेवा ही हुआ करे।'

यह कहता हुआ मन्त्री वस्तुपाल स्वर्ग गया। उसके बाद तेज:पाल के स्वर्ग जाने पर इस प्रकार लोग कहने लगे—

221. 'क्या करें, किसका उपालम्भ करें, क्या ध्यान करें और क्या स्तुति करें ? अब किसके आगे अपना मुंह ले जायें, किसे दु.ख की कथा सुनायें ? हाय, आंगन मे का कल्पवृक्ष सूख गया, चिन्तामणि जल गयी, कामधेनु क्षीण है और हाय रे दैव, काम कलश टूट गया !'

(सं. 1308) मे तेज.पाल स्वर्ग गया।

[B संज्ञक आदर्श मे इस प्रबन्ध के अन्त में निम्नांकित वस्तुपाल-सम्बन्धी काव्य पाये जाते हैं।]

222. चार हजार पाँच सौ सेजपालक ( ),505··· के रथ,

223. अठारह सौ वाहिनी और इतनी ही पालकियाँ, 2 लाख तपोधन (श्वेताम्बर), एक लाख दिगम्बर,

224. रत्न के आसन लगाकर वृप पर शोभित, 3 सौ तीस चर, 300 बन्दी (मागध), चार हजार घोड़े,

225. चार सौ आठ महाग और सत्तर लाख मनुष्य—श्री वस्तुपाल की प्रथम यात्रा की यह आनन्दकरी संख्या है।

[भारती की पत्री वस्तुपाल के नाम]

226. 'स्वस्ति। श्री ब्रह्मलोक मे कविजनो की जननी सरस्वती पृथ्वी पर श्री वस्तुपाल का कुशल चाहती है। तुम ऐसा करना। समस्त विद्वज्जन के लिए कल्प-द्रुम के समान था, वह भोज भी अब नही रहा। इसलिए ये दु.ख पा रहे हैं। तुम

सुकृती हो। तुम्हीं इनकी रक्षा करना।'

[समुद्र की चिट्ठी]

227. 'स्वस्ति। वन से घिरे हुए भूमिरूप वासस्थान से क्षीर और नीर के अधिपति (समुद्र) पृथ्वी पर के राजा के मन्त्री वस्तुपाल को आदर के साथ समझाते हैं कि यह जो हमारी लड़की (लक्ष्मी) है उसमे यदि कोई कुपुरुष-जनित चपलता का दोष हो तो आप उसे नि:शेष भाव से मूलतः मार्जना करें; क्योंकि आप अपने गुणों से सम्पूर्ण जगत् के प्रिय है।

228. 'अन्य मंत्रीगण मुखमुद्रा के साथ हाथ मे मुद्रा धारण करते है किन्तु हे दानी वस्तुपाल, आपके ये दोनो ही (हाथ और मुख) उन्मुद्र (खुले हुए) हैं।

229. 'हे वस्तुपाल, आपकी कीर्ति चन्द्रमा की कान्ति का विभव धारण करती है, प्रताप सूर्य के तेज की प्रौढता धारण किये है। तुम्हारी बुद्धि पण्डितो की आराधना करनेवाली है। तुम्हारा विषम दान कर्ण आदि राजाओ की याद दिलाता है। सो ऐसा तुम्हारे पास कुछ भी नही है जो ससार का प्रिय न हो।

महं यशोवीर ने (कहा—)

230. 'जिस वस्तुपाल ने लक्ष्मी को प्रसन्न करते हुए, रति को शोभित करते हुए, विश्व को वश करते हुए, शिव को प्रसन्न करते हुए, मुनियो को मुदित करते हुए, सज्जनो के चित्त मे सदा जाग्रत रहते हुए, युद्ध मे असख्य वाणो को फेकते हुए, रूप और श्री को पुष्ट करते हुए, कामदेव की निकटता प्राप्त करके यह द्रव्य-व्यय का विधान किया है।

231. 'हे सचिव, तुम्हारा तटाक (सरोवर) प्रशंसित हसों, चचल कमलों द्वारा प्रवाहित तरंगों, भीतर अति गहरे जल, चंचल वको के ग्रास से भीतर लीन (छिपे हुए) मत्स्यों, किनारे पर लगे हुए वृक्षो के नीचे शयन की हुई स्त्रियों के प्रणीत गीतों से खेलते हुए···और चलते हुए चक्रवाकों से सुशोभित हो रहा है।'

यहाँ पर पण्डित सोमेश्वर ने सोलह यमक काव्यों के लिए 16 हजार द्रम्म पाये। (फिर) पं. सोमेश्वर ने···

232. 'शिव (अब भी) दिशाओं का वस्त्र पहने है! यह सूर्य सवारी की *विषमता का कष्ट अब भी वहन कर रहे है, लहू की आशंका से चन्द्रमा उतरता हुआ* विचरण कर रहा है और नाग लोग गरुड से भय पा रहे हैं! (इधर) रत्नों का घर समुद्र पडा हुआ है और सुमेरु पर आज भी सोना है। फिर मैंने क्या दिया, किसकी रक्षा की और उपार्जन ही क्या किया जिस पर घमण्ड करूँ?

233. 'कलि को ग्रास करने में सदा जाग्रत जिनके हाथों मे कृपाण खेलता रहता है, अपने तेज की लहर से जिसने शत्रुओं के प्रताप को पी लिया है, जो युद्ध की वीरता के आरम्भ मे अपने निर्दम्भ केलि से जयलक्ष्मी को प्रसन्न करके उसका कामुक बना है, उस वस्तुपाल की जय हो।

234. 'हे वस्तुपाल, यदि प्रख्यात चरित्रपुरुषों के साथ तुम्हारी तुलना हो सके तो वह कृत (सत्य) युग के कृती पुरुषो से ही हो। हे चतु र, इस समय चतु.-

समुद्र से बँधी हुई इस पृथ्वी पर कौन अरसिक तुम्हारे जैसा कोविद है !

235. 'मुंज, भोज आदि के मुखकमल के वियोग से विधुर अपने मन को भारती श्री वस्तुपाल के मुखचन्द्र पर विनोद कराती है।

236 'तुम जानती हो मैंने अपने मन में एक सर्वोपकार व्रती को धारण किया है ? 'क्या नाम है ? सूर्य ?' 'नहीं।' 'चन्द्रमा ?' 'नहीं।' 'कल्पवृक्ष ?' 'नहीं।' 'मेघ ?' 'नहीं।' 'चन्दन ?' 'नहीं ?' 'श्री वस्तुपाल ?' 'अबकी बार तुमने समझा।' इस प्रकार पार्वती और शिव की उक्तियाँ तुम्हारी रक्षा करें।

237. 'गाम्भीर्य मे समुद्र, दान मे बलि, प्रताप में सूर्य, सौन्दर्य में कामदेव, पुरुषार्थ मे रामचन्द्र, वाङ्मय मे वाचस्पति—ये लोग इस लोक में उपमान थे, वे सभी उनसे अधिक वस्तुपाल के रहने के कारण उपमेयत्व को प्राप्त हो गये।

238. 'यह श्री वस्तुपाल हार की भाँति किनके हृदयों मे रहकर शोभा बढ़ाता है ? अन्य नियोगी लोग आँख में घुसे हुए पराग के कण की तरह पीड़ा दान करते हैं।

239. 'कज्जलमल से सज्जित दीपक अनवरत स्नेह (तेल) का नाश करता हुआ प्रकाशित होता है, चन्द्रमा का मण्डल बार-बार खण्डित होता है, सूर्य क्रूरतर भाव से उदित होकर किसी के तेज को नहीं सह सकता, तो फिर किस तेजस्वी के तेज के समान बतायें इस श्री वस्तुपाल नामक तेज को ?

240. 'इस संसार पथ में स्थान-स्थान पर निवास करनेवाले राहगीर कितने मनुष्य नहीं आये ? कितने नहीं गये ? अथवा कितने नहीं आयेंगे ? परन्तु विस्मयनी बुद्धि का समुद्र पुण्य-निधि श्री वस्तुपाल ही दस्युओं का विध्वंस करके, उन्हें अपने हाथ में करके पृथ्वी का··· करता है।

241. 'इस महिमा के धाम (वस्तुपाल) के समुद्रत्व की हम प्रशंसा करते है, क्योंकि भयानक ग्रीष्म-रूपी विषम समय के रहते हुए भी, जबकि अन्य लोगो के दान-रूपी जल का शरीर क्षण-भर मे ही क्षीण होकर उनकी दया का किनारा···

242. 'जिसका यश सप्तानन (   ) सप्ति (   ) का सहोदर था, जो सप्त-समुद्र के समान गम्भीर था, जिसकी रुचि सात आँच पर तपाये सोने की तरह निखरी हुई थी, जो सप्तर्षि की सृष्टि तक सप्तद्वीपवाली पृथ्वी के मनुष्यों का मुकुट था, (उसी वस्तुपाल ने) सप्तलोक को चमत्कृत करते हुए, सात प्रकार की दुर्गतियो को नष्ट करते हुए, पुण्य के लिए सात यात्राएँ की।

243. 'वस्तुपाल मन्त्री-रूपी चन्द्रमा की समता चन्द्रमा से कैसे हो ? यह वसुधा (पृथ्वी) देता है और वह (चन्द्रमा) केवल सुधा (अमृत)।

244.

245. 'विष्णु को छोड़कर लक्ष्मी इस (वस्तुपाल) की शोभा बढ़ाती है, इसीलिए भय से शिव ने अपने आधे शरीर से प्रिया को बाँध रखा है।

246. 'वंश से, विनय से, विद्या से, विक्रम से और पुण्य कर्म से, कहीं भी

वस्तुपाल के समान कोई पुरुष, मेरी दृष्टि पथ पर नही आता।'

इस प्रकार वस्तुपाल-सम्बन्धी काव्य (समाप्त हुए)।

158. इसके बाद जब महं तेजःपाल को व्यापार (नौकरी) प्राप्त हुआ तो उसे श्री स्तम्भतीर्थ मे व्यापार (काम) के लिए भेजा गया। वहाँ नोडा सईद का ठाटबाट देखकर उससे कोई भेंट नही करता था। मन्त्री ने यह जानकर उससे भेंट की। एक बार उसने एकान्त मे चिट्ठी पढ़ाने के बहाने उस (नोडा सईद) का सिर काट लिया। उसका भाण्डार भी दखल किया गया। तीन उपवरिका (कोठिलों) में मिट्टी भरी देख उसे स्वयं लिया। सईद के भागिनेय ने राजा से मिलकर सब कह दिया। राजा मं. तेज.पाल पर कुपित हुआ। मन्त्री से बोला, 'आपने अच्छा नही किया। बिना कहे तुमने उसे क्यों मारा?' उसने कहा, 'राजन्, कोई दूसरा भी आपकी आज्ञा का उल्लंघनकारी हो तो नही सहूँगा।' राजा ने कहा, 'तो ग्रहण किये हुए धन के बारे मे शपथ करो, घड़े मे का सर्प खींचो।' यह ठीक होने पर घडे में के सर्प को खीचते समय महं. तेज.पाल ने सबके सामने इस प्रकार कहा, 'मैंने सईद का सबकुछ राजा को दिया है। अगर कभी सईद की धूल मेरे घर में हो तो मुझे सर्प काट ले।' यह कहकर सईद के भागिनेय के पर्यक पर, घर में से सर्प निकालकर फेंका। वह मर गया। वह धूलि तैंतीस करोड़ होकर घर मे रह गयी।

159. एक बार राणा सेना में था। वहाँ उसने मन्त्री से लेखक माँगा। मन्त्री ने कहा, 'यहाँ नहीं है।' राजा ने कहा, 'कल मँगा देना ही होगा।' ऐसा तय होने पर मन्त्री ने घोड़े पर देपाक को भेजा। उसने नगर के भीतर चौराहे पर जाते समय भक्तिपूर्वक श्री वीतराग को नमस्कार किया। बाद को लेखक को उसके घर ले आकर स्वामी को दिया। इसी समय उस नगर मे एक व्यापारी ब्राह्मण रहता था। उसके दो लड़के मर गये। तीसरा पुत्र भी रोगी हुआ। बाद को उसे 6 महीने तक गर्त (गड्ढा) मे डाल रखा। तब व्यन्तर ने कहा, 'व्यापारी, अपने लड़के का रोग क्यों दूर नही करते?' उसने कहा, 'क्या करूँ?' (व्यन्तर बोला) 'देपाक से मुझे पुण्य दिला दो।' तब देपाक को राजा का आदेश भेजा गया। उसके बाद मन्त्री श्री वस्तुपाल के बड़े आग्रह पर देपाक घर मे तो गया, परन्तु भय के मारे व्यन्तर के सामने न जा सका। राजा के आग्रह से लाया गया। व्यन्तर ने उसका सम्मान किया। यह भी कहा कि 'तुमने घोड़े पर से वीतराग को जो नमस्कार किया उसका पुण्य मुझे दो।' उसने कहा, 'तू इसे क्यों लगा है?' व्यन्तर बोला, 'इस (व्यापारी?) ने मेरे रोकने पर भी मेरे दो बैलों को जबर्दस्ती ले लिया था, उसी विरह मे मैं मर गया। इसीलिए मैंने इसके दो पुत्रों को मारा है। इसका पातक कैसे लूँ? इसीलिए इसे छोड़ दूंगा।' तब उसने पुण्य दिया।

160. श्री भृगुपुर से खण्डेराय साखुलाक श्रीस्तम्भतीर्थ में श्री वस्तुपाल के ऊपर सेना लेकर चढ़ आया। उस समय निर्णीत दिन को भूणपाल ने, लड़ाई छिड़ने पर बीस शंख नामक पैदल सैनिकों को शंख समझकर मार गिराया। तब मन्त्री ने

ऐसा है तो दुगुना दान दो।'

164. श्री वस्तुपाल ने प्रथम यात्रा में मन्त्री तेजःपाल को नगर में छोड़कर प्रस्थान किया; क्योंकि भय था कि कहीं दुष्ट लोगों का प्रवेश न हो जाय। तब मन्त्री तेजःपाल को बड़ा विषाद हुआ कि मैं श्री शत्रुंजय की यात्रा में न जा सका। राणा ने बाद को यह देखकर परम आग्रह से भेजा। तब तेजःपाल ने मह देपाक को अपने स्थान पर रखा। बाद को तेजःपाल को आया देखकर मन्त्री ने कहा, 'तुमने अच्छा नहीं किया, क्योंकि मालिक कभी अपना नहीं होता।' तब तक वामन नामक ब्राह्मण ने आकर राजा से निवेदन किया कि 'राजन्, मन्त्री यात्रा के लिए नहीं गया बल्कि निधान (खजाना) गाड़ने के लिए गया है। यदि राजाज्ञा हो तो वह द्रव्य ले आऊँ।' राजा ने कहा, 'दोपहर को याद दिलाना ताकि सेना दूं।' तब तक यह जानकर महं. देपाक ने मन्त्री के पास सन्देश-वाहक संढिपक को भेजा। स्नानीय के अवसर पर संढिपक को उत्सुक भाव से आते देखकर मन्त्री ने तेजःपाल से कहा, 'यह तुम्हारा चरित्र आ रहा है।' संढिपक ने सब निवेदन किया। मन्त्री ने संघ के सामने विज्ञापित किया कि 'प्रसाद आया है।' रात को दोनों भाइयों ने सलाह करके निधान गाड़ने के लिए आदमियों को जंगल में भेजा। वहाँ जब वे आदमी मिट्टी खोद रहे थे तब नये निधान को निकलता देख मन्त्री ने कहा, 'हमें राजा की ओर से कुछ भय नहीं है।' तब तक दूसरे संढियक (सन्देशवाहक) ने आकर हाल बताया कि 'अन्यायकारी वामन को राजा ने गिरफ्तार किया है। और आप लोगों को प्रसाद भेजा है।' इसके बाद कुशलपूर्वक यात्रा विहित हुई।

165. अनुपमादेवी ने गुरु से नन्दीश्वर तपःकरण की उद्यापना पूछी। गुरु ने कहा, 'भद्रे, तुम यह न पूछो।' उसने कहा, 'क्यों?' 'आप पूछनेवाली हैं, मैं कहनेवाला हूँ, अगर न कर सकें तो?' उसने फिर कहा, 'भगवन्, कहिए।' गुरु ने कहा, 'वत्से, अधम है बावनीदान, मध्यम है बावन-बावनी और उत्तम है, नन्दीश्वर का मन्दिर बनवा देना जिसमें 52 आचार्यपद, 52 सिंहासन और 52 पाट, इस प्रकार सबका विधान हो।' देवी ने प्रतिज्ञा की 'तब मैं दूसरी वेला में भोजन करूँगी, जब प्रासाद बनवा सकूँगी।' गुरु ने भी उससे शपथ ली, मैं आचाम्ल (मल) तब त्याग करूँगा जब आपकी प्रतिज्ञा पूरी होगी।' भोजन के समय देवी ने मन्त्री के बर्त्तन में धान का भात और···जल दिया। मन्त्री ने कारण पूछा। उसने कहा, 'आपकी प्रतिज्ञा है कि गुरु के देने से जो शेष रहेगा वह भोजन करेंगे।' पूछने पर गुरु ने सब कुछ कहा। तब कामदेव नामक सूत्रधार (बढ़ई, थवई) को पट दिखाकर मन्दिर बनवाया।

166. एक बार तीर्थयात्रा में संघपति ने शत्रुंजय पर ऐसा सत्रागार खोला जिसमें किसी की रोक नहीं थी। वहाँ संघ वात्सल्य के समय घी घट गया। संघपति के चित्त में विषाद हुआ कि 'सारा रंग फीका पड़ जायगा।' सूरि यशोभद्र ने जाना। आकर्षण-विद्या द्वारा श्रीपत्तन से किसी के घर से घी आनयन किया। पूर्ण रूप से वात्सल्य हुआ। तब गुरु की आज्ञा से संघपति ने उसे घी के द्रम्म दे दिये। उसने

कहा, 'ये द्रम्म कैसे हैं ?' उस (संघपति) ने सारा वृत्तान्त कहा। उसने कहा, 'यदि मेरा घी शत्रुजय के ऊपर साधार्मिक वात्सल्य में खर्च हुआ है तो मैं न लूंगा।' तब उसी (द्रव्य से) श्री पत्तन मे घृत वसतिका बनी।

167. एक बार धवलक्कक मे अनेक सूरि मिलित हुए। उसमे दो पिप्पलाचार्य वक्ता भी आये। उन्होने अनुपमा देवी को इस प्रकार का उपदेश दिया कि 'पात्र-दान कामफल दायक है पर विनोद-दान बहुत।' अनुपमादेवी ने कहा, 'नही।' वे वचन याद करके रुक गये। बाद को वे वेष बदलकर रात में मन्त्री के घर जाकर मन्त्री और देवी के सामने महासती चन्दना का चरित्रगान करने लगे। उन्हें 24 हजार द्रम्म मिले। प्रात.काल अनुपमादेवी को सब दिखाया। उसने (उनकी बात) सच मान ली।

168. एक बार श्री वस्तुपाल ने देशान्तर से आये हुए एक संघ को निमन्त्रित किया जो तीर्थ-यात्रा को जा रहा था। उस समय मन्त्री को उनके पैर धोते देख सेवको ने निषेध किया। तब मन्त्री ने कहा, 'अधमे फलवती.' इत्यादि।

169. एक बार रात को मन्त्री पट्टशाल मे ठहरे हुए श्रीविजयसेनसूरि को नमस्कार करके अपवरक मे ठहरे हुए उदयप्रभसूरि की वन्दना के लिए गया। वहाँ वे नहीं थे। इस प्रकार तीन दिन आकर देखा। चौथे दिन सविनय वृद्ध गुरु से पूछा। उन्होंने कहा, 'मंत्री, आजकल नगर मे एक चाचरीयाक (चच्चर पाठक) विद्वान् आया है। उसी का वचन-विशेष सुनने के लिए सूरि नित्य ही वेश परिवर्तन करके जाया करते है।' यह जानकर श्री वस्तुपाल वहाँ गये। प्रच्छन्नसूरि को देखा। प्रात.काल मन्त्री ने चाचरीयाक को बुलाकर दो हजार दान मे दिया। और कहा, 'तुम पौषधशाला के द्वार पर जो चाँचर है उस पर चच्चार का पाठ करो।' इस प्रकार उसने 6 मास पाठ किया। इसके बाद सत्कारपूर्वक भेजा गया।

170. मन्त्री ने उदयप्रभसूरि से पूछा, 'चौवीस जिनेन्द्रो का ध्यान देवता एक ही कैसे है ? और चौबीसो में से किसका ध्यान उचित है ?' गुरु ने कहा— 'यह सन्देह महान् है। श्री सरस्वती के बिना सन्देह का निर्णय नही होगा।' गुरु ने रात मे देवी की आराधना की। श्री भारती ने सिरहाने यह श्लोक समर्पण किया।

251. तादात्म्य होने के कारण रूढ़ि मे मैं उस परमेश्वर को स्मरण करती हूँ जो वाग्ब्रह्म के पार मे स्थित हैं और जिन्हें परब्रह्म समझा गया है।

मन्त्री ने कहा, 'इसमें भी सन्देह है। सभी दर्शक अपने-अपने देवताओं को परब्रह्म कहते हैं।' फिर सरस्वती की आराधना हुई। देवी ने रात को फिर कहा—

252. 'प्रभु के सुवर्ण···ग्रीवा के अलंकार के अन्तिम दो मणियो मे जिसका नाम अंकित है, हम उसी परमेश्वर की स्तुति करते हैं।···इससे 'अर्हं' यह सिद्ध हुआ।'

171. श्री भृगुकच्छ में श्री मुनि सुव्रतनाथ के अधिष्ठाता श्री बालहंसमूरि नामक विद्वान् थे। उनके मठ में सात सौ घोड़ों का राज्य था। एक बार मन्त्री-संघ

विधानपूर्वक वहाँ आया। स्नान, पूजा प्रभृति की सब विधि हुई। (मन्त्री ने) श्री सूरि को नमस्कार किया। सूरि ने समस्त श्री सघ के समीप आशीर्वाद दिया।

253. 'इस असार संसार में स्त्रियाँ ही सार वस्तु हैं।' यह सात बार पढ़ा और व्याख्या की। तब मन्त्री ने सोचा कि सूरि अति विषयी हैं। इसके बाद गुरु ने उत्तरार्द्ध पढ़ा--

'हे वस्तुपाल, (मैं ऐसा इसलिए) मानता हूँ कि उनकी कुक्षि से आप जैसे (पुरुष) पैदा हुए है।'

तब मन्त्री ने हर्षित होकर देव चरणों के लिए 12 गाँव दिये।

172. एक बार श्री वस्तुपाल ने वडूया ग्राम में श्री माणिक्यसूरि को बुलावा भेजा। पर वे न आये। तब मन्त्री ने बड़ी···विज्ञप्ति बुलाने के लिए भेजी। उसमे यह काव्य था--

254. 'हे सखे माणिक्य! आकाशस्थल के मल को दूर करनेवाले इस प्रकाश पुँज को चारों ओर न छिटका। यह सारे शरीर से काला पुलिन्दराज, जिसने केवल गुंजा-समूह के आभरण से अपना शरीर सुन्दर करना जाना है, तुम्हारी परीक्षा करने योग्य बुद्धि नहीं रखता।'

तब भी सूरि न आये। तब दूसरी विज्ञप्ति में यह श्लोक भेजा। वह इस प्रकार है—'जड़ संगम में प्रहृष्ट, द्विजिह्व (साँपो) का प्रिय, अति तुच्छपद, वटकूप मे (माणिक्य मण्डूक वास) करता है। (इस श्लोक में द्विजिह्व और तुच्छपद श्लेषार्थक है। वे सरि के पक्ष मे भी लग सकते है। सूरि के पक्ष में द्विजिह्व का अर्थ है दुष्ट, झूठा और तुच्छ मर्यादावाला।) इस श्लोक से सूरि रुष्ट हुए। तब आशीर्वाद मे विशेषावदात में यह श्लोक भेजा—

255. 'रे धुनिया, बाँस के आधे-के-आधे स्फुरित करके गुण (गुणा और सूता) के जन्महेतु रूई का हृदय विदारण करते हुए गर्व कर रहा है?'

इस मर्म से मन्त्री के मन मे बड़ा विषाद हुआ। तब···के मन्त्री ने···के पास से नव निष्पादित 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित' भण्डार से रात में चोरी कराके निकलवा लिया। प्रातःकाल सूरि बहुत विषण्ण हुए। चित्त-निवृत्ति के लिए 'वाहरा' का विधान किया। तब मन्त्री ने सात दिन बीतने पर किसी पथिक के हाथ उपलेखपत्र से श्री सूरि को इस प्रकार की विज्ञप्ति भिजवायी कि 'यहाँ पर श्री पूज्य सूरि का पुस्तकागार चला आया है। यदि काम हो तो आइये।' सूरि यह जानकर चले। मन्त्री ने प्रवेश-महोत्सव कराया। तब मध्याह्न को श्री संघ की पूजा के अवसर पर श्री सूरि ने यह काव्य कहा—

256. 'हे देव, हे स्वर्गनाथ, बड़े दुःख की बात है।' 'कौन हो तुम?' 'मैं नन्दन-वन का माली हूँ।' 'खेद की कौन-सी बात है?' 'हाय, आज किसी ने नन्दनकानन से कल्पवृक्ष चुरा लिया है!' 'हूँ, ऐसा मत कहो।' 'क्यों क्या बात है?' मनुष्यों के ऊपर करुणा करके मैंने उसे प्रीतिपूर्वक आदेश किया है। वह इस समय वस्तुपाल के रूप में पृथ्वीतल को तिलकित कर रहा है।

257. वैरोचन राजा इन्द्र के साथ मैत्री स्थापित करके जब एक ही स्वर्ग-लोक में चला गया तब यह लोक द्वितीय पुरुष के लिए दीन मुख से ऊपर और नीचे ताकने लगा—ऐसे समय में वस्तुपाल ने उसे आश्वासित किया।

इसके बाद मन्त्री ने श्री सूरि को विज्ञापित किया। 'इस समय आपके आगमन का कारण ?' गुरु ने कहा, 'हम सरस्वती के पुत्र है, आप भी सरस्वती के कण्ठ के अलंकार हैं। जहाँ वह है वहाँ हम।' यह सुनकर (मन्त्री) हर्षित हुआ।

173. श्री वस्तुपाल की सभा में हरिहर और मदन नामक दो पण्डित बड़े कवि थे। वे नित्य ही एक-दूसरे से झगड़ते रहते। वे दोनों परस्पर मत्सर के मारे ठहर नही पाते थे। तब मन्त्री ने द्वारपाल से कहा कि 'जब एक पण्डित भीतर हो तो दूसरे को न प्रवेश करने देना।' एक बार सभा में हरिहर विद्या-विनोद चला रहा था। इसी समय मदन भी पहुँचा। उसने कहा—

258. 'हरिहर, गर्व त्याग करो। मदन कविराज-रूपी हाथियों के लिए अंकुश है।'

दूसरे ने कहा—

'मदन, मुँह बन्द करो, हरि-हर का चरित मदन की पहुँच के बाहर है।'

तब मन्त्री ने कहा, 'शर्त बदकर जो पहले सौ काव्य बना देगा वह महाकवि है।' ऐसा होने पर मदन ने नारिकेल के वर्णन का 100 काव्य शीघ्र ही बना दिया। पर हरिहर ने साठ ही। तब मन्त्री ने कहा, 'हरिहर, तुम हार गये।' उसने कहा—

259. 'अरे गाँव का जुलाहा, इन गँवारियों के विभ्रम के पात्र अनेक वस्त्र बुन-बुनकर क्या अपने-आपको आयास दे रहा है, समय लगाकर एक भी ऐसा नया वस्त्र बुन कि जिसे राजाओं की प्रियाएँ क्षण-भर के लिए भी कुचस्थल से न सरकायें।'

तब मन्त्री ने हर्षित होकर दोनों को माना।

174. एक बार व्यापार समाप्त होने पर (नौकरी छोड़ देने पर) जब नागड़ मन्त्री व्यापार में नियुक्त था, श्री वीसलदेव का मामा मूलराज प्रातःकाल श्री वस्तुपाल के गुरु की पौषधशाला के निकटवर्ती रास्ते से जा रहा था।···बाद को मन्त्री ने क्षुल्लक का अपमान समझकर उसका हाथ कटवा लिया। भारी कोलाहल हुआ। तब राजा ने रुष्ट होकर वस्तुपाल के वध के लिए सैनिक भेजे। मन्त्रीश्वर ने भी राजा के पास आकर इस प्रकार कहा, 'मैंने क्या किया ?' राजा ने कहा, 'यह तो प्रत्यक्ष ही है।' मन्त्री ने कहा, 'मैं आपका अयश नहीं सह सकता। दर्शन के अपमान से अन्य राजाओं में अयश होगा।' यह वचन सुनकर विचार करके राजा भी प्रसन्न हुआ। प्रसाद दिया।

175. अन्तिम यात्रा में महं- वस्तुपाल को अकेवालीय सरोवर के किनारे आकली ( ) हुई। मन्त्री वहीं रुक गया। भूमि पर रखा गया। श्री संघ ने वहाँ आकर जब उत्सव किया तो मन्त्री के आँसू गिरने लगे। कारण पूछा गया।

तब मन्त्री ने कहा कि 'मुझे संसार के विषय में कोई चिन्ता नही है पर, 'सुकृतं न कृतं किंचित्' इत्यादि।

260. 'जिन लोगों ने राजा की नौकरी के पाप से कुछ सुकृत नहीं किया, उन आदमियों को धूल झाड़नेवालो से भी मूढ़तर मानता हूँ।'

(G) संग्रह में प्राप्त वीरधवल का वृत्तान्त

*176. श्री वीरधवल के वारक (   ) मे नादउद्री का पालित अढार-*हीउ वडूड हरदेव वडूया चाचरीक (कथावाचक) का शिष्य था। एक बार वह आशापल्ली में आया। सात दिन बीतने पर उसका परिवार इस प्रकार कहने लगा कि 'कुछ सम्बल (खर्चा) नही है। चाचर क्षेपण करो।' वह बोला, 'जरा रुको। मैं नित्य ही नगर के मनुष्यों के मन का अभिप्राय देखा करता हूँ।' इधर महाराष्ट्र देश का गोविन्द चाचरीयाक आया। इसे अट्ठारह पुराण और आठों व्याकरण चौपाई छन्द में मुखस्थ थे। उसने कथा शुरू की। उसे चौबीस हजार पारुथा द्रम्म मिले। तब हरदेव कथावाचक परिच्छदो से विशेष उत्साहित होकर लवदोसिक हट्ट मे सायंकाल बैठा। तब उसने सहज रूप से बातें करते हुए सीता-राम का प्रवन्ध कहना शुरू किया। पहले दस-बारह आदमी इकट्ठे हुए। धीरे-धीरे बहुत। आधी रात को सुखासन बांधकर अमात्य आदि लोग सुन रहे थे। इधर वह इस प्रकार उठा कि श्रोताओं को कोई खबर ही न लगी। कथा कहता-कहता उन्हे साभ्रमती (साबरमती) *नदी के तीर पर ले गया। तब गान छोड़ दिया। उस समय शीत से* काँपते हुए लोगो ने यह कहा कि 'ऐसा करो कि सुखपूर्वक नगर में पहुँचा जाय।' तब उसने फिर से उत्तर रामचरित का गान आरम्भ किया। इसके पश्चात् सब लोगों को, जो परमरस में मग्न थे, चौराहे पर ले आया। इस पर लोगों ने मुद्रिका, पट्टकूल आदि दान के साथ तीन लाख द्रम्म दिये।

(G) संग्रह में का वीसलदेव का वृत्तान्त

177. श्री जिनदत्तसूरि के शिष्य पण्डित अमर ने किसी विदेशी को नीरोग बनाया। उसने श्री सारस्वत मन्त्र दिया। इसके प्रभाव से अमर महाकवि हो गया। तब पं. सोमेश्वरदेव के पास रहकर पहले गद्य भारत और फिर छेक-भारत बनाया। तब सोमेश्वरदेव ने वीसलदेव से इस प्रकार कहा, 'राजन्, कवि केवल कर्ता है, पर राजा ग्रन्थ बनवाता है।' यह कहने पर ग्रन्थ विलोकन के लिए पूजा का विधान किया गया। शलाका (सलाई) से यह श्लोक (निकालकर) देखा जो इस प्रकार था—

'दधि मथन विलोलल्लोल दृग्वेणिदम्भा.।'

तब से उसका 'वेणी-कृपाण' यह विरुद हुआ। ग्रन्थ प्रकट हुआ। जब सारा बाल भारत बन गया तो रात में व्यास ने चुरा लिया। प्रातःकाल जो देखता है तो पुस्तक नही। महाविषाद हुआ। तब व्यास ने कहा, 'विषाद क्यों करते हो? तुमने मेरे सवा लाख ग्रन्थों की चोरी की है और नाम भी नहीं लिया। तुम्हारा ग्रन्थ कैसे

किन्तु मयणसाहार(द्वारभट्ट)की आँख निकलवा ली। उस अपमान से वह मालवा के राजा नरवर्म्मा के पास गया। उसने ग्रामशासन आदि अर्पण किया। एक बार राजा ने कहा, 'मदन, वीसल ने तेरे नेत्र क्यों निकलवा लिए ?' अत्यन्त आग्रह के साथ पूछने पर उसने कहा, 'हे विवेक-नारायण, हमारे स्वामी गुर्जराधिपति विवेक में वृहस्पति है। उसने ऐसा इसलिए किया कि मेरे द्वारभट्ट आदि पात्र लडाई से भगे हुए राजाधम का मुँह न देखें।' वह नरवर्म्मा वीसल द्वारा तीन बार भगाया जा चुका था। सुनकर चुप रह गया। श्री वीसलदेव ने यह बात चर-परम्परा से सुनी। मयण साहार को बुलाया। अति सम्मान दिया। एक बार पूछा, 'इस तरह के (तुम्हारे) वाक्य से राजा नरवर्म्मा को विषाद क्यो नही हुआ ?' उसने कहा, 'वह उभय वंश में शुद्ध है। आप जैसा नही है। क्योंकि आपके पितृ-पक्ष मे है लूणीसिंह जो प्यादा-भर था, मातृपक्ष मे महिषीभक्षका ञेठेया।' (इस पर) राजा ने कुछ भी नही कहा।

182. एक बार श्री वीसलदेव की दाहिनी आँख मे अंजनी रोग हुआ। उसकी व्यथा तीन दिन तक बहुत उपचार करने पर भी शान्त नही होती थी। तब राजवैद्य अरिसिंह को बुलाया गया। वह आकर बोला, 'हे प्रधानो, दवा देने पर चार घडी बाद तक राजा को बड़ी पीड़ा होगी। तब मैं मारा जाऊँगा। उस समय आप लोग मेरी रक्षा करिएगा।' उन्होने कहा, 'अच्छी बात है।' यह कहने पर उस वैद्य ने दवा दी। तब बड़ी वेदना हुई। तब राजा ने कहा, 'इसे मार डालो।' पर उसे बचा लिया गया। चार घड़ी के बाद राजा ने नीरोग होकर वैद्य को बुलवा भेजा। प्रधानों ने कहा, 'वह मार डाला गया।' राजा बड़ा दु:खित हुआ। बाद को वैद्य ले आया गया। उससे राजा ने कहा, 'दवा मुझे बता दो नही तो मार डालूंगा। वह व्यथा सर्व-साधारण है। तुम कहीं चले जाओगे। इसलिए हम इस औषध को सर्वविदित करेंगे।' उसने 'पीलू कूलीयाक' बताया। तब राजा ने सम्मान किया। बहुत द्रव्य दिया। औषध सर्वत्र विदित कर दी।

183. एक बार आशापल्ली मे राजीमती छिपिका (रगरेजिन) ने गुरु के पास 32 प्रकार के शास्त्रोक्त तप किये। तब आंविल वर्द्धमान तप की प्रतिज्ञा के समय गुरु ने कहा कि 'तप मे क्रोध न करना। क्रोध से तपस्या का क्षय होता है।' इस प्रकार क्रोध का अभिग्रह ग्रहण किया। इसी प्रकार राजा वीसलदेव के घर मंह. सातूक और व्यास मे होड़ हुई कि मनुष्य स-क्रोध होता ही है। मंत्री ने कहा, 'मैं क्रोध नही करनेवाले को दिखा दूँगा।' तब एक बण्ठ को कहकर घोड़े के खुर से उसके रंग का भांड तोड़वा दिया, पर उसने शीतल जल से घोड़े का पैर धोया। राजा ने यह जानकर उसे पंचाग का प्रसाद (इनाम) और सब अंग के आभरण दिये। तब उसने उस द्रव्य से प्रासाद (मंदिर) बनवा दिया।

184. मन्त्री श्री वस्तुपाल के स्वर्गगत होने पर पं. सोमेश्वर ने व्यास-विद्या त्याग दी। श्री वीसलदेव ने बड़ा आग्रह किया। विशेष ग्रास (वृत्ति) का लोभ भी दिखाया। पर उसने कहा कि 'मन्त्री श्री वस्तुपाल के आगे व्यास-विद्या का विधान

करके अब दूसरे के सामने न करूँगा।' तब राजा ने गणपति नामक (पण्डित को) व्यास बनाया।

185. पुराने जमाने में 'मुद्गल वन्दीकृत वसाह जगडू को श्री वीसलदेव ने दुर्ग से आकर···[यहाँ आधी पक्ति नष्ट हो गयी है] द्रव्य लेकर भगा। भद्रेश्वर मे व्यवहारी हुआ।

186. भद्रेश्वर मे वसाह जगडू नामक (व्यक्ति) वास करता था। उसने एक बार राजकीय जहाज में पाँच घोड़े चढाये। जहाज आता हुआ तट पर भी टूट गया (डूब गया ?)। राजा समुद्र के किनारे देखने के लिए गया। वहाँ आकर एक आदमी ने जहाज की भीतरी हालत इस प्रकार बतायी। जहाज में 144 घोड़े थे। उनमे पाँच प्रधान घोड़े वसाह जगडू के थे। उनमें डाक नामक एक सर्वोत्तम घोडा था। तब वसाह ने कहा, 'मेरे घोड़े अवश्य आयेंगे।' राजा ने कहा, 'हमारे घोड़े क्यों जायेंगे और तुम्हारे क्यो आ जायेंगे ?' वसाह ने कहा, 'आपका और मेरा भाग्य समान नही है।' यही बात करते समय समुद्र मे से चार घोड़ों के साथ डाक प्रकट हुआ और आया। सब लोग चकित हो गये।

187. एक बार सं. 1315 के साल दुर्भिक्ष काल मे श्री वीसल ने, चने के घाटे में, भद्रेश्वर के व्यापारी नागड़ को लेख भेजा कि 'जगड़ूक को पकड़कर यहाँ ले आओ।' उसने उसे लेख दिखाया और उस (जगड़ूक) के साथ श्रीपत्तन में गया। सभी रंक कुटुम्ब वहाँ आये थे। उन्हें दान देने लगा। तब 360 थालो से···की। विशुद्ध वेषधारी बनियों मे सामान्य वेशधारी जगडू को राजा ने न पहचाना। तब मन्त्री ने दिखाया। राजा ने कहा, 'ऐसा वेष क्यों है ?' उसने कहा, 'राजन्,

261. 'आडम्बरों से महिमा नही बढ़ती, गुण-गौरव की सम्पदा से ही मनुष्य प्रशंसनीय होता है। अन्य अँगुलियों की शोभा अलंकार से होती है किन्तु मध्यमा के लिए तो ज्येष्ठत्व ही सुन्दर है।'

इस प्रकार उसने विदेश के राजा द्वारा अर्पित अट्ठारह···राजा को दी। और बोला, 'राजन्, किस लिए मैं बुलाया गया हूँ।' राजा ने कहा, 'चने के लिए।' उसने कहा, 'मैंने अनन्त गुना लाभ सोचकर मेरे अन्नागार को रंको (गरीबो) को दे दिया।' राजा ने कहा, 'तो मुझे बड़ा रंक समझो।' इसपर हर्षित होकर *1800* मूढक चना दिया।

33. विश्वासघातक के विषय में नन्दपुत्र का प्रबन्ध(B)

188. एक बार पाटली (पुत्र) नगर मे नन्द नामक राजा था, उसकी रानी थी भानुमती। एक बार राजा शिकार खेलने गया, वहाँ भोजन का समय हो गया। राजा रानी का दर्शन किये बिना नही खाता था। इसके बाद वररुचि ने भारती की कृपा से रानी का रूप (चित्र) बनाया। उसके गुप्त अग मे बिन्दु (चिह्न) पड़ता था। एक बेला बीत गयी। फिर उसी प्रकार। उसने सोचा, वह यही है। राजा रानी को पहचानकर प्रसन्न हुआ और खाया। बिन्दु (चिह्न) देखकर कुपित हुआ कि निश्चय ही यह अन्त.पुर में छिप कर जाया करता है। राजा ने गुप्त रूप से रक्षक के द्वारा वररुचि को मरवा डालने की आज्ञा दी। उस रक्षक ने उसे जमीन के नीचे बने हुए घर मे रखा। वह उस (आरक्षक) के पुत्रो को पढाया करता। इधर राजा का लड़का राजपाटी मे गया। वहाँ घोड़े पर चढ़कर वन मे गया। घोड़ा छोड़ते ही मर गया। राजकुमार भी फल खाकर वृक्ष के पास गया। वहाँ ऊपर रीछ था। इसके बाद मनुष्य की गन्ध पाकर व्याघ्र आया। कुमार प्राणभय से वृक्ष पर चढ गया। रीछ ने कहा, 'आओ, आओ, तुम मेरे अतिथि हो।' व्याघ्र वृक्ष के मूल में पडा रहा। रीछ ने कहा, 'व्याघ्र के साथ मेरा वैर है। तुम डरो मत।' कुमार निकट गया। रीछ ने कहा, 'स्वस्थ होकर सो जाओ।' वह रीछ की गोद मे सिर रखकर सो गया। व्याघ्र ने कहा, 'हे रीछ, अगर तुम इस आदमी को मुझे दे दो तो हम दोनों की (मैत्री) हो। हम लोग तो स्वजन है, एक ही जगह वन में वास करते हैं।' उसने कहा, 'मैं विश्वासघातक नही हूँ। युगान्त मे भी इसे तुम्हें न दूँगा।' इसके बाद कुमार जगा। रीछ ने कहा, 'तुम जागो, मैं शयन करूँगा। परन्तु यह मुझे माँगेगा, यह बड़ा कपटी है लेकिन तुम कोई मलिनता न करना।' ऐसा कहकर अपने केशों को शाखा मे बाँधकर सो गया। व्याघ्र ने कहा, 'हे राजपुत्र, इसे मुझे दे दो ताकि मैं तुम्हे जीवित छोड़ दूँ। नही तो वन से कैसे जाओगे ? यह मलिन है, प्रात.काल तुम्हें मार कर खा जायगा।' कुमार ने रीछ को उस व्याघ्र की बात मान कर धकेल दिया। उसके केश बँधे होने के कारण वह न गिरा। उसने कुमार से कहा, *'रे यह क्या ? अब क्या कर रहा है ?'* वह चरणों पर गिरकर बोला, 'मुझसे भूल हुई।' उसने कहा, 'तुम अपनी बात से भ्रष्ट हुए हो, इसलिए तुम्हारी वह (वाणी) नष्ट हो जाय।' उसने दीनता के साथ कहा, 'अनुग्रह करो।' उसने कहा, 'विसेमिरा' यह बका कर। यदि कोई इसकी व्याख्या कर देगा तो तेरी वाणी पटुतर हो जायेगी।' इधर प्रभातकाल मे घोड़े का पैर देखती हुई सेना आयी। व्याघ्र वन मे चला गया। रीछ भी गया। कुमार नगर में आया। परन्तु केवल 'विसेमिरा' यही भर बोलता रहा। मन्त्रियों के पूछने पर भी यह बकता रहा। पण्डित ने (वररुचि ने) आरक्षक से पूछा, 'राज सभा मे क्या बात है ?' हाल

सुनकर, 'मुझे अगर वहाँ ले चलो तो सब ठीक कर दूँ।' उसने कहा, 'चलो'··· 'बिना बुलाये कैसे जाया जाय?' आरक्षक ने राजा से कहा, 'महाराज, मेरे घर एक युवती आयी है, वह सब ठीक कर देगी।' राजा ने उसे बुलाया। पण्डित (वररुचि) स्त्रीवेश धारण करके राज-सभा में गया। परदे की ओट में बैठा। कुमार ने कहा और उसने—

262. विश्वास किये हुए लोगों की वंचना करने मे कौन-सी चतुरता है? जो आदमी गोद में आकर सोया है, उसको मारनेवाले का पौरुष ही क्या है?

यह कहने पर पहले अक्षर का बकना छूटा।

263. सेतु-समुद्र के सेतु, और महानदी के संगम की यात्रा करके ब्रह्मघाती भी पाप से मुक्त हो जाता है, पर मित्रद्रोही नहीं मुक्त होता।

इससे दूसरा अक्षर (छूट गया)।

264 मित्रद्रोही, कृतघ्न और विश्वासघातक ये तीनों तब तक के लिए नरक जाते है जब तक चौदह इन्द्र रहते है।

इस प्रकार तीसरा अक्षर (छूट गया)।

265. राजन्! तुम यदि राजपुत्र का कल्याण चाहते हो तो ब्राह्मणों को दान दो, क्योंकि ब्राह्मण सभी वर्णों का गुरु है।

इस प्रकार चौथा अक्षर भी (छूट गया)।

(यह सुनकर राजा ने पूछा—)

266. 'हे बाले! तुम नगर मे रहती हो, जंगल में कभी नहीं जाती। सिंह, व्याघ्र और मनुष्यों का भाषण कैसे जानती हो?'

(वह बोली—)

267. 'महाराज! ब्राह्मणो के प्रसाद से सरस्वती मेरी जिह्वा के आगे रहती है इसी से मैं, हे नन्द, भानुमती रानी के चिह्न की तरह, जानता हूँ।'

राजा ने पहचानकर पण्डित का सम्मान किया और आरक्षक को पुरस्कार दिया।

इस प्रकार विश्वासघात के विषय में नन्दपुत्र का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में का नन्द नृप सम्बन्धी उल्लेख

189. पाटलीपुत्र नगर में नन्द नामक राजा हुआ। वह महाकृपण किसी को कुछ भी नहीं देता था, इसलिए सबका शत्रु हो गया। इसी बीच कालदोष से वह मर गया। इसके बाद परकाय-प्रवेश विद्या में सिद्ध ब्राह्मण ने उसके शव मे अपनी आत्मा का निवेश किया। इसके बाद शव उठ खड़ा हुआ। सभी राजपुरुषों को महा-आनन्द हुआ। सबको राजा ने पुरस्कार दिया। सभी मन्त्रियों ने उसकी उदारता देखकर नगर में ब्राह्मण की देह का संस्कार कर दिया और उसी को राजा बनाया।

34. वलभी भंग का प्रवन्ध (P)

190. मरुमण्डल के दिहात मे काकू और पाताक नामक दो भाई रहते थे। उनमे जो छोटा था, वह धनवान था। बड़ा भाई उसी के घर वृत्ति पाकर रहता था। एक बार वर्षाकाल में छोटे भाई ने कहा, 'तुम्हारी (बनायी) क्यारियाँ फूट गयी है।' अपने काम की निन्दा करता हुआ कन्धे पर कुदाल रखकर जब गया तो उस समय कुछ कर्मकर सेतु (बाँध)बांध रहे थे। (पूछा)'तुम लोग कौन हो ?' उन्होने कहा, 'आपके भाई के कर्म्मकर।' (उसने फिर पूछा) 'मेरे(कर्मकर) कहाँ हैं ?' 'वलभी में।' वह वहाँ गया। प्रवेशद्वार के निकट अहीरों के निकट तारण-गृह (छप्पर) में ठहरा। वह अत्यन्त कृश था, इसलिए उन्होने उनका नाम रखा 'रंक'। इधर किसी कार्पटिक ने कल्प-प्रमाण के द्वारा रैवत शैल पर के सिद्धरस के कूप से तुम्बी भरी। उसे लेकर कावडी में भरकर छिपा लिया और बीच रास्ते से जाने लगा। तुम्बी में से 'काकूइ तूवड़ी' यह अरिणीवाणी सुनकर उसे विस्मय और भय हुआ और उस गुप्तवेशी बनिये के घर गया। वहाँ यह जानकर कि यह रंक है। पूर्व नाम से डरते हुए इस पूर्ण तुम्बी को वही रख दिया। स्वयं सोमेश्वर की यात्रा को गया। (उस तुम्बी से) गिरे हुए बूँदो से नीचे की पृथ्वी सोने की हो गयी। उसे सिद्धरस समझ उसे लेकर सारा घर जला दिया। सबके सामने रोता रहा। बाद को अपना छद्म प्रकट किया। लोगो के बुझाने पर जला हुआ घर उसी प्रकार छोड़कर दूसरे गोपुर में घर बनाया। वहाँ मोग थे। उस निर्भय पुरुष ने साहस करके उसी मे वास किया। रात में खेत मे वास करता। रात को (कोई) पत्नी से बोला, 'गिरता हूँ।' प्रातःकाल उस स्त्री ने कहा। (दूसरे दिन)वह गयी खेत मे और वह रहा घर पर। फिर शब्द होने पर बोला, 'गिरो।' यह स्वर्णपुरुप की सिद्धि देनेवाला हुआ। साहस के अगणित पुण्यप्रभाव से स्वर्णपुरुप की सिद्धि हुई। उससे बहुत-सा घी खरीदा। एक दूसरी बार यह देखकर कि घी का भाण्ड क्षीण नही हो रहा है···

स्त्री के छल से उसे ले लिया। वह महाकृपण था। इसके बाद उसकी कन्या की रत्नखचित कंघी को राजा ने जबर्दस्ती अपनी कन्या के लिए हरण करा लिया, इसलिए उसके साथ विरोध हो गया। 'काके शौचम्.'। उस(वणिक)ने वलभी को नष्ट करने के लिए म्लेच्छो को (बुलाया)। उन्हे भरपूर सोना दिया। एक छत्रधर को उसने कुछ नही दिया। वह अपने स्वामी की अर्द्धसुप्त अवस्था मे आगे से ही संकेत किये हुए पुरुप से बात करने लगा, 'इस स्वामी में लेशमात्र भी विचार नहीं है, दूसरे किसी से पूछता भी नही। रंक वणिक के प्रेरित करने पर सूर्य के पुत्र शिलादित्य पर चढ़ाई करने जा रहा है।' प्रातःकाल यात्रा मे विलम्ब देखकर उसे भी सोना दिया। फिर दूसरे दिन पुनः 'सिहस्यैकपदं.।' 'कौन मेरे स्वामी के सामने ठहरेगा ?' यात्रा हुई।

191. खेड़ा महास्थान में देवादित्य की लड़की बालविधवा थी। वह सूर्य की ओर

देखती हुई सौर मन्त्र जपा करती थी। सूर्य के द्वारा ही भोग की गयी। गर्भ रहा। पिता ने लज्जित होकर वलभी में पठा दिया। पुत्रजन्म हुआ। वह आठ वर्ष का हुआ। लेख-शाला (पाठशाला) मे अपमानित होकर पिता का नाम न जानते हुए मरने की इच्छा करने लगा। तब सूर्य ने उसके हाथ में कर्कर (कंकड़) दिया। और कहा कि 'तुम अगर सापराध व्यक्ति पर प्रहार करोगे तो शिला होकर लगेगा, अन्यथा तुम्हारा ही (अनिष्ट करेगा।)' इसीलिए उसका नाम हुआ शिलादित्य। उस नगर के राजा ने परीक्षा के लिए वैसा ही किया। उसके मरने पर वही राजा हुआ। सूर्यप्रदत्त घोड़े पर आरूढ होकर आकाश में चलता हुआ मनमाना विहार करता था। जैन हुआ। शत्रुंजय का उद्धारक भी। एक बार सौगतों (बौद्धों) ने उस पर प्रभाव जमाया। उसका भागिनेय (भानजा) मल्ल नामक क्षुल्ल वेश बदलकर बौद्धो के पास गया। आकाश में भारती ने कहा, 'मीठा क्या है ?' (उसने जवाब दिया) 'बल्ल ( )' छह महीने बाद (फिर भारती ने पूछा) 'किसके साथ' 'घी और गुड के साथ।' यह कहने पर भारती सन्तुष्ट हुई। उसने सौगतों (बौद्धों) को जीता और निकाल बाहर कराया। शिलादित्य ने उसे आचार्यपद दिया। वही श्री मल्लवादिसूरि हुए।

192. इसके पश्चात् अधिष्ठातृ देवता के बल से श्री चन्द्रप्रभ का बिम्ब, अम्बा और क्षेत्रपाल आदि के बिम्ब सहित वलभी से आकाश में होता हुआ शिव पत्तन मे गया। आश्विन की पूर्णिमा को रथधिरुढा वीरप्रतिमा श्रीमालपुर मे गयी। तब नगरी की अधिष्ठात्री देवता ने श्री वर्द्धमानसूरि के स्थान की बाहरी भूमि पर रोदन से जनाया।

268 'हे सुन्दरी, हे देवी के समान दीखनेवाली, तुम कौन हो ? बोलो, क्यों रो रही हो ?' 'हे भगवन्, देखती हूँ कि वलभीपुरी का भंग होनेवाला है। विश्वास यह है कि आपके साधुओ द्वारा भिक्षा मे प्राप्त दूध खून हो जायगा। फिर वही रुधिर जहाँ जाकर फिर से दूध हो जाय, वही आप लोगों को ठहरना चाहिए।'

वे पुरी में आये और श्रावको के सामने अशुभ की बात कहकर चल पड़े। वे भी 1800 गाड़ियों के साथ चले। मोढेरपुर में जाकर खून दूध हो गया। (वलभी) पुरी के चारों ओर म्लेच्छ आ गये। रंक ने पाँच शब्द बजानेवालो को बहुत-सा सोना देकर फोड़ लिया था। शिलादित्य अभी घोड़े पर चढने ही जा रहा था कि उन्होंने शब्द कर दिया। घोडा गरुड़ की भाँति आसमान में उड़ गया। शिलादित्य किंकर्त्तव्यविमूढ होकर उनके द्वारा मारा गया। 'भवन्त्युपा.' 'सावच्चन्द्र.'

269.

इस प्रकार वलभीभंग का प्रबन्ध-(समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में का वलभीभंग वृत्तान्त

193. बादशाह की सेना जब चली तो एक यवन व्यन्तर (पिशाच) वलभी में

आया। कहीं भी प्रदेश न पा सका। कुछ दिनों के बाद एक बन्दर का सिर खाली पाकर ठहरा। इधर कोई दरिद्र ब्राह्मण नित्य ही अग्निहोत्र के लिए कपिला गौ का घी ले आने के लिए अपनी भार्या को भेजा करता था। उस व्यन्तर के द्वारा आविष्ट होकर उसने उदास भाव से गधे का मूत्र लाकर (ब्राह्मण को) दिया। ब्राह्मण ने होम दिया। प्रातःकाल जो देखता है तो सोना दिखायी दिया। नित्य ही ऐसा करता। ब्राह्मणी ने अपनी सखी से कहा। इस प्रकार परम्परा से सारी नगरी में गधे के मूत्र का होम हुआ।। इससे सारी पुरी बिना देवता की हो गयी। और यवन व्यन्तर (भूत) सर्वत्र फैल गये। तब यवनों की सेना आयी।

194. वलभी में श्री देवचन्द्रसूरि रात मे सोये। उसी समय किसी 12 वर्ष की बालिका का रूप धारण किये देवी को प्रत्यक्ष देखा। पूछा, 'का त्वं सुन्दरि' इत्यादि।

269. असल बात जानकर गुरु ने श्री संघ को और राजा को भी, बता दिया। तब कुछ संघ निकल गया।

195. बाद को राजा ने कहा, 'भगवन्, अपने व्यन्तरों से खोज कराइए।' तब सूरि ने अपने दो व्यन्तर भेजे। वे दोनों जब जा रहे थे तो यवन व्यन्तरों ने उन्हें पकड़ा और मारा। तीन दिन तक रोके रहे। इसी बीच गुरु की उसेरि ( ) ··तीन दिन के बाद जब सेना चली तो(व्यन्तरो ने सूरि के व्यन्तर को)छोड़ दिया। तब उन (व्यन्तरों ने) सारी बात पूज्य (सूरि) को बतायी। गुरु गये, पर राजा वही रहा। आश्विन की पूर्णिमा के दिन रथयात्रा मे श्री महावीर श्रीमाल में, श्री युगादिदेव कासद्रह में, श्री पार्श्वनाथ हारीज में और वलभीनाथ श्री शत्रुंजय में आ गये। इसके बाद रंक ने सभी यवनों को लड़ाई मे मार डाला।

35. श्री माता प्रबन्ध (B, P)

196. पूर्व दिशा मे लक्षणावती (लक्ष्मणावती) पुरी है। वहाँ का राजा था लखणसेन। उसी के वंश मे राजा रत्नपुंज हुआ। वह (एकबार) जब राजपाटी मे जा रहा था तो कोई सगर्भा स्त्री, जिसके हाथ में अक्षत पात्र था, सामने आयी। राजा ने अक्षत पात्र में रखे हुए नारिकेल के ऊपर बैठी हुई दुर्गा (पक्षी) को देखा। राजा ने शकुनज्ञ से पूछा। उसने कहा कि इसका पुत्र यहाँ राजा होगा। राजा ने आरक्षक (जल्लाद) को आदेश दिया कि इसको गुप्त रूप से नगर के बाहर ले जाकर गड्ढे मे गाड़ दो। वह राजाज्ञा से बधिक के द्वारा बाहर ले जायी गयी।

उसने पूछा 'मुझे कहाँ ले जा रहे हो ?' वधिक ने कहा, 'तुम्हारा वध करूँगा।' वह भयभीत होकर बोली, 'मैं बाहरी भूमि पर (शौच के लिए) जाऊँगी।' वह गयी। भय से गर्भ गिर गया। वह वस्त्र से ढककर चली आयी। वधिकों ने उसे मार डाला। उस बालक को एक हरिणी ने देखा। कृपा करके उसने दूध पिलाया और प्रतिदिन उसका पालन करने लगी। एक बहेलिये ने बालक को स्तन्य-पान कराती हुई मृगी को देखा और राजा से बालक का स्वरूप निवेदन किया। राजा ने वधिक से पूछा, उसने कहा कि 'वह स्त्री मरने के समय बाहरी भूमि (शौच) की ओर गयी थी।' उसके बाद राजा ने उस बालक को मँगाकर नगर के बाहर छोड़ दिया ताकि गाय के चरण पड़ने से मर जाय। इधर उस क्षुधित बालक के मुँह से यह वाक्य निकला—

270. 'जिसने मुझ गर्भस्थित के लिए भी दूध की वृत्ति कल्पित की है, बाकी वृत्ति के विधान के लिए क्या वह सो गया है अथवा मर गया है ?' कोई नयी ब्याई हुई गाय वहाँ आकर दूध पिलाने लगी। राजा ने सोचा, मरेगा नहीं। बालक को धवलगृह में मँगाया। नाम रखा श्रीपुंज। समय पाकर राजा ने उसे राज्य दिया। क्रमशः राज्यपालन करते हुए श्रीपुंज के एक पुत्री हुई। उसका शरीर तो सुन्दर था, पर मुख बानरी का। क्रमशः वह प्रौढ़ा हुई। कोई भी (विवाह के लिए) उसे नहीं माँगता था। खेद-परायण होकर उसे पूर्वजन्म का स्मरण हुआ। पिछला जन्म देखा। नगर में उसने घोषणा करवा दी कि जो कोई मरुस्थली से आया हो, आये। एक सामने आया। कुमारी ने पूछा, 'अर्बुद को जानते हो ?' 'सब जानता हूँ।' 'वहाँ कामिक तीर्थ के आगे एक कुण्ड है। उसके तट पर एक बाँस की जाली है। उस जाली में एक बानरी का सिर लगा हुआ है। मेरे पास से द्रव्य लेकर वहाँ जाओ और उस सिर को जल में फेंककर लौट आओ।' उसने वहाँ जाकर ज्यों ही उस सिर को जल में फेंका त्यों ही कुमारी श्रीमाता का मुँह दर्शनीय हो गया। राजा ने पूछा, 'बेटी, यह क्या बात है ?' उसने कहा, 'महाराज, मरुस्थली में अठारह (सौ) देशों में नन्दीवर्धन नामक पर्वत है, वहाँ कामिक तीर्थ है। उसी के तीर पर बाँस की जाली है, उसी पर मैं पूर्वजन्म में बानरी थी और उसी पर चढ़ी थी। फाल (छलाँग) से गिरी हुई बाँस की कीली से बिद्ध होकर मैं मर गयी। मेरा शरीर गलकर पानी में गिर गया। उसी के प्रभाव से मैं तुम्हारी पुत्री हुई, पर सिर तो वहीं ठहरा था, इसीलिए मेरा ऐसा मुँह हुआ। इस बार आदमी भेजा था। उसने सिर को जल में फेंक दिया, इसीलिए मेरा मुँह स्वाभाविक हो गया।' इसके बाद जब वह आदमी नगर में आया तो विवाह से पराङ्मुखी हो गयी। अत्यन्त आग्रह से माता-पिता ने आदर करके बहुत से परिकरों के साथ अर्बुद पर भेजा। वहाँ वह तपस्या करने लगी। इधर रसीअड नामक तपस्वी तप करता था। वह उसे देखकर क्षुब्ध हुआ। विवाह करने की प्रार्थना की। उस (श्रीमाता) ने कहा कि 'यदि सूर्योदय से पहले इस पर्वत पर बारह पाजा. (तालाब ?) करो तो तुमसे विवाह करूँ।' तपोबल से उसने शीघ्र ही कर दिया। इस प्रकार जब कुछ रात्रि रह गयी तो

श्रीमाता ने तपोबल से मुर्गे का शब्द कर दिया। वह (तपस्वी) उस शब्द को सुनकर, यह समझकर कि प्रभातकाल हो गया, बड़ा क्षुब्ध हुआ। हृदय फटने से मरकर व्यन्तर हुआ। श्रीमाता ने भी पश्चात्ताप करके अग्नि में प्रवेश किया, और देवी श्रीमाता हुई।

इस प्रकार तपस्या के विषय में श्रीमाता का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में प्राप्त श्रीमाता का वृत्तान्त

197. प्राचीन काल में रत्नपुर नामक नगर में रत्नशेखर नामक राजा था। उसने दिग्विजय से लौटकर प्रवेश महोत्सव (कराया)···इस प्रकार पूछा। सन्तान न होने के कारण उन्होंने कहा, 'नहीं।' बाद को सन्तान के लिए नये अन्त.पुर की इच्छा रखनेवाले राजा को शकुनज्ञ ने बाहर निकाल दिया। इसके बाद किसी काठ का बोझा ढोनेवाली गर्भिणी स्त्री को देखकर बताया कि 'इसी का लड़का तुम्हारे राज्य का मालिक होगा।' राजा ने चित्त में उदास होकर उसे गड्ढे में गड़वा दिया। और उस स्त्री ने एक बालक प्रसव करके छोड़ दिया। नयी ब्यायी हुई हरिणी उसे अपना स्तन्य-पान कराके जिलाने लगी। इधर टकसाल में हरिणी अंकित द्रम्म गिरने लगे। राजा ने ऐसा समझकर उसे मँगाकर शाम को गोपुर द्वार पर छोड़ दिया। वहाँ पर एक साँढ ने उस बालक की रक्षा की। तब राजा ने उसे मँगाकर उसका लालन किया। वह श्रीपुंज नामक राजा हुआ। श्रीपुंज राजा की स्त्री थी श्रीमाता, जिसका मुँह वानर का था। उसे पूर्व-जन्म का स्मरण इस प्रकार हुआ—प्राचीन काल में अर्बुद पर्वत पर छलांग मारती हुई वानरी शाखा के द्वारा विद्ध हुई। देह गलकर कुण्ड में गिरी। शिर शाखा में लगा ही रह गया। बाद को कुण्ड में गिरने के प्रभाव से उसका शरीरमानवाकार हो गया। इसके बाद वहाँ आकर उसने सिर को कुण्ड में फेंक दिया। इसके बाद अर्बुद पर्वत पर तपस्या करने लगी। उसी समय रसीआक नामक योगी ने उसे देखा। उसने प्रार्थना की कि 'मेरी पत्नीहोओ।' उसने कहा कि 'एक रात में बारह तालाब बनाओ।' उसके ऐसा करने पर श्रीमाता ने कृत्रिम मुर्गे बसा दिये। वे बनावटी कुत्तों के चरणो में लगे। तब हृदय फटने से वह स्वयं मर गया।

36 जगद्देव-प्रबन्ध (G)

198. मुगल बादशाही से आये हुए जगद्देव को श्री सिद्धराज भूपति ने नौ लाख का कङ्कण पहिनाया। इसी बीच किसी कवि ने यह काव्य पढ़ा—

271.

यह पढ़ने पर उसने उस कवि को वह कंकण दे दिया। एक बार सभा में नीचे देखते हुए चिन्तातुर किसी कवि से राजा ने पूछा, 'कवे ! बड़ी चिन्ता है ? (क्या कारण है ?)' उसने कहा, 'चिन्ता है। सुनिए !'

272. 'दरिद्रों की सृष्टि करता हुआ ब्रह्मा, और उन्हें कृतार्थ करते हुए तुम, इन दोनों में हे जगद्देव, हम नहीं जानते कि कौन थककर रुकेगा।' यह पढ़ने पर जगद्देव ने एक लाख सुवर्ण दिया।

किसी आये हुए कवि से जगद्देव के किसी विशेष देवता का स्वरूप पूछने पर उसने कहा कि 'महाराज, आश्चर्य है। हमारे साथ के एक बटोही से तालाब से निकले हुए एक चक्रवाक ने इस प्रकार पूछा—

273. 'चक्रवाक ने बटोही से पूछा कि 'भला बताओ तो ऐसा कोई देश मिलेगा जहाँ मैं वास करूँ और रात न हो ?' उसने सोचकर जवाब दिया कि 'जगद्देव सोना दान करते-करते मेरु को समाप्त कर देंगे। और सूर्यास्त होना बन्द हो जायेगा। इस प्रकार कुछ ही दिनों में केवल दिन-ही-दिन रह जायेगा।'

ऐसा कहने पर श्री जगद्देव ने उसे दस हजार सुवर्ण दिया।

किसी पण्डित के आने पर श्री जगद्देव के बार-बार पूछने पर पण्डित भी बार-बार 'जीव-जीव' कहता रहा और कुछ नहीं। उसने कहा कि 'जीव' इस वचन से क्या मतलब है ? कवि ने कहा, 'त्वे जीवंति···' इत्यादि।

274. 'क्षत्रियदेव जगद्देव राजा का कल्याण हो। जिसके यश-रूपी कमल के भीतर आकाश भँवरा बना है।' यह कहने पर एक लाख का दान मिला।

37. पृथ्वीराज प्रबन्ध (B, P)

199. यह प्रबन्ध इस प्रकार है—शाकम्भरीपुरी में चाहमान (चौहान) वंश में श्री सोमेश्वर नामक राजा था। उसका पुत्र हुआ पृथ्वीराज। पृथ्वीराज के भाई का नाम यशोराज था। उसका शल्यहस्त (   ) श्रीमाल-वंशीय प्रतापसिंह था और मन्त्री था कईंवास। इन दोनों में परस्पर विरोध था। वह राजा पृथ्वीराज योगिनीपुर में राज्य करता था। उसके महल के द्वार पर न्यायघण्टा टँगा था। वह राजा महाबलवान् और धनुर्धरों में धुरन्धर था। यशोराज आशीनगर में कुमार-भुक्ति का अधिकारी था। वाराणसी के राजा जयचन्द्र के साथ उसका वैर था।

एक बार गर्जनक (गजनी) से तुरुष्कों (मुसलमानों) के राजा ने पृथ्वीराज के साथ वैर वहन करते हुए योगिनीपुर पर चढाई की। पृथ्वीराज का अमात्य था दाहिम जाति कइंबास नामक मन्त्रीश्वर। उसकी अनुमति से राजा ने दो लाख घोडों और पाँच सौ हाथियों के साथ उसका सामना किया। तुरुष्क सेना के साथ लडाई हुई और शकों (तुरुष्कों) की सेना तितर-बितर हो गयी। सुलतान जीवित ही पकड़ा गया। सोने की हथकड़ी मे बन्द करके योगिनीपुर ले आकर माता के वचनानुसार उसे छोड़ दिया। इस प्रकार सात बार बांध-बांधके छोड़ा और उसे करद राजा बनाया। प्रतापसिंह कर वसूल करने के लिए गर्जनक (गजनी) जाया करता था। एक बार मसजिद देखने के लिए जाकर वहाँ के दरवेशों को 1 लाख टंक सोना दिया। मन्त्री ने राजा से कहा, 'देव, गजनी के द्रव्य से निर्वाह होता है और वह इस प्रकार नष्ट हो रहा है।' राजा ने पूछा, इस पर उस (प्रतापसिंह) ने जवाब दिया कि 'उस समय महाराज का ग्रह-वैषम्य जानकर मैंने धर्म-व्यय किया था।' ज्योतिषियों से (राजा ने) पूछा। उन्होने (राजा) को कष्ट बताया। इधर शल्य-हस्त राजा के कानों लगा कि यह मन्त्री बार-बार तुरुष्कों को ले आता है। राजा रुष्ट हुआ। उसकी बात मानकर मन्त्री को मारने की बुद्धि की। इसके बाद रात में जब मन्त्री सर्वावसर से उठा और प्रतोली (ड्योढ़ी) के द्वार से निकला तो राजा ने दीपिका अभिज्ञान से बाण फेंका। वह मन्त्री के कांख के नीचे से निकलकर दीपधर के हाथ में लगा। दीपक हाथ से गिर गया। हल्ला होने पर राजा ने पूछा, 'क्यों रे, क्या बात है?' 'महाराज, किसी घातक ने मन्त्री पर बाण फेंका है।' 'क्यो रे, मन्त्री जीता है?' 'महाराज, कुशल है।' इधर पिछली रात को चन्द बलिछक (चन्द बरदाई) नामक भाट ने राजा से कहा—

275.

राजा ने भेद खुल जाने के भय से उसे अन्धारी में फेंक दिया। ··· सर्वावसर (दरबार) के समय मन्त्री आया।··· भाट निकाला गया। उसने कहा, 'महाराज, इसके बाद अब मैं आपका कल्याण नही करूँगा, मैं सिद्ध सारस्वत हूँ। म्लेच्छों के द्वारा बद्ध होकर तुम्हारी मृत्यु शीघ्र ही होगी।' वह निकलकर बनारस गया। राजा श्री जयचन्द्र ने कहा, 'मैंने तुम्हे बुलाया था, पर तुम नही आये।' 'महाराज, आपकी मृत्यु भी निकट है, अतः यहाँ भी नही ठहरूँगा।'

200. इसके बाद कइंबास के कार्यत्याग करने के बाद एक नया मन्त्री हुआ। राजा ने प्रतापसिंह के चचेरे भाई को अत्यन्त बली जानकर कैदखाने में बन्द कर दिया। मन्त्री के पदत्याग के बाद भी उसे नहीं छोड़ा। वह (प्रतापसिंह) सुलतान से मिल गया। उसने शको (फारस देशवासियो) की सेना बुलायी। उसे आया जानकर पृथ्वीराज सामना करने को निकला। 3 लाख घोडे, 10 हजार हाथी और 15 लाख मनुष्य; इस प्रकार··· आशी पार करके सेना गयी। इधर सुलतान के मन्त्री को खबर लगी। उसने कहला भेजा कि 'तैयारी हो जाने पर बुलाऊँगा।' इसके बाद पृथ्वीराज दस दिन तक सोया रहा, पर उसे किसी ने जगाया नही। जो

जगाता, उसे मारता। इधर प्रधान ने सुलतान को बुलाया। राजा तो जागता नहीं था। धीरे-धीरे कई सामन्त लड़कर मर गये। कुछ भाग गये। एक हजार घोड़े''' बच रहने पर (बहन ने) राजा को जगाया। तलवार खींचकर दौड़ते हुए राजा से उसकी बहन ने कहा, 'अपने आदमी को मारते हो, तुम्हारे सोये रहने पर (शत्रुओं ने) सारी सेना मार डाली।' राजा बोला, "मैं···' डालकर योगिनीपुर ले आया और बोला, 'राजन्, यदि जीवित छोड़ दूं तो क्या करोगे?' राजा बोला, 'मैंने तुम्हें सात बार छोड़ा था, तुम क्या एक बार भी नहीं छोड़ोगे?' इधर राजा के उत्तारक के सामने ही सुलतान सभा में बैठता था। राजा को रंज होता। वह प्रधान आया। (बोला—) 'महाराज! क्या किया जाय, यह बात दैवात् हो गयी।' राजा ने कहा, 'यदि मुझे शृंगिणी और बाण दो तो इसे मारूँ।' उसने कहा, 'ऐसा ही करूँगा।' फिर जाकर उसने सुलतान से कहा कि 'आप यहाँ न बैठें।' सुलतान ने वहाँ अपनी जगह पर लोहे का पुतला बैठा दिया। राजा को शृंगिणी दी गयी।' राजा ने वाण फेंका। लोहे का पुतला दो टुकड़े कर दिया गया। राजा ने शृंगिणी त्याग दी। बोला, 'इससे मेरा काम नहीं निकला, मैंने किसी और को मार दिया।' बाद को सुलतान ने गड्ढे में डालकर ढेलों से उसे मार डाला। सुलतान ने कहा, 'इसका रक्त पृथ्वी में पड़ने से कल्याण होगा।' वैसे ही मारा। संवत् 1246 में (राजा) स्वर्गवासी हुआ। योगिनीपुर को पलटकर सुलतान वहीं रहने लगा।

इस प्रकार पृथ्वीराज प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में आया हुआ पृथ्वीराज-विषयक वृत्तान्त

201. श्री योगिनीपुर के श्री प्रथिम (पृथ्वीराज) राजा के ऊपर अट्ठारह लाख सेना के साथ बादशाह चढ़ आया। उस समय राजा एकादशी का पारण करके निद्रित होकर सोया था। उस समय घोर युद्ध छिड़ जाने पर प्राकार में खण्ड (सुरंग) गिरा। डर के मारे कोई राजा को जगाता नहीं था। एक कुत्ता ने अँगूठा दबाकर जगाया। तब उसे मारकर फिर सो गया। दूसरे दिन चार वीरों ने जगाया। समाचार जानकर जब तक वह प्राकार की खिड़की पर बैठा तब तक शत्रुओं ने गहरी लड़ाई ठान दी थी। अति व्याकुल होकर राजा ने तारादेवी को स्मरण किया। वह प्रत्यक्ष हुई। उसने रात को उसे बादशाह के निकट छोड़ दिया। यह (राजा) जब उसे (सुलतान को) मारने को प्रहार करना ही चाहता था तब तक वह चतुर्भुज-रूप देखा गया। छोड़ दिया। दूसरी बार जटाधारी-रूप देखा गया। छोड़ दिया। तीसरी बार ब्रह्मा-रूप देखा गया। देवी [illegible] ने पर भी न [illegible], हथियार

है, मेरी रसोई सात सौ साँढों पर आया करती थी, अब यह अवस्था है!' इसके बाद युद्ध करके मर गया।

38. जयचन्द प्रबन्ध (P)

202. कान्यकुब्ज देश में नौ योजन चौडी और 12 योजन लम्बी वाराणसी नामक नगरी थी। वहाँ श्री विजयचन्द्र का पुत्र राष्ट्रकूट वंश का जैत्रचन्द्र (जयचन्द) राज्य करता था। कर्पूरदेवी उसकी परम प्रीतिभाजन थी। नगर मे बसनेवाले किसी शालापति की पुत्री सुहागदेवी पुरी के निकटस्थ गाँव मे ब्याही गयी थी। एक बार उसके पति ने उसका अपमान किया, वह पितृगृह को चली। मार्ग मे जा रही थी तो गोबर पर फण निकालकर बैठे हुए साँप को देखा। उसके सिर पर खंजरीट था। यह देखकर उसने सोचा कि अगर कोई चतुर आदमी मिले तो पूछूँ। इधर विद्याधर नामक ब्राह्मण भीख माँगने के लिए उसी गाँव में जाता हुआ मिला। उस स्त्री ने पूछा, 'शकुन जानते हो?' उसके 'हाँ' कहने पर बोली कि 'इसका क्या फल है?' उसने कहा, 'यह तो बड़ा सुन्दर है। आज से सातवें दिन तुम सर्वेश्वरी बनोगी, पर इससे मेरा क्या?' उसने कहा, 'यदि तुम्हारा कहना होगा तो तुम्हें श्रीकरण किया (मन्त्री-पद दिया) जायगा।' उसने कहा, 'मेरा परिचय और नाम भी सुन लो। मैं ब्राह्मणपट्टी के उत्तर मे रहता हूँ, देवधर ब्राह्मण का भानजा हूँ, विद्याधर नाम है।' वह 'ऐसा ही होगा' कहकर पिता के घर गयी। सातवें दिन राजा जब राजपाटी में जा रहा था उस समय उसने इसे गृहद्वार पर खड़ी हुई वनदेवी की तरह देखा। सानुराग होकर महल मे गया और शालापति को बुलाकर उसकी पुत्री माँगी। उसने दे दी। वह धवलगृह में लायी गयी। उसने राजा से ब्राह्मण के साथ की हुई प्रतिज्ञा की बात निवेदन की। राजा ने विद्याधर नाम-धारियों को बुलाया; सात सौ मिले। महारानी सौभाग्यदेवी ने कहा कि 'वह विद्याधर बायी आँख से काना है।' वे भी तीन सौ मिले। 'उत्तर ब्राह्मणपट्टी मे रहनेवाले देवधर के भानजे को मेरे पास लाओ।' असवार भेजे गये। वह तैयार बैठा था। असवारो ने कहा, 'हे विद्याधर, राजा बुलाता है।' उसकी मामी ने कहा, 'कहाँ है रे वह, कहाँ है वह राजकुल? मन्त्रीपद कैसे पा रहा है?' उसने कहा, 'जो होगा सो देखना।' वह राजकुल में गया। सर्वमुद्राधिकारी बनाया गया। वह महात्यागी था, नित्य ही अट्ठारह हजार ब्राह्मणों को अग्रासन में खिलाता था।

203. एक बार राजा जयचन्द ने बातचीत के प्रसंग में यह सुना कि बंगाल देश मे

जगाता, उसे मारता। इधर प्रधान ने सुलतान को बुलाया। राजा तो जागता नहीं था। धीरे-धीरे कई सामन्त लडकर मर गये। कुछ भाग गये। एक हजार घोड़े··· बच रहने पर (बहन ने) राजा को जगाया। तलवार खींचकर दौड़ते हुए राजा से उसकी बहन ने कहा, 'अपने आदमी को मारते हो, तुम्हारे सोये रहने पर (शत्रुओं ने) सारी सेना मार डाली।' राजा बोला, "मैं···' डालकर योगिनीपुर ले आया और बोला, 'राजन्, यदि जीवित छोड़ दूं तो क्या करोगे?' राजा बोला, 'मैंने तुम्हें सात बार छोड़ा था, तुम क्या एक बार भी नही छोड़ोगे?' इधर राजा के उत्तारक के सामने ही सुलतान सभा मे बैठता था। राजा को रंज होता। वह प्रधान आया। (बोला—) 'महाराज! क्या किया जाय, यह बात दैवात् हो गयी।' राजा ने कहा, 'यदि मुझे शृंगिणी और बाण दो तो इसे मारूँ।' उसने कहा, 'ऐसा ही करूँगा।' फिर जाकर उसने सुलतान से कहा कि 'आप यहाँ न बैठें।' सुलतान ने वहाँ अपनी जगह पर लोहे का पुतला बैठा दिया। राजा को शृंगिणी दी गयी।' राजा ने वाण फेंका। लोहे का पुतला दो टुकड़े कर दिया गया। राजा ने शृंगिणी त्याग दी। बोला, 'इससे मेरा काम नही निकला, मैंने किसी और को मार दिया।' बाद को सुलतान ने गड्ढे में डालकर ढेलो से उसे मार डाला। सुलतान ने कहा, 'इसका रक्त पृथ्वी में पड़ने से कल्याण होगा।' वैसे ही मारा। संवत् 1246 में (राजा) स्वर्गवासी हुआ। योगिनीपुर को पलटकर सुलतान वहीं रहने लगा।

इस प्रकार पृथ्वीराज प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में आया हुआ पृथ्वीराज-विषयक वृत्तान्त

201. श्री योगिनीपुर के श्री प्रथिम (पृथ्वीराज) राजा के ऊपर अट्ठारह लाख सेना के साथ बादशाह चढ आया। उस समय राजा एकादशी का पारण करके निद्रित होकर सोया था। उस समय घोर युद्ध छिड़ जाने पर प्राकार में खण्डि (सुरंग) गिरा। डर के मारे कोई राजा को जगाता नही था। एक कुब्रा ने अँगूठा दबाकर जगाया। तब उसे मारकर फिर सो गया। दूसरे दिन चार वीरों ने जगाया। समाचार जानकर जब तक वह प्राकार की खिड़की पर बैठा तब तक शत्रुओं ने गहरी लड़ाई ठान दी थी। अति व्याकुल होकर राजा ने तारादेवी को स्मरण किया। वह प्रत्यक्ष हुई। उसने रात को उसे बादशाह के निकट छोड़ दिया। वह (राजा) जब उसे (सुलतान को) मारने को प्रहार करना ही चाहता था तब तक वह चतुर्भुज-रूप देखा गया। छोड़ दिया। दूसरी बार जटाधारी-रूप देखा गया। छोड दिया। तीसरी बार ब्रह्मा-रूप देखा गया। देवी के कहने पर भी न मारा। वस्त्र, हथियार आदि लेकर लौट आया। प्रातःकाल वह सब बादशाह को दिखाया और यह कहलवा भेजा कि जिस प्रकार मैंने वस्त्र लिये हैं, उसी प्रकार मार भी डालूंगा। बादशाह ने सब वस्त्र माँगे। राजा ने कहा, 'सात प्रयाण के बाद भेज दूंगा।' ऐसा तय होने पर सेना उसी प्रकार चली। राजा जीवित ही पकड़ा गया। जब वह बन्दी था तो उसका भोजन कुत्ता खा गया। वह उदास हुआ। 'हाय, यह क्या हास्य

है, मेरी रसोई सात सौ साँड़ों पर आया करती थी, अब यह अवस्था है!' इसके बाद युद्ध करके मर गया।

38. जयचन्द प्रबन्ध (P)

202. कान्यकुब्ज देश में नौ योजन चौड़ी और 12 योजन लम्बी वाराणसी नामक नगरी थी। वहाँ श्री विजयचन्द्र का पुत्र राष्ट्रकूट वंश का जैत्रचन्द्र (जयचन्द) राज्य करता था। कर्पूरदेवी उसकी परम प्रीतिभाजन थी। नगर में बसनेवाले किसी शालापति की पुत्री सुहागदेवी पुरी के निकटस्थ गाँव में ब्याही गयी थी। एक बार उसके पति ने उसका अपमान किया, वह पितृगृह को चली। मार्ग में जा रही थी तो गोवर पर फण निकालकार बैठे हुए साँप को देखा। उसके सिर पर खंजरीट था। यह देखकर उसने सोचा कि अगर कोई चतुर आदमी मिले तो पूछूँ। इधर विद्याधर नामक ब्राह्मण भीख माँगने के लिए उसी गाँव में जाता हुआ मिला। उस स्त्री ने पूछा, 'शकुन जानते हो?' उसके 'हाँ' कहने पर बोली कि 'इसका क्या फल है?' उसने कहा, 'यह तो बड़ा सुन्दर है। आज से सातवें दिन तुम सर्वेश्वरी बनोगी, पर इससे मेरा क्या?' उसने कहा, 'यदि तुम्हारा कहना होगा तो तुम्हें श्रीकरण किया (मन्त्री-पद दिया) जायगा।' उसने कहा, 'मेरा परिचय और नाम भी सुन लो। मैं ब्राह्मणपट्टी के उत्तर में रहता हूँ, देवधर ब्राह्मण का भानजा हूँ, विद्याधर नाम है।' वह 'ऐसा ही होगा' कहकर पिता के घर गयी। सातवें दिन राजा जब राजपाटी में जा रहा था उस समय उसने इसे गृहद्वार पर खड़ी हुई वनदेवी की तरह देखा। सानुराग होकर महल में गया और शालापति को बुलाकर उसकी पुत्री माँगी। उसने दे दी। वह धवलगृह में लायी गयी। उसने राजा से ब्राह्मण के साथ की हुई प्रतिज्ञा की बात निवेदन की। राजा ने विद्याधर नामधारियों को बुलाया; सात सौ मिले। महारानी सौभाग्यदेवी ने कहा कि 'वह विद्याधर बायीं आँख से काना है।' वे भी तीन सौ मिले। 'उत्तर ब्राह्मणपट्टी में रहनेवाले देवधर के भानजे को मेरे पास लाओ।' असवार भेजे गये। वह तैयार बैठा था। असवारों ने कहा, 'हे विद्याधर, राजा बुलाता है।' उसकी मामी ने कहा, 'कहाँ है रे वह, कहाँ है वह राजकुल? मन्त्रीपद कैसे पा रहा है?' उसने कहा, 'जो होगा सो देखना।' वह राजकुल में गया। सर्वमुद्राधिकारी बनाया गया। वह महात्यागी था, नित्य ही अट्ठारह हजार ब्राह्मणों को अग्रासन में खिलाता था।

203. एक बार राजा जयचन्द ने बातचीत के प्रसंग में यह सुना कि बंगाल देश में

लपणावतीपुरी है, वहाँ लपणसेन नामक राजा है। उसका दुर्ग दुर्ग्राह्य है। इसके बाद राजा ने प्रतिज्ञा की कि 'जाते ही दुर्ग ग्रहण करूँगा या जितने दिन लगेंगे उतने···' कुमार मन्त्री का वाक्य—

277. कार्यार्थी उपकार में समर्थ व्यक्ति के सामने खड़ा होकर अपनी मूर्ति से जिस दुःख को प्रकट करता है, वह दीन वचन से नहीं।' राजा ने लपणसेन को बुलाकर गौरव के साथ वस्त्र पहनाकर दण्डमुक्त करके अपने राज्य में भेजा। श्री जैत्रचन्द्र भी पीछे लौटकर अपनी नगरी में आया। इस प्रकार लखमणसेन के पराजय का प्रबन्ध है।

इसके बाद चन्द बलिछ (बरदाई) भाट ने श्री जैत्रचन्द्र के प्रति कहा—

278.

नगर में आकर दो वर्ष में बोला। उसी ने पहले कहा था—

279.

205. एक बार सुहागदेवी ने राजा से कहा, 'महाराज, राज्य किसे देंगे?' राजा ने कहा, 'कर्पूरदेवी के पुत्र को।' 'मेरे पुत्र को क्यों नहीं?' 'तुम रखेलिन हो, इसलिए तुम्हारा पुत्र अयोग्य है। वह तो आधे राज्य की स्वामिनी है। धन से परिपूर्ण है।' उसने उसी समय गर्जनक में आदमी भेजकर सुलतान साहबदीन को बुलाया जो बीच मे पृथ्वीराज को गिरफ्तार करके योगिनीपुर में ही ठहरा था। उसने कहलवाया, 'मैं जब बुलाऊँ तो आना।'

इधर पृथ्वीराज के स्वर्ग जाने के बाद श्री जैत्रचन्द्र ने इनाम देना शुरू किया। घर-घर घी से उदम्बर (   ) धोना शुरू हुआ। तूर्य रव प्रवृत्त हुआ। मन्त्री राजकुल में नही जाता। किसी ने कहा, 'महाराज, पृथ्वीराज का मरण मन्त्री के विचार मे नही आया।' इस प्रकार चौथे दिन मन्त्री राजकुल में पहुँचा। राजा ने कहा, 'मन्त्री, बहुत दिनों मे दिखायी पडे।' 'महाराज, राजकाज में व्यग्र रहने के कारण मैं नही आया। महाराज, यह खड़ाखडा क्या है?' राजा ने कहा, 'पृथ्वीराज का मरण क्या तुम्हें नही मालूम? इस प्रकार के वैरी के मरने पर क्यों न इनाम दिये जायें?' मन्त्री ने कहा, 'उसके मरने पर विषाद करना चाहिए या हर्ष?' राजा ने कहा, 'क्यों?' 'महाराज! जो दरवाजा होता है उसमे लोहे के किवाड़ और साँकलें होती हैं। जब वह टूट जाती हैं और दरवाजे भी अलग हो जाते हैं तो किले का क्या होता है? उसी प्रकार महाराज, वह पृथ्वीराज तुम्हारी साँकल के समान था। उसके मरने पर घर सम्हालना चाहिए या उत्सव करना चाहिए? उत्सव रहने दीजिए, महाराज, जो बात आज पृथ्वीराज के विषय मे घटी है, वही कल अपनी समझें।' मन्त्री ने मेल की बातचीत शुरू की। उस (स्त्री) ने सुलतान से कहलवाया कि 'यहीं रहना, अन्यत्र न जाना।' देवी ने राजा से कहा, 'महाराज, मेल क्या करते हैं? यह तुर्क अपनी भूमि के निकट है, आपका नाम भी नही लेता।

मन्त्री व्यर्थ ही कोश व्यय कर रहा है।' मन्त्री से राजा ने कहा कि 'सब कोई इससे विषण्ण हो रहे हैं। मेल-जोल छोड़ दो।' मन्त्री ने कहा, 'अच्छा। इसी से काम है।' फिर एक बार उस (सुहागदेवी ने) राजा से कहा। मन्त्री ने कहा, 'महाराज, मैं दो वर्ष तक व्यय करूँगा।' राजा ने कहा, 'वह भी तो मेरा ही है।' मन्त्री ने सामन्तों को भेजकर राजा से कहा, 'महाराज, बीडा देने की कृपा कीजिए ताकि तपोवन में जाऊँ।' राजा ने रानी की बात मानकर उसे छोड़ दिया। दो वर्ष बाद उस (सोहागदेवी) ने सुलतान को बुलाया···सेना के साथ राजा का युद्ध होने पर सुल्तान हार गया और भाग गया। उधर सुल्तान की पत्नी ने पति को चिन्तातुर देखकर कहा, 'महाराज, चेहरे पर कालिमा कैसी है ?' सुल्तान ने कहा···

'महाराज, मुझे स्वप्न हुआ है कि अहम्मद के पुत्र महम्मद को यदि सेनापति बनाया जाय तो आपकी जीत हो।' तब वे (उस नाम के आदमी) बुलाये गये। पाँच सौ महम्मद इकट्ठे हो गये। रानी ने कहा कि 'वह बायी आँख का काना है।' वह बुलाया गया और दलपति बनाया गया। इधर बाकी सेना भी बुलायी गयी। इधर सुहागदेवी ने कहा कि 'महाराज, राज्य किसका है ?' 'कर्पूरदेवी के लड़के का।' 'यदि मेरे लड़के को राज्य दें तो आज भी शत्रु-सेना लौट जाय।' राजा ने पूछा, 'तुमने बुलाया है ?' उसने कहा, 'दूसरा कौन बुलायेगा ?' तब स्त्री-चरित्र और नीति को स्मरण करके ज्येष्ठ पुत्र का अभिषेक किया। उसे यह कहकर कि 'तुम्हारा मुंह नही देखना चाहिए' और जेठी रानी के लड़के को राज्य देकर उस पतिमारिणी के बड़े पुत्र को साथ लेकर राजा युद्ध के लिए निकल पड़ा। घोर युद्ध होने पर राजा ने कहा, 'अरे, गलित कंस के चौसठ जोड़े थे···क्यों नही सुनायी पड़ती है ?' 'महाराज, बजाये जा रहे हैं, परन्तु शृंगिणी के धागों से बन्द हो गये हैं।' राजा यह सुनकर पेट में छुरी मारकर और पुत्र को हाथी पर बैठाकर जमुना में चला दिया। वह मर गया। जेठा लड़का भी युद्ध में नष्ट हो गया। संवत् 1248 की चैत्र शुक्ल दशमी के दिन सुल्तान ने बनारस दखल करके नगर में प्रवेश किया। कर्पूरदेवी यमराज के घर चली गयी। दूसरी सुहागदेवी छोटे पुत्र को लेकर दरवाजे पर खड़ी थी। सुल्तान ने कहा, 'यह कौन है ?' 'महाराज, जिसने तुम्हें बुलाया है।' सुल्तान ने उसके मुँह पर थूककर उसे एक धांगड़ को यह कहकर दे दिया कि 'जो अपने पति की नही हुई, वह मेरी क्या होगी ?' पुत्र को मुसलमान बना लिया।

इस प्रकार श्री जैत्रचन्द नृपति का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में प्राप्त जैचन्द्र नृपति का वृत्तान्त

206. एक बार श्री परमर्दी के इन विरुदों को कि

1. वे कोपकालाग्निरुद्र हैं।
2. अवन्ध्य कोपप्रसाध हैं।
3. रायद्रह बोल हैं।

श्री जयचन्द राजा नहीं सह सका, और उसके ऊपर सेना लेकर चल पड़ा। उस

देश को लूटता हुआ वह क्रमशः कल्याण कटक नामक राजधानी में आया। पर कोई भी राजा को सूचना नहीं दे सका कि सेना आयी है। पर स्वयं राजा परमर्दी शत्रु सेना को देखकर दुर्ग के भीतर···। तब राजा सैन्य के द्वारा रुद्ध हो गया। एक वर्ष बीत गया। पीछे राजा परमर्दी ने मल्लदेव महामन्त्री के साथ सलाह करके उमापतिधर नामक मन्त्रीराज को बुलाया और बोला कि 'मन्त्री, विद्याधर के पास जाकर उससे कुछ कहकर तुम यहाँ से सेना उठवाओ।' तब वह 'जो आज्ञा' कहकर सायंकाल प्रतिहार द्वारा मुक्त होकर मन्त्री विद्याधर के पास गया। उमापतिधर मन्त्री ने पत्र पर सुभाषित लिखकर मन्त्रीराज विद्याधर के आगे छोड़ दिया। वह यह था—

280. 'उपकार में समर्थ पुरुष के सामने खड़ा हुआ कार्यातुर पुरुष अपनी मूर्ति से जिस दुःख को बताता है, उसे दीन वाणी से नहीं कह सकता।' इसका अर्थ समझकर आधी रात को पलंग पर सोये हुए राजा को (पलंग समेत) उठाकर पाँच कोस पर रखा। प्रातःकाल राजा ने किला नहीं देखा तो पूछा। विद्याधर ने सारा हाल बताया। राजा क्रुद्ध हुआ। तब विद्याधर बोला कि 'राजन्, मेरे ऊपर क्रोध क्या करते हो? कणवृत्ति कहीं गयी नहीं है।' इस पर राजा ने कहा, 'मैं इसलिए क्रुद्ध हूँ कि तुमने मेरी लीला का नाश कर दिया। इस सुभाषित पर तुमने मेरा राज्य भी क्यों नहीं दे दिया?' यह कहने पर बिरुद छोड़ दिया। मान और राज सबकुछ छोड़ दिया। यह कहकर जयचन्द अपने स्थान को गया।

39. बराहमिहिर का वृत्तान्त (G)

207. प्राचीन काल में बराहमिहिर नामक विद्यार्थी ज्योतिषशास्त्र पढ़ता हुआ उपाध्याय की गायों की रखवाली करता था। वहाँ नित्य ही लग्न बनाकर पाठ का अभ्यास किया करता। एक बार उसने सिंह लग्न बनाया। गलती से मिटाना भूल गया। घर पर जाकर भोजन के समय उसे याद आया। वहाँ गया। पत्थर पर बैठे हुए सिंह को देखा। निर्भय होकर सिंह के पेट के नीच का लग्न मिटा दिया। सूर्यदेव सन्तुष्ट हुए। छः मास तक (उन्हीं) के विमान पर रहकर नक्षत्र, ग्रह और ताराओं को देखकर लौटा। लौटकर उसने 'बराही-संहिता' इत्यादि ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों को बनाया। इसके बाद बराहमिहिर के लड़का हुआ। पिता ने जातक से चौरासी वर्ष की आयु जानी। इसके बाद जैन दीक्षा में दीक्षित श्री भद्रबाहु के पास मंगल सन्देश कहने को आदमी भेजा। उसकी बात सुनकर सूरि ने कहा कि 'लड़के की

सात दिन की उमर है। सात दिन के बाद इसको विल्ली से मृत्यु होगी।' उसने सर्वत्र विल्ली से बचाव किया। निर्णीत समय पर साँकल की विल्ली से उसका मरण हुआ। तब उसने उदास होकर पुस्तकों के साथ जब तक चितारोहण करना शुरू किया तब तक वहीं आये हुए श्री भद्रबाहु ने कहा कि 'चितारोहण क्यों कर रहे हो? शास्त्र झूठ नहीं हैं, पर आपने समय जानने के लिए जो दोरिका लगायी थी, वह कुब्जा को बड़े कष्ट से मिली। तब तक वेला बीत चुकी थी। उसके अनुसार तो सात ही दिन की आयु थी।' तब उसने मान लिया।

40. नागार्जुन प्रबन्ध (BR)

208. ढंक पर्वत के श्री शत्रुंजय शिखर के एक देश में राजपुत्र रणसिंह की भोपाल नामक लड़की पर अनुरक्त होकर वासुक नागराज ने उसके साथ सहवास किया। पुत्र हुआ। नागार्जुन नाम रखा गया। वासुकी ने पुत्रप्रेम से उसे सारी औषधियों के पत्र और फल खिलाये। उसके प्रभाव से सर्वसिद्धि से अलंकृत होकर 'सिद्ध पुरुष' इस प्रकार विख्यात हुआ। पृथ्वी पर विचरण करता हुआ पृथ्वीस्थान पत्तन में राजा सातवाहन का कलागुरु हुआ। वह विद्याध्ययन के लिए पादलिप्तकपुर में विद्यार्थी रूप से पादलिप्ताचार्य की सेवा करने लगा। जब सब तपोवन विहार करने चले जाते थे वे गुरु पैर के तलवे में लेप करने के बल से तो श्री शत्रुंजयादि तीर्थों में देवताओं को नमस्कार करके अपने स्थान को लौट आते थे। उनके आ जाने पर नागार्जुन ने उनका चरण धोकर स्वाद, वर्ण, गन्ध इत्यादि से एक सौ सात औषधियों का पता लगा लिया। उसने उपदेश के बिना ही चरण में लेप किया और मुर्गे की तरह उचक-उचककर गिरा। व्रण से सारा शरीर जर्जर हो गया। गुरु ने पूछा, 'यह क्या है?' 'पूज्य चरणों का प्रसाद।' 'कैसे?' सारी बात बताने पर गुरु उसकी चतुरता पर प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि 'गुरुओं के बिना कलाएँ फल-दायिनी कैसे होंगी?' 'गुरुवर प्रसन्न हों।' 'तुम मिथ्यात्ववासित (अजैन) हो, तुम्हें कला नहीं दूँगा। श्रावकत्व स्वीकार करो।' उसके ऐसा ही करने पर चावल के जल से लेप करना बताया। वह आकाश में स्वच्छन्द विचरण करने लगा।

209. एक बार स्वच्छन्द विचरण करते हुए उसने गुरु के मुँह से सुना कि रस-सिद्धि के बिना दान की इच्छा पूरी नहीं होती। तब उसने रसपरिकर्म शुरु किया। उसने स्वेदन, मर्दन, जारण, मारण इत्यादि किया, पर रस (पारा) में स्थिरता नहीं आती थी। गुरु ने पूछा। उन्होंने बताया कि 'दुष्ट निर्दलन में समर्थ

श्री पार्श्वनाथ के सामने जिसका साधन हो और सर्वलक्षण से युक्त महासती स्त्री जिसका मर्दन करे, वही रस स्थिर होकर कोटिवेधि होता है।' यह सुनकर उसने श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा खोजनी शुरू की। इसके लिए नागार्जुन ने अपने पिता वासुकी का ध्यान किया। वह प्रकट हुआ। उसने पूछा कि 'श्री पार्श्वनाथ की किसी दिव्य प्रतिमा को बताओ।' उसने कहा कि 'प्राचीन काल में द्वारावती मे श्री समुद्रविजय ने श्री नेमिनाथ के मुख से श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा को मन्दिर में स्थापित करवाके पूजा की। नगरी के जल जाने के बाद वह समुद्र में डूब गयी। प्रतिमा उसी तरह समुद्र मे पड़ी थी। एक बार कान्तीपुरी का रहनेवाला धनपति नाम का एक सौदागर का जहाज'''यहाँ जिनविम्ब है' आकाशवाणी से ऐसा निश्चय करके मल्लाहो को वही डुब्बी लगवाकर सात कच्चे धागों से बँधी हुई उस प्रतिमा का उद्धार किया। अपने नगर मे ले आकर मन्दिर में स्थापित करवाया। उसे इतना लाभ हुआ जितना उसने सोचा भी नही था। वह नित्य उसकी पूजा करता है।' तब उस विम्ब को सर्वगुणसम्पन्न समझकर रससिद्धि के लिए नागार्जुन सेडी नदी के तट पर उसे चुरा लाया। उसके आगे श्री सातवाहन राजा की चन्द्र-लेखा नामक महासती रानी को व्यन्तरी से मँगाकर रोज रात को रसमर्दन कराने लगा। इस प्रकार वहाँ बार-बार आने-जाने से देवी ने उसे अपना भाई मान लिया। उसने उन औषधि के मर्दन का कारण पूछा। (नागार्जुन ने बताया कि) 'यह रस कोटिवेधी होगा।' एक दूसरी बार रानी ने अपने दोनो लड़कों से कहा कि 'सेड़ी नदी के तट पर नागार्जुन को रससिद्धि होगी।' वे रसलुब्ध होकर नागार्जुन के पास आये। छलपूर्वक रस को सूँघते हुए गुप्त रूप से भ्रमण करने लगे। जिस रन्धनी के घर नागार्जुन खाता था उससे बातचीत की। उससे कहा कि 'तुम नागार्जुन की रसोई में खूब नमक डालना। जब वह उसे नमकीन बताये तो हमसे कहना।' छः महीने के बाद उसने क्षार बताया। उन दोनो ने निश्चय किया कि 'रससिद्धि हो गयी।' नागार्जुन के मारने का उपाय सोचते हुए घूमने लगे। किसी ने बताया कि 'कुश के अंकुर से इसकी मृत्यु है।' नागार्जुन ने भरे हुए दो कुप्पे ढंक पर्वत की गुहा मे रख दिये थे। उन पिछलगुओं ने यह बात जान ली; जब वह चलने लगा तो कुश के अंकुश से उसे मार डाला।

कुप्पों को देवता ने हरण कर लिया।

281. हे मधुसूदन, जिसका जन्म न हुआ हो, जो चित्र मे लिखित हो, और जो मर गया हो इन तीन के सिवा चौथे क्षत्रिय पर विश्वास नही मिलता।

दोनो ही पछताने लगे कि जो खटिकासिद्ध कलावान था, उसे मार डाला। उसे मारकर हमने क्या साध लिया ? कुपित देवता ने इस प्रकार सोचते हुए दोनो को मार डाला।

इस प्रकार नागार्जुन प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

41. श्री पादलिप्त सूरि प्रबन्ध (B)

282. श्री पादलिप्त प्रभु के चरण रेणुओं की जय हो,······

210. कोशला नामक एक नगरी थी। वहाँ विजयवर्मा राजा था। वहीं प्रफुल्ल नामक प्रसिद्ध सेठ था। अप्रतिम रूपवती (प्रतिभाणा नामक) उसकी स्त्री थी। परन्तु वांझ थी। अनेक औषध और देवताओं की पूजा आदि से उपयाचित होने पर भी उसे पुत्र नहीं हुआ। एक बार उदास होकर श्री पार्श्वनाथ के चैत्य मे वैरोप्या-देवी की कर्पूर और अगर आदि से पूजा करके आठ दिन का उपवास किया। तब देवी ने प्रकट होकर पुत्र होने का वरदान दिया और यह कहा कि 'प्राचीन काल में नमि विद्याधर के वंश मे श्री कालिकाचार्य के सन्तान में विद्याधर गच्छ मे, शास्त्र-रूपी समुद्र के पारंगत श्री आचार्य नागहस्ति गुरु परम सिद्धिवान् है। उनके पैर धोकर उसी जल को पीयो।' तब प्रातःकाल उपाश्रय में जाकर तपोधनों का पादोदक पिया। प्रभु को नमस्कार किया। उन्होंने धर्मलाभ का आशीर्वाद देकर यह आदेश किया कि 'तुमने दस हाथ के अन्तर पर जल पिया है, इसलिए तुम्हारा पुत्र दस योजन के अन्तर पर जमुना के दूसरे तीर पर बहुत प्रभावशाली होकर बढेगा। तुम्हारे और भी नौ पुत्र होंगे।' उसने कहा, 'मैंने पहला पुत्र आपको दिया।' गुरु ने कहा कि 'संघ मुख्य होगा।' लड़का हुआ। प्रभु को दिया। आठ वर्ष के बाद शुभ लग्न में प्रव्रज्या देकर मण्डन नामक गणी के समीप पढ़ने को छोड़ दिया। साल ही भर मे शास्त्र-पारंगत हो गया। दूसरे दिन गुरु की आज्ञा से आर्नाल ले आकर ईर्य्यापथि का प्रति क्रमण करके उसने गुरु के सामने यह गाथा पढ़ी—

283. 'लाल-लाल आँखोंवाली, फूल के समान दशन-पंक्तिवाली नववधू ने भपुष्पित अम्ब्र और नये धान की काँजी मुझे कुडप (पात्र-विशेष) से दी।'

यह सुनकर गुरु ने प्राकृत मे उसे पलित्त अर्थात् 'शृंगार-अग्नि से प्रदीप्त' कहा। तब वह दसवें वर्ष पदस्थापना के लिए मथुरा मे गया और वहाँ संघ का उपकार करके आकाशगमन की सिद्धि के लिए कुछ दिनों तक ठहरकर पाटलिपुत्र नामक नगर में गया। वहाँ मुरण्ड नामक राजा था। वहाँ उसे किसी ने मुँह बन्द किया हुआ दण्डक दिया था। श्री पादलिप्त प्रभु ने गरम जल में मदन (   ) फेंककर बुद्धिपूर्वक उसे छुडाया। इसी प्रकार गुरु के पास मूल पर्यन्त का ज्ञान कराने के लिए गंगति···भेजा। उन्होंने उसे नदी में बहा दिया। मूल डूब गया, और बुद्धि ने मूल की परीक्षा हुई। श्रीमदाचार्य ने तन्तु मे बुना हुआ एक तुम्बा खोलने को भेजा, परन्तु किसी से नहीं खुला। तब मुरण्ड राजा ने समीप आकर उसे खोलकर प्रभु को गौरव दिया। एक बार राजा के सिर में दर्द हुआ। बुलाने पर श्री गुरु ने आकर शिरोवेदना के विनाश के लिए अपनी जंघा को तर्जनी से बार-बार स्पर्श किया।

284. जैसे-जैसे पादलिप्तक ने जंघा में तर्जनी घुमायी वैसे-वैसे मुरण्ड राज की वह शिरोवेदना नष्ट हुई।

दूसरे लोग मन्त्र-रूप इस गाथा को जपते है तो सिरदर्द जाता रहता है। प्रभाव देखकर राजा नित्य ही भक्ति करने लगा। एक बार उपाश्रय मे आये हुए राजा ने पूछा, 'ये तपस्वी लोग क्या आपका कहना बिना दान-मान के ही करते हैं ?' यह पूछने पर (गुरु ने एक तपस्वी से पूछा) 'गंगा किधर बहती है ?' तपोधन ने गंगा में जाकर डण्डा बहाकर 'पूरब ओर बहती है' इस प्रकार गुरु से कहा।

285. राजा के पूछने पर गुरु ने कहा कि 'गंगा किधर बहती है ?'

...इस प्रकार गुरु के साथ राजा के दिन बीतने लगे। उसे मालूम ही नहीं हुआ। एक बार लाट देश के ओकार नामक नगर में प्रभु बालकों के साथ खेल रहे थे। देशान्तर से वन्दना करने के लिए आये हुए श्रावकों को उत्तर देकर सिंहासन पर बैठे।

एक बार गुरु मार्ग में जा रहे थे। तपोधन लोग गाड़ी पर चढकर विहार करने चले गये। वादी की प्रतारना करके वस्त्र से ढककर सिंहासन पर ही सो गये। वादियों ने आकर फिर से प्रभात होने का सूचक मुर्गे का शब्द किया। प्रभु ने बिल्ली का शब्द किया। इस पर वादी मान-हीन हो गये। फिर उन्होने पूछा, 'भीतर कौन है ?' गुरु ने कहा कि 'देवता।' उन्होंने कहा, 'कौन देवता ?' गुरु ने कहा, 'मैं।' उन्होंने कहा, 'मैं, कौन ?' गुरु ने कहा, 'कुत्ता।' उन्होंने कहा, 'कौन कुत्ता ?' गुरु ने कहा, 'तुम।' उन्होंने कहा, 'तुम कौन ?' गुरु ने कहा, 'देवता।' इसी की पुनरावृत्ति करके वे जीत लिये गये। तो भी उन्होने एक गाथा पूछी—

286. 'हे पादलिप्तक, सच बताओ, सारे महीमण्डल मे भ्रमण करते हुए तुमने चन्दनरस के समान शीतल आग कही देखी या सुनी है ?' सूरि ने शीघ्र ही उत्तर दिया—

287. अयश के अभियोग से जिसका मन दुःखित हुआ है, ऐसे शुद्ध हृदय पुरुष की आह सचमुच चन्दनरस के समान शीतल अग्नि है।

इस प्रकार वादी को जीता।

211. एक बार श्री शत्रुंजय पर्वत पर तीर्थयात्रा करके श्री पादलिप्त गुरु कृष्णभूप के द्वारा रक्षित मानखेटपुर में गये। बाद को रैवतक समेत शत्रुंजय और अष्टापद में तीर्थयात्रा की इच्छा करके सुराष्ट्र देश में आये। विहार करते हुए वे ढंका नामक पुरी मे आये। वहाँ नागार्जुन नामक गुरु का भावी शिष्य रहता था। उसकी कथा यह है—संग्राम नामक राजपूत था, उसकी प्रिया थी सुव्रता। शेषनाग ने स्वप्न मे पुत्रजन्म की सूची दी थी। अतएव पुत्र का नाम रखा गया नागार्जुन। वह जब तीन वर्ष का था तो सिंह के बच्चे को मारकर उसका मांस खा रहा था, पिता ने वारण किया कि 'क्षत्रिय कुल में नख वाले जन्तु नही खाये जाते।' उसी समय आये हुए एक सिद्ध पुरुष ने कहा कि 'विषाद मत करो, तुम्हारा पुत्र रस-सिद्ध होगा।' इसके बाद कलावन्तों के साथ संगीत सीखता हुआ रससिद्ध हुआ। सूरि को वहाँ आया जानकर वह पर्वत भूमि पर ठहरा। पादलेप की (विद्या सीखने का) इच्छुक होकर अपने शिष्य से तृण और रत्न के बने पात्र में सिद्धरस को ढँकवा दिया। गुरु ने हँसकर भीत पर उछालकर उसे सौ खण्ड कर दिया। शिष्य का मुख विवर्ण देखकर

उसे छिपाया और भोजन दिलाकर काँच-पात्र में बन्द करके लौटते समय उपहार पठाया। उसने उघार कर देखा। पर यह जानकर कि इसमें से क्षार की गन्ध आ रही है और उसी से बन्द किया गया है, उसने कुप्य तोड़ डाला। दैवयोग से अग्नि के संयोग से वही समूत्रा मिट्टी सोना हो गयी। नागार्जुन ने जाना कि 'इस प्रभु के मलमूत्रादि के संग से पाषाणादि भी सोना हो जाते हैं। मैंने इतने दिनों तक अनेक औषधों का उपक्रम व्यर्थ ही किया। इसके प्रभाव की क्या बात है!' तब वह विनयावनत होकर घमण्ड छोड़कर, प्रभु की सेवा—जैसे चरण धोना, देह की शुश्रूषा इत्यादि, करने लगा। श्री सूरि साधुओं के विहारार्थ जाने पर आकाशमार्ग से चलकर पूर्वोक्त पाँच तीर्थों की यात्रा करके नित्य आते। तब नागार्जुन पादलेप की औषधियों को जानने की इच्छा से पैर धोकर पानी पीता और स्वाद से औषधों को जानकर पेट में लेप करता। मुर्गे की तरह ऊँचे प्रदेश से उड़कर गिरा, जिससे जघा मे और गुल्फो मे चोट लगी। गुरु ने उसे रक्तक्लिन्न अवस्था में देखा। कहा भी कि 'वाह, तुम पानलेप में गुरु के विना भी सिद्ध हुए।' उसने कहा, 'भगवन्, गुरु के विना सिद्धि कहाँ?' गुरु ने कहा, 'मैं तुम्हारी बुद्धि से सन्तुष्ट हूँ, तुम्हे विद्या दूँगा। यदि तुम मेरी गुरुदक्षिणा मे जैनधर्म में भक्ति करो। क्योंकि,

288.

'इसलिए विश्वहित के लिए जैनधर्म का आदर करो।' उसने कहा, 'जैसी पूज्य गुरु की आज्ञा!' तब गुरु ने कहा कि 'आरनाल-मिश्रित चावल के जल में औषधो को पीसकर पैर में लेप करने से आकाशगमन की सिद्धि होती है।' तब उसने कृतज्ञता से विमलाद्रि के निकट श्री वीरप्रतिमाधिष्ठित गुरु की मूर्तियुक्त चैत्य के साथ महासमृद्धिशाली श्री पादलिप्तकपुर नामक नगर बसाया। वहाँ श्री वीर के सामने गुरु ने श्री वीरस्तव बनाया—'गाहाजुअलेणे' इत्यादि। वहाँ पर सुवर्णसिद्धि और आकाशयान गुप्त है। इसी प्रकार नागार्जुन ने श्री गुरु के मुँह से श्री नेमि-चरित सुनकर सुवर्णसिद्धि और आकाशयान के बल पर खेल-ही-खेल मे दशार्ण मण्डप आदि बनाया। आज भी लोग ये सारी चीजें देखते है।

212. एक दूसरी बार प्रतिष्ठानपुर में, श्री शातवाहन के राज्य मे चार महाकवि, जो शास्त्र का संक्षेप करते थे, आये। राजा के सामने उन्होने श्लोक का एक-एक चरण पढ़ा। वे इस प्रकार थे—

289. 'आत्रेय (का कहना है कि) पच जाने पर भोजन करना चाहिए; कपिल (का मत है कि) प्राणियों पर दया करनी चाहिए; बृहस्पति (का कथन है कि) किसी पर विश्वास नही करना चाहिए और पंचाल (कहते हैं कि) स्त्रियों के प्रति मृदुता (का व्यवहार करना चाहिए)। उनके ऐसा कहने पर राजा ने महादान दिया, पर भोगवती वारांगना ने इस बात की प्रशंसा नहीं की। वह केवल पाद-लिप्तसूरि की ही प्रशंसा करती। 'उनके सिवा आकाशगामी विद्यासिद्ध सर्वगुण-निधि दूसरा महाकवि नही है।' यह जानकर राजा का शंकर नामक सन्धिविग्रहिक

सहन न करके बोला। तब मानखेटपुर से कृष्ण राजा से विदा कराके शातवाहन श्री पादलिप्त को बुलवाया। नगरद्वार पर वृहस्पति नामक पण्डित ने परीक्षा के लिए रौप्य कच्चोलक घी भरके भेजा। प्रभु ने धारिणी विद्या से उसमें तागा पिरोयी हुई सूई डालकर भेज दिया। इस प्रकार जय होने पर महोत्सवपूर्वक प्रवेश कराया। सूरि उपाश्रय में ठहरे। राजा नित्य ही चरणों की उपासना करता। वहीं पर उन्होंने नयी तरंगमाला कथा बनायी और उसकी व्याख्या की। पंचाल कवि मत्सर से उनकी स्तुति न करता। (कहता कि) मेरे ग्रन्थ से उद्धत करके इसने लिखा है। एक बार प्रभु ने कपट-मृत्यु का स्वांग किया। शिविका उसके दरवाजे से होकर निकली। तब पंचाल ने शोक से कहा—

290. 'ये सब शास्त्रों के उसी प्रकार आकर थे जिस प्रकार रत्नों का 'सागर'। हम जिसके मत्सरी थे, उसी के गुणों से परितुष्ट नही होंगे।'

तथा

291. पादलिप्तक को हरण करनेवाले यम का सिर क्यों नहीं फुटवाया ? जिसके मुख-निर्झर से 'तरंगलोला' नदी वही थी।'

'पचाल, मैं तुम्हारा वचन सुनकर मरकर भी जी गया।' इस प्रकार कहकर जब गुरु उठे तो राजा पंचाल को राज्य से निकालने लगा, पर गुरु ने उसे मित्र कहकर दान और मान से सन्तुष्ट किया। तब गुरु ने निर्वाणकलिका, सामाचारी, प्रश्न प्रकाश ज्योतिषशास्त्र ग्रन्थ बनाये। आयु.क्षय जानकर नागार्जुन के साथ शत्रुंजय पर गये। वहाँ नाभेय को प्रणाम करके 32 दिन तक अनशन किया और देहत्याग करके द्वितीय कल्प मे इन्द्रसामानिक देवता हुए।

इस प्रकार श्री पादलिप्त गुरु के प्रबन्ध (समाप्त हुए)।

(G) संग्रह में प्राप्त पादलिप्त सूरि का वृत्तान्त

213. एक बार श्री पादलिप्त सूरि तीर्थयात्रा मे आकाशमार्ग से जाते समय पुरुषाकार छाया-रूप मे देखे गये। तब नागार्जुन ने वन्दना के लिए प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि 'यात्रा करके चलते समय इधर आयेंगे।' ऐसा होने पर कूटबुद्धि से स्वागत के बहाने जल से चरण धोया। उसके वर्ण, गन्ध, रस और स्वाद से 107 औषधियों को जान लिया। तब उन सबको मिलाकर पैर में लेप किया। तब वह मेढक की नाईं उचककर गिरा। गुरु ने ऐसा देखा। वोले, 'क्या बात है ?' उसने अपनी कूटबुद्धि प्रकाशित की। गुरु ने सुशिष्य समझकर बताया कि 'चावल के जल से लेप करो।' तब उसे गगन-गामिनी विद्या (प्राप्त) हुई। एक बार वर्षाऋतु में पौषधशाला के द्वार पर जल मे क्रीड़ा करते हुए शिष्य की भाँति दिखनेवाले सूरि से कुछ वादियो ने पूछा कि 'वसति में क्या सूरिवर पालित्तिय है ? सूरि उन्हे अन्य मार्ग से भेजकर स्वयं सिंहासन पर कपट-निद्रा से सो गये। उन्होने आकर मुर्गे की आवाज की। श्री सूरि ने बिल्ली की आवाज की। वे वचन से खा लिये गये। तब उन्होंने प्रश्न किया, सो इस प्रकार कि 'पालित्तय कहसु कुडे' [illegible] ने

कहा, 'अयसा भि ओग' इत्यादि। इस समस्या से वे पराजित हो गये। नमस्कार करके गये।

42. श्री अभयदेव सूरि प्रबन्ध (BR)

214. श्री बुद्धिसागर सूरि और श्री जिनेश्वर सूरि के वसती मे निवास करने के बाद एक बार श्री जिनेश्वर सूरि विहार के लिए धारापुरी गये। वहाँ महीधर सेठ, उसकी स्त्री धनदेवी और पुत्र जिसका नाम अभयकुमार था, रहते थे। एक बार सेठ गुरु-वन्दना के लिए गये। संसार को असार सुनकर अभय को वैराग्य हुआ और पिता से पूछकर दीक्षा ग्रहण की। ग्रहण और असेवन—इन दो शिक्षाओ मे युक्त होकर समग्र सिद्धान्त का पारगत, बडा क्रियावान् हुआ। गुरु ने आचार्यपद पर स्थापित किया। श्री अभयदेव सूरि विहार करते हुए पल्वपुर मे गये। श्री वर्द्धमान सूरि के स्वर्गवास होने पर श्री अभयदेव सूरि वही ठहरे रहे। महादुर्भिक्ष पड़ने पर सभी सिद्धान्त और उनको माननेवाले क्षीण होने लगे। जो बच रहे थे, वे भी दु ख बोध के कारण अविश्वासी हो उठे। शासन (धर्म) की देवी ने रात मे प्रभु से कहा, 'दो अंग छोड़कर नौ अंगों की वृत्ति बनाओ।' सूरि बोले, 'श्री सुधर्मस्वामी कृत सिद्धान्तविवरण में मन्दमति होने के कारण सूत्र प्ररूपण मे अनन्त संसारिता आ गयी है। पर, तुम्हारी बात का उल्लघन नही करूँगा।' देवी ने कहा, 'जहाँ सन्देह हो, वहाँ मुझे स्मरण करना कि मैं श्री सीमन्धर स्वामी के पास सन्देहभंग करूँ।' गुरु ने ग्रन्थ पूर्ण होने तक···की प्रतीक्षा ग्रहण की। ग्रन्थ सम्पूर्ण होने पर शासनदेवी ने पुस्तक लिखाने के लिए रत्नखचित सोने की ऊतरी समवसरण (   ) में छोड़ी। सर्वत्र दिखायी गयी, पर कोई मूल्य नही आँक सका। तथा श्री महाराज भीम ने तीन लाख द्रम्म दान दिया। इस प्रकार पुस्तकें लिखा-कर समग्र देश के आचार्यो को दी।

215. श्री अभयदेव सूरि धवलक्क मे आये। आचाम्ल तप से और रात्रि-जागरण से प्रभु को रक्तविकार हो गया। तब लोगों ने कहा कि 'उत्सूत्र प्ररूपण से असन्तुष्ट होकर शासनदेवी ने देहविनाश कर दिया।' गुरु ने शोकवश अनशन करने के लिए रात को धरणेन्द्र का स्मरण किया। उसने सर्प-रूप धारण करके गुरु के शरीर को चाटा, गुरु ने समझा कि काल ने काटा है। धरणेन्द्र ने स्वप्न में आदेश किया—'मैंने तुम्हारे इस रोग को ग्रास कर लिया है। एक जिनोद्धार करके प्रभावना का विस्तार करो।' श्री कान्तीपुरी के धन नामक वनिये ने समुद्र के बीच

में जहाज अटक जाने पर व्यन्तर के उपदेश से तीन मूर्त्तियाँ निकालीं। 'एक चारूप (अरूप ?) ग्राम में; दूसरी श्रीपत्तन में अम्बिली (इमली ?) के नीचे श्री नेमि की; तीसरी स्तम्भन ग्राम में सेढिका नदी के रट पर वृक्षजाली से ढकी हुई भूमि में न्यस्त है, उन्हें प्रकट करो। यहाँ वड़ा भारी तीर्थ होगा।'

292. प्राचीन काल में रससिद्ध, बुद्धि के निधि नागार्जुन नामक योगी ने भूमि के अन्तःस्थित मूर्त्ति के प्रभाव से रस को स्तम्भित किया।

तब उसने स्तम्भन नामक ग्राम में उस मूर्त्ति को रखा। इसलिए 'यह भी तुम्हारी कीर्त्ति शाश्वती और पुण्यभूषण होगी। एक ऐसी वृद्धा देवी, जिसे दूसरे नही देख सकेंगे, रास्ता बतायेगी।' प्रातःकाल क्षेत्रपाल भी सफेद कुत्ते के रूप में संघ के सामने आया। एक सहस्र वाहन से युक्त होकर सूरि भी सफेद वृद्धा और कुत्ते से दिखाये गये मार्ग से सेडी-तट पर आये। वृद्धा और कुत्ते तिरोहित हो गये। वहाँ गोपालों से पूछा गया कि 'यहाँ कुछ पूज्य हैं ?' उनमें से एक ने कहा, 'इस जाली मे कुछ है, क्योंकि इस ग्राम में महिणल्ल पटेल की गाय के चारों स्तनों से नित्य ही दूध गिरा करता है। घर पर नहीं दुही जाती।' यहाँ उन्होंने दूध दिखा दिया। आचार्य ने बैठकर 'जयतिहुवण' इत्यादि 32 वृत्तो की स्तुति बनायी। श्री पार्श्वनाथ प्रकट हुए। सारे संघ के साथ उनकी वन्दना करने पर देह का रोग जाता रहा। वहाँ स्नान-पूजा आदि कर प्रासाद के लिए द्रव्य एकत्र किया। महिपपुर के श्री मल्लवादि-शिष्य आम्रेश्वर को नियुक्त किया। दूसरा कर्म भी किया। शुभ मुहूर्त्त में श्री अभयदेव सूरि ने बिम्ब स्थापित किया। धरणेन्द्र के आदेश से स्तोत्र में से दो वृत्त, जो मन्त्र गर्भित थे, निकाले। उस (मन्त्र) के प्रत्यक्ष होने पर स्तुति केवल (शेप) तीस वृत्तों की ही रह गयी। पाठ करने पर वह क्षुद्र उपद्रवों को नाश करती है। तब से यह तीर्थ मनोवांछित का पूर्ण करनेवाला हुआ। रोग, शोक, आदि दुःख-रूपी दावाग्नि के लिए धन मेघ की नाई रहा। आज भी कल्याणक मे पहला कलश धवलक्क के संघ का ही (रहता है)। बिम्बासन के पिछले भाग में परम्परा से अक्षरपंक्ति इस प्रकार सुनी जाती है। यह कथा पहले लोगों में प्रसिद्ध थी।

293 नमि तीर्थंकर के तीर्थ मे 2222 वर्षों आपाढ श्रावक गौड़ ने तीन प्रतिमाएँ बनायी।

294. श्रीमान् अभयदेव, जो शासन (धर्म) की प्रभावना के विस्तारक थे, श्री कर्ण राज्य की नजर में (पत्तन) धरणेन्द्र की उपासना से शोभित होकर

295. योगिनीरोध किया। अन्य वासनाओ को धिक्कृत करके धर्म और ध्यान तथा बुद्धि के निधि (श्री अभयदेव सूरि ने) परलोक को अलंकृत किया।

श्री अभयदेव सूरि प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

43. वाग्भट्ट वैद्य का वृत्तान्त (G)

216. प्राचीन काल में मालवा में वाग्भट नामक आयुर्वेद का ज्ञाता पहले कुपथ्य से शरीर में रोग उत्पन्न करता, फिर औषध से निवारण करता। एक बार उसने जलोदर उत्पन्न किया, तब औषध का विधान किया। कुटुम्ब से इस प्रकार कह दिया कि 'चार पहर तक जल माँगने पर भी मुझे न देना।' चार पहर के अनन्तर जलोदर नष्ट हो जाने पर भी उन्होंने जल नहीं पिलाया। पिपासा से पीड़ित होकर वह मर गया। इसलिए

296. कहीं गर्म, कहीं ठण्डा, कहीं उबालकर ठण्डा किया हुआ और कहीं दवा मिला हुआ पानी देना चाहिए पर पानी कहीं वारण नहीं किया गया।

217. राजा श्री भोज के सिंहद्वार पर वाग्भट वैद्य की परीक्षा के लिए अश्विनी-कुमार पक्षी-रूप धारण करके नित्य तीन बार 'कोऽरुक्' (कौन अरोगी है) की आवाज किया करते। राजा ने इसे न समझकर संघी विद्वानों से पूछा। किसी ने कुछ नहीं बताया। तब वाग्भट ने कहा—

297. 'जो शाक नहीं खाता, घी के साथ भात खाता है, गोरस का सेवन करता है। पानी ज्यादा नहीं पीता, वातकारी और विदाही चीजों को नहीं खाता, (समय पर) मलत्याग करता है, खाया हुआ पच जाने पर खाता है, थोड़ा सोता है, *वही नीरोग होता है।'*

तब दोनों अश्विनीकुमारों ने अपना रूप प्रकट करके वाग्भट की अति प्रशंसा की।

218. वृद्ध वाग्भट के दामाद लघु वाग्भट ने कृष्णच्छाया का प्रवेश देखकर राजा को क्षयरोग की उत्पत्ति बतायी। राजा ने कहा कि 'तब तो मेरी तीन ही वर्ष की आयु है।' उसने कहा, 'राजन्, ऐसा मत कहो।'

294. 'जब तक प्राणी साँस लेता है तब तक प्राणी की प्रतिक्रिया करनी चाहिए, क्योंकि अरिष्ट दिखायी देने पर भी कदाचित् रोगी बच जाता है। रस बनाकर महाराज को नीरोग कर दूँगा।' रस बनने पर उसे लेकर वह राजभवन में पहुँचा। वहाँ आकर रस का कूपा तोड़ दिया। राजा ने कहा, 'आह! यह आपने क्या किया?' उसने कहा, 'राजन्! औषध की क्या आवश्यकता है? महाराज नीरोग हो गये।' रस-गन्ध के दर्शन से कृष्णच्छाया-पुरुष के रूप में क्षयरोग निकलकर बाहर हो गया।

एक बार राजा के सिर में बड़ी पीड़ा हुई। तो वाग्भट ने कहा कि 'राजन्, सिर में मेढ़की पैदा हो गयी है। तब उसने शस्त्र-कर्म से तालु उतार लिया। मेढ़की देखी तो गयी पर निकलती नहीं थी, (वैद्य) *उसे पकड़ ही नहीं सकता था।* [illegible] को जल से भरा हुआ थाल रखा। उसमें भी नहीं आयी। तब उसके दामाद लघु वाग्भट ने यह देखकर अपने खून से भरा हुआ थाल दिखाया। उसकी गन्ध

पाकर वह आयी। राजा नीरोग हुआ। तब पूछने पर लघु वाग्भट ने बताया कि 'यह रक्त से उत्पन्न हुई थी, इसलिए रक्त को छोड़कर जल में नहीं आती थी।' तब प्रसन्न होकर वृद्ध वाग्भट ने सारी कलाएँ सिखायीं।

44. रैवत तीर्थ प्रबन्ध

219. रैवतक गिरि के श्री नेमि की उत्पत्ति इस प्रकार है—भारत क्षेत्र की पिछली चतुर्विंशतिका के तृतीय तीर्थंकर सागर के समय में उज्जयिनी में नरवाहन नामक एक राजा हुआ। एक बार उस नगर में सागर नामक जिन ने समवसर ग्रहण किया। वह (राजा) नमस्कार करने गया। व्याख्या के बाद केवली पर्षद देखकर पूछा, 'प्रभो, मैं कब केवली (मुक्त) हूँगा।' स्वामी ने आदेश किया कि 'आगामी चतुर्विंशतिका मे श्री नेमजिन के तीर्थ मे निर्वाण और ज्ञान होगा।' यह जानकर उसने उस जन्म मे श्री सागर तीर्थंकर के पास दीक्षा ग्रहण करके तप किया और पंचम देव-लोक मे दस सागर के समान आयुवाला इन्द्र हुआ। वहाँ रहकर उसे अवधि का ज्ञान हुआ। पूर्वजन्म की बात जानकर वज्रमयी मृत्तिका लाकर श्री अरिष्टनेमि की पूजा के लिए बिम्ब बनाया। स्वर्ग मे दस सागर की आयु पर्यन्त पूजित हुआ। अवधि से अपनी आयु का अन्त जानकर श्री नेमि की दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण इन तीनों का कल्याणकर स्थान जानकर श्री रैवतक गिरि की गुहा मे, स्वर्ग से नेमि की प्रतिमा लेकर आया। उस गुहा के चैत्य मे तीन गर्भगृह बनाकर रत्न, मणि और सोने के तीन बिम्ब (स्थापित किये)।···कांचन···वहीं पर वज्र-मृत्तिकामय बिम्ब स्थापित किया। तब वह इन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर बहुत संसारभ्रमण कर श्री नेमि तीर्थ के समय मे महापल्लि देश क्षिति (पु)र नगर मे···श्री नेमि ने वहाँ समवसर ग्रहण किया। वह पुण्यसार उनकी वन्दना के लिए वहाँ आया। श्री नेमि ने उपदेश दिया। श्री नेमि के पास धर्मावाप्ति की दीक्षा ली। स्वामी (नेमि) से पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूछा···रैवतक पर जाकर अपनी बनायी हुई नेमि-प्रतिमा को पूजा और नमस्कार करके अपने नगर मे आया। पुत्र को राज्य दिया और श्री नेमि के पास दीक्षा ग्रहण करके तपस्या से अपने कर्मों का क्षय करके···उसे मोक्ष प्राप्त हुआ। रैवत पर्वत पर श्री नेमि के तीन कल्याण हुए। वहाँ पुण्यवानो ने लेप्य-मय (मिट्टी का) बिम्ब और चैत्य बनवाये। लोक मे भी वह पूज्य हुआ···कश्मीर देश से श्री नेमि को नमस्कार करने के लिए कल्प-प्रमाण से आया। वहाँ बिम्ब को स्थानीय जल से गला हुआ देखकर दो महीने

क्षपण किया'''सोने का बिम्ब ले आकर स्थापित किया; क्योंकि

299.

तथा वामनावतार में वामन ने रैवत गिरि पर श्री नेमि के आगे बलिबन्धन की शक्ति पाने के लिए तप किया।

45. देवी अम्बा का प्रबन्ध (B,BR)

220. सुराष्ट्र मण्डल के कोडीनारपुर नामक नगर में सोम भट्ट नामक ब्राह्मण था। उसने श्रावक देवशर्म्मा नामक ब्राह्मण की अम्बिका नामक पुत्री से विवाह किया। दो लड़के हुए। इधर एक दिन कोई पर्व था। वहाँ रसोई हो जाने पर दो तपस्वी विहार करते आये। सास घर पर नहीं थी। अम्बा ने बड़ी भक्ति से उनका सत्कार किया। पड़ोसिन ने सास से कहा कि 'इसने वैश्वदेव की पूजा न होने पर ही, जबकि ब्राह्मणों का भोजन नहीं हुआ था, शूद्रों को अन्न दिया है। यह मामूली बहू नहीं है।' उसने आराटि (   ) की। सोमभट्ट के आने पर बोली। उसे श्वसुर आदि ने मारकर घर से निकाल दिया। वह दोनों पुत्रों को लेकर, एक को कमर पर रख और दूसरे को उँगली पकड़ाकर निकल पड़ी। श्वसुर ने अपने पुत्र को अनुतप्त होकर भेजा कि तुरन्त जाकर लिवा लाओ। इधर छोटे लड़के ने प्यासा होकर पानी माँगा। उसने नेमि के चरणों को स्मरण करके पृथ्वी को पैर से विदीर्ण किया। एक तालाब हो गया। पुत्र को जल पिलाया। बड़े लड़के ने कहा कि 'मुझे भूख लगी है।' वहाँ आम प्रकट हो गया। उससे आम की लुंबी (   ) लेकर पुत्र को दी। इतने ही में पीछे से पति को आया देख डर गयी और श्री नेमि के चरणों का स्मरण करके पुत्रों के साथ कूप में कूद पड़ी। वह भी अपने को स्त्री और बच्चों का हत्याकारी समझकर पीछे से कूद पड़ा। अम्बा तो रैवतक पर श्री नेमि चैत्य में अधिष्ठात्री देवी हुई और सोमभट्ट उसका वाहन सिंह हुआ।

इस प्रकार अम्बादेवी का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

46. उज्जयन्त तीर्थ को अपनाने का प्रबन्ध (P)

221. सुराष्ट्र में गोमण्डल नगर में त्रयोदश कोटि का स्वामी धाराक नामक श्रावक सात पुत्रों, सात सौ योद्धाओं और तेरह सौ सेना से युक्त होकर संघ बनाकर तीर्थ-नमस्या के लिए निकला। विमलाद्रि पर युगादिदेव को नमस्कार करके रैवतक की तलहटी मे ठहरा। तीर्थ पहले से ही दिगम्बरों से अधिष्ठित था। उन्होंने भी बौद्धों से, जिन्होंने पचास वर्ष तक उस पर अधिकार जमाया था, बाद में जीतकर अपनाया था। दिगम्बरों के अधिकार किये बारह वर्ष हो गये थे। श्वेताम्बर मतावलम्बी धाराक ने चौरासी मण्डल के आचार्य से कहा कि 'मैं देव को नमस्कार करने आया हूँ।' उन्होने कहा, 'दिगम्बर होकर आओ।' उसने सोचा कि 'प्राणान्त होने पर भी अपने गुरु का लोप नही करूँगा। और उज्जयन्त को नमस्कार किये बिना घर नहीं लौटूंगा।' चिन्तित हो उठा। पुत्रों ने पूछा कि 'क्या कारण है ?' 'हे पुत्रो, तीर्थ-वन्दना के लिए नही मिल रहा है।' पुत्रों ने कहा, 'जो तीर्थ दिगम्बरों का है, उससे (हमें) क्या काम है ?' पिता ने कहा, 'पहले अपना ही था, इस समय इन्होंने अधिकार कर लिया है।' 'यदि ऐसा है तो जबर्दस्ती जायेंगे। आप चिन्ता न करें।' उसके पुत्रों ने मण्डलाचार्य से कहलवाया कि 'हम लोग जबरदस्ती तीर्थ-वन्दना करेंगे।' उन्होंने (दिगम्बरों ने) अपने भक्त खंमार को सूचना दी। उसने कुछ सेना भेजी। उन लड़कों ने उसकी सेना में युद्ध शुरू किया। सातों लड़के सात सौ योद्धाओं के साथ मारे गये। संघ-पति धाराक ने भोजन त्याग दिया। तीसरे उपवास पर अम्बिका ने कहा, 'वत्स, कान्यकुब्ज देश के गोपालपुर में 'आम' नामक राजा है। वह पूर्वजन्म में भूण्ड पर्वत पर तपस्वी था। तप करके राजा हुआ। उसके पास बप्पभट्टि नामक सूरि हैं। वे ही इन्हें जीत सकेंगे, दूसरा नही। इनके मन्त्र और व्यन्तर बड़े बलवान् हैं। यह समझकर वहाँ जाओ।' धाराक संघ को वहीं छोड़कर आठ श्रावकों के साथ वहाँ गया। श्री सूरि उस समय आमराज की सभा में रस के साथ व्याख्या कर रहे थे। धाराक ने नमस्कार करके उन्हें संघ की आज्ञा दी। राजा ने सापेक्ष होकर देखा। आचार्य ने उसके पास वृत्तान्त पूछा। उसने शुरू से सारा वृतान्त कहा, राजा ने सारा हाल सुनकर और रैवत गिरि का प्रभाव सुनकर हर्ष से गद्‌गद होकर यह प्रतिज्ञा की कि 'श्री नेमि को नमस्कार किये बिना भोजन नही करूँगा।' तब सब लोग चले। एक लाख पोठिया ( ), 20 हजार ऊँट, 7 सौ हाथी, 1 लाख घोड़े, 3 लाख पैदल और 20 हजार श्रावक। तीसवें दिन राजा स्तम्भतीर्थ में आया। रात को अम्बिका ने कहा कि 'महाराज, तुम्हारे साहस से नेमि यहीं आयेंगे। प्रातःकाल पारण करना। जहाँ गूहली फूलो की झाड़ है, वहीं तुम खोदना। हाथ-भर नीचे से श्री नेमि प्रकट होंगे।' प्रात.काल वही हुआ। नेमि को नमस्कार किया। राजपत्नी ने कहा, 'स्वामी, पारण कीजिए ?' 'तुम्हारे बिना कैसे करूँ ?' उसी समय सोमेश्वर

का लिंग प्रादुर्भूत हुआ। उसी दिन नदी के तीर पर सोमनाथ ने अभिज्ञान के लिए शिर आनयन किया। वहाँ इभ्यो (पूज्यों) को दो देवकुल (देवालय) बनाने के लिए द्रव्य दिया और कहा कि 'इस नगर मे दो प्रासाद बनवाना। ऐसा करना कि मैं आकर देख सकूँ।' तब प्रयाण किया। संघ के पास आदमी भेजा। सूरि ने मण्डलाचार्य के पास कहलवाया कि 'यदि युद्ध किया जायगा तो बहुत-से जीवों का संहार होगा। इसलिए वाद में जय-पराजय का निर्णय किया जाय।' सभ्य चुने गये। महीने भर तक वाद होता रहा। राजा और धाराक ने प्रभु से कहा, 'बहुत दिन बीत गये।' प्रभु ने कहा, 'आज समाप्त कर दूँगा।' इकतीसवें दिन प्रभु ने मण्डलाचार्य से कहा कि 'आज मण्डल (सभा) मे कुमारी बैठायी जाय। कुमारी जिसे तीर्थ दे देगी, उसी का हो जायगा। उन्होने कहा, 'बहुत ठीक।' पहले दिगम्बरों ने सभा में कुमारी को सजाया। उनसे पात्र नही भरा। तब श्री बप्पभट्ट सूरि ध्यान लगाकर बैठे रहे। संघेश ने वस्त्र देकर भेजा। उन्होने कन्या के सिर पर वस्त्र फेंका। तब पात्र ने कहा—

300. 'जिनवर वृषभ वर्द्धमान को किया गया एक ही नमस्कार पुरुष या स्त्री दोनों को संसारसागर से तार देता है।

301. 'उज्जयन्त पर्वत के शिखर पर जिसकी दीक्षा···उस धर्मचक्रवर्ती अरिष्ट नेमि को नमस्कार है।'

ये दो गाथाएँ सबने उसके मुख से सुनीं। उसी दिन से तीर्थ अपना (श्वेताम्बरो का) हो गया।

इस प्रकार उज्जयन्त तीर्थ को अपनाने का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

47. वज्रस्वामी ने शत्रुंजय का उद्धार किया था, उसका प्रबन्ध (P).

222. एक बार दश पूर्वधर गुरुवर श्री वज्रस्वामी मधुमती नगरी में आये। श्री शत्रुंजयदेव को नमस्कार करने गये। देव को नमस्कार करते समय एक मोज को आया देखा। पुजारी से पूछा कि 'अरे, यह क्या है ?' 'महाराज, विश्वास पूरा करता है।' (उन्होने) सोचा—'यह जैन धर्म का मुख्य तीर्थ है परन्तु यहाँ कपर्दी मिथ्यात्व (असत्य धर्मविश्वास)-परायण हुआ है। यह बात अच्छी नही है।' यह सोचकर फिर मुहुया नगर में आये। ध्यानबल से सोचा कि 'कौन इस तीर्थ का उद्धार करेगा ? इसी नगर का निवासी सौराष्ट्रिक प्राग्वाट भावड़ सेठ का लड़का

व्यन्तर हुआ था। अपने पूर्वजन्म की बात याद करके गुरु का पराभव जानकर ग्राम पर शिला-वृष्टि करने लगा। राजा प्रभृति सभी आदमी आर्त्त हो उठे। इधर व्यन्तर ने कहा कि 'मारूँगा।' 'सो क्यों?' 'मेरे गुरु को शीघ्र छोड़ो, जिससे मैं न मारूँ। ये मेरे उपकारी हैं। इन्हीं की कृपा से मुझे देवत्व मिला है।' तब राजा से लेकर सभी ने गुरु से क्षमा माँगी। लोक के सामने यह गाथा भी कही—

303.

व्यन्तर तो नमस्कार करके चला गया। उसी यक्ष को कपर्दी नाम देकर श्री वज्रस्वामी ने तीर्थ में स्थापित किया। इसके बाद पूर्व कपर्दी भी आया। बिम्ब को परावृत्त देखकर (   ) निकल गया। तब पर्वत दो खण्ड हो गया। सदाफला वनस्पति भी जल उठी। इस पर कपर्दी ने गुरु से कहा कि 'प्रभो, मेरा अपराध क्षमा करके मुझे यहीं रख दीजिए।' गुरु ने कहा, 'तुम अयोग्य हो। तुम्हारा मिथ्यात्व दूर होते देर नहीं लगती। तुमसे यहाँ कोई काम नहीं।' 'मैं अन्यत्र जाकर उपद्रवकारी हो जाऊँगा।' गुरु ने कहा, 'तुम जाओ।' तब वह देवपत्तन में गया। वहाँ दूसरे व्यन्तरों ने दूसरे द्वार पर फेंक दिया। वहाँ 'कपर्दी वारिका' हुई। इधर प्रतिष्ठा हुई। महाध्वज के अवसर पर सेठ स्वयं सपत्नीक जाकर नाचने लगा। तब पूर्वकपर्दी ने उसे खींचकर क्षीरोद समुद्र में फेंक दिया। लोक में इस प्रकार की प्रसिद्धि हो गयी कि 'भौतिक शरीर से ही वह स्वर्ग गया।' इस प्रकार 19 लाख द्रम्म व्यय करके श्री युगादिदेव के बिम्ब को स्थापित करके प्रतिष्ठित किया।

इस प्रकार श्री शत्रुंजय के उद्धार का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

48. कपर्दी यक्ष और जावड़ी का प्रबन्ध (B,P)

224. मधुमती नगरी में कपर्दी नामक कौलिक था। उसकी आड़ी और कुहाड़ी नामक दो पत्नियाँ अभक्ष्य और अपेय वस्तु में आसक्त थीं। उसके प्रस्ताव पर योगन्धराचार्य आये। एक बार पूज्य गुरु जब तंगणिका (   ) में जा रहे थे तो उस कौलिक को भार्या के वचन से ताड़ित होते देखा। आचार्य ने कहा, 'हे कौलिक, मेरे पास आओ।' उसने सोचा कि 'कुछ वस्त्र आदि माँगेंगे।' आचार्य ने शास्त्र से देखा कि 'इसकी कितनी आयु है।' उन्होंने देखा 'महज दो घड़ी तक है।' (बोले) 'हे कौलिक, लौटते समय पहली बार तुम 'नमो अरिहन्ताणं' कहना।

मद्य पीते समय, अभक्ष्य खाते समय गाँठ छुड़ाना। भोजन के बाद 'नमो अरिहन्ताणं' कहकर उसी प्रकार गाँठ बाँध लेना।' उसके ऐसी प्रतिज्ञा करने के बाद सूरि लोग चले गये। उसी समय चील से पकड़े गये साँप के मुँह से जहर मांसखण्ड पर गिरा। उसके भक्षण करने से वह मर गया। अणपन्ती-पणपन्ती व्यन्तरों मे बड़ा बलवान् व्यन्तर हुआ। अवधि से देखा कि 'गाँठ की तपस्या से ही मैं देव हुआ हूँ।' इधर उसकी स्त्रियों ने राजकुल मे जाकर इस प्रकार कहा, 'महाराज, पाखण्डियो ने हमारे पति को मार डाला है। कुछ कहा भी है, सो हम नही जानती।' मिथ्या दृष्टिवालों की बात मानकर राजा ने उन्हें कैदखाने मे डाउ दिया। उस व्यन्तर ने अपना शरीर धारण करके राजा से कहा कि 'महाराज, आचार्य से क्षम माँगो, नहीं तो तुम्हारे नगर पर शिला गिराऊँगा।' राजा ने सूरि के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगी। उसने शिला हटा ली। लोक-प्रसिद्ध गाथा है—

'304·

इस प्रकार प्रभु के सामने नाटक रचा। और बाद को इस प्रकार भी कहा, 'भगवन्, मैं क्या करूँ?' प्रभु ने कहा, 'अजी, तुमने पूर्वजन्म मे बहुत-सा पाप किया है। उनकी शुद्धि के लिए शत्रुंजयतीर्थ में संघ के सहायक बनो।' वह कपर्दी नामक यक्ष हुआ। प्रथम कपर्दी के साथ उसकी 12 वर्ष तक लड़ाई चली। कोई भी पराजित नही हुआ। इधर मधुमती नगरी मे प्राग्वाट जाति का सेठ जावड़ि था, उसकी स्त्री सीतादेवी थी। 18 गाड़ियाँ भरी हुई समुद्र में···गिर पड़ी। क्रमशः अट्ठारह वर्ष बीत गये। एक भी रीति से वे निकल न सकीं। बहुत देवताओं की आराधना की। पर किसी की सहायता न मिली। तब उसने सोचा कि एक बार व्याख्यान में श्वेताम्बराचार्य ने इस प्रकार कहा था, 'कान्तार' इत्यादि। नूतन कपर्दी ने रात में स्वप्न दिया कि 'हे जावड़ि जिस दिशा में बादल दिखायी दें, उसी दिशा में गाड़ियों को चलाना।···प्रवहण (गाड़ियाँ) हल्के होने के कारण नही चलते थे। किसी द्वीप मे आकर उन्हें कंकड़ों में भर लिया। पाँचवें दिन समुद्र पार करके जावड़ि मधुमती नगरी में आया। छगड़ तो सोने के हो गये और कंकड़ रत्न। तब जावड़ि संघ बनाकर श्री शत्रुंजय पर ऋषभदेव को नमस्कार करने चला। स्नान करते समय पहले मिट्टी के बिम्ब की नासिका गल गयी। उसे बड़ा विषाद हुआ। इस पर दश पूर्वधर श्री वज्रस्वामी ने आदेश किया कि 'आज रात को कपर्दी यक्ष को भोग देकर रात को कायोत्सर्ग के समय रहना।' यह करने के बाद रात में कपर्दी ने कहा कि 'हे जावड़, मक्षणाकार के मक्षाण नगर के बाहर पूर्व दिशा में जो राइणि (   ) है, उसके नीचे की मक्षणा पाषाण की बनी हुई अधः-फलहिका है, उसका बिम्ब बनाकर यहाँ ले आओ।' उसके गढ़वाने और मँगाने में नौ लाख खर्च हुए। दिन में पर्वत पर (यह बिम्ब) जितना चढ़ाया जाता था, रात को उतना ही पीछे खिसक आता था। श्री वज्रस्वामी के आदेश से रथ के चक्कों मे से एक के नीचे स्वय (जावड़) और दूसरे के नीचे सेठानी ठहरीं। उनके भाग्य

से और देवता की सहायता से रथ पीछे नहीं आया। बिम्ब ऊपर गया। वज्रस्वामी गणधर ने प्रतिष्ठा की। आगे का बिम्ब उठाया जाने लगा, पर वह नहीं उठा। 6 महीने तक भोग करने पर श्री वज्रस्वामी ने ध्यान से सब व्यन्तरों को आत्माधीन किया। 6 महीने के बाद जब पुराना कपर्दी कहीं आध (   ) मे क्रीड़ा के लिए गया था, नये कपर्दी की बात मानकर पहला बिम्ब उठाया गया और नूतन स्थापित किया गया। नये कपर्दी को उसका अधिष्ठाता बनाया गया, इसके बाद आराटि (   ) छोड़ी। उसके प्रभाव से पर्वत के दो टुकड़े हो गये। ध्वजारोपण के प्रस्ताव पर जावड़ि भार्या-सहित प्रासाद के ऊपर नाचने लगा। उसी समय पहला कपर्दी उसे खींचकर वैताढ्य पर्वत की उत्तरी श्रेणी मे ले गया। इस प्रकार बिम्ब की प्रतिष्ठा हुई।

305. श्री विक्रमादित्य राजा के समय से 108 वर्ष बीतने पर शत्रुंजय पर्वत पर जावड़ि ने शिलामय बिम्ब की प्रतिष्ठा की।

इस प्रकार श्री कपर्दी यक्ष और जावड़ि का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

49. लाखण राउल प्रबन्ध (BR)

225. शाकम्भरीपुरी में लक्ष्मण चाहमान था। वह वर्त्तन के लिए भार्या को लेकर एक अन्त्यज को सहाय करके देशान्तर को चला। मार्गवश नड्डूलपुर में सरोवर के किनारे देवालय में दिन-भर विश्राम किया। इधर सायंकाल ब्राह्मणों ने आकर कहा, 'हे पथिक, नगर के भीतर आओ। यहाँ मेदों के भय से रात मे कोई बाहर नहीं रहता।' लाखण ने कहा, 'हम मार्ग में रहनेवाले पथिक है। सूर्योदय के समय दरवाजे खोले जाते हैं। अतः ठहरेंगे।' ब्राह्मणो ने कहा, 'तुम लोग अप्रमत्त होकर रहो।' उनके चले जाने पर लाखण सहायको के साथ तैयार हो रहा। इधर रात में'''सहायको को साथ लेकर लाखण ने युद्ध किया। 20 आदमी मारे गये। वे दोनों भी मेदों का आघात सहकर गिर गये। प्रात'काल द्विजों ने आकर पत्नी से पूछा, 'तुम्हारा पति कौन है ? मित्र कौन है ?' उसने दिखा दिया। वे उठाकर ले गये। पालन किया। घाव आराम हो जाने पर उसने ब्राह्मणों को विदा किया। उन्होंने कहा, 'कहाँ जाओगे ?' उसने कहा, 'जहाँ निर्वाह होगा।' 'हम यहीं (तुम्हारा) निर्वाह करेंगे, तुम हमारे नगर को मेदो के उपद्रव से बचाना।' वह ठहरा। ब्राह्मणों ने उसकी वृत्ति कर दी। उसने अन्य पाँच आदमियों को रखा।

दरवाजा नही देने देता। जब मेद घाटी (   ) के लिए चले जाते थे तो उनके स्थान पर जाकर पीछे से उपद्रव करता। उन्होंने कहला भेजा कि हम 'नड्डूल की सीमा मे नही आयेंगे। तुम भी हमारे ग्राम मे न आओ।' क्रमशः उसने अपने पास 20 आदमी रख लिये। आस-पास के गाँवों मे सेना रख ली। मेदों को कहला भेजा कि 'जो ग्राम मुझे कर देते है, उनमें न आना।' एक बार घाटी लेकर मेदपाद मे गया। वहाँ घाटी (   ) भाग गयी। लाखण घात से जर्जर होकर गिर पड़ा। इधर लोग जब उच्छ्वसित होने लगे तो कुलदेवी असणि ने पक्षी रूप (चील) धारण करके सेना की रक्षा की। रात को उठकर धीरे-धीरे अपने गाँव को गया। एक बार देवी ने कहा, 'तुम्हें महान् बनाऊँगी, चिन्ता न करना। प्रातः-काल मा···तुम कुंकुभ से कुड़ियाँ भरकर रखना। ड्योढ़ी पर बैठ रहना। आगे जाते हुए घोड़ों पर उसी पानी का छीटा देना। जिन्हें ये छीटें लगेंगे उसके वर्ण परिवर्तित हो जायेंगे और भीतर प्रवेश करेंगे।' प्रातःकाल उसने वैसा ही किया। बहुत-से घोड़े नगर मे घुसे। एक बड़े घोड़े को देखकर स्थानपाल ने उसके गले लगकर कहा, 'हो जाओ, हो जाओ!' इसके बाद प्रवेश करते हुए घोड़े रुके। वाहरा के आने पर (लाखण से) पूछा, 'हमारे घोड़े प्रविष्ट होंगे?' लाखण ने कहा, 'भीतर आकर देखो।' उन्होने घोड़ों का रूप देखा। दो घोड़े मिले। उन्हें लेकर चले गये। जिनके छीटे लगे वे बाकी घोड़े रह गये। इस प्रकार 12 हजार घोड़े हो गये। बड़ी प्रभुता हो गयी।

226. एक बार अपने घर पर बैठे हुए उसने एक ब्राह्मणी को नहाते देखा। पीछे ब्राह्मणों को बुलाकर कहा कि 'मैं आपका नगर छोड़ दूँगा।' उन्होने पूछा, 'क्यों? यहाँ आकर तुम्हारा क्या नष्ट हो गया?' 'यदि मुझे बाहर घर बनाकर रहने के लिए भूमि दो, तो रहूँगा।' ब्राह्मणो ने नगर के बाहर वास करने के लिए भूमि दी। उसने वहाँ धवलगृह बनाना शुरू किया। काठ···भीत मोटी हो गयी और पाट छोटे। सूत्रकारों ने सोचा कि 'अब क्या करें (उपाय करें)।' एक वेश्या से पूछा कि 'किस उपाय से हमारा निस्तार होगा?' उसने कहा, 'भय की कोई बात नही।' वह भेंट के लिए थाल लेकर सैकड़ो से भरकर राजकुल को गयी। राजा ने पूछा, 'आज यह क्या बात है?' 'महाराज! आज लाखण का घर···है।' 'सो कैसे?' 'देखिए, भीतें मोटी हैं, पटरे छोटे।' राजा ने इसी को शकुन समझकर उसका सत्कार करके भेजा। वहाँ राजकुल के द्वार पर कुलदेवी ने एक बड़ा-सा प्रासाद बनवाया। इसी प्रकार अट्ठारह बड़े-बड़े जैन मन्दिर और प्राकार भी। इस प्रकार क्रमश नड्डूल राज्य हुआ।

227. एक बार किसी सेठ की कुमारी कन्या को देखा। उसे विवाह के लिए माँगा। उसने पिता से कहा। (पिता ने कहा) 'मैं श्रावक हूँ। मेरे पुत्र मांसाशी होगे, इसलिए यह बात मान लो कि पुत्र मातुलालय में पाले जायेंगे। 'यह मान लेने पर उसने विवाह किया। पुत्र होने पर माँ के घर भेज दिये जाते। वही उसके सभी लड़के पाले गये। राउल ने कहा, 'तुम्हारे पुत्रो को क्या वृत्ति दूँ?' 'भाण्डार मे रख दो

और बनियों की पंक्ति दिला दो।' राउल ने वैसा ही किया। बनियों के साथ विवाहादि सम्बन्ध हुए। वे भण्डारी हुए। उसके आसल-राउल इत्यादि बत्तीस लड़के हुए। तब उन्हें बला पर्वत के किनारे पृथक्-पृथक् किलो में स्थापित किया। उसके वंश में राउल-कल्हण और केतु नामक दो शाखाओं मे दो राजकुल हुए। नड्डूल और सुवर्णगिरि में लाखण के पूर्वज वासुदेव, नरदेव, वीकम, वल्लभराज, चान्दण गोड, अजयरा, वीघरा, सिहरा। लाखण, बलिराज, सोही, माहिन्द अणहिल, जीन्दराज, आसराज, आल्हण, कीतू, समरसींह, उदयसींह, चाचिगदेव, सामतसींह और कान्हड़देव इत्यादि (हुए)।

इस प्रकार लाखण राउल प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

50. चित्रकूट की उत्पत्ति का प्रबन्ध (P)

228. कान्यकुब्ज की काशी नगरी मे शम्भलीश नामक राजा राज्य करता था। इधर शिवपुर में कुछ गाँवों का स्वामी चित्रांगद नामक राजा था। एक बार उसकी सभा में कोई योगी आया। वह नित्य ही आता, पर राजा से (कुछ) न कहता। 6 महीने के बाद राजा ने उसकी सेवा का कारण पूछा। वह बोला, 'महाराज, निर्जन होने दीजिए।' वैसा ही किया गया। 'राजन्, मेरे गुरु ने विद्या दी है। उसकी पूर्व-सेवा हो गयी है, उत्तर-सेवा बाकी है। वह तुम्हारे बिना नही हो सकती, क्योंकि तुम्ही 32 लक्षणों से युक्त हो।' राजा ने उसकी बात मान ली। (उसने कहा कि) 'देव्यष्टमी के दिन, हाथ में तलवार लेकर तुम कूटाद्रि पर आना।' 'हाँ' ऐसा कहने पर वह चला गया। पट के अन्तराल से रानी ने यह बात सुनी। उसने अमात्य (मन्त्री) से कहा। मन्त्री ने कहा कि जब 'जब राजा जायँ तो मुझसे कहिए।' राजा सायंकाल सिरदर्द का बहाना करके रानी को छोड़के जब चला तो उसने मन्त्री को सूचित किया। वह पीछे-पीछे चला। राजा ने पर्वत पर जाकर योगी को देखा। मन्त्री भी छिपा रहा। योगी राजा को अग्निकुण्ड के पास छोड़कर स्नान के लिए गया। मन्त्री प्रकट होकर राजा से बोला, 'महाराज, यह कपटी है। तुम्हे मारकर स्वर्णपुरुष सिद्ध करेगा। इसलिए चला जाय।' राजा बोला, 'मेरी बात न जाने पाये।' मन्त्री ने कहा कि 'जब यह कहे कि फेरी दो, तो आप कहना कि मैं नही जानता, आप आगे हो लें।' यह कहकर मन्त्री वृक्ष की ओट में हो गया। योगी आया। उसने ध्यान करना शुरू किया। अग्निकुण्ड उद्दीप्त किया। राजा से कहा, 'फेरी दो।' 'तुम मुझे फेरी देकर दिखाओ, मैं नही जानता।' वह उठकर वैसा

ही करने लगा। दोनों ही शीघ्रता से दौड़ने लगे। योगी ने राजा को अग्नि की ओर प्रेरित किया। तब तक मन्त्री और राजा ने उसे (आग के) भीतर डाल दिया। वह स्वर्णपुरुष हो गया। दोनों ही उसे लेकर घर आये। उसके (स्वर्णपुरुष) के प्रभाव से धन हुआ। बाद को वह (राजा) नगर के लिए स्थान देखता हुआ पर्वत पर चढ़ा। वहाँ किला दिन में जितना बनता था, रात में उतना ही गिर जाता था। पूजा करके उसने वहां के व्यन्तर को सन्तुष्ट किया। उसने कहा, 'मैं नगर का भार सहन करने में असमर्थ हूँ। इसलिए दूसरी जगह (नगर) बसाओ। वहाँ जल आदि पूर्ण करूँगा।' बाद को पर्वत पर दूसरी जगह दुर्ग शुरू किया। 'चित्रकूट' यह नाम दिया। बसती होने पर लोग भीतर समाये नहीं। तब राजा ने कहा, 'कोटीश्वर लोग बीच में रहें और लखपती बाहर।' इस प्रकार कोटिध्वजों के हजार घर हुए। इस प्रकार नगर बस जाने पर काशी के राजा शम्भलीश ने किला घेर लिया। उसने स्वर्णपुरुष माँगा। 12 वर्ष तक लड़ाई होने के बाद (काशी के) राजा ने अपने आदमियों के सिर पर घास रखकर भीतर की स्थिति जानने के लिए नगर में भेजा। वे घास लेकर जब मन्त्री के घर के नीचे से गुजरने लगे तो खिड़की पर बैठी हुई मन्त्री की पुत्री ने पिता से कहा, 'पिताजी, पर्वत के नीचे इन बनियों को इतने दिनों से क्यों रखा है? कर लेकर भेज क्यों नहीं देते?' उसने हँसकर कहा, 'इसे शत्रुसेना जानकर मैंने तुम्हें दुर्ग भीतर ही ब्याह दिया था। तुम्हें पुत्र भी हो गया, पर यह (सेना) नहीं जा रही है।' इस बात को सुनकर उन्होंने राजा से कहा। वह निराश होकर जाने लगा। अपनी सेना को भेज दिया। वह दुर्ग को देखता हुआ जब जाने लगा तब खिड़की पर बैठी हुई वाकरी वेश्या ने यह सूक्त कहा—

306. 'गण्डूपद (   ) क्या मेरु के शिखर पर चढ़ता है? क्या वार-वेरज (?) पर्वत पर मार्ग रोक सकता है? क्या अजगर सूर्य का मार्ग रोक सकता है? पण्डित लोग उसी वस्तु पर श्रम करते हैं जो शक्य हो। हे शम्भलीश! दुर्ग ग्रहण करने के प्रयास को छोड़ो।'

राजा बोला, 'ऐसा करो कि किला ले सकूँ।' उसने कहा, 'सेना तैयार करो। यह यहाँ का (राजा चित्रांगद) दोपहर को तीन दरवाजे खोलकर दान देता है। जब मैं स्नान करके केश बाँधू तो घुस पड़ना।' संकेत मिलने पर दुर्ग पर धावा किया गया। किन्तु चित्रांगद स्वर्णपुरुष को गले में बाँधकर वापी के भीतर कूद पड़ा। राजा ने उसे खोदना शुरू किया। तब आदेश हुआ, 'रुको, नहीं तो सेना को मार डालूंगा।' वह राजा चित्रांगद के लड़के को राज्य देकर अपनी नगरी को लौट गया। तब से इस प्रकार पढ़ा जाता है—'रे चित्रकूट मिदं भद्रे.' इत्यादि।

इस प्रकार चित्रकूट की उत्पत्ति का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

51. श्री हरिभद्र सूरि प्रबन्ध (B)

229. चित्रकूट मे हरिभद्र ब्राह्मण चतुर्दश विद्या का पारंगत [illegible] था। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि 'उसके कथन का मैं खण्डन नही कर सकूँगा उसी का शिष्य हो जाऊँगा।' श्री वृहद्गच्छ मे श्री जिनभद्र चतुर्मासा कर रहे थे। याकिनी साध्वी उनके उपाश्रय मे थी। एक बार प्रतिक्रमण के अनन्तर कोई साध्वी आवश्यक गणना कर रही थी। उसने यह गाथा कही—

307.

हरिभद्र ने इस गाथा को गिनी जाती हुई सुना। अर्थ न जानते हुए प्रविष्ट हुआ। प्रवर्त्तनी ने कहा, 'यहाँ कौन प्रवेश कर रहा है?' उसने कहा,'''प्रवर्त्तनी ने कहा,'''कृपा करके इसका अर्थ कहिए।' 'यदि सुनने की इच्छा है तो गुरुजी से जान लेना।' वह चला गया। प्रातःकाल पौषधागार मे गया। बोला, 'इस गाथा की व्याख्या कीजिए।' गुरु ने कहा, 'प्रतिज्ञा का क्या (होगा)?' 'वह उसी प्रकार होगी (जैसी कही गयी है।)' 'तो यह गाथा पूर्वापर सम्बन्ध की अपेक्षा रखती है। वह दीक्षा और तपश्चरण के बिना सम्भव नही है।' 'तो मुझे दीक्षा दीजिए।' उस समय ब्राह्मणो ने मिलित होकर कहा, 'हम नहीं देने देंगे।' हरिभद्र ने कहा, 'क्यों नहीं दोगे?'

308. पक्षपात छोड़कर, मध्यस्थ होकर और युक्तियुक्त विचार करके ग्रहण करना चाहिए और जो अयुक्तिसंगत हो, उसका त्याग करना चाहिए।

309. मेरा महावीर के प्रति न तो पक्षपात है और न कपिल आदि के प्रति द्वेष है। जिसका वचन युक्तियुक्त है, उसी का ग्रहण करना चाहिए।

310. विष्णु दुर्योधन के स्वकुल नाशकर्त्ता हुए, शिव भी त्रिपुर को जलाने-वाले हुए और कार्तिकेय भी'''किन्तु महावीर जगत् के हितकारी हुए।

311. स्वार्थ के लिए जिन देवताओं ने मस्तक नत किया था, उनके पक्षपात से दृप्तात्मा दानवेन्द्र को करज कुलिश से मारने के लिए त्रिभुवनगुरु वे नारायण इस सिद्धान्त मे रागद्वेष के प्रवर्त्तक हैं, फिर और दूसरे को पशुत्व क्यों नहीं होगा?

312. विष्णु जो हैं, वे समुद्यत गदा से युक्त हाथो से रौद्रमूर्ति हैं; शिव जो हैं, वे लटकते हुए नरशिरो की अस्थि की माला धारण करनेवाले हैं। पर महावीर अतिशय शान्त चरित्र वाले है। फिर किसकी पूजा करें? अशान्त चरित्रवाले की या उपशान्त चरित्रवाले की?

313. जो बालबुद्धिवाले बिना विचारे किसी वस्तु को भी मिट्टी के मोदक के समान ग्रहण करते है, वे पीछे सुवर्णकग्राहक की तरह पछताते हैं।

314. नेत्रो से विष, काँटे, कीड़े, सर्प आदि देखकर मनुष्य जैसे इन'''

त्याग करके चलता है, उसी प्रकार कुज्ञान, कुश्रुति, कुदृष्टि और कुमार्गरूपी दोषों को समझकर विचार करो—यही परमतत्त्ववाद है।

अजी, मैंने जो सम्यक् है, उसका विचार किया है।

315. वीतराग से बढ़कर दूसरा देवता नहीं है, ब्रह्मचर्य से बढ़कर दूसरा चरित्र (आचरण) नहीं है, अभयदान से बढ़कर कोई दान नहीं है और चारित्री से बढ़कर कोई पात्र नहीं है।

इस प्रकार ब्राह्मणों का सम्बोधन करके दीक्षा ग्रहण की। योगक्रिया करके जब सिद्धान्तसार का अध्ययन किया तो गुरु ने पद पर स्थापित किया। हरिभद्र-सूरि यह नाम दिया। उन्होंने सिद्धान्त के रहस्यभूत चौदह सौ प्रकरण बनाये। सोचा कि इन्हें लिखेगा कौन ? एक दरिद्र बनिये को देखा। उससे कहा कि 'मेरे बनाये ग्रन्थों को लिखो!' उसके यह कहने पर कि 'गुरु की जैसी आज्ञा', गुरु ने उपदेश दिया कि आज मण्डपिका में'''स्वयं आयेंगे, उन्हें लेकर घर ले जाना, बाद को आना। ऐसा करने पर वह सोने के खम्भों से धनवान् हो गया। उसने चाँदी के पत्रों पर सोने के अक्षरों से उन सब ग्रन्थों को लिखवाया। गुरु ने चित्रकूट के ऊपर औषधों को मिलाकर खम्भा बनवाया। उसी पर औषधों को छोड़ दिया। वह स्तम्भ न तो पानी से गलता था, न कटता था और न आग से जलता था।

230. एक बार सूरि के भानजों ने व्रत ग्रहण किया। सूरि ने प्रमाणों को अध्यापित किया। इन्होंने सुना कि बौद्धों के प्रमाणग्रन्थ मुश्किल से समझ में आते हैं। गुरु से कहा, 'भगवन्, आपके आदेश से बौद्धों के प्रमाणग्रन्थों को सुनकर जैन अभिप्राय से (व्याख्या) करके जायेंगे।' गुरु ने बहुत वारण करने पर भी आग्रह करके चले। बौद्धों के देश में गये। वहाँ वेश छिपाकर विद्यामठ में पढ़ने लगे। अपने स्थान पर आकर ग्रन्थ बदलने लगे। बौद्धों की अधिष्ठात्री तारादेवी ने हवा के वेग से लेख उड़ाकर लेखशाला में फेंक दिये। 'नमोजिनाय' यह देखकर छात्रों ने उपाध्याय को दिखाया। उसने कहा कि 'कोई जैन प्रच्छन्न भाव से पढ़ रहा है। यहाँ घर के दरवाजे पर एक जिन-मूर्त्ति रखो। सब लोग ऊपर चरण देकर जाओ। जैन जो होगा वह न जायेगा। तब वह जान लिया जायेगा।' सभी छात्र निःशंक भाव से चरण देकर चले गये। दोनों ने सोचा कि 'हम लोगों ने जान लिया, यह काम हम लोगों की परीक्षा के लिए किया गया है।' तब बड़े कान से खड़िया लेकर 'वम्म-सूत्र' बनाया। ऊपर चरण देकर चले गये। अपने आश्रय से शास्त्र लेकर निकल गये। बौद्धाचार्यों ने राजा से कहा कि 'महाराज, दो श्वेताम्बर शासन (बौद्ध-धर्म) का सर्वस्व लेकर भाग गये हैं।' राजा ने उनका पीछा किया। इसके बाद (उनमें से) हंस नामक (एक) ने कहा, 'वत्स, मैं तो यहीं रहा, तुम किसी की शरण में चले जाओ।' हंस तो युद्ध करके मर गया। परमहंस किसी नगर में प्रवेश करके शरण में चला गया। पीछे-पीछे सेना भी आयी। बाहर से ही उन्होंने माँगा कि 'अजी, तुम भी बौद्ध भक्त हो, सो इस धर्मविद्वेषी को हमें दे दो।' उसने कहा कि 'शरणागत को नहीं दूँगा, चाहे वह जैसा हो।' परमहंस (नामक द्वितीय) ने कहा, 'मेरे साथ

बौद्ध आचार्यों का शास्त्रार्थ हो, यदि मैं पराजित हो जाऊँ तो मार डालना।' बौद्धों से विजित होकर वह मारा गया। इसके बाद उसके खून से लिप्त धूलि को शकुनिका (चील) का रूप धारण करनेवाली किसी देवी ने चित्रकूट की पौषधशाला में छोड़ दिया। गुरु (हरिभद्र सूरि) ने पहचाना।'''देखकर उनका मरण जान लिया। शिष्यों ने उन्हें रौद्र-ध्यानगत देखा। बौद्धों के ऊपर कुपित हुए। इसके बाद उपाश्रय के पीछे तेल की कड़ाही रखवा दी। मन्त्रबल से बौद्ध आकाशमार्ग से आ-आकर उस कड़ाही में पतिंगे की भाँति गिरने लगे। इस प्रकार सात सौ गिरे। तब गुरु ने वृत्तान्त जानकर एक श्रावक को सिखाकर भेजा। वह भीतर प्रवेश नहीं कर पाता था। उसने कहा कि 'मैं गुरुवर श्री जिनभद्र सूरि के पास से आया हूँ।' बीच में जाने दिया। उसने कहा कि 'प्रभो, मैं आलोचनार्थी होकर गुरु के पास गया था। मैंने प्रायश्चित्त माँगा था। गुरु ने मुझे आपके पास भेजा है। कृपा करके मुझे प्रायश्चित्त दीजिए।' प्रभो, मैंने पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या की है।' वह अत्यन्त खिन्न हुआ। गुरु ने कहा, 'बहुत प्रायश्चित्त होगा।' 'यदि मुझे इतना करना है तो फिर आपको कितना (प्रायश्चित्त) करना पड़ेगा?' तब उन्होंने समझा कि गुरु ने सारा हाल जान लिया। तब उन्होंने मुँह नीचा कर लिया। श्रावक ने कहा कि 'गुरु ने कहला भेजा है कि (आपने) समरादित्यचरित क्यों नहीं समझा है? उसने एक जन्म में पिसान (आटे) का मुर्गा वध किया था तो इक्कीस बार पिसान के मुर्गे में संक्रान्त व्यन्तर ने वैर लिया था।' वह स्मरण कर श्री हरिभद्र आचार्य वध से निवृत्त हुए। फिर संघ इकट्ठा करके प्रायश्चित्त किया। बाद को वैराग्यामृतमय 'समरादित्य चरितम्' बनाया। समय पाकर अनशन करके स्वर्गवासी हुए। यह प्रतीत है।

316. महत्तरा याकिनी के पुत्र, बुद्धिमान् आचार्य हरिभद्र ने यह अष्टक वृत्ति बनायी।

इस प्रकार श्री हरिभद्र सूरि के प्रबन्ध का लेशमात्र (समाप्त हुआ)।

52. सिद्धर्षि प्रबन्ध (B, BR)

इसके बाद सिद्धर्षि का (प्रबन्ध) कहा जाता है—श्रीमालपुर में श्रीमाल जाति के दो भाई दत्त और शुभंकर बड़े समृद्धिशाली थे। शुभंकर का पुत्र सीधाक हुआ। दत्त का लड़का हुआ माघ। वह सीधाक लड़कपन से ही जुआड़ी था। पिता ने'''एक बार जुआ खेलते समय वह हार गया। पिता के घर से चोरी करके उसने दिया। एक

बार खेलते हुए उसने कहा कि '5 सौ द्रम्म तक का खेल करो। या तो मैं द्रम्म दे दूंगा या सिर।' द्यूतकारों ने उसे बैठाया। वह हार गया। जुआड़ियों ने द्रम्म माँगे। रात को जब जुआडी श्री वीर मन्दिर में धरना देकर सोये थे तब सिद्ध ने मन्दिर की दीवाल से झांप दिया (कूद पड़ा)। पौषधागार में गिरा। गुरु ने कहा, 'तू कौन है?' उसने अपना नाम कहा। 'क्या है यहाँ ग्रहण करने योग्य?' उसने कहा, 'सत्य है। पर मुझे दीक्षा दीजिए। जुआड़ी प्रात.काल मेरा सिर ले लेंगे। इसीलिए थोड़ी देर के लिए भी दीक्षा दीजिए।' गुरु ने नक्षत्रों को देखकर उन्हें प्रभावकारी समझकर दीक्षा दी। प्रात.काल भक्तो ने उसे देखकर गुरु से कहा, 'प्रभो, आजकल परिवार थोड़ा है क्या, जो इस घटानुकारी माणिक्य को दीक्षा दी है?' 'जैसा-तैसा भी हो।' इसके बाद बैठने पर स्वाध्याय पुस्तिका देखकर, आदि, मध्य और अवसान देखकर पाठ किया। गुरु ने सोचा, 'आश्चर्य है इसकी प्रतिभा।' इसके बाद जुआड़ी आये। (बोले) 'अरे, बाहर आ! क्या पाखण्ड करने से छूट जायेगा?' श्रावकों ने कहा, 'क्या देना है?' 'पाँच सौ द्रम्म।' 'हम देंगे। किसी के कारण से यह दीन छूट जाये।' 'फिर हमारे पास आयेगा।' श्रावकों ने कहा, 'जायेगा तो जाय।' द्यूतकारों ने कहा कि 'तो हम लोगों ने छोड़ दिया।' वे चले गये। वह सिद्धान्त और प्रमाणग्रन्थों को पढता गया। सिद्ध ने कहा, 'भगवन्, बौद्ध लोगों के विषय में सुना है कि बड़े वादी होते है। वहाँ जाकर उन्हें जीतकर आऊँगा।' गुरु ने कहा कि 'जैनों का यह धर्म नही है कि किसी के सामने जायें। बैठे हुए के सामने जो आ जाये सो आ जाये।' वह आग्रह के साथ जाने लगा। सूरि ने कहा, 'यदि वहाँ जाकर तुम्हारा मतपरिवर्तन हो जाय तो हमसे विदा ले जाना।' (उसने सोचा) 'यह क्या आदेश किया। (इन्होने)?' बौद्धो के देश में गया। उनका स्वरूप देखा—

317. मृदुल शय्या, प्रातःकाल उठकर पेय (पीने का स्वादु रस), मध्याह्न में भोजन और अपराह्न में पानक (शर्बत आदि), आधी रात को दाख और शक्कर (इस प्रकार समय बिताते हुए पुरुष के लिए) शाक्य सिंह (गौतम बुद्ध) ने अन्त में मोक्ष देखा है।

इस प्रकार के आशीर्वाद भी सुने—

318. 'ध्यान का बहाना करके किसकी चिन्ता कर रहे हो? क्षण-भर के लिए इस कामबाण के अनुरंजन (सुन्दर शरीर) को देखो। रक्षक होकर भी रक्षा नहीं कर रहे। तुम मिथ्या कारुणिक हो, तुमसे अधिक निर्घृण पुरुष और कौन है?' इस प्रकार कामदेव की वधुओ द्वारा ईर्ष्यासहित कहे गये बुद्ध जिन तुम्हारी रक्षा करें।

319. आत्मा नही है, (किन्तु) पुनर्जन्म है; सदा ही कर्त्ता के बिना कर्म है। कल्याण के लिए जानेवाला नही है, (किन्तु) गमन है; बुद्ध है किन्तु बद्ध नही है, इस प्रकार गहन (कठिनता) में जिस मुनि का शासन उसी तरह व्याहत नहीं होता जिस तरह खद्योतो से सूर्य की किरण, वही बुद्ध जिन तुम्हारी रक्षा करें।

तथा 'शुष्क शुष्कली (पूड़ी) भक्षण करते हुए भगवान् (बुद्ध) को पंचज्ञान समुत्पन्न हुए थे' इत्यादि बातें सुनकर बौद्धाचार्य से कहा कि 'मैं जैन हूँ पर आपके दर्शन का आदर करूँगा।' उन्होंने प्रसन्न होकर राजा से निवेदन किया कि 'यह जैन हमारी दीक्षा ग्रहण करेगा।' राजा ने गौरव किया। दुकूल पहनाये और आभूषणों से अलंकृत किया। प्रात.काल बौद्ध दीक्षा में लगा। रात में उसने गुरु के वचन सुने। प्रातःकाल उनसे शर्त करके चला। श्रीमाल मे जिन सिंहसूरि के पास गया। (बोला) 'आचार्य, विदा दीजिए, मैंने उन (बौद्धों) के शासन को तत्त्वभूत समझा है।' गुरु ने कहा 'कुछ हमें भी बताओ।' उसने बताया। गुरु के प्रत्युत्तर देने पर बोला, 'भगवन्, यह बात तो मुझे आपने बतायी नही थी। इस वचन से उन्हें जीतकर आऊँगा।' गुरु ने पहले की शर्त करके भेजा। वहाँ उन्होंने फिर बदल दिया। फिर गुरु के पास आया। उन्होंने समझाया। इस प्रकार उसने सात बार आना-जाना किया। आठवी बार बौद्धों ने कहा, 'यही रहो या वही जाओ।' उसने कहा, 'मेरे साथ चार वादियो को भेजो।' उन्हे लेकर श्रीमाल के पौषधागार में आया। द्वार पर से ही बोला, 'आचार्य, विदा दीजिए। उन्होंने कहा, 'भीतर आओ।' भीतर गया। बिना नमस्कार के ही बैठ गया। गुरु ने आसन पर 'ललित विस्तरा' वृत्ति की पुस्तक रखकर स्वयं तनुगमनिका (   ) को गये। उसने लुठित होते हुए कहा, 'इन बौद्धाचार्यो से आक्रान्त सूरि के लिए तनुगमनिका ही सुलभ है।' सूरि गये। वह पुस्तिका बांचने लगा। 'सिवमयल' इस आलापवृत्ति को सोचकर बौद्धों के साथ वाद करके, गुरु के आने के पहले ही बौद्धों को निरुत्तर कर दिया। गुरु के आने पर उठा और उन्हें सूचित किया—'मैं अकेला था, अब अपने को लेकर पांच आदमियों के साथ आया हूँ।' उसने कहा—

320. इस प्रभुसूरि हरिभद्र को नमस्कार है जिन्होने मेरे लिए 'ललित विस्तरा' वृत्ति बनायी।'

उन (बौद्धों) के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। बाद को उपदेशमालावृत्ति बनायी। बाद को सूरिपद की अनुपालना करके स्वर्गवासी हुआ।

इस प्रकार सिद्धर्षि प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

53. शान्तिस्तव प्रबन्ध (P)

232. कोरण्टक के वीरचैत्य में देवचन्द्र नामक उपाध्याय था। श्री सर्वदेवाचार्य वाराणसी के सिद्ध-क्षेत्र में जाने की इच्छा से वहाँ आये। उपाध्याय को अपने पद

पर स्थापित किया। देवसूरि यह नाम दिया। स्वयं यात्रा में गये। उस पट्ट में प्रद्योतनसूरि थे। वे विहार करते हुए नड्डूल में गये। वहाँ सेठ जिनदत्त, उसकी स्त्री धारिणी और पुत्र मानदेवसूरि के उपाश्रय में गये। धर्म सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की। सर्वसिद्धान्त का तत्त्वज्ञ हुआ। सूरीश्वर ने पद पर स्थापित किया। जया और विजया नामक देवियाँ प्रणाम करती थीं। पाँच सौ तीर्थों से पवित्रिता तक्षशिला नगरी मे महान् रोग हुआ। कोई किसी के घर नही जाता था। पुरी को शून्यप्राय देखकर संघ ने सोचा—'सभी अधिष्ठाता नष्ट हो (भाग) गये।' ऐसा सोचने पर शासनदेवी ने उपदेश किया कि 'सभी व्यन्तरों के प्रति तुरुष्को के व्यन्तरों ने उपद्रव किया है। तीन वर्ष के बाद तुर्कों का आक्रमण होगा। यह जानकर जो उचित हो सो करो। फिर रोग शान्ति का भी उपाय है। नड्डूल नगर के श्रीमान देवसूरि के चरणोदक से अपने आदमियों को नहलाओ ताकि डामर नष्ट हों।' इस प्रकार कहके वह तिरोहित हुई। उन सबने मिलकर वीरदेव नामक श्रावक को नड्डूल मे भेजा। वह वहाँ गया।···करके भीतर गया। सूरि को ध्यानपरायण देखा। जया और विजया नामक देवियाँ नमस्कार करने आयी और अपवरक के कोने मे बैठ गयी। जब वह भीतर गया तो देवियों को देखकर चकित हुआ। 'अहो, ये राजर्षि है? इनके चरणोदक से शान्ति कैसे होगी? मुझे देखकर इन्होंने ध्यान आरम्भ किया है।' सूरि ने ध्यानभंग किया, तब उसने अवज्ञा के साथ वन्दना की। देवियों ने उसका चित्त जानकर उसे अदृष्ट बन्धनो से बाँधा। वह प्रभु द्वारा छुड़वाया गया। सूरि के आगमन का कारण पूछने पर श्रावक वीरदेव ने कहा कि 'तक्षशिला के संघ ने उपद्रव की शान्ति के लिए आपके पास भेजा है। मुझे सन्देह हुआ।' जयादेवी ने कहा, 'जहाँ आपके समान छिद्रान्वेषणी श्रावक है, वहाँ गुरुजी नही जायेंगे।' गुरु ने कहा, 'हम यही से शान्ति करेंगे।' श्री शान्तिनाथ और पार्श्वनाथ के मन्त्र से गर्भित 'श्री शान्तिस्तव' को देकर उन्हे भेजा। वह उस नगरी में गया। उसके पाठ से शान्ति हुई। तीन वर्ष के बाद तुर्कों ने पुरी लूट ली। उस नगरी में आज भी भूमिगृहों में पीतल की मूर्तियाँ हैं। तभी से यह स्तव हुआ।

इस प्रकार शान्तिस्तव प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

54. न्याय में यशोवर्मा राजा का प्रबन्ध (BBRP)

233. कल्याणकटक नगर में यशोवर्मा राजा था, उसने धवलगृह के द्वार पर न्याय-घण्टा बाँध दिया था। एक बार राज्य की अधिष्ठाती देवी ने राजा के व्रत की

परीक्षा के लिए गाय का रूप धारण किया और तत्काल उत्पन्न बछड़े को मार्ग मे कर दिया। राजा का लड़का वहली में बैठा हुआ वहाँ आया। वेग से वहली बछड़े के चरण पर होकर गयी। बछड़ा मर गया। गाय 'को को' करती हुई आँसू बहाने लगी। किसी ने कहा, 'राजसभा में जाकर न्याय की याचना करो।' वह गयी। उसने शृंगाग्र से घण्टा बजाया। राजा भोजन के लिए बैठा था। शब्द सुनकर बोला, 'रे, यह कौन घण्टा बजा रहा है?' सेवकों ने देखकर कहा, 'कोई नहीं महाराज, भोजन कीजिए।' राजा बोला, 'निर्णय पाकर भोजन करूँगा।' राजा थाली छोड़-कर स्वयं प्रतोली में आया। किसी को न देख, गाय से कहा, 'किसने तुम्हें सताया है? उसे मुझे दिखाओ।' वह आगे हुई। राजा पीछे लगा। उसने बछड़े को दिखाया। राजा ने कहा, 'किसने यह वहली चलायी है? वह आगे आये।' कोई नहीं बोला। राजा बोला, 'मैं तभी भोजन करूँगा, जब वह प्रकट होगा।' उपवास करने पर प्रातःकाल कुमार ने कहा, 'महाराज, मैं अपराधी हूँ। मुझे दण्ड दीजिए।' राजा ने वहली मँगाकर स्मृतिशास्त्रज्ञों से पूछा कि 'इसका क्या दण्ड है?' उन्होने कहा, 'महाराज, राज्य का अधिकारी एक ही कुमार है, उसको दण्ड क्या?' राजा ने कहा, 'किसका राज्य और किसका पुत्र? मेरे लिए न्याय ही बड़ा है। जो हो सो कहो।' उन्होने कहा, 'जो जिसके प्रति जैसा आचरण करता है, उसके प्रति भी वैसा ही विधान है।' राजा ने कहा, 'यहाँ सो जाओ।' वह (कुमार) सो गया। राजा ने कहा, 'ऊपर से वेग से वहली चला दो।' किसी ने नहीं किया। तब राजा बोला, (B) 'मुझे पुत्रस्नेह नहीं है, यह मरे या जिये।' जब स्वयं वाहिनी पर बैठकर कुमार के चरणों पर वहली चलाने लगा तो देवी ने प्रकट होकर पुष्पवृष्टि की। न गाय (दिखायी पड़ी) न बछड़ा। (देवी ने कहा—) 'राजन, मैंने तुम्हारे चित्त की परीक्षा की थी कि राजा को पुत्र प्रिय है या न्याय। पुत्र से भी बढ़कर न्याय तुम्हे प्रिय है। चिरकाल तक राज्य करो।'

इस प्रकार न्याय मे यशोवर्मा का प्रबन्ध है।

55. अम्बुचीच राजा का प्रबन्ध (BR,P)

234. एक बार द्वारिका में कृष्ण राज्य करता था। पाण्डवों के पितृव्य विदुर को कृष्ण ने प्रधान बनाया। प्रतिदिन 16 गधाणक की वृत्ति की, और कुछ नहीं। एक बार विदुर ने कहा, 'तुम मुझे अधिक नहीं देते, इसलिए दूसरे के पास जाता हूँ।' कृष्ण बोला, 'तुम्हारी प्राप्ति इतनी ही है, अधिक नहीं।' विदुर ने कहा, 'प्राप्ति

है पर तुमने वारण किया है।' 'तो किसी और राजा के पास जाओ।' कृष्ण ने उसे भेजा। कृष्ण ने सभी राजाओं से कहला दिया कि 'विदुर को 16 गद्याणक से अधिक न देना।' वह सर्वत्र घूमकर लौट आया। कृष्ण से बोला, 'तुम काल की भाँति मेरे पीछे लगे हो। तुम्हारी आज्ञा से कोई अधिक नहीं देता।' तब कृष्ण बोला, 'तो ब्राह्मण का रूप बनाओ, मैं भी तुम्हारा शिष्य हूँगा। हस्तिकल्पपुर में अम्बुचीच नामक राजा बड़ा दानी है, पर कान से नहीं सुनता। प्यासा होने पर 'अम्बु' (पानी) कहता है और भूखा होने पर 'चीचु' ( ) । उसी के नगर में हम दोनों जायँ।' वहाँ गये। विदुर ने सुन्दर ब्राह्मणवेश बनाया। कृष्ण ने विद्यार्थी का। विदुर ने राजा को आशीर्वाद दिया। राजा ने प्रधान की ओर देखा। प्रधानों ने कहा, 'घड़े में हाथ डालकर चीरिका को ( ) खींचो।' विदुर ने नीचे हाथ लगाकर खींचा। देखा। उसमे 16 गद्याणक लिखा था। ब्रह्मचारी रूपधारी कृष्ण ने ऊपर का खींचा। उस चीरिका ( ) में एक कोटि लिखा था। प्रधानो ने कहा, 'यह अकिंचित्कर है, और यह भाग्यवान् है। हमारे दान में 16 निकृष्ट हैं और कोटि सर्वोत्तम।' तब वे दोनों लौटे। कृष्ण ने कहा,

321. 'विद्या मनुष्यों की जड़ता की वृद्धि और धनलाभ के लिए नहीं है। अपने को, अम्बुचीच को और मुझे देखकर सुखी होओ। तुम विदुर हो, हम कृष्ण हैं, राजा तो अकिंचित्कर है।' यह सोचकर विदुर स्वस्थ हुआ।

इस प्रकार अम्बुचीच का प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(P) संग्रह में आये हुए विधि और परोपकार सम्बन्धी बाकी फुटकर प्रबन्ध

56. विधि के विषय में उदाहरण

235. पोतनपुर में नरवाहन राजा था, सुमित्र मन्त्री। एक बार अन्त.पुर में लड़की पैदा हुई। राजा ने उत्सव कराया; छठियार के दिन मन्त्री को बड़ा विस्मय हुआ। षष्ठी के दिन ब्रह्मा ने आकर ललाट पर अक्षर लिखा। 'यह बात सत्य है या असत्य' ऐसा सन्देह होने पर तलवार लेकर प्रच्छन्न भाव से छिपा रहा। आधी रात को एक स्त्री आयी। वह कुंकुम लेकर अक्षर लिखकर जाने लगी तो मन्त्री ने प्रणाम करते हुए कहा, 'देवि, कृपा करके बताइये कि आपने क्या अक्षर लिखे हैं।' उसने कहा, 'मत पूछो।' बहुत आग्रह से पूछी जाने पर बोली, 'यह कोरी के लड़के

की पत्नी होगी।' यह कहकर तिरोहित हो गयी। प्रात.काल मन्त्री ने विषण्ण होकर यह वृत्तान्त राजा से कहा। राजा ने कहा, 'उसका लड़का तो अभी पैदा ही हुआ है, यद्यपि वह बालक है, तो भी उसे मार डालना चाहिए।' ऐसा कहने पर मन्त्री ने कहा, 'महाराज, बालक-वध कौन करे? (जब बड़ा होगा) तभी मार डालेंगे।' क्रमशः कन्या बड़ी हुई। वह भी बड़ा हुआ। राजमहल मे ही काम-काज करता था। जब सोलह वर्ष का हुआ तो मन्त्री ने कहा कि 'वह बालक कैसे मारा जाय?' इधर कन्या का किसी राजपुत्र से (सम्बन्ध) तय कर दिया गया। छः महीने के बाद लग्न जानकर उसने राजा को विधि के निमन्त्रण के लिए कहा, 'रे वत्स, विधि को निमन्त्रित करके आओ।' उसने कहा, 'स्वामिन्, वह कहाँ रहती है?' मन्त्री ने कहा, 'यह तो मैं नही जानता।' वह लंका को चला। आगे जाकर किसी नगर में एक सेठ की हाट (दूकान) मे ठहरा। उसने पूछा, 'कहाँ जाओगे?' उसने सारा हाल कहा। गृह पर ले जाकर सेठ ने भोजन कराया। कहा कि 'विधि से मेरा सन्देशा कहना कि मेरा घर क्यो जलता है?' उसने कहा, 'कहूँगा।' उसे सुनकर आगे जाकर एक···देखकर भीतर घुसा। सुन्दर शोभा देखता हुआ राजा के आँगन मे राजा के सिंहासन के सामने बैठा। सायंकाल नगर की शोभा हुई। राजा आया। उसने नमस्कार किया। 'तुम कौन हो?' जब उसने अपना हाल कहा तो राजा ने भी कहा कि 'मेरा सन्देशा भी विधि से कहना कि 'मेरा नगर प्रातःकाल इस दिशा से उस दिशा को क्यों जाता है?' यह सुनकर वह प्रात.काल चला। समुद्र के किनारे गया। उसे चिन्तातुर देखकर एक मत्स्य ने कहा, 'हे मनुष्य, तुम कौन हो?' उसने अपनी बात कही। उसने कहा, 'अगर मेरा सन्देश कह दो तो वहाँ ले जाऊँ।' उसने कहा, 'कहो।' मछली ने कहा, 'मेरे पेट मे दाह क्यों है?' उसे पीठ पर चढ़ाकर दूसरे किनारे छोड़ दिया। उसने कहा, 'मैं लौटूंगा कैसे?' 'सात पहर प्रतीक्षा करना।' यह सुनकर वह चला गया। इधर प्रतोली के राक्षस जब उस पर दौड़े तो वह बोला कि 'विधि को हाल बताकर लौट जाऊँगा।' उन्होने भीतर छोड़ दिया। उसने रावण राजा की सप्तभूमि में कोदो दलने में नियुक्त राक्षस द्वारा निवेदिता उस विधि को प्रणाम किया। सारा हाल कहने पर वह प्रसन्न हुई। (बोली) 'वत्स, तुम जाओ, मैं लग्न के समय आऊँगी।' सन्देशो को पूछकर समुद्र के किनारे गया। वहाँ उस मत्स्य को देखा। उसने पूछा कि 'मेरा सन्देशा कहो।' 'पूर्व जन्म में तुम विद्या-पारंगत ब्राह्मण थे किन्तु विद्यादान में कृपण हो गये, इसलिए मरकर मत्स्य हो गये। पूर्वजन्म की विद्या से तुम्हारी देह जल रही है। यदि विद्यादान करो, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा हो जायगा।' उसने भी (पूर्व) जन्म स्मरण करके उसी को विद्या दी। फिर वह विद्यावान् दूसरे तट पर ले जाया गया। फिर शून्य नगर में सायकाल राजा से मिला। उस (राजा) के शून्यता का कारण पूछने पर बोला, 'इसी नगर में तुम्हारे पिता दुर्गरोध करके बाहर निकले और धारातीर्थ मे मर गये। तुमने भी मस्तक के बिना ही संस्कार किया। (तुम्हारे पिता की) करोटिका (मुण्ड) कालदण्ड नामक चाण्डाल के घर है।

उससे उसके बालक रव्वा (   ) पीते हैं। बाद को तुम्हारे पिता व्यन्तर हो गये। वह ज्यों ज्यों उस मुण्ड को तप्त होते देखता है वैसे-वैसे क्रुद्ध होकर नगर को शून्य कर देता है। रात में जब वह ठण्डी हो जाती है तो फिर ठीक कर देता है।' राजा ने उसे लाकर अग्निसंस्कार किया। उस नगर मे स्वस्थता आ जाने पर उसे अपनी पुत्री देकर बहुत नौकर-चाकरों के साथ भेजा। फिर सेठ के नगर में गया। सेठ ने आतिथ्य करके समाचार पूछा। उसने कहा, 'धन होते हुए भी तुम कृपण हो। तुम्हारे घर में देवता, गुरु, सुहासिनी आदि निःश्वास फेंककर शाप देते हैं कि इसका घर जल जाय।' वह इस बात को सच मानकर बड़ा दानी हो गया। अपनी पुत्री देकर भेजा। इधर वह लग्न के दिन अपने घर गया। आदमियों ने उसे वर समझा और भीतर ले गये। किसी ने न पहचानते हुए कुछ नहीं कहा। हाथ मिलाने के समय नगर में पहला वर आया। वह किसी के द्वारा सत्कृत न होकर भीतर गया। विवाह हुआ जानकर युद्ध के लिए तैयार हो गया। इसके बाद विधि ने आकर राजा से कहा, 'राजन्, विषाद मत करो, और ऐ मन्त्री, तुम भी विषाद मत करो। क्या तुमने मुझसे पूछी थी, वह बात भूल गये ? मैंने पहले ही कह दिया था। मेरा वाक्य अन्यथा कैसे होगा ? यह लड़की इसी की होगी।' दूसरी लड़की से शादी करवाके दूसरे वर को भेजा। इस प्रकार विधि जो विधान करती है, वही होता है। आदमी का किया नहीं होता।

57. परोपकार के विषय में उदाहरण

322. नीच लोग शरीर सुख के लिए, मध्यम लोग समृद्धि के लिए और उत्तम *लोग किसी के अद्भुत अर्थ के लिए प्रयत्न करते हैं।*

236. कोई परोपकारी न्यायी पुरुष अन्याय नगर मे गया। वहाँ राजा आदि सभी अन्यायी ही बसते थे। उसने अपने जीवन निर्वाह के लिए बिक्री के लिए कोहलक (   ) ली। बेचने लगा। 'ईछ' चार और चाहे गये···वह अपने को बेचकर भी न छूटा। उस आदमी ने सोचा कि 'अब भी कैसे प्रतिकार करूँ !' श्मशानभूमि मे गया। वहाँ मृतकों को जलाने नही देता था। मृतक के महत्त्व का अनुमान करके द्रव्य माँगता था। लोगो ने पूछा कि 'तुम कौन हो ?' 'रानी का साला।' उसे द्रव्य देते। तब बाद में दाह होता था। कुछ दिनो मे उसने दस हजार द्रम्म इकट्ठा किये। राजा ने पुरोहित से पूछा। वह श्मशानभूमि मे गया। एक हजार द्रम्म माँगे। पाँच सौ पर तै हुआ। राजा से लोगों ने शिकायत की। राजा

ने बुलवाया। वह कौपीन पहने था, उसके केश खुले हुए थे, प्रत्यक्ष पिशाच की नाईं दिखायी देता था। राजा ने पूछा, 'तुम कौन हो ?' 'रानी का साला।' 'किसी नगर की किस रानी का साला है ?' उसने कहा, 'नव कोहला और ईछ तेरह भी कही हैं।' उसने सारे द्रम्म राजा को दे दिये। राजा ने उसे व्यापार (मन्त्रित्व) दिया। नगर की अन्याय से रक्षा की गयी। वह सब लोगों का उपकारकर्त्ता हुआ।

58. उद्यम के विषय में उदाहरण

323. कार्य उद्यम से सिद्ध होते है, मनोरथ से नहीं। बैठे हुए आदमी को देवता भी सिद्धि नहीं देते।

237. किसी पुरुष ने चामुण्डा देवी की आराधना की। वह सन्तुष्ट हुई। बोली, 'माँगो।' उसने कहा, 'जो सोचूँ वह मिल जाय।' 'ऐसा ही होगा।' बाद को वह देवी मन्दिर से निकला। सोचा—'मेरे शरीर मे सर्वांगीण आभरण हो।' हो गये। घर पर जाते समय मार्ग में उसे साथी के साथ चोरों ने देखा। साथी पकड़ा गया। वह बैठा रहा। कुछ भाग गये, कुछ ने युद्ध किया। वह लाठी से पिटकर पकड़ा गया। गहने चले गये। शरीर से खिन्न हुआ। देवी को तोड़ने के लिए लोढ़ा लेकर गया। देवी ने कहा, 'मुझे क्यों तोड़ते हो ?' 'तुमने चोर से क्यों नहीं रक्षा की ?' 'यदि तुम युद्ध करो तो तुम्हारे कन्धे पर उतरूँ और यदि भागोगे तो पैरों पर। पर अगर तुम बैठे रहोगे तो मैं क्या करूँगी ?' (इस प्रकार) देवी ने उसे तोड़ने से मना किया। तब वह अपने घर गया। यदि उद्यम किया जाता है तो सिद्धि होती है।

59. दान के विषय में उदाहरण

324. पीछे दिया हुआ या दूसरों के द्वारा दिया हुआ दान मिलता है या नहीं ? (कुछ ठीक नहीं) पर अपने हाथ से ही जो दान दिया गया है, वही उपस्थित होता है।

325. जिसके उद्देश्य से दिया जाता है वह तत्काल ही भोक्ता को तृप्त करता है। हे अर्जुन ! मैं सच कहता हूँ, जो देता है वही भोग भी करता है।
238. एक स्त्री को, जिसका पति परदेश में था, पति की बाट देखते-देखते बहुत दिन बीत गये। बाद को पति के पास से एक आदमी उसका समाचार देखने आया। उसने उसे दूसरे पुरुष के साथ आसक्त देखा। उसने सोचा—'मुझे इसने जान लिया।' वह फिर से उसके पति के पास जाने लगा। चलते समय उसने राह-खर्च के लिए दो लड्डू दिये। एक विषमिश्रित था, दूसरा नहीं। ताकि यह विषमिश्रित लड्डू खाकर मर जाय और घर का हाल न कहे। वह चला। उसी गाँव के निकट उसका पति उदास बैठा दिखायी दिया। वह भूखा था। वहीं दोनों जने बैठ गये। उसने एक मोदक तो उसके पति के योग्य समझकर दे दिया। एक उसने खाया। विषमिश्रित मोदक के भक्षण से उसे लहर आने लगी। मूर्छा को प्राप्त हुआ। तब पुलिसवालों ने उस मित्र को गिरफ्तार किया। लोग इकट्ठे हुए। उसके प्रति उपद्रव करने लगे। उस आदमी को मारने के लिए ले चले। स्त्री की खोज हुई। (उसने सुना कि) 'मोदक खाकर मेरा पति जो दूर देश से आया था, मर गया और वह आदमी मारे जाने के लिए ले जाया गया है।' उस स्त्री ने सोचा कि 'मेरे विरूप दान से तत्काल ही फल मिला। मैं इस आदमी को छुड़ाऊँगी।' उसने वहाँ जाकर कहा, 'जैसा मैंने दान दिया था उसका तात्कालिक फल वैसा ही देखा।' आदमी को छुड़वा दिया। लोगों से उसने कहा, 'जैसा दिया जाता है वैसा प्रत्यक्ष ही दिखायी देता है; जैसा मैंने दिया था, वैसा पाया।' उसके सत्य कहने पर जप करके (लोगों ने) विष उतारा। वह नीरोग हुआ। उसके बाद वह उस पुरुष के प्रति एकचित्ता होकर गृहस्थ धर्म पालन करने लगी। भाव यह है कि 'जैसा दिया जाता है वैसा प्रत्यक्ष ही (पाये जाते) देखा जाता है।'

326. जो चीज एकान्त में दी गयी है, उसका जो अपलाप करता है और विश्वासपूर्वक दिये हुए पर जो संशय करता है, इसको सुनकर उसका मूलतः सर्वनाश होता है।

60. कर्ण

देवदत्त नामक व्यवहारी ने, जो स्वयं प्रवहण (व्यवसाय के लिए गाड़ी आदि लेकर) यात्रा में गया था, एक आत्मीय बनिये के लड़के के हाथ चार अनमोल रत्न भेजे। उस बनिये के लड़के ने गाँव के चार अधिवासियों को लज्जा ( )

देकर (इस बात का) साक्षी बनाया कि जब देवदत्त आये तो तुम लोग कहना कि 'हम लोगों को साक्षी बनाकर इसने तुम्हारी स्त्री को चारो रत्न दिये हैं।' कुछ दिनों में प्रवहण के आने पर देवदत्त कुशलपूर्वक लौट आया। स्त्री से पूछा, 'मैंने तुम्हारे योग्य चार रत्न भेजे थे। उन्हें ले आओ, जौहरियों को दिखाया जाय।' उसने कहा, 'मुझे तो किसी ने दिया नहीं।' उस वनिये के लडके से पूछा, उसने कहा कि 'मैंने चार नागरिकों की मध्यस्थता मे उन्हें साक्षी बनाकर तुम्हारी प्रिया को सौंप दिये।' उन (साक्षियों) ने भी कहा कि 'हम लोगों को साक्षी बनाके इसने तुम्हारी स्त्री को दे दिया है। इस बात में कोई सन्देह नही।' उस वनिये ने सोचा—'इस वणिक्पुत्र ने और इन साक्षियों ने मुझे (लूट लिया)। नगर में ऐसा कोई नही है जो न्याय-अन्याय का विचार करे और कर्णवारा ( ) सत्य करे।' किसी आदमी ने कहा कि 'कर्णवारी मर गया, पर उसका एक छोटा लड़का है।' देवदत्त उसके घर गया। पुत्र की माता ने उसकी आवभगत की और पूछा कि 'किसलिए आये हो?' 'कर्णवारा को पूछने के लिए।' उसने (अपने लड़के से) कहा, 'अरे वत्स, तेरा पिता नगर में कर्णवारा करता हुआ बहुत-सा धन तो ले आया था, तू कुछ भी नही करता। फिर तुझे छोटा जानकर कोई तुम्हें मानता भी नही।' (वह बालक बोला) 'मां, मैं उस (पिता) का पुत्र हूँगा। सब कुछ निर्णय करूँगा; क्योंकि—

327. 'बच्चा होने पर भी सिंह भ्रमरों के झंकार से भूषित (मदमत्त) हाथी पर टूट पड़ता है, किन्तु नख और मुख से पृथ्वी में बिल खोदकर रहनेवाले नकुल पर नही।'

उसके समीप ही देवदत्त बैठा। कर्णवारा कही गयी। चारों व्यवहारी (साक्षी) बुलाये गये। पृथक्-पृथक् बैठाये गये। उसने पूछा। उन्होने कहा कि 'हम लोगो को साक्षी करके उसकी स्त्री को रत्न दिये गये है।' 'बहुत ठीक।' उसने अपनी बुद्धि से 'पडसूची लोअक' ( ) बाँटकर चारो को दिया। और कहा कि (रत्न) 'जितनी मात्रा के थे उतनी ही मात्रा में इन्हें बनाओ।' उन मिथ्यासाक्षियों ने चारों रत्नो को अन्य प्रकार का बना दिया। उस कर्णवारीपुत्र ने कहा, 'हे वणिकपुत्र, रत्नों को सवेरे ही दे दो, राजा के द्वारा गिरफ्तार न होओ। ये मिथ्यासाक्षी भी गिरफ्तार होंगे।' तब उसने सेठ को रत्न दे दिये। चरणों पर गिर गया। कर्णवारी के लड़के को पद मिला। इसलिए सत्य कर्णवारा करनेवाले को इस लोक में और परलोक मे द्रव्य और यश की प्राप्ति होती है। सेठ भी रत्नों के सुख को भोगकर स्वर्ग भागी हुआ।

इस प्रकार कर्णवारा विषयक प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में आये हुए प्रबन्ध

240. श्री वाक्पति राजकवि ने भारत बनाना शुरू किया। तब रात में द्वैपायन आये। उसने कहा कि 'किसलिए पधारे है?' उन्होंने कहा, 'तुम्हारे पास कुछ

325. जिसके उद्देश्य से दिया जाता है वह तत्काल ही भोक्ता को तृप्त करता है। हे अर्जुन ! मैं सच कहता हूँ, जो देता है वही भोग भी करता है।

238. एक स्त्री को, जिसका पति परदेश में था, पति की बाट देखते-देखते बहुत दिन बीत गये। बाद को पति के पास से एक आदमी उसका समाचार देखने आया। उसने उसे दूसरे पुरुष के साथ आसक्त देखा। उसने सोचा—'मुझे इसने जान लिया।' वह फिर से उसके पति के पास जाने लगा। चलते समय उसने राह-खर्च के लिए दो लड्डू दिये। एक विषमिश्रित था, दूसरा नहीं। ताकि यह विषमिश्रित लड्डू खाकर मर जाय और घर का हाल न कहे। वह चला। उसी गाँव के निकट उसका पति उदास बैठा दिखायी दिया। वह भूखा था। वहीं दोनों जने बैठ गये। उसने एक मोदक तो उसके पति के योग्य समझकर दे दिया। एक उसने खाया। विषमिश्रित मोदक के भक्षण से उसे लहर आने लगी। मूर्छा को प्राप्त हुआ। तब पुलिसवालों ने उस मित्र को गिरफ्तार किया। लोग इकट्ठे हुए। उसके प्रति उपद्रव करने लगे। उस आदमी को मारने के लिए ले चले। स्त्री की खोज हुई। (उसने सुना कि) 'मोदक खाकर मेरा पति जो दूर देश से आया था, मर गया और वह आदमी मारे जाने के लिए ले जाया गया है।' उस स्त्री ने सोचा कि 'मेरे विरूप दान से तत्काल ही फल मिला। मैं इस आदमी को छुड़ाऊँगी।' उसने वहाँ जाकर कहा, 'जैसा मैंने दान दिया था उसका तात्कालिक फल वैसा ही देखा।' आदमी को छुड़वा दिया। लोगों से उसने कहा, 'जैसा दिया जाता है वैसा प्रत्यक्ष ही दिखायी देता है; जैसा मैंने दिया था, वैसा पाया।' उसके सत्य कहने पर जप करके (लोगों ने) विष उतारा। वह नीरोग हुआ। उसके बाद वह उस पुरुष के प्रति एकचित्ता होकर गृहस्थ धर्म पालन करने लगी। भाव यह है कि 'जैसा दिया जाता है वैसा प्रत्यक्ष ही (पाये जाते) देखा जाता है।'

326. जो चीज एकान्त में दी गयी है, उसका जो अपलाप करता है और विश्वासपूर्वक दिये हुए पर जो संशय करता है, इसको सुनकर उसका मूलतः सर्वनाश होता है।

60. कर्ण

देवदत्त नामक व्यवहारी ने, जो स्वयं प्रवहण (व्यवसाय के लिए गाड़ी आदि लेकर) यात्रा मे गया था, एक आत्मीय बनिये के लड़के के हाथ चार अनमोल रत्न भेजे। उस बनिये के लड़के ने गाँव के चार अधिवासियों को लज्जा ( )

देकर (इस बात का) साक्षी बनाया कि जब देवदत्त आये तो तुम लोग कहना कि 'हम लोगों को साक्षी बनाकर इसने तुम्हारी स्त्री को चारों रत्न दिये हैं।' कुछ दिनों मे प्रवहण के आने पर देवदत्त कुशलपूर्वक लौट आया। स्त्री से पूछा, 'मैंने तुम्हारे योग्य चार रत्न भेजे थे। उन्हें ले आओ, जौहरियों को दिखाया जाय।' उसने कहा, 'मुझे तो किसी ने दिया नहीं।' उस बनिये के लडके से पूछा, उसने कहा कि 'मैंने चार नागरिकों की मध्यस्थता में उन्हे साक्षी बनाकर तुम्हारी प्रिया को सौंप दिये।' उन (साक्षियों) ने भी कहा कि 'हम लोगों को साक्षी बनाके इसने तुम्हारी स्त्री को दे दिया है। इस बात में कोई सन्देह नही।' उस बनिये ने सोचा– 'इस वणिक्पुत्र ने और इन साक्षियों ने मुझे (लूट लिया)। नगर में ऐसा कोई नहीं है जो न्याय-अन्याय का विचार करे और कर्णवारा ( ) सत्य करे।' किसी आदमी ने कहा कि 'कर्णवारी मर गया, पर उसका एक छोटा लडका है।' देवदत्त उसके घर गया। पुत्र की माता ने उसकी आवभगत की और पूछा कि 'किसलिए आये हो?' 'कर्णवारा को पूछने के लिए।' उसने (अपने लड़के से) कहा, 'अरे वत्स, तेरा पिता नगर में कर्णवारा करता हुआ बहुत-सा धन तो ले आया था, तू कुछ भी नही करता। फिर तुझे छोटा जानकर कोई तुम्हें मानता भी नही।' (वह बालक बोला) 'माँ, मैं उस (पिता) का पुत्र हूँगा। सब कुछ निर्णय करूँगा; क्योंकि—

327. 'बच्चा होने पर भी सिंह भ्रमरों के झंकार से भूषित (मदमत्त) हाथी पर टूट पड़ता है, किन्तु नख और मुख से पृथ्वी में बिल खोदकर रहनेवाले नकुल पर नहीं।'

उसके समीप ही देवदत्त बैठा। कर्णवारा कही गयी। चारों व्यवहारी (साक्षी) बुलाये गये। पृथक्-पृथक् बैठाये गये। उसने पूछा। उन्होने कहा कि 'हम लोगो को साक्षी करके उसकी स्त्री को रत्न दिये गये हैं।' 'बहुत ठीक।' उसने अपनी बुद्धि से 'पडसूघी लोअक' ( ) बाँटकर चारों को दिया। और कहा कि (रत्न) 'जितनी मात्रा के थे उतनी ही मात्रा में इन्हे बनाओ।' उन मिथ्यासाक्षियों ने चारों रत्नों को अन्य प्रकार का बना दिया। उस कर्णवारीपुत्र ने कहा, 'हे वणिक-पुत्र, रत्नों को सवेरे ही दे दो, राजा के द्वारा गिरफ्तार न होओ। ये मिथ्यासाक्षी भी गिरफ्तार होंगे।' तब उसने सेठ को रत्न दे दिये। चरणो पर गिर गया। कर्णवारी के लड़के को पद मिला। इसलिए सत्य कर्णवारा करनेवाले को इस लोक में और परलोक में द्रव्य और यश की प्राप्ति होती है। सेठ भी रत्नों के सुख को भोगकर स्वर्ग भागी हुआ।

इस प्रकार कर्णवारा विषयक प्रबन्ध (समाप्त हुआ)।

(G) संग्रह में आये हुए प्रबन्ध

240. श्री वाक्पति राजकवि ने भारत बनाना शुरू किया। तब रात में द्वैपायन आये। उसने कहा कि 'किसलिए पधारे हैं?' उन्होंने कहा, 'तुम्हारे पास कुछ

जानने।' 'क्या?' (यही कि) 'तुम महाभारत मत बनाओ।' उसने वैसा ही किया। संस्कृत को भी निषेध किया। तब उसने गौड़वध नामक प्राकृत ग्रन्थ बनाया।

241. श्री सारंगदेव के प्रधान ने, राजा रामदेव के पूछने पर अपने स्वामी की कीर्तिकथा सुनायी। राजा ने कहा, 'सब ठीक है। पर (मद्य-) पान करता है, यह बात चाँद मे कलंक है।' उसने कहा, 'महाराज, ठीक है, पर माँ-बहन को जानता है।' रामदेव के चचा की लड़की सुराई राणी अन्तःपुर में थी। यह सुनकर लज्जित हुआ।

242. अभयदेव नामक ब्राह्मण ने प्रभास तीर्थ की सरस्वती नदी में स्नान करके आकर सोमेश्वर को नमस्कार किया। उस धर्मशिला के सामने एक जीवित शफरी (मछली) गिरी और उसी के शरीर में लगकर मर गयी। उसने दुःखी होकर प्रायश्चित पूछा। किसी ने इस प्रकार कहा कि 'सोने की शफरी दान करो।' उसने नही माना। तब सर्वत्र प्रायश्चित के लिए घूमता हुआ श्री स्तम्भतीर्थ में, जहाँ गुरु सिद्धान्त में जीव वध और मांसभक्षण का प्रायश्चित बाँच रहे थे, (गया)। उसने सुना कि 'जिस जीव की जितनी इन्द्रियाँ होती हैं, उसके वध में उतने ही सैकड़ा उपवास करना चाहिए।' (उसने) वह बात मान ली। तब दीक्षा ली। (वे ही) श्री अभयदेवसूरि हुए।

243. कुम्भीपुर में यशोधन नामक व्यवहारी था। उसका पुत्र विद्यानन्द बड़ी धूमधाम से ब्याहा गया। दीवाली के दिन बहू आयी। लड़के ने कहा, 'कथा कहो।' बहू ने लज्जा से कुछ नही कहा। (उसने) उसे छोड़ दिया। तब पिता ने दूसरी लड़की से शादी करायी। पूर्ववत् कहने के बाद उसे भी छोड़ दिया। फिर पिता ने दूर जाकर कन्या माँग ब्याह कराया। पूछने पर उसने कहा कि 'कैसी कथा कहूँ? अनुभव की हुई, सुनी हुई या देखी हुई?' उसने कहा, 'अनुभव की हुई।' ऐसा कहने पर उसने सारा धन धीरे-धीरे पिता के घर भिजवा दिया। एक बार रात को घर जला दिया। तब निर्धन होने के कारण कुटुम्ब के चारो जने निकल पड़े। किसी नगर के पास सम्बल (खर्च) खोजने का बहाना करके पिता चला गया, माता भी चली गयी, वह भी उसे छोड़ कर चलता बना। वह द्रव्यबल से राजकुमार का वेश बनाकर ···उसका पिता भैंस का व्यवसायी हो गया। माता एक मास बिना आहार के रही। वह कोटिक हुआ। उसने तीनों को इकट्ठा किया। वर्षा के अन्त में उसे (पति को) बुलाकर कहा, 'आज भी कथा कहूँ, या नहीं?' 'हो चुकी!' इस प्रकार स्त्री ने उसे फिर से व्यवहारी बनाया।

काव्यशास्त्र

गुञ्जन्मिलिन्द मुदितं
चपलाऽऽश्लेपाऽतिमञ्जुलं किमपि।
अधिकालिन्दी कुञ्जं
मरकत पुञ्जं परञ्जयति ॥

गुञ्जन्मिलिन्द मुदितं
चपलाऽऽश्लेपाऽतिमञ्जुलं किमपि।
अधिकालिन्दी कुञ्जं
मरकत पुञ्जं परञ्जयति॥

मेरे मित्र श्री मोहनलालजी वाजपेयी ने शान्तिनिकेतन के पुराने कागजों के किसी स्तूप से इस पाण्डुलिपि का उद्धार किया है। यह 1930-31 में लिखा हुआ कोई साहित्यिक ग्रन्थ या उसका भाग है। मैंने उन दिनों साहित्यशास्त्र की एक पुस्तक लिखने का संकल्प किया था। 'सूर-साहित्य' इसके बाद लिखा गया, किन्तु वह छप गया और यह साहित्यिक ग्रन्थ न तो पूरा लिखा ही गया, न मुद्रित ही हुआ। आज केडियाजी की कृपा से इसे बड़े साहित्यिकों की कृतियों में स्थान मिलने जा रहा है। जिसे छपने का सौभाग्य नहीं मिला, उसे केडियाजी का स्नेह प्राप्त हो गया, यह कोई कम गौरव की बात नहीं है। मैं तो इससे विदा हो रहा हूँ और यह मुझसे विदा हो रहा है। बस, अब यही कहना चाहता हूँ कि 'शुभास्ते सन्तु पन्थानः'।

30-3-56 —हजारीप्रसाद द्विवेदी

जैसा कि इस निबन्ध को पढ़ लेने के बाद पाठकों को ज्ञात होगा, यह प्रयत्न एक ऐतिहासिक विवेचना के साथ हमारी वर्तमान साहित्यिक प्रगति और उसका लक्ष्य निर्धारित करने का है। हमारा प्राचीन साहित्य कविता को छोटे-छोटे पद्यों की सीमा में नहीं बांधता। वेदों में, ब्राह्मणों में, उपनिषदों में, रामायण मे, महाभारत में सर्वत्र यह साहित्य अविच्छिन्न धारा के समान प्रवाहित है। वह सरस मन्दाकिनी है। जिसका प्रवाह अविराम गति से किसी महासमुद्र की ओर बहा ले जाती है। इसीलिए सम्भवत: ही भारतीय कविता का सर्वप्रथम विवेचन 'रस' के स्वरूप को ही निर्णय करने का प्रयत्न करता है। हमारा मतलब भरत के नाट्यशास्त्र से है। कविता की शास्त्रीय विवेचना का यह सम्भवत: सबसे पहला ग्रन्थ है। इतिहास शास्त्र के पण्डितों का कहना है कि यह ग्रन्थ किसी खास व्यक्ति का बनाया नहीं है बल्कि युगयुगान्तर का संचित इसमें पुस्तक के आकार मे संगृहीत है। जो कुछ भी हो, इस ग्रन्थ में रस की बड़ी सूक्ष्म विवेचना की गयी है। मानवीय रागात्मक वृत्तियों का बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है। अभिनय कला का अत्यन्त उत्तम विचार किया गया है। पर, इसके बाद के जो ग्रन्थ इस विषय पर लिखे गये उनमें 'रस' का कोई वर्णन नही है केवल कुछ अलंकार, रीति और गुणो तक ही वह सीमित हैं। भामह या दण्डी ने अपने अलंकार ग्रन्थों में रस को कोई स्थान नहीं दिया है। भरत के नाट्य-शास्त्र ने अलंकारों का वर्णन किया है सही पर उतने विशद रूप मे नही जितने विशद और विशाल रूप में पीछे के आचार्यों ने किया। इसका एक कारण यह है कि नाट्य-शास्त्र के उत्तर मर्य्यादाकाल तक अलंकार शास्त्र का उतना विकास नहीं हुआ था। पर, यह कारण 'एकमात्र' नही है। प्रस्तुत लेखक की दृष्टि मे इसका प्रधान कारण है नाट्यसूत्र की अलंकारो की ओर से अभिनय और फलत. 'रस' है। रस की पुष्टि के लिए मोटा-मोटी कुछ चर्चा-भर कर देने के लिए इसमें अलकारों की अवतारणा है। इसी प्रकार भामह या दण्डी रस के जानकार होकर भी उन्होने अपने-अपने ग्रन्थों मे उसे अप्रधान समझकर जगह नही दिया। ध्यान से देखने से मालूम होगा कि अलंकार की प्रधानता तभी हुई थी जब फुटकर पद्यो का प्रचार अधिक संख्या में होने लगा था।

जैसा कि इस निबन्ध को पढ लेने के बाद पाठकों को ज्ञात होगा, यह प्रयत्न एक ऐतिहासिक विवेचना के साथ हमारी वर्त्तमान साहित्यिक प्रगति और उसका लक्ष्य निर्धारित करने का है। हमारा प्राचीन साहित्य कविता को छोटे-छोटे पद्यों की सीमा मे नही बाँधता। वेदों में, ब्राह्मणो मे, उपनिषदो में, रामायण में, महाभारत में सर्वत्र यह साहित्य अविच्छिन्न धारा के समान प्रवाहित है। वह सरस मन्दाकिनी है। जिसका प्रवाह अविराम गति से किसी महासमुद्र की ओर बहा ले जाती है। इसीलिए सम्भवतः ही भारतीय कविता का सर्वप्रथम विवेचन 'रस' के स्वरूप को ही निर्णय करने का प्रयत्न करता है। हमारा मतलब भरत के नाट्यशास्त्र से है। कविता की शास्त्रीय विवेचना का यह सम्भवत. सबसे पहला ग्रन्थ है। इतिहास शास्त्र के पण्डितों का कहना है कि यह ग्रन्थ किसी खास व्यक्ति का बनाया नही है बल्कि युगयुगान्तर का संचित इसमें पुस्तक के आकार में संगृहीत है। जो कुछ भी हो, इस ग्रन्थ मे रस की बड़ी सूक्ष्म विवेचना की गयी है। मानवीय रागात्मक वृत्तियों का बडा सुन्दर विवेचन किया गया है। अभिनय कला का अत्यन्त उत्तम विचार किया गया है। पर, इसके बाद के जो ग्रन्थ इस विषय पर लिखे गये उनमें 'रस' का कोई वर्णन नही है केवल कुछ अलंकार, रीति और गुणों तक ही वह सीमित है। भामह या दण्डी ने अपने अलंकार ग्रन्थों में रस को कोई स्थान नही दिया है। भरत के नाट्य-शास्त्र ने अलंकारों का वर्णन किया है सही पर उतने विशद रूप में नही जितने विशद और विशाल रूप में पीछे के आचार्यों ने किया। इसका एक कारण यह है कि नाट्य-शास्त्र के उत्तर मर्य्यादाकाल तक अलंकार शास्त्र का उतना विकास नही हुआ था। पर, यह कारण 'एकमात्र' नहीं है। प्रस्तुत लेखक की दृष्टि मे इसका प्रधान कारण है नाट्यसूत्र की अलंकारों की ओर से अभिनय और फलतः 'रस' है। रस की पुष्टि के लिए मोटा-मोटी कुछ चर्चा-भर कर देने के लिए इसमें अलंकारों की अवतारणा है। इसी प्रकार भामह या दण्डी रस के जानकार होकर भी उन्होंने अपने-अपने ग्रन्थों मे उसे अप्रधान समझकर जगह नही दिया। ध्यान से देखने से मालूम होगा कि अलंकार की प्रधानता तभी हुई थी जब फुटकर पद्यों का प्रचार अधिक संख्या में होने लगा था।

भरत, भामह और दण्डी के ग्रन्थों का यदि सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 'रस' उस काल में काव्य और नाटक का विषय समझा जाता था और छोटी-छोटी फुटकर कविताओं के श्लोक 'अलंकार' के विषय समझे जाते थे। यद्यपि दोनो में दोनों का थोड़ा बहुत रहना आवश्यक समझा जाता था पर प्रधान रूप से काव्य और नाटक के लिए रस तथा फुटकर पद्यों के लिए अलंकार आवश्यक समझा जाता था। धीरे-धीरे कविता मे अलंकार का स्थान बड़े महत्त्व का समझा जाने लगा। इस समय जो प्रबन्ध काव्य लिखे गये वह प्रायः अलंकार को सामने रखकर। नतीजा यह हुआ कि कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा के होते हुए भी उसका प्रबन्ध काव्य कुछ फुटकर पद्यों की सन्दूकची के समान जान पड़ती है।

रामायण की कविता पर रघुवंश की कविता एक धारा की भाँति चलती है। पर, श्री हर्ष या माघ की कविता मे यह बात नही है। कुमारसम्भव के प्रवाह में पाठक बहता रहता है उसे साँस लेने की भी फ़ुरसत नही है। बीच-बीच मे उसे सुन्दर कमल खिले हुए दिखायी अवश्य देते है पर आराम करने का सहारा नही हो सकते। प्रवाह का बहता हुआ मनुष्य इनके सौन्दर्य से आँखों को तृप्त करके लहर की चोट खाकर फिर आगे बढता है। पर, हर्षचरित सुन्दर मणियों का गूँथा हुआ एक हार जान पड़ता है। इसकी, एक मणि को लेकर देर तक देखना पड़ता है 'अलंकार' के विशेषज्ञ की सम्मति लेनी पड़ती है तब कही जाकर मालूम होता है कि यह पद्मराग है और बाज़ार में इसकी यह कीमत है। पाठक फिर दूसरी मणि को लेता है फिर तीसरी को। वह उसी बेबसी के साथ इसमें बहता हुआ नही होता जिसका अनुभव उसे कादम्बरी या मेघदूत मे हुआ था। उद्भृत श्लोकों की चर्चा यहाँ कि उनका तो वही अलंकार लक्ष्य ही है। इसका एकमात्र कारण यही है कि पूर्ववर्त्ती कवि की कविता अलंकार को आगे रखकर नही चलती। उसमें जो अलंकार आते हैं वह स्वभावतः ही आ जाते हैं। इसके वे अनुचर हैं, अगुवा नही। पर परवर्त्ती कवियों के समय अलंकार का बड़ा प्राधान्य है। कवि उसको आगे रखकर चलता है। जिस प्रवाह के आगे पद-पद पर कोई वस्तु मिलती हो उसका तब तक अविछिन्न गति से बहना ही असम्भव है जब तक उसमें उस वस्तु को बहा ले जाने की शक्ति ही न हो। रघुवंश के नवम् सर्ग मे कवि अनुप्रासो को जान-बूझकर ले आता है। कहा जा सकता है कि वहाँ कवि-धारा के आगे-आगे अलंकार चलता है। पर, कवि की काव्य-धारा इतनी तेज है कि वह उसे बहा ले जाती है। रामायण में अलंकारों की कमी नहीं है परन्तु वहाँ अलंकार पुष्प की भाँति है। जगह-जगह प्रवाह में पड़े हुए ये पुष्प बड़े मनोहर जँचते है। पर नैषध या भारवि (किरातार्जुनीय) के अलंकार फूल नही सुन्दर-सुन्दर, (और कही महादुरूह) चट्टान हैं। काव्य की धारा इन चट्टानों से टकराकर शतधा विच्छिन्न हो जाती है। दर्शक को चट्टानो के गिनने से ही फ़ुरसत नही मिलती। दमयन्ती जिस समय विरह से व्याकुल है,

पाठक उसी समय अलंकारों का मजा लेकर वाह्-वाह् करता रहता है। पर सीता या नल की वाग्धारा मे क्या मजाल कि कोई इधर-उधर ताक भी जाए।

सुदूर अतीत के धुँधले प्रकाश में

जिन लोगों ने देहात के सीधे-सादे मनुष्यों का भाव-पूर्ण गान सुना होगा, वे आसानी से कविता के उद्गम स्थान का अनुमान कर सकेंगे। साथ ही जिन्होने गान के लिए समवेत प्राकृत मनुष्यो को 'कौन-सा गान उपयुक्त है और कौन-सा अनुपयुक्त' इस बात को लेकर तर्क-वितर्क करते देखा होगा वे कविता की आलोचना का मूल स्थान भी उसी आसानी के साथ समझ सकेंगे। अनादि काल से मनुष्य संगीत और गीत के द्वारा अपने हृदय के भावों को प्रकाश करता आ रहा है। कविता, इसीलिए, अनादि काल से बन रही है और साथ-ही-साथ उसकी विवेचना भी जारी है। वैदिक ऋषियों के गान इसी दृष्टि से कविता-मय हैं, वे अनादि हैं। साथ ही उस गान की आलोचना भी चलती हुई दिखायी देती है। मीमांसा और वेदान्त सूत्र क्रमशः वैदिक कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड की आलोचनाएँ हैं। इनमें यत्र-तत्र कविता की आलोचना सम्बन्धी बातें भी हैं। उत्तरकाल के आलंकारिक मीमांसा से किस प्रकार प्रभावित हुए हैं, यह बात आगे चलकर पाठक देखेंगे।

कविता शब्दों के बिना नहीं चल सकती। इसलिए कविता की आलोचना के साथ-ही-साथ शब्द की आलोचना शुरू हो जाती है और शब्दशास्त्र की आलोचना करते-करते कविता की आलोचना कर ही देनी पड़ती है। प्राचीनकाल में यद्यपि अलंकारशास्त्र नाम का कोई अलग शास्त्र नही दिखायी देता पर इसीलिए अलंकारों की आलोचना कुछ भी न हुई सो बात नही है। शब्दशास्त्र के साथ-ही-साथ अलंकारों की विवेचना किसी न किसी रूप में हो ही जाती थी। यह ध्यान देने की बात है कि सादृश्य-गर्भ अलंकारों का ही अधिक प्रयोग साधारण बोल-चाल में होता है। फलतः आदिम कविता अधिकतर रूपक, उपमा और साधारण उत्प्रेक्षाओं से ही अलंकृत है। निरुक्त में सबसे पहले हम उपमा और रूपक का उल्लेख पाते हैं। निरुक्त 1.3, 4 मे उपमा शब्द पाया जाता है "तेषामेते चत्वार उपमार्थे भवन्ति" कहकर निरुक्तकार 'इव', 'नु', 'चित्', 'नुव' इन चारों को उपमार्थ प्रयुक्त शब्द बताते हैं। अन्य सूत्रों मे यथा, न और अपि आदि शब्द भी इसी अर्थ में व्यवहृत बताये गये हैं। निरुक्त के 3.13,—18 में उपमा के अनेक भेद बताये गए हैं। ये भेद हैं—कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा, सुप्तोपमा या

अर्थोपमा। इन विभिन्न प्रकार की उपमाओं में अनेक सादृश्य-गर्भ अलंकारों का मूल है। यथा के योग मे कर्मोपमा होती है। इसके उदाहरण में निरुक्त में निम्नलिखित मन्त्र पाया जाता है—"यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति। एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा।"—"हे दस महीने के गर्भ, जिस प्रकार हवा, वन और समुद्र कम्पित हो रहे हैं (चल रहे है) उसी प्रकार तुम भी झिल्ली के साथ ही बाहर आ जाओ।"

भूतोपमा के लिए "इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेधातिथिम्। मेषो भूतो-भियन्नयः" (ऋक्. 5.7.24.5) हे अद्रिव, वज्रधारिन्, यज्ञ के लिए आहूत होकर तुम कण्व वंशज बुद्धिमान मेधातिथि के पास मेष होकर (मेष की तरह) आए हो।

इस उपमा मे यह ध्यान देने की बात है कि उपमेय ही उपमान हो गया है।

रूपोपमा के लिए "हिरण्य रूपः स हिरण्य संदृगपान्नपात् सेदु हिरण्य वर्णः हिरण्यात् परियोनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै"। (ऋक्. 2.7.23.5) यह मन्त्र दिया गया है। इसका मतलब यह है—"हिरण्य (स्वर्ण) के समान रूपवाला (हिरण्य रूपः), हिरण्य के समान दीखनेवाला, हिरण्य के समान वर्णवाला, वह अपान्नपात् (आदित्य पुत्र, वैद्युत अग्नि) हिरण्यमय योनि से निकलकर समस्त आकाश मे व्याप्त होकर इस यजमान को अन्न दे।" इस मन्त्र में हिरण्य की तरह रूपवाला (हिरण्य-रूप) शब्द में उपमा है जहाँ उपमेय उपमान के समान आकार में दिखायी देता है। उपमा वाचक शब्द यहाँ नही हैं। फलतः उत्तरकालीन आलंकारिकों की लुप्तोपमा कही जा सकती है।

सिद्धोपमा में वतुप् प्रत्यय होता है। सिद्धोपमा इसका नाम इसलिए पड़ा कि लोक में यह सिद्ध है। 'ब्राह्मणवत्' आदि प्रयोग दिखायी पड़ता है। वैदिक उदाहरण के लिए 'वत्' के प्रयोग का ही उदाहरण दिया गया है। "प्रिय मेधवन् अत्रिवज् जातवेदोविरूपवत्"।

अन्तिम उपमा है लुप्तोपमा। इसे अर्थोपमा भी कहा गया है। "अथ लुप्तोप-मान्यर्थोपमाभीत्याचक्षते"। परन्तु इसका नाम देखकर पाठकों को भ्रम नहीं पड़ना चाहिए। उत्तरकालिक आलंकारिक इसे 'रूपक' कहते हैं। नि. भाष्य में 'सिंहोदेवदत्तः' इसके लिए उदाहरण दिया गया है। आगे चलकर लक्षणा के प्रकरण में पाठक देखेंगे कि यहाँ सारोपा लक्षणा है। रूपक अलंकार आरोप मूलक ही होता है।

अवश्य ही यहाँ वैदिक शब्दों का अर्थ विवेचन करने के लिए उपमाओं का अवतरण है। पर नि.सन्देह अलंकारशास्त्र बीज-रूप में यहाँ पाया जाता है। निरुक्त ने अनेक जगह आलंकारिकों के मत की चर्चा की है। कौन जानता है, वैदिककाल का अलंकारशास्त्र कैसा था और वह रस की विवेचना करता है या नही। भरत के नाट्यसूत्र मे एकाएक रस का इतना सुन्दर विवेचन है कि हठात् यह मान लेने में संकोच होता है कि यह पहला प्रयत्न है।

जो कुछ हो, पाणिनि के व्याकरण में उपमा शब्द बीसियों बार आया है।

उत्तरकालिक आलंकारिक शैली और आर्थी उपमा को लेकर जो तर्क-वितर्क करते पाये जाते हैं उसमें शब्द शास्त्र—विशेषकर पाणिनि—का बड़ा जबर्दस्त हाथ है। शब्द शास्त्र का दखल यों तो सम्पूर्ण अलंकारशास्त्र में है पर ध्वन्यालोक के बाद एक विचित्र प्रकार से व्याकरणशास्त्र को आदर्श और प्रमाण माना गया है। व्याकरण का स्फोटवाद किस प्रकार ध्वनि के रूप में आ गया है यह बात पाठक यथास्थान पाएँगे।

जिस प्रकार कविता के लिए शब्द की जरूरत है उसी प्रकार अर्थ की भी जरूरत है। मम्मट के मत से शब्द और अर्थ दोनों मिलकर काव्य होते है। इसीलिए जहाँ अलंकारशास्त्र का मूल शब्दशास्त्र के पन्नों मे यत्र-तत्र पाया जाता है वहाँ शब्द के अर्थ— मतलब—की विवेचना करनेवाले शास्त्रों में भी वह बिखरा पडा है। इस दृष्टि से मीमांसा दर्शन में भी अलंकारशास्त्र के कुछ अंश का सम्बन्ध[1] है।

मीमांसा दर्शन में किस प्रकार यह प्रसंग छिड़ा, यह बात एक बार देख ली जाय। मीमांसा के मत से वेद स्वतः प्रमाण ग्रन्थ है। धर्माधर्म निर्णय मे एकमात्र प्रमाण वेद हैं। इस बात को मीमांसक इतनी दृढ़ता के साथ स्वीकार करते हैं कि इस विषय में वे ईश्वर को मानने की आवश्यकता भी नही महसूस करते। वेद में शब्द और अर्थ से नित्य सम्बन्ध है (औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः 1-1-4)। मीमांसा का अभिप्राय यों कहा जा सकता है—शब्द के उच्चारण करने से अर्थ का ज्ञान होता है अर्थात् शब्द ज्ञापक है और अर्थ ज्ञाप्य। अतः शब्द और अर्थ मे ज्ञाप्य-ज्ञापक सम्बन्ध है। सवाल यह उठता है कि यह सम्बन्ध पुरुष कृत है या नही। यदि यह सम्बन्ध पुरुष कृत (पौरुषेय) हो तो भ्रान्त भी हो सकता है। मीमांसा के मत से यह पुरुष कृत नही है। क्योंकि वैदिक शब्दों का अर्थ के साथ जो सम्बन्ध है वह तुम्हारी इच्छा हो या न हो, मानना ही पड़ेगा। यहाँ यह सन्देह किया जा सकता है कि यदि शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है

1. महाभाष्यकार को जहाँ "चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः" इत्यादि प्रमाण वाक्य उद्धृत करने के कारण आलंकारिक बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं वहीं, यह आश्चर्य की बात है कि, उनके उपमा की परिभाषा और उदाहरण को एकदम अस्वीकार करते हैं। महाभाष्यकार कहते हैं—

"मानं हि नामानिर्ज्ञात-ज्ञानार्थम् उपादीयतेऽनिर्ज्ञातमर्थं ज्ञास्यामिति तत्समीपे यन्नात्यन्ताममिमीते तदुपमानं—गौरिव गवय इति" इस स्थान पर गौ के समान गवय (नील गाय) यह उदाहरण दिया गया है। पण्डितराज जगन्नाथ अप्पय दीक्षित के उपमा लक्षण को (उपमिति क्रिया निष्पत्तिमत्सादृश्य वर्णनमपुष्टमव्यंगमुपमालंकार) उद्धृत करके कहते हैं कि "यदि वर्णन-विषयीभूत सादृश्य (जो अप्पय दीक्षित बता रहे हैं उसी तरह का) हो उपमा अलंकार है तो 'गौ की तरह गवय' इस जगह भी उपमा अलंकार मानना पड़ेगा। (जो कि अनुचित है!)। यदि यह कहो कि हम यहाँ उपमा मानते हैं तो भी ठीक नहीं। विषय के चामत्कारिक न होने के कारण यह अलंकार नहीं हो सकता।" (यदि वर्णन विषयीभूतं तादृश सादृश्यमुपमेत्युच्यते तदा यथा 'गौस्तथा गवय' इत्यत्रोपमालंकारापत्ते. ' 'इत्यादि। रसगंगाधर, पृ. 160)

तो शब्द को सुनते ही अर्थ का ज्ञान होना चाहिए। पर ऐसा नहीं होता। शब्द उच्चारित होने के बाद अर्थ के लिए कोष, व्याकरण या शिक्षक की अपेक्षा रखते हैं। फिर यह कैसे मान लिया जाय कि यह सम्बन्ध पुरुषकृत नहीं है ?

मीमांसक इसका उत्तर यों देते हैं कि इस सन्देह से शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध ही पुष्ट होता है। यह ठीक है कि शब्द उच्चारित होकर अर्थ के लिए अन्य व्यक्ति का मुखापेक्षी रहता है पर वह आदमी शब्द और अर्थ के नित्य सम्बन्ध को ही उच्चारण करनेवाले के सामने स्मरण करा देता है। कुछ नये अर्थ की सृष्टि नहीं करता। वह किसी प्रकार भी उस शब्द का ऐसा अर्थ नहीं बता सकता जो पहले से ही स्वीकृत न हो। यदि वह ऐसा करे तो उसकी प्रामाणिकता सन्देह की नजरों से देखी जायगी और दूसरा आदमी उसका खण्डन कर देगा। शब्द जो एकाएक अर्थ को—जिसके साथ इसका नित्य सम्बन्ध है—प्रकट नहीं करता उसका कारण यह है कि शब्दार्थ सम्बन्ध ज्ञात होकर ही अर्थ को प्रकट करता है। जब तक वह सम्बन्ध अज्ञात है तब तक अर्थ बोध नहीं होगा।

और भी एक बात है। भूत, भविष्य और वर्त्तमान में कोई ऐसा समय नहीं जब किसी शब्द के साथ उसके अर्थ का सम्बन्ध नहीं था। यह बात कोई नहीं कह सकता कि अमुक मनुष्य ने पहले-पहल शब्द के और अर्थ के सम्बन्ध का निश्चय किया। क्योंकि ऐसा कहने से एक भारी दोष उपस्थित होता है। दोष यह कि ऐसा कहनेवाले को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस व्यक्ति ने उक्त शब्दार्थ का निश्चय किया था उसने किसी खास शब्द के द्वारा उस सम्बन्ध को बताया होगा। अब सवाल यह उठता है कि जिस शब्द के द्वारा यह सम्बन्ध निर्णय किया गया उस शब्दार्थ सम्बन्ध को किसने निश्चय किया ? और यदि यह सम्बन्ध पहले से निश्चित था तो उस पुरुष को शब्दार्थ सम्बन्ध का प्रथम निश्चयकर्त्ता कैसे कहें ? इस प्रकार यदि कहो कि, अच्छा, जिस शब्द के द्वारा उस सम्बन्ध का निश्चय किया गया उसी को उसने पहले निश्चय कर लिया था तो फिर यहाँ भी पहला सवाल उठ पड़ता है। इस प्रकार यह एक ऐसी परम्परा बँधती है जिसका आरम्भ निकाल सकना असम्भव है। अर्थात् शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य है।[1]

इस तरह शब्द और अर्थ का सम्बन्ध निश्चय करते-करते मीमांसक जब अधिक जटिल प्रपंचों की अवतारणा करते हैं तो स्वभावतः ही ऐसी अनेक बातें कह जाते हैं जो आलंकारिकों के काम की होती हैं।

मीमांसकों का एक दूसरा प्रसंग भी, जहाँ से हमारे विषय का सम्बन्ध है, पाठकों के सामने संक्षेप में रखा गया। वेद वाक्य 5 प्रकार के हैं—(1) विधि, (2) नामधेय, (3) निषेध, (4) अर्थवाद (विधि शेष और निषेध शेष)। इन भेदों की विवेचना करते-करते मीमासकों ने विभिन्न प्रकार की इतनी बातें

1. पं. विधुशेखर शास्त्री का 'मीमांसा दर्शने ईश्वरवाद'—अनुसंधान (मालदह जातीय शिक्षा समिति), पृ., 54-55।

कह डाली हैं जिनका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग सभी उत्तरकालिक आलंकारिकों ने किया है। ध्वन्यालोक और लोचन ने ध्वनि की पुष्टि के लिए—यद्यपि अनेक स्थानों पर विरोध के लिए ही—इन बातों का इतना अधिक उपयोग और व्यवहार किया है कि अलंकारशास्त्र का विद्यार्थी किसी प्रकार अपने को उनसे अलग नहीं कर सकता।

मीमांसा दर्शन और काव्य करीब-करीब एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं, यह बात मीमांसा-ग्रन्थों के इस सन्देह से समझी जा सकती है जिसमे कहा जाता है कि यदि अर्थ स्पष्टीकरण ही इस शास्त्र का लक्ष्य है तो इस लक्ष्य पर लिखे गये काव्य आदि भी शास्त्र क्यों नहीं हैं? जो कुछ भी हो इसमे सन्देह नही कि आलंकारिकों ने अपनी अनेक बातों को मीमांसकों से लिया है। यही बात न्याय-शास्त्र के बारे मे भी कही जा सकती है।

पर जहाँ कही से शब्द किंवा अर्थ से सम्बन्ध रखनेवाले प्रमाणों को क्यों न ढूंढ़ा जाय उनमें का कोई भी ग्रन्थ उन बातों को अलंकार-शास्त्र मे प्रयुक्त होने की दृष्टि से नही लिखता। अलंकार-शास्त्र नाम का कोई शास्त्र भी पहले नहीं था। अवश्य ही काव्य में उपयोगी अलंकारों का यथारीति विवेचन सबसे पहले भरत के नाट्य सूत्र मे मिलता है। इस ग्रन्थ मे स्पष्ट रूप से अलंकार, गुण, दोष, लक्षण और रसों का उल्लेख पाया जाता है। यद्यपि नाट्य-शास्त्र का प्रधान विषय नाटक है और इस ग्रन्थ मे नृत्य-गीत का सविस्तर वर्णन है भी, पर प्रसंगवश अलंकारों का आ जाना इसमे स्वाभाविक था। भरत बहुत थोड़े-से अलंकारों की चर्चा करते हैं। ये अलंकार उपमा, रूपक, दीपक और यमक है। भारती, सात्वती, आरभटी और कैशिकी वृत्तियों की सविस्तर चर्चा भी इस ग्रन्थ में पायी जाती है। यह ग्रन्थ नाट्य और इससे सम्बन्ध रखनेवाले विषयों का विश्व-कोष है।

नाट्यशास्त्र के बाद मेधावी, भट्टि, दण्डी और भामह ये चार आलंकारिक विशेष रूप से उल्लेख्य है। मेधावी का नाम और काम भामह के उद्धरणों से मालूम होता है। मालूम होता है इनके ग्रन्थ का विषय भी केवल अलंकार ही था। धर्म-कीर्ति नाम के बौद्ध कवि का सूत्रालंकार भी सुना जाता है। भामह, दण्डी और भट्टि के ग्रन्थ हमें उपलब्ध हैं। इन आलंकारिकों ने रीति, अलंकार, गुण और दोषों की ही चर्चा अपने ग्रन्थों में की है। अथच सभी नाट्यशास्त्र के रस से परिचित हैं। इनके ग्रन्थों से सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि 'रस' का विवेचन वे अलंकार-शास्त्र का विषय नही समझते। रस नाट्यशास्त्र का ही विषय समझा जाता था।

अलंकार-शास्त्र किस प्रकार पृथ्वी पर आया, इस विषय पर राजशेखर की काव्य मीमांसा में एक विचित्र कथा है। सरस्वती के पुत्र काव्य-पुरुष सारस्वत को प्रजापति ने त्रैलोक्य में काव्य प्रचार के लिए नियुक्त किया। उन्होंने (सारस्वत ने) काव्य के अट्ठारह अंगों को अपने सत्रह शिष्यों को बाँट दिया। अपनी-अपनी

शाखाओं को लेकर सबने अलग-अलग ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार सहस्राक्ष ने कवि रहस्य, उक्तिगर्भ ने औक्तिक, सुवर्णनाभ ने रीति-निर्णय, प्रचेतायन ने आनुप्रासिक, चित्रांगद ने यमक और चित्र, शेष ने शब्दश्लेष, पुलस्त्य ने वास्तव, औपकायन ने औपम्य (उपमा), पराशर ने अतिशय, उतथ्य ने अर्थ-श्लेष, कुबेर ने उभयालंकारिक, कामदेव ने वैनोदिक, भरत ने रूपक निरूपणीय, नन्दिकेश्वर ने रसाधिकारिक, धिषण ने दोषाधिकार, उपमन्यु ने गुणोपदानिक और कुचमार ने औपनिषदिक तन्त्र लिखा। ये सभी अलग-अलग तितर-बितर हो गये, इसलिए राजशेखर को काव्य मीमांसा का संग्रह करना पड़ा।

इस कथा को केवल अपने शास्त्र को divne authority से प्रमाणित करने की tendency कहकर उड़ा देने से काम नहीं चलेगा। अन्ततः दो तीन नाम और उनके काम हमारे निकट परिचित है। भरत का नाम और काम दोनों मिल गया है। अवश्य ही जैसा कि कथा से पता चलता है मूल नाट्य-सूत्र केवल रूपक-निरूपण मात्र था। वात्स्यायन के कामसूत्र में कुचमार की चर्चा है। जो कुछ भी हो, काव्य पुरुष का एक अंग रसाधिकरण भी है यह बात तो कम-से-कम इससे सिद्ध होती ही है। साथ ही रसाधिकार की अलग चर्चा भी इससे समर्थित होती है। बिना किसी प्रमाण के दिये, केवल अनुमान के बल पर, अत्यन्त दबी जबान से क्या यह कहना अत्यधिक अयुक्तिक होगा कि भरत के नाट्यशास्त्र में—इसके विश्वकोष रूप मे पहुँचने पर—सूत्र रूप से इन अट्ठारहो अंगो को रख देने की चेष्टा की गयी। सम्भव है, भविष्य में किसी को इतना ही इशारा सिद्धान्त पथ पर ले आ सके। अन्ततः प्रस्तुत लेखक राजशेखर की कहानी मे सार का विश्वासी है, उसे divine authority की tendency में विश्वास अत्यधिक रूप में नहीं है।

काव्यमीमांसा के तीसरे अध्याय मे काव्य पुरुष की विस्तृत जीवनी दी गयी है। पाठकों को इसमें अनेक बातें जानने योग्य मिलेंगी। इसीलिए यहाँ उक्त अध्याय का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

"गुरुओं के मुँह से इस प्रकार की पुरानी कथा हमने सुनी है कि कथाप्रसंग में धिषण से उनके शिष्यों ने पूछा कि भगवन् आपके गुरु सारस्वतेय काव्यपुरुष कैसे हैं? वे बोले—

"पूर्वकाल मे पुत्र की इच्छा से सरस्वती ने हिमालय पर तपस्या की। फलतः प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें वर दिया और सरस्वती ने पुत्र जना। वह बालक उठकर माँ का चरण स्पर्श करके यह पद्यमयी वाणी बोला—

यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्तते
सोऽस्मि काव्य पुमानम्ब, पादौ वन्देय तावकौ।

जो इस वाङ्मय जगत् को अर्थ रूप से विवृत करता है—खोलता है—समझने योग्य बनाता है—मातः, मैं वही काव्यपुरुष हूँ। तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ।

इस छन्दस्वती अर्थमयी वाणी को सुनकर सरस्वती ने प्यार से खींचकर बच्चे

को गोद में ले लिया और कहा कि बेटा तू धन्य है, तेरी विद्या बुद्धि के आगे मैं हार खाती हूँ। कहा है कि 'पुत्र से पराजय होना मानो दूसरा पुत्रजन्म है'। सो मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे पहले के विद्वान् गद्यमयी वाणी बोलते थे, तू छन्दोमयी वाणी का प्रवर्त्तक होगा। शब्द और अर्थ तेरा शरीर हैं; संस्कृत मुख, प्राकृत बाहु, अपभ्रंश जंघे, पैशाची भाषा चरण और मिश्र भाषा तेरा हृदय है। तू सम, प्रसन्न, मधुर, उदार और ओजस्वी है। उक्तिचण (······) तेरी वाणी, रस तेरी आत्मा, छन्द तेरे रोम, प्रश्न, उत्तर, प्रवह्लिका (विचित्र उक्ति) तेरी वाक्केलि, और अनुप्रास उपमा आदि तेरे अलंकार है : भविष्यार्थ की प्रतिपादयित्री श्रुति भी तेरी स्तुति करती है।

फिर भी तू प्रगल्भ पुरुषकर्म को संवरण कर और बालकों की तरह चेष्टा कर। यह कहकर सरस्वती ने उस बालक को अनोकहा पुष्पों की छाया में एक शिलाखण्ड पर सुलाके स्नानार्थ प्रस्थान किया। सूर्योदय हो चला था। समिदाहरण के लिए शुक्राचार्य [उशना.] उस वनस्थली मे आकर सूर्यताप से घर्मार्द उस बालक को अकेला देख उसे अनाथ समझकर अपने आश्रम में ले गये। एक क्षण के बाद आश्वस्त होकर वह बालक आचार्य को विस्मित करता हुआ छन्दोमयी वाणी मे बोला—

> या दुग्धापि न दुग्धेन कवि दोग्धृभिरन्वहम्।
> हृदि नः संनिधत्तां सा काव्यधेनुः सरस्वती।

[जो प्रत्यह कवियों द्वारा दुही जाकर भी न दुही हुई की भाँति है, उसी काव्य रूप गौ को सरस्वती हमारे हृदय में सन्निहित करें।]

"इस काव्य के अध्येताओं में तुम [उशनाः] सुमेधा हो।" इस प्रकार उस सारस्वतेय ने कहा। तभी से पण्डित लोग [सन्तः] उशनाः को 'कवि' कहने लगे। कवि शब्द वस्तुतः 'कवृ'-वर्णो इस धातु से बना है, पर इस कथा के अध्ययन से कवियों को कवि कहा जाता है और भक्ति से सारस्वतेय को भी काव्यपुरुष कहा जाता है।

इधर सरस्वती ने पुत्र को न पाकर विलाप करना शुरू किया। इसी समय भगवान् वाल्मीकि आकर वाग्देवी को उशना. के आश्रम में ले गये। वहाँ बच्चे को देखकर आनन्द गद्गद होकर पुत्र को गोद मे लेकर उसका शिरश्चुम्बन किया और प्रसन्न होकर वाल्मीकि को अपनी छन्दोमयी वाणी का रहस्य बताया। विदा लेकर जाते हुए महामुनि ने निषाद द्वारा सहचरी से वियुक्त क्रौञ्च युवा को करुण क्रेंकार वाणी से रोता देख शोक सन्तप्त होकर यह श्लोक पढा—

> मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः समाः
> यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।

इसके बाद दिव्यदृष्टि सरस्वती ने इस श्लोक को भी वर दिया कि जो इसे पहले पढ़कर अन्य कुछ पढेगा वह सारस्वत कवि (राजशेखर के मत से सर्व उत्तम कोटि के कवि को सारस्वत कहते हैं) होगा। फिर महामुनि वाल्मीकि ने रामायण

गति अविद्ध होने के कारण ऋषियों ने इसे आरभटी कहा। इसकी भी स्तुति मुनियो ने उसी तरह की। पर काव्य पुरुष फिर भी वश मे न लाया जा सका। वह कुछ समासरहित और कुछ-कुछ अनुप्रासयुक्त उपचार-गर्भित वाक्य बोला। इसे पाञ्चाली रीति कहा गया। फिर वह अवन्ती की ओर बढा। इधर अवन्ती, वैदिश, सुराष्ट्र, मालव, अर्बुद, भृगु, कच्छ, आदि देश है। वहाँ पर भी इन दोनों के वेष का अनुकरण किया गया। इसे आवन्ती प्रवृत्ति कहते हैं। यह प्रवृत्ति पाञ्चाल-मध्यमा और रौद्रमागधी के बीच की है। इसकी वृत्ति सात्वती और कैशिकी हैं। मुनियो ने इसकी स्तुतियों की—

पाञ्चाल नेपथ्य विधिर्नराणां स्त्रीणां पुनर्नन्दतु दाक्षिणात्यः
मजल्पितं यच्चरितादिकं तद् अन्योऽन्यसभिन्नमवन्ति देशे।

फिर वह दक्षिण को बढ़ा। इधर मलय, मेकल, कुन्तल, केरल, पालमञ्जर, महाराष्ट्र, गंग, कलिंग आदि देश है। वहाँ भी स्त्री-पुरुषो ने उनके वेष का अनुकरण किया। इसे दाक्षिणात्य प्रवृत्ति कहते हैं! मुनियो ने उसकी भी स्तुति की—

आमूलतो वलित कुन्तल चारुचूड़:
चूर्णालक प्रचय लाञ्छित भालभागः।
कक्षा निवेश निविड़ीकृत नीविरेप-
वेपश्चिरं जयन्ति केरल कामिनीनाम्।

इसमे अनुरक्त होकर उसने जिस विचित्र नृत्य, गीत, वाद्य, विलास आदि को पसन्द किया उसे कैशिकी वृत्ति कहते है। यहाँ वह वश मे आ गया और यथास्थान अनुप्रास सज्जित, मामूली समासों से युक्त योगवृत्ति गर्भ जिस प्रकार का वाक्य कहा उसे वैदर्भी-रीति कहते हैं। यहाँ वेष विन्यास क्रम को प्रवृत्ति, विलास विन्यास क्रम को वृत्ति और वचन विन्यास क्रम को रीति कहा गया है।

इसीलिए आचार्यो का कहना है कि "वृत्ति और प्रवृत्ति तो चार-चार प्रकार की है पर देश तो अनन्त हैं। इतने ही से सबका ग्रहण कैसे हो जायेगा?" इस पर यायावरीय (राजशेखर) का कहना है कि ये भेद चक्रवर्त्ती देश (भारत साम्राज्य?) के है। इनमे भी अवान्तर भेद तो अनन्त हैं। दक्षिण देश से उत्तर दिशा तक एक सहस्र योजन का चक्रवर्त्ती क्षेत्र है। यह वेष विधान वहीं का है। इसके बाद यदि दिव्य लोगों का वर्णन करना हो तो उस देश के वेष के अनुसार ही करना चाहिए। अपने देश में अपनी इच्छा के अनुसार और द्वीपान्तर के लोगों को तत्तद्द्वीपानुसार सजाना चाहिए।

तीन रीतियाँ तो बहुत प्राचीन काल से चली आती हैं। श्री कामदेवजी की क्रीडा भूमि विदर्भ देश में वत्स गुल्म नाम का नगर है। यहीं पर सारस्वतेय ने औमेयी (उमा-गौरी की कन्या) को गन्धर्व विधि से ब्याहा था। फिर इस प्रदेश में विहार करके यह दम्पती हिमालय को फिर लौट आये जहाँ गौरी और सरस्वती दोनों परस्पर सम्बन्धिनी (समधिन) बनकर ठहरी थी। इन्होंने इस दम्पती को आशीर्वाद देकर कविमानस निवासी बनाया। इनके रहने के लिये कवि-लोक का निर्माण किया

और द्वैपायन ने लक्षश्लोकात्मक महाभारत बनाया।

एक बार ब्रह्मर्षि और देवता लोगों में श्रुतिसम्बन्धी शास्त्रार्थ हुआ। उसमें ब्रह्मा ने सरस्वती को निर्णेत्री बनाया। माता को वहाँ जाती देख सारस्वतेय ने अनुसरण किया। पर सरस्वती ने यह कहकर कि 'बेटा, ब्रह्मलोक मे तेरा जाना कल्याणकर नही है, ब्रह्माजी की यही आज्ञा है, तू लौट जा।'—हठपूर्वक उसे लौटा दिया और स्वयं चली गयीं। तत्पश्चात् क्रुद्ध होकर वह काव्यपुरुष निकल पड़ा। उसके मित्र कुमार (स्कन्द) ने अपनी माँ गौरी से यह सम्वाद कहा। पुत्र को खिन्न देखकर गौरी ने कहा कि बेटा, कुछ चिन्ता न कर, मैं इसे लौटाती हूँ। किस प्रकार इसके औद्धत्य को दमन किया जाय यह सोचते समय गौरी ने सोचा कि प्रेम-भिन्न संसार मे दूसरा कोई बन्धन नहीं है सो इसको वश में करने के लिए किसी स्त्री को बनाऊँ। यह सोचकर उन्होंने 'साहित्य-विधा वधू' को बनाया और कहा कि 'देख, यह तेरा धर्म-पति क्रुद्ध होकर भागा जा रहा है। इसे लौटा।' अन्य मुनियों को सम्बोधन करके उन्होंने कहा कि हे मुनियो, आप लोग इस दम्पती की स्तुति करें। मुनिगण वैसा ही करने लगे।

इसके बाद मुनियों के साथ वे पहले पूर्व दिशा को चले। इस ओर अंक, वंग, सुह्म, ब्रह्म, पुण्ड्र आदि देश है। उस कन्या ने, गौरी द्वारा द्वार नियुक्त होकर उक्त देश में जो वेष धारण किया वहाँ की स्त्रियो ने उसी का अनुकरण किया। इस प्रवृत्ति को 'रौद्रमागधी' कहते है। मुनियों ने इसकी स्तुति इस प्रकार की—

आद्रार्द्र चन्दन कुचार्पित सूत्रहारः
सीमन्तचुम्बि सिचयः स्फुट बाहुमूलः
दूर्वा प्रकाण्ड रुचिरास्वगुरुपयोगा
दुगौड़ागनास्तु चिरमेप चकास्तुवेपः

इसी प्रकार वहाँ के पुरुषो ने सारस्वतेय के वेप का अनुकरण किया। इस प्रवृत्ति का भी यही नाम है। जो नृत्य वाद्य आदि किये गये उसका नाम भारती वृत्ति है। इसे भी मुनियों ने उसी प्रकार स्तुति किया। ऐसा वेप धारण करने पर भी वह काव्यपुरुष वश में न लाया जा सका। इस समय उसने समास और अनुप्रास से युक्त, योगवृत्ति परम्परा गर्भित वाक्य बोला। इसे गौड़ीया रीति कहा गया। वह आगे पाञ्चाल देश मे गया। इधर पाञ्चाल, शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाह्लीक आदि देश हैं। वहाँ भी इसी प्रकार उन दोनों के वेषों का अनुकरण वहाँ के स्त्री-पुरुषों ने किया। इस प्रवृत्ति का नाम पाञ्चाल-मध्यमा है। मुनियो ने उसकी यों स्तुति की—

ताडंक वल्गन तरंगित गण्डलेख—
मानाभिलम्बिदर दोलित तार हारम्
आश्रोणि गुल्फपरिमण्डलितोत्तरीयं
वेपं नमस्यत महोदय सुन्दरीणाम्।

इस जगह जो नृत्य वाद्य विलास हुए उसको सात्वती वृत्ति कहा गया है। इसकी

गति अविद्ध होने के कारण ऋषियों ने इसे आरभटी कहा। इसकी भी स्तुति मुनियों ने उसी तरह की। पर काव्य पुरुष फिर भी वश में न लाया जा सका। वह कुछ समासरहित और कुछ-कुछ अनुप्रासयुक्त उपचार-गर्भित वाक्य बोला। इसे पाञ्चाली रीति कहा गया। फिर वह अवन्ती की ओर बढ़ा। इधर अवन्ती, वैदिश, सुराष्ट्र, मालव, अर्बुद, भृगु, कच्छ, आदि देश हैं। वहाँ पर भी इन दोनों के वेष का अनुकरण किया गया। इसे आवन्ती प्रवृत्ति कहते हैं। यह प्रवृत्ति पाञ्चाल-मध्यमा और रौद्रमागधी के बीच की है। इसकी वृत्ति सात्त्वती और कैशिकी हैं। मुनियों ने इसकी स्तुतियों की—

पाञ्चाल नेपथ्य विधिर्नराणां स्त्रीणा पुनर्नन्दतु दाक्षिणात्यः
मजल्पितं यच्चरितादिकं तद् अन्योऽन्यसभिन्नमवन्ति देशे।

फिर वह दक्षिण को बढ़ा। इधर मलय, मेकल, कुन्तल, केरल, पालमञ्जर, महाराष्ट्र, गंग, कलिंग आदि देश हैं। वहाँ भी स्त्री-पुरुषों ने उनके वेष का अनुकरण किया। इसे दाक्षिणात्य प्रवृत्ति कहते हैं! मुनियों ने उसकी भी स्तुति की—

आमूलतो वलित कुन्तल चारुचूड़:
चूर्णालक प्रचय लाञ्छित भालभागः।
कक्षा निवेश निविड़ीकृत नीविरेप-
वेपश्चिरं जयन्ति केरल कामिनीनाम्।

इसमें अनुरक्त होकर उसने जिस विचित्र नृत्य, गीत, वाद्य, विलास आदि को पसन्द किया उसे कैशिकी वृत्ति कहते है। यहाँ वह वश में आ गया और यथास्थान अनुप्रास सज्जित, मामूली समासों से युक्त योगवृत्ति गर्भ जिस प्रकार का वाक्य कहा उसे वैदर्भी-रीति कहते हैं। यहाँ वेष विन्यास क्रम को प्रवृत्ति, विलास विन्यास क्रम को वृत्ति और वचन विन्यास क्रम को रीति कहा गया है।

इसीलिए आचार्यों का कहना है कि "वृत्ति और प्रवृत्ति तो चार-चार प्रकार की हैं पर देश तो अनन्त हैं। इतने ही से सबका ग्रहण कैसे हो जायेगा?" इस पर यायावरीय (राजशेखर) का कहना है कि ये भेद चक्रवर्ती देश (भारत साम्राज्य?) के हैं। इनमें भी अवान्तर भेद तो अनन्त हैं। दक्षिण देश से उत्तर दिशा तक एक सहस्र योजन का चक्रवर्ती क्षेत्र है। यह वेष विधान वहीं का है। इसके बाद यदि दिव्य लोगों का वर्णन करना हो तो उस देश के वेष के अनुसार ही करना चाहिए। अपने देश में अपनी इच्छा के अनुसार और द्वीपान्तर के लोगों को तत्तद्द्वीपानुसार सजाना चाहिए।

तीन रीतियाँ तो बहुत प्राचीन काल से चली आती है। श्री कामदेवजी की क्रीड़ा भूमि विदर्भ देश में वत्स गुल्म नाम का नगर है। यहीं पर सारस्वतेय ने औमेयी (उमा-गौरी की कन्या) को गन्धर्व विधि से ब्याहा था। फिर इस प्रदेश में विहार करके यह दम्पती हिमालय को फिर लौट आये जहाँ गौरी और सरस्वती दोनों परस्पर सम्बन्धिनी (समधिन) बनकर ठहरी थी। इन्होंने इस दम्पती को आशीर्वाद देकर कविमानस निवासी बनाया। इनके रहने के लिये कवि-लोक का निर्माण किया

जहाँ पर मृत्यु के उपरान्त मर्त्यलोक के कवि कल्पान्त तक आनन्द करते हैं···

इस प्रकार स्वयंभू द्वारा सृष्ट इस काव्य पुरुष को विभाग करके जाननेवाले इह लोक और परलोक में आनन्द पाते हैं।"

ऊपर का विवरण राजशेखर के शब्दों का संक्षिप्त अनुवाद है। इस कथा का मूल कहाँ है, नहीं मालूम। पर, इसमें सन्देह नहीं कि रूपक के द्वारा विभिन्न रीति, वृत्ति और प्रवृत्तियों को समझा गया है। यदि यह कथा पुरानी है तो अवश्य ही बहुत प्राचीनकाल से रीतियों का विवेचन हो रहा है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह कथा धिषण के मुँह से कहलायी गयी है, जो वस्तुतः दोषाधिकार के लेखक हैं।

अलंकारशास्त्र के बारे में हम अतीत में और कुछ नहीं पाते। जो पाते हैं वह इतना विश्वास कर लेने के लिए पर्याप्त है कि काव्य की विवेचना इस देश में एक जमाने से जारी है।

भरत-सूत्र के व्याख्याता

शुद्ध आलंकारिक-सम्प्रदाय

पिछले प्रकरण की विवेचनाओं से पाठकों के निकट यह बात स्पष्ट हो गयी होगी कि अलंकारशास्त्र का जो स्वरूप इस समय है वह पहले नहीं था। आज का अलंकारशास्त्र उस काल के दो भिन्न-भिन्न धाराओं के संगम का विकसित रूप है। अलंकारशास्त्र के आचार्य (भामह, दण्डी, रुद्रट प्रभृति) उस शास्त्र में रस का सम्मिश्रण नहीं करते थे। इनका यह सम्प्रदाय रीति और अलंकार को लेकर ही शास्त्र को आगे बढ़ा रहा था। दूसरी ओर नाट्यशास्त्र के भिन्न-भिन्न व्याख्याताओं ने 'रस' निरूपण के प्रसंग में कितने ही नये सिद्धान्तों की रचना कर ली थी। ध्वन्यालोक के पूर्व रस और अलंकार को एक ही शास्त्र के अन्तर्गत करने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। भामह और दण्डी आदि के ग्रन्थों को एक बार फिर से इस दृष्टि से विवेचना कर लेने पर हमारी बात स्पष्ट हो जायेगी।

भामह के मतानुसार कविता की मुख्य वस्तु अलंकार या वक्रोक्ति ही है। रस के विषय में उनका कोई स्पष्ट विचार नहीं है। पर, साथ ही यह भी स्पष्ट है कि भामह को नाट्यशास्त्र या उस सम्प्रदाय के शृंगारादि रसों का ज्ञान था। रस-

वत् अलंकार के प्रकरण में वे बताते हैं—"रसवद्दर्शित स्पष्ट शृंगारादि रसम्"[1] शृंगारादि रस रसवत् अलंकार में ही स्पष्ट दर्शित रहते है। इस प्रकार विचित्र विधान से रस को एक अलंकार विशेष मे अन्तर्भाव करने की चेष्टा से यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि भामह 'रस' की व्याख्या से परिचित होते हुए भी अलंकार-शास्त्र में उसके वर्णन करने की कोई आवश्यकता नही समझते थे। यही बात दण्डी के विषय मे भी कही जा सकती है। भामह की राय मे रस का अन्तर्भाव 'वक्रोक्ति' मे हो जाता है। अवश्य ही, महाकाव्य मे सभी रसों का पृथक्-पृथक् वर्णन उनके मत से आवश्यक है।[2] इससे भी उनके रस सिद्धान्त विषयक ज्ञान का परिचय मिलता है। अभिनव गुप्त एक विचित्र व्याख्या से भामह को रस और अलंकार दोनो को समान रूप से 'वक्रोक्ति' के द्वारा ही निरूपक बनाने का प्रयत्न करते दिखायी देते है। वक्रोक्ति के प्रकरण मे "सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरन्यार्थो विभाव्यते"। (2.85) लिखा है। इसमें के 'विभाव्यते' शब्द को लेकर अभिनव गुप्त 'रस' का पारिभाषिक 'विभाव' शब्द निकाल लेना चाहते हैं —"प्रमादोघानादिर्विभावत्वे नीयते, विशेषेण च भाव्यते रसमयी क्रियत इति"। पर यह अपने मत को पुराने आचार्यों का सम्मत सिद्ध करने का प्रयास मात्र है।

दण्डी ने माधुर्य गुण के भीतर रस को माना है। काव्यादर्श (1.51) मे दण्डी कहते हैं "कि रस वाक् और वस्तु में भी रहता है। (वाचिवस्तून्यपिच रसस्थिति) इन्होने माधुर्य गुण ही को रस का उपजीव्य माना है। परन्तु जो रस माधुर्य का उपजीवक है और वाक् तथा वस्तु में रहता है वह दण्डी के द्वारा जिस रूप मे कहा गया है वह निश्चय ही रस सम्प्रदाय के आचार्यों का अभिप्रेत नहीं है। माधुर्य गुण दो प्रकार का कहा गया है—वाग्रस और वस्तुरस (काव्यादर्श 1.51.7) वाग्रस अर्थात् श्रुतानुप्रास और वस्तुरस अर्थात् अग्राम्यत्व[3]। इससे स्पष्ट है कि दण्डी 'रूप' शब्द से जो कहना चाहते हैं वह विभाव, अनुभाव, सञ्चारी की निष्पत्तिवाला 'रस' नही है। परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भामह ही की भाँति दण्डी भी भरत-सम्प्रदाय के 'रस' से पूर्ण परिचित थे। उन्होने रसवत्, प्रेय और ऊर्जस्वि अलंकारो को विवृत किया है (2.280.7) तथा शृंगार, रौद्र, वीर और करुण रसो का नाम लेकर उल्लेख भी किया है। अभिनवगुप्त के अनुसार दण्डी भट्टलोलट की भाँति रस का विचार करते हैं।[4] भट्टलोलट विभाव और अनुभाव को स्वीकार करते हैं। और भरत के प्रसिद्ध रस-सूत्र के व्याख्याता हैं। यदि अभिनवगुप्त की राय मान ली जाय तो दण्डी अनुभावादि से भी परिचित माने जा सकते हैं। कई रसों के स्थायी भावों का उल्लेख तो स्वयं वे अपने काव्यादर्श में करते हैं (2. 281, 283)। इस प्रकार नाट्यशास्त्र के 'रस'

1 काव्यालंकार, पृ. 6
2. वही, पृ. 27
3. "श्रुतिवर्णानुप्रासाभ्यां वाग्रसः'''अग्राम्यार्थभिधेयता तु वस्तु रसः"—हेमचन्द्र।
4. Vide, Sanskrit Poetics by S. K. De, II, p. 140

से पूर्ण जानकारी रखकर भी दण्डी ने 'रस' के ऊपर कुछ क्यों नहीं लिखा ? सीधा और स्पष्ट उत्तर यही है कि अलंकारशास्त्र और रसशास्त्र भिन्न-भिन्न शास्त्र समझे जाते थे। 'रस' का अस्तित्व नाटक के लिए ही शायद समझा जाता था।

वामन ने रसवत् अलंकार का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु 'रस' शब्द को *अपने 'कान्ति'-नामक 'अर्थ-गुण' में उन्होंने प्रयुक्त किया है।' (दीप्तरसत्वं कान्तिः*— काव्यालंकारसूत्र 3. 2. 15)। श्री एस. के. दे नाम के सुप्रसिद्ध विद्वान् ने अपनी पुस्तक में दिखाया है कि वामन ने यद्यपि यह भाव भरत के 'कान्तिगुण' किंवा "उदारगुण" से ली होगी,— फिर भी यह कहा जा सकता है कि दण्डी और भामह (जो रस को एक अलंकार में अन्तर्भूत करना चाहते हैं) की अपेक्षा वामन अधिक विकसित रूप में 'रस' को ले आते हैं।'[1]

उद्भट ने भी रस को रसवत् जैसे किसी अलंकार के प्रकरण में ही रखा है। यद्यपि विभाव, अनुभाव, संचारी, नवों रस आदि का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि भरत के 'रस' से इनका परिचय था। उद्भट की एक कारिका को बताया जाता है कि यह भरत के नाट्यशास्त्र से लिया गया है, (अलकार सार संग्रह 4.5 और भारतीय नाट्यसूत्र 6.15), पर यह बात निर्विवाद नहीं है।[2] कर्नल जैकोब ने जर्नल आफ् रायल एसियाटिक सोसायटी, 1897 पृ. 847 पर उद्भट के नाम से एक श्लोक प्रकाशित किया है जिससे 'रस ही काव्य की आत्मा है', यह मालूम होता है। इसी श्लोक के कारण भ्रम में पड़कर मि. जैकोबी ने उद्भट को ऐसा प्रथम आलंकारिक माना है जो काव्य की आत्मा की मीमांसा करता है। पर यह भ्रम अब प्रमाणित हो गया है।[3] सारांश, उद्भट ने 'रस' को अपने ग्रन्थ में कुछ वैसा ही स्थान दिया है जैसा भामह या दण्डी ने। इसीलिए प्रतीहारेन्दुराज ने कहा है कि उद्भट ने 'रस' या 'भाव' को काव्यात्मा स्वीकार नहीं किया।

ध्वन्यालोक के पूर्ववर्ती आलंकारिकों में शायद रुद्रट एकमात्र आलंकारिक हैं जिन्होंने रस पर 4 अध्याय लिखे हैं। इनके काव्यालंकार में कुल 16 अध्याय है जिनमे 13वें अध्याय में दस रसों का वर्णन है। नव प्रसिद्ध रसों के साथ ही इन्होंने

1. Vide, Sanskrit Poetics, II, p. 141
2. वही
4. श्लोक इस प्रकार है—

रसाद्यधिष्ठित काव्यं जीवद्रूपतया यत. ।
कथ्यते तद् रसादीनां काव्यात्मत्वं व्यवस्थितम् ॥

यह श्लोक कर्नल जैकोब के पाठानुसार काव्यलिंग (6 16) के अलंकार के बाद है। काव्य-लिंग अलकार के लक्षण के बाद जहां उसका उदाहरण आवश्यक था वहाँ यह श्लोक अवश्य ही अप्रासगिक जान पड़ता है। इसके बाद का श्लोक काव्यलिंग का उदाहरण है। इस कारण श्री एस. के. दे ने इसे प्रक्षिप्त माना है। अपनी पुस्तक की टिप्पणी मे उन्होंने लिखा है कि सन् 1920 मे मि. जैकोबी से बातचीत करने पर उन्होंने स्वीकार किया—'वे कर्नल जैकोब के पाठ के कारण भ्रम में पड़ गये थे।'

प्रेम: नाम का एक और रस भी जोड़ दिया है। शृंगार के दो भेद विप्रलम्भ और संभोग भी उल्लिखित हैं। 14वें अध्याय में विप्रलम्भ की दस दशाओं तथा मान-भञ्जन के छह् उपायों का वर्णन है। उपाय हैं—साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा और प्रसंग-भ्रंश। 15वें में वीर आदि अन्य रसों का वर्णन है। पर, रस का कविता में क्या स्थान है, इस विषय में प्रस्तुत ग्रन्थकार एकदम चुप है। वह अलंकारों को जोर देकर वर्णन करता है, उनकी परिभाषा भी करता है और साथ ही उनका स्थान भी निर्णय करता है, वह शब्द और अर्थ दोनों में 'काव्य' पद को व्यासक्त मानता है, पर, इसका केवल वर्णन-भर करता है। पीछे के टीकाकारों ने यद्यपि यह सिद्ध करना चाहा है कि रुद्रट रस को काव्यात्मा मानते हैं पर रुय्यक और जयरथ की यह सम्मति ही ठीक जान पड़ती है कि रुद्रट अलंकारों में ही दिलचस्पी रखते हैं, रस मे नही।

रुद्रट ने पद संघट्टना को रीति माना है और यह बताया है कि 'रस अर्थात् प्रेम, करुण, भयानक और अद्भुत में वैदर्भी और पाञ्चाली रीतियाँ तथा रौद्र में लाटीय और गौड़ी रीतियाँ फबती हैं। शेष रसों के बारे में कुछ नही कहा है। इन्होंने 'औचित्य' पद का भी प्रयोग किया है। सम्भव है, आनन्दवर्धन ने यही से अपने *'औचित्य' पद को लिया हो।*

इस प्रकार हम देखते है कि पुराने आलंकारिक 'रस' को अपने शास्त्र के अन्दर उचित स्थान नही देते। इस बात पर तो किसी का ध्यान ही नही गया कि काव्य में भीतरी वस्तु क्या है। केवल बाह्य सौन्दर्य के पोषक अलंकारों की ही विवेचना की गयी और रस को भी अलंकारों में अन्तर्भूत करने का प्रयत्न किया गया है। पर, *साथ ही यह बात भी भूलने की नहीं है कि इनमे सभी नाट्यसूत्र के 'रस' से* परिचित थे पर किसी ने रस को वह स्थान नहीं दिया जो उसे मिलना चाहिए। ध्वन्यालोक मे पुराने आचार्यों का जो उत्कट विरोध किया है उसका कारण भी शायद यही है।

लोल्लट आदि आचार्य

यद्यपि दण्डी प्रभृति आलंकारिकों ने रस का स्पष्ट वर्णन नही किया पर, किसी-न-किसी रूप में उन्होने उसका अस्तित्व स्वीकार किया है। इसका कारण यही है कि भरत के प्रसिद्ध रस-सूत्र पर अनेक प्रकाण्ड विद्वानो ने टीकाएँ या स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखकर विवेचना शुरू कर दी थी। इसका प्रभाव आलंकारिकों पर जैसा पड़ना

चाहिए था वैसा तो नहीं पड़ा पर वे इससे अछूते भी न रह सके। रस ग्रन्थों में ध्वन्यालोक सबसे पहला ग्रन्थ है जिसने साहसपूर्वक पूर्व के आलंकारिकों पर घोर आक्रमण के साथ ही रस और ध्वनि को कविता की मुख्य वस्तु स्वीकार किया। इस ग्रन्थ का अलंकारशास्त्र में वही स्थान है जो व्याकरण में अष्टाध्यायी का। पण्डित-राज अपने 'रस गंगाधर' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में लिखते हैं—'ध्वनिकृतामालंकारिक सरणि व्यवस्थापकत्वात्'—(पृ. 425 का. मा.)। इस ग्रन्थ पर अभिनवगुप्त की लोचन नाम की टीका का भी अलंकारशास्त्र में वही स्थान है जो व्याकरण में महा-भाष्य का या वेदान्त में शांकर भाष्य का। अभिनवगुप्त की यही टीका हमारे सामने रस के भिन्न-भिन्न कई व्याख्याताओं को ले आती है। काव्य प्रकाश में मम्मट ने 'रस' की परिभाषा करते समय भरत के सूत्र का ज्यों-का-त्यों उप-न्यास करके उसकी चार भिन्न व्याख्याएँ उपस्थित की हैं। जिन चार टीकाकारों का उल्लेख किया गया है, वे हैं भट्ट लोल्लट, भट्ट शंकुक, भट्ट नायक और अभिनवगुप्त पाद (लोचन-कार)। अन्तिम आचार्य के मत को ही प्रामाणिक समझा गया है।

इसके पूर्व कि इन चारों के विचारों की परीक्षा की जाय, पहले भरत का सूत्र देख लेना चाहिए। वह सूत्र है—*'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः।'* अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ कुछ-कुछ उत्पत्ति, परिणति आदि की भाँति है। पर, ठीक वही नहीं है। आगे चलकर हम देखेंगे कि व्याख्याताओं ने इस बात पर काफी प्रकाश डाला है कि रस उत्पन्न नहीं हो सकता। इस स्थान पर विभावादि शब्दों का अर्थ भरत के अनुसार समझ लेना उचित है। भरत के अनुसार 8 रस हैं। काव्य प्रकाशकार ने 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः'—नाट्य में आठ ही रस होते हैं—कहकर भरत के मत का समर्थन करके भी 'शान्तोऽपि नवमो मतः'—मेरे मत से शान्त भी नवाँ रस है—कहा है। आठों रसों के स्थायी भाव हैं—रति (शृंगार), हास (हास्य), शोक (करुण), क्रोध (रौद्र), उत्साह (वीर), भय (भयानक), जुगुप्सा (वीभत्स), विस्मय (अद्‌भुत)। शान्त का है निर्वेद।

विभाव

वाणी और शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले अभिनय के आश्रित बहुत-से अर्थ इसके द्वारा चिन्तन कराये जाते हैं इसलिए इसे विभाव कहते हैं—'वहवोऽर्थाः विभाव्यन्ते वागंगाभिनयाश्रयाः अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः।' (नाट्य. 7.4)। दशरूपक (4.2) के मत से ज्ञायमान होने के कारण विभाव भाव का पोषक होता है और आलम्बन तथा उद्दीपन भेद से दो प्रकार का होता है। आलम्बन नायिका आदि, उद्दीपन उद्यान आदि।

स्थायी भाव

जिस प्रकार मनुष्यों में राजा और शिष्यों में गुरु महान् होता है वैसे ही सब भावों

में स्थायी भाव महान् होता है।—'यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः। तथा हि सर्वभावानां स्थायिभावो महानिह।' (नाट्य. 7.8) दशरूपक का लक्षण अधिक स्पष्ट है - विरुद्ध किंवा अविरुद्ध भावों से जो विछिन्न न होकर दूसरे भावों को भी अपना लेता है वही स्थायी भाव है।

अनुभाव दशरूप के मत से 'भाव संसूचनात्मक विकारो' को कहते हैं(4.3)। इन्ही को सात्विक भाव भी कहते हैं (दशरूप 4. 4-6)। इनमें कटाक्ष, भ्रू, क्षेप, वेपथु, स्वेद आदि हैं। निर्वेद, ग्लानि आदि 34 व्यभिचारी भाव हैं। (नाट्यशास्त्र 6-18, 21) यह विभावादि का सामान्य और संक्षिप्त वर्णन अगली विवेचना में सहायक होगा, यह समझकर ही यहाँ कह दिया गया। नही तो वस्तुतः इनके कहने का अवसर अभी नही आया है।

अब हम प्रकृत विषय पर आते हैं। भरत के इस प्रसिद्ध सूत्र की व्याख्या करने वालों मे भट्ट लोल्लट का पहला नाम है। दुर्भाग्यवश भट्ट लोल्लट का ग्रन्थ या टीका खो गयी है। उनके विषय में जो कुछ ज्ञात है वह अभिनवगुप्त तथा उनके अनुगामी मम्मट आदि के उद्धरणों से ही। एक बात और ध्यान मे रखने योग्य है कि भट्ट लोल्लट के अनुयायी यद्यपि इस समय मुश्किल से उपलब्ध हैं फिर भी अलंकारशास्त्र उनके अनुयायियो से एकदम सूना नहीं था। मम्मट इनका मत 'इति भट्ट लोल्लट प्रभृतयः' कहकर उद्धृत करते है।

काव्यप्रकाश में जिस प्रकार इनका मत उद्धृत किया गया है उससे इनका आशय यों मालूम होता है—रमणी आदि आलंबन विभावो, उद्यान आदि उद्दीपन विभावो, कटाक्ष-भ्रूक्षेपादि अनुभावो और निर्वेदादि व्यभिचारी भावों के साथ स्थायी भावो के संयोग होने से रस की क्रमश. उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और पुष्टि होती है। विभावो के साथ स्थायी भावों का उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध है, अनुभावो के साथ गम्य-गमक तथा व्यभिचारियो के साथ पोष्य-पोषक सम्बन्ध है। रस की स्थिति अनुकार्य मे होती है और उसी का रूप धारण करनेवाले नट मे भी फलतः होती है।

भट्ट लोल्लट का आशय यह है कि रस के उत्पन्न होने का कारण विभाव है अतएव यह उत्पाद्य हुआ। भारतीय सूत्र का 'निष्पत्ति' शब्द इनके मत से उत्पत्ति या (या और ?)पुष्टि का वाचक है। रस राम या दुष्यन्त आदि में रहता है और चूंकि अभिनेता भी राम या दुष्यन्त के रूप में ही दर्शक के सामने आता है इसीलिए दर्शक उसी मे रस का अनुभव कर आनन्दित होता है। रस साक्षात् सम्बन्धेन (मुख्यतया वृत्त्या'—मम्मट) रामादि में ही रहता है। नट (अभिनेता) में तो उसके अभिनय चातुर्य के कारण ज्ञात होता है। पर, यह समझना कठिन है कि जब रस राम, दुष्यन्त प्रभृति अनुकार्यो में रहता है और दर्शक में नहीं रहता तो एक ऐसे व्यक्ति के मानसिक आनन्द-शोक से जो कि बिल्कुल ही मौजूद नही है, दर्शक को मानसिक आनन्द-शोक क्यों होता है। यह असम्भव है कि एक तृतीय व्यक्ति के आनन्द-शोक के कारण दर्शक को उसी प्रकार का आनन्द-शोक हो। दूसरी बात जो इस मत में

खटकनेवाली है वह यह है कि विभावादि के साथ रस का स्पष्ट सम्बन्ध सन्देहास्पद ही रह गया। यदि विभाव का रस के साथ उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध है तो यह जरूरी नही कि विभावादि के न रहने से रस भी न रहे। दुनिया में कारण के नष्ट हो जाने पर भी कार्य का अस्तित्व पाया जाता है। तीसरी बात यह है कि कारण और कार्य एक ही समय नहीं रहते पर विभावादि और रस एक साथ ही एक काल में उत्पन्न और अदृश्य होते हैं। विश्वनाथ अपने साहित्य दर्पण में ठीक ही कहते हैं कि यदि रस कार्य होता तो उसके आस्वाद के समय उसके कारण विभावादि का भान ही नही होता। पर ऐसा नही होता। चन्दन का स्पर्श और तज्जनित आनन्द साथ ही नही उत्पन्न होते।

दूसरे प्रसिद्ध टीकाकार, जिन्हें काव्यप्रकाशकार उद्धृत करते हैं, श्री शंकुक हैं। उनका आशय इस प्रकार है—दर्शक नाटक देखते समय अभिनेता को सम्यक् प्रतीति के द्वारा 'यह राम ही है', ऐसा नही समझता; न मिथ्या प्रतीतिवश 'यही राम है'; या संशय के द्वारा 'यह राम है या नहीं'; या सादृश्य के द्वारा 'यह राम ही के समान है'—ही समझता है। बल्कि इन सारी प्रतीतियों से विचित्र एक ऐसी प्रतीति से उसका भान करता है जिस प्रकार तस्वीर के घोड़े को आदमी समझता है। इसी चित्र तुरगादि न्याय से वह नट को ग्रहण करता है और उसे राम या दुष्यन्त समझता है। इसीलिए नाना प्रकार की अभिनय-शिक्षा-प्राप्त नट जो कुछ तमाशा दिखाता है उसमें उसी के द्वारा किये गये कृत्रिम अनुभावादिकों के संयोग से रस का दर्शक अनुमान करता है। विभावादि से रस का अनुमाप्य-अनुमापक सम्बन्ध है। अर्थात् रस अनुमाप्य है और विभावादि अनुमापक। इनके मत से भरत-सूत्र की 'निष्पत्ति' 'अनुमिति' का वाचक है। दूसरे शब्दों में, दर्शक द्वारा 'रस' अनुमान किया जाता है। यह अनुमित भावना आस्वादित होकर 'रस' नाम पाती है। अनुमान करने की नैय्यायिकों की प्रसिद्ध सरणि के अनुसार काव्यप्रकाश-कार के टीकाकारों ने अनुमान करने का ढंग भी बताया है। अनुमान की सरणि यों है—'जहाँ-जहाँ धुआँ होगा वहाँ-वहाँ आग होगी। अतएव जहाँ-जहाँ आग का अभाव होगा वहाँ-वहाँ धुआँ भी नहीं रहेगा।'—'यत्रयत्र धूमस्तत्रतत्र वह्निः, यत्र-यत्र वह्न्याभावस्तत्रतत्र धूमाभावः।' इस नियम से ही अनुमान किया जाता है। प्रथम में भी 'यह राम (अभिनेता के रूप मे) सीता विषयक रतिमान् है। कारण, सीताविषयक विभाव का सम्बन्धी है या सीताविषयक कटाक्षादि (अनुभाव) वाला है। जो ऐसा नही है वह सीता विषयक रतिमान् भी नही है। (मिलाइये—पर्वत मे आग है (वह्निमान् है)। कारण, पर्व धूमवान् है। जो ऐसा नही है (उदाहरणार्थ वृक्ष) वह वह्निमान भी नही है।

किन्तु श्री शंकुक के व्याख्यान मे अनुमान की प्रधानता देखकर पश्चाद्वर्त्ती आचार्यों ने इसे स्वीकार नही किया। प्रत्यक्ष ज्ञान ही चमत्कार का कारण हो सकता है, परोक्ष के अनुमानादि नही। फलतः, रामादि विषयक अनुमान वर्त्तमान सामाजिको (दर्शको) को आनन्दित नही कर सकता। पीछे से तो इस बात पर गहरा विरोध

दिखायी देता है कि विभाव साधन हैं और रस साध्य। समझाया गया है कि रस व्यंग्य होता है और विभाव व्यंजक।

इस प्रकार जब विभाव साधन ही नही है तो न तो वह कारक कारण हो सकता है और न ज्ञापक कारण। भट्ट लोल्लट जहाँ अनुकार्य मे रस मानते है और रस का उत्पादक उसे स्वीकार करते है वहाँ श्री शंकुक इतना और जोड़ देते है कि सुशिक्षित अभिनेता इस प्रकार का अभिनय करता है कि दर्शक उसी मे अनुकार्य की वृत्तियों का अनुमान करता है और चमत्कारपूर्ण अभिनय-सौन्दर्य से मुग्ध होकर अपने मन में रस का अनुमान करता है। इन दोनों व्याख्यानो को देखकर भी यह प्रश्न ज्यों का त्यों रह जाता है कि, यदि रस बाहर की चीज है तो दर्शक के हृदय मे उसका अनुभव क्योंकर होता है। दूसरी बात यह है कि रामादि विषयक रति आदि का दर्शक, जब राम आदि को पूज्य-भाव से देख रहा है तो वह लज्जा से अभिभूत क्यों नहीं हो जाता है। यदि पूज्य भावना न भी हो तो भी दूसरे की भावना को कैसे अपनाया जा सकता है।

फिर यह अच्छी तरह जान लेने पर भी कि अभिनेता राम नही है और उस सीता विषयक प्रलाप और रोदन का अभिनय बिल्कुल तमाशा है, सामाजिक रस के साक्षात्करण का अनुभव करता है फिर श्री शंकुक की व्याख्या प्रामाण्य कैसे मान ली जाय ? इसलिए मम्मट ने तृतीय मत भट्ट नायक का उद्धृत किया है। भट्ट नायक ने उपर्युक्त प्रश्नो का यों समाधान किया है— शब्द का जो अभिधारूप व्यापार है उसके अतिरिक्त काव्य और नाटक में भावकत्व और भोजकत्व नाम के दो और व्यापार है। काव्यार्थ बोध के ठीक पश्चात् ही भावकत्व नामक व्यापार द्वारा राम में से रामत्व, सीता मे से सीतात्व प्रभृति हटाकर सामाजिक (दर्शक या पाठक) साधारण पुरुष, रमणी आदि के रूप में उन्हें देखता है। स्वयं वह तटस्थ होकर रस का अनुभव करता हो सो बात भी नही है। और न यही बात है कि वह आत्मगत भाव से रस का अनुभव करता हो। वह तो भावकत्व व्यापार से रामादि को साधारण नायक रूप मे ग्रहण करता है। दर्शक अपने को कभी राम समझ ही नही सकता। क्योंकि वह खूब जानता है राम के समान शौर्य और पराक्रम उसमें नही है (अभिनवगुप्त, लोचन) इस प्रकार भावकत्व व्यापार से साधारणीकृत विभावादि के संयोग से स्थायी रत्यादि (को भोजकत्व नाम के व्यापार से) भोग करता है। अर्थात् 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ है 'भुक्ति'।

यह ध्यान देने की बात है कि ये अभिधा के बाद दो और वृत्तियाँ स्वीकार करते हैं। अभिधा वृत्ति मीमासकों में पहले से ही प्रसिद्ध है। भट्ट लोल्लट रस की व्याख्या करते समय केवल इसी वृत्ति का आश्रयण करते हैं। इसलिए उन्हें मीमांसक कहना ठीक है। श्री शंकुक रस को अनुमान के अन्दर ले आने का प्रयत्न करते हैं अत. निश्चय ही वे नैय्यायिक हैं। पर, भट्ट नायक किस सम्प्रदाय के अन्दर रखे जा सकते हैं ? अब तक तो साधारण विश्वास यही रहा है कि ये भी लोल्लट की तरह मीमासक ही है, क्योंकि अभिधा के बाद जिन दो शब्द-व्यापारों की चर्चा करते ये

दिखायी देते हैं वे केवल काव्य और नाटक में ही होते हैं, अन्यत्र नहीं। इसलिए यही सबका विश्वास रहा है कि भट्ट नायक मीमांसक सम्प्रदाय के ही अन्तर्गत हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि अलंकारशास्त्र का जहाँ तक दर्शन से सम्बन्ध है वहाँ तक मीमांसक और नैय्यायिक सम्प्रदाय से ही उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। ध्वन्यालोक के बाद से ध्वनि सम्प्रदाय के नवीन आविर्भाव के बाद भी उसके प्रवर्त्तक उसे स्वतन्त्र पन्थ न मानकर व्याकरण के स्फोट-वाद का ही विकास मानते आये हैं। जगन्नाथ 'व्यक्तिश्च भगवरणा चित्' आदि कहकर वैदान्तिक शब्दों का उपयोग मात्र करते हैं। यह कहीं नहीं सुना गया कि सांख्य मतावलम्बियों ने भी इस शास्त्र में दखल दिया पर, श्री एस. के. दे Sanskritic poetics, Part II (pp. 157) मे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि भट्टनायक सांख्य मत के अनुयायी हैं।[1] इस बात का आधार भट्टनायक का स्वीकृत भोजकत्व व्यापार (भोग ?) है। हम इस विषय पर कुछ अधिक न कहकर इसका निर्णय तज्ज्ञों के ऊपर ही छोड़ देते है।

चौथे व्याख्याता अभिनवगुप्त हैं। यह बात स्मरण रखने की है कि अभिनव गुप्त ने ही भरत सूत्र का प्रसंग छेड़कर पहले कहे हुए तीन आचार्यों का मत हमारे सामने रखा है। भट्टनायक का मत ही वस्तुतः अभिनवगुप्त की व्याख्या का आधार है। और यदि अभिनवगुप्त को ध्वनि सम्प्रदाय का समर्थन न करना होता तो शायद वह विवाद को आगे न बढ़ाते। पर, रस का जो सर्वमान्य और शुद्ध स्वरूप अभिनवगुप्त ने संसार के सामने रखा है, सन्देह नहीं, उसके स्थापन में भट्टनायक की व्याख्या ने बड़ी सहायता पहुँचायी है। साधारणीकरण व्यापार, (जिसे आजकल की भाषा मे 'विश्व-भावना' (Universal feeling) कहा जा सकता है) की चर्चा करके पूर्व मतों में उठे हुए विर्सवादों को बड़ी आसानी से भट्टनायक ने हल कर दिया। अभिनवगुप्त भट्टनायक की कितनी ही बातों को स्वीकार करके उनकी व्याख्या अपने ढंग पर करते हैं। स्थायी भावो का विभावादि से संयोग होने पर रस व्यंग्य होता है—रस से उनका व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध है। यह अभिनवगुप्त के मत का सारांश है। विभावादि में से कोई एक या दो रस के कारण नहीं हैं बल्कि सभी मिलकर रस को व्यक्त करते हैं। जिस प्रकार नमक, मिर्च, खटाई आदि मिलकर अपने गुणो से भिन्न एक विचित्र प्रकार का स्वाद प्रकट करते हैं, विभावादि के

1. In Bhatta Nayak we mark a further development. In his theory there is not only a transition from what may be called the objective to the subjective view of रस and an understanding that the whole phenomenon should be explained in the terms of the spectator's inward experience, but also the fact that Bhatta Nayak in his peculiar theory of aesthetic enjoyment (भोग) is substantially following the teachings of the साङ्ख्य philosophors.

पाद टिप्पणी में आपने हिरियान (Hiriyan) के एक निबन्ध के बारे में, जिसमे भट्टनायक को मीमासक सिद्ध किया है, सन्देह प्रकट किया है।

मिलने पर उसी प्रकार इन सबके अलग-अलग गुणों से विलक्षण एक विचित्र प्रकार का आस्वाद प्राप्त होता है। यही रस है।

अभिनवगुप्त भट्टनायक का उद्धरण देकर उसकी आलोचना करते समय बताते हैं कि 'भावकत्व' और 'भोगीकरण' व्यापारों के स्वीकार करने के लिए न तो प्रमाण ही हैं और न प्रयोजन ही। फिर भावकत्व तो रस-व्यंजना के अन्दर आ जाता है। भोगीकरण व्यापार तो काव्यात्मक रस विषयक ध्वन्यात्मक है ही—'भोगीकरण व्यापारश्च काव्यात्मक रस विषयो ध्वननात्मैव'। किस प्रकार है—इसका जवाब अभिनव यों देते हैं—'काव्यार्थान् विभावयन्तीति भावा'—काव्यर्थों के चिन्तन में जो साधन हैं वे भाव हैं अर्थात् वे मनोवृत्तियाँ जिनके द्वारा हम काव्यार्थ का प्रत्यक्ष करते है भाव कही जाती है—भरत ने भाव की यही व्याख्या की है। इसी 'भाव' शब्द से 'भावक' और 'भावकत्व' शब्द बन सकते है। सो, स्थायी और व्यभिचारी ही भाव कहे जाते हैं क्योंकि वे ही मिलकर मनुष्य को रस का आस्वादक बनाते हैं और यह आस्वाद साधारणीकरण व्यापार के पश्चात् होता है। इस प्रकार स्थायी को 'भावक' या निष्पादक कहना ठीक है। इस प्रकार 'भावकत्व' को गुण और अलंकार के समुचित प्रयोजन के द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है—'समुचित गुणालंकार परिग्रहात्मकम्'—उसके लिए फिर एक पृथक् व्यापार कल्पना की क्या आवश्यकता ? यह बात समझ लेनी चाहिए कि किस प्रकार समुचित 'गुणालंकार-परिग्रह' से ही इसका ग्रहण हो जाता है। बात यह है कि गुण और अलंकार शब्द और अर्थ द्वारा व्यक्त (ध्वनित) रस को उत्तेजित करते हैं और 'भावकत्व' भी, जैसा कि ऊपर बताया गया है, रस को उत्तेजित करता है। इस प्रकार भावकत्व शब्द की व्याख्या अपनी ओर से कर लेने के बाद भावकत्व को यों उड़ाकर अभिनवगुप्त 'भोगीकरण' की ओर झुकते हैं और बताते हैं कि रस की प्रतीति के अतिरिक्त 'भोग' नाम का अन्य पदार्थ नही है। अभिनव के मत से भट्टनायक का बताया हुआ भोग आस्वाद या चर्वणा से ही सिद्ध हो जाता है। इस आस्वाद के आधार 'रति, हास' आदि हैं। द्रुत विस्तर विकासात्मक अलौकिक भोग के समय अलौकिक ध्वनन-व्यापार की ही प्रधानता रहती है। रस की प्रतीति इसकी अभिव्यक्ति का ही परिणाम है।

इस मत का स्थूलतः यह मर्म है—रति आदि का बारम्बार अनुभव होते रहने से (यह अनुभव जन्मान्तरार्जित भी हो सकता है) यह रत्यादि संस्कार या वासना रूप से हृदय में वर्त्तमान रहते हैं। फिर शिक्षाभ्यास-निपुण अभिनेता का अभिनय देखने से किंवा सुनिपुण कवि की कविता पाठ करने से जब भाववत्व व्यापार मे साधारणीकरण हो जाता है अर्थात् 'रामत्व' 'सीतात्व' भावना न रहकर साधारण पुरुषत्व कामिनीत्व भावना ही रह जाती है तब इन्ही सामान्य विभावो मे सामाजिकों (या पाठकों) के हृदय की वर्त्तमान रति व्यंजना वृत्ति द्वारा अभिव्यक्त होकर सामाजिकों (या पाठकों) द्वारा आस्वादित होती है। यह आस्वाद ही रस की निष्पत्ति है। पूर्व मत मे भट्टनायक के व्यवहृत भोग शब्द के लिए ही यह आस्वाद

शब्द का व्यवहार हुआ है। पर विशेषता इसमें यह है कि पहले मत में रति का भोग उसके न रहने पर भी (असत्या अपि रतेरास्वादः) कहा गया है पर, इस मत में वासना रूप से रति का वर्त्तमान होना मान लिया गया है।

रस, फिर क्या चीज है ? लोक में दो प्रकार के कारण देखे गये हैं—कारक और ज्ञापक। कारक, जैसे कुम्हार घड़ा का। ज्ञापक, जैसे अन्धकाराच्छन्न घर की चीजों के दर्शन का कारण दीपक है। पर रस न तो ज्ञाप्य ही माना गया है और न कार्य ही। क्योंकि विभावादि इसके व्यंजक मात्र है, कारण या ज्ञापक नहीं। फिर जो कार्य भी नहीं, ज्ञाप्य भी नहीं, वह वस्तु ही क्या हो सकती है ? काव्यप्रकाश कहता है कि नहीं, लौकिक वस्तु के पक्ष में यह दोष हो सकता है पर रस के लिए तो यह भूषण ही है। पर आगे चलकर वह कहता है कि अथवा चर्वण द्वारा निष्पन्न होने के कारण इसे कार्य भी कह सकते हो।

ध्वनि सम्प्रदाय

अभिनव गुप्त की रस-व्याख्या हमने देखी है। उस स्थान पर वह न तो स्पष्ट ही की गयी है और न स्पष्ट की ही जा सकती है। कारण यह है कि रस को समझने के लिये ध्वनि का समझना आवश्यक है। और ध्वनि का आलंकारिकों के यहाँ विचित्र रूप से विकास हुआ है। यदि उस विकास के साथ ही उसका अध्ययन किया जाय तो सम्भव है कि वह अधिक स्पष्ट रूप से पाठकों को समझ पड़ेगी। हम ऐसा ही करने का प्रयत्न करेंगे।

पाठकों को यह बात ज्ञात है कि रस की व्याख्या पहले नाट्यशास्त्र से आरम्भ होती है। विभाव अनुभाव आदि के द्वारा एक विशेष रस को प्रत्यक्ष करना नाटक का प्रधान उद्देश्य था। इसीलिये नाट्य सूत्र में रस का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है। पर नाटक जिस 'रस' का व्यवहार करेंगे वह सम्पूर्णतः अभिनय के द्वारा ही व्यंग्य होगा। और कविता में यही रस एक प्रधान चीज माना गया है। पर पूर्व के आचार्य रस को सम्पूर्ण अभिनय द्वारा व्यंजनीय समझते थे इसीलिए रस को एक पृथक् शास्त्र के जिम्मे छोड़ देना उन्होंने उचित समझा। क्योंकि उनका काव्य शब्द दृश्य-काव्य की परवा नहीं करता था। काव्य तो एक श्लोक भी कहा जा सकता है पर एक श्लोक से अभिनय या भाव तो प्रकट नहीं किया जा सकता। सम्भव है कि इसी-लिए रस को वे प्रबन्ध-योग्य ही समझते हों। भामह और दण्डी के ग्रन्थ महाकाव्य में रस की आवश्यकता तो समझते हैं पर प्रत्येक प्रकार की कविता में नहीं। इसी के

बाद ध्वनिकार का नाम आता है। उन्होंने सोचा कि नाटक से रस व्यंग्य होते है यह तो ठीक है पर फुटकर पद्य भी ऐसे अनेक हैं जिससे रस का हम अनुभव करते हैं। इसीलिये रसमय श्लोक नाटक और महाकाव्य के बाहर भी मिल सकते हैं। फिर इसी रस को काव्य की प्रमुख वस्तु क्यों न मान लिया जाय ? पर कुछ विचार करने पर मालूम होता है कि ऐसे श्लोक भी है जिनमें किसी भी रस की कल्पना नही की जा सकती, अथच उनमें चमत्कार पर्याप्त है। फिर उनको क्या किया जाय ? क्या वे काव्य की जाति से अलग कर दिये जायें ? ध्वनिकार ने यही सोचकर काव्य की मुख्य-वस्तु (आत्मा) रस को न मानकर ध्वनि को माना। इस ध्वनि में रस का अन्तर्भाव भी हो जाता है। ध्वनि यानी व्यंजना।

यद्यपि यह सम्भव है कि किसी भी वाक्य से कुछ-न-कुछ व्यंग्य निकल आते है पर इसीलिये इस प्रकार के प्रत्येक वाक्य काव्य नहीं कहे जा सकते। उदाहरण के लिए यदि कहा जाय, 'राजा जाता है' तो उसके नौकर चाकरों का जाना भी ध्वनित हो गया पर, इसीलिये यह वाक्य कविता नही है। अभिनव गुप्त कहते हैं (पृ. 40, लोचन) कि 'इसीलिये कि कुछ व्यंग्य निकल आता है, जिस किसी वाक्य को काव्य नही कहा जाता। आत्मा के सर्वव्यापक होने पर भी 'जीव' शब्द का सर्वत्र व्यवहार नही होता ? ।'

ध्वनि के बारे में अधिक कुछ कहने के पहले हम इस बात को देख लेना चाहते हैं कि वस्तुतः काव्य की आत्मा क्या है ? काव्य की आत्मा के बारे में सबसे पहले वामन 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। भरत ने यद्यपि रस की परिभाषा करने का वैज्ञानिक विवेचन आरम्भ किया पर, रस ही काव्य की आत्मा है यह बात उन्होंने कही भी स्पष्ट नही कही। पीछे के आचार्यो ने भी इस विषय पर कलम नही चलायी। ध्वन्यालोक ने जब 'काव्य की आत्मा ध्वनि है'—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो राजानक कुन्तक ने 'वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्' कहकर और विश्वनाथ ने 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्' कहकर आवाज उठायी। कुन्तक के वक्रोक्ति के बारे मे हम आगे देखेंगे। पर पाठक यहाँ इस भ्रम में न पड़ जायें कि कुन्तक वक्रोक्ति नाम के अलंकार विशेष को काव्य को काव्य की आत्मा मानते हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, वक्रोक्ति व्यंग्य ही का अति संकुचित रूप है। 'वैदग्ध्यभंगी भणितिः'—वक्रोक्ति की यही परिभाषा है। इसके लिए हम पाठकों से एक दूसरे अध्याय के लिए धैर्य धारण की आशा रखते हैं।

यद्यपि विश्वनाथ ध्वनि को काव्य की आत्मा न कहकर रस को वही स्थान देते है और ऐसा करने के लिए उन्हें जगन्नाथ और गोविन्द का गहरा आक्रमण सहना पड़ा है पर, यदि ध्यान से देखा जाय तो आनन्द वर्धन और अभिनव गुप्त, यहाँ तक कि मम्मट भी वही बात कहते दिखायी पड़ते हैं।[1] अभिनव गुप्त कहते हैं

1. अष्टम उल्लास में मम्मट कहते हैं कि "आत्मन एव यथा शौर्यादयः, नाकारस्य तथा रसस्यैव माधुर्यादयो गुणान वर्णानाम्" जिस प्रकार शौर्य आदि आत्मा ही के गुण हैं आकार के नहीं, उसी प्रकार 'गुण' रस के ही गुण है, वर्णों के नहीं। इस कथन से सिद्ध होता है कि रस वस्तुतः काव्य की आत्मा है और वर्ण आकार है।

शब्द का व्यवहार हुआ है। पर विशेषता इसमें यह है कि पहले मत में रति का भोग उसके न रहने पर भी (असत्या अपि रतेरास्वादः) कहा गया है पर, इस मत में वासना रूप से रति का वर्त्तमान होना मान लिया गया है।

रस, फिर क्या चीज है? लोक में दो प्रकार के कारण देखे गये है—कारक और ज्ञापक। कारक, जैसे कुम्हार घड़ा का। ज्ञापक, जैसे अन्धकाराच्छन्न घर की चीजों के दर्शन का कारण दीपक है। पर रस न तो ज्ञाप्य ही माना गया है और न कार्य ही। क्योंकि विभावादि इसके व्यंजक मात्र है, कारण या ज्ञापक नही। फिर जो कार्य भी नही, ज्ञाप्य भी नहीं, वह वस्तु ही क्या हो सकती है? काव्यप्रकाश कहता है कि नहीं, लौकिक वस्तु के पक्ष में यह दोष हो सकता है पर रस के लिए तो यह भूषण ही है। पर आगे चलकर वह कहता है कि अथवा चर्वण द्वारा निष्पन्न होने के कारण इसे कार्य भी कह सकते हो।

ध्वनि सम्प्रदाय

अभिनव गुप्त की रस-व्याख्या हमने देखी है। उस स्थान पर वह न तो स्पष्ट ही की गयी है और न स्पष्ट की ही जा सकती है। कारण यह है कि रस को समझने के लिये ध्वनि का समझना आवश्यक है। और ध्वनि का आलंकारिकों के यहाँ विचित्र रूप से विकास हुआ है। यदि उस विकास के साथ ही उसका अध्ययन किया जाय तो सम्भव है कि यह अधिक स्पष्ट रूप से पाठकों को समझ पड़ेगी। हम ऐसा ही करने का प्रयत्न करेंगे।

पाठकों को यह बात ज्ञात है कि रस की व्याख्या पहले नाट्यशास्त्र से आरम्भ होती है। विभाव अनुभाव आदि के द्वारा एक विशेष रस को प्रत्यक्ष करना नाटक का प्रधान उद्देश्य था। इसीलिये नाट्य सूत्र में रस का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है। पर नाटक जिस 'रस' का व्यवहार करेंगे यह सम्पूर्णतः अभिनय के द्वारा ही व्यंग्य होगा। और कविता में यही रस एक प्रधान चीज माना गया है। पर पूर्व के आचार्य रस को सम्पूर्ण अभिनय द्वारा व्यंजनीय समझते थे इसीलिए रस को एक पृथक् शास्त्र के जिम्मे छोड़ देना उन्होंने उचित समझा। क्योंकि उनका काव्य शब्द दृश्य-काव्य की परवा नहीं करता था। काव्य तो एक श्लोक भी कहा जा सकता है पर एक श्लोक मे अभिनय या भाव तो प्रकट नहीं किया जा सकता। सम्भव है कि इसी-लिए रस को ये प्रबन्ध-योग्य ही समझते हों। भामह और दण्डी के ग्रन्थ महाकाव्य में रस की आवश्यकता तो समझते हैं पर प्रत्येक प्रकार की कविता में नहीं। इसी के

बाद ध्वनिकार का नाम आता है। उन्होंने सोचा कि नाटक से रस व्यंग्य होते हैं यह तो ठीक है पर फुटकर पद्य भी ऐसे अनेक हैं जिससे रस का हम अनुभव करते हैं। इसीलिये रसमय श्लोक नाटक और महाकाव्य के बाहर भी मिल सकते है। फिर इसी रस को काव्य की प्रमुख वस्तु क्यों न मान लिया जाय ? पर कुछ विचार करने पर मालूम होता है कि ऐसे श्लोक भी हैं जिनमे किसी भी रस की कल्पना नहीं की जा सकती, अथच उनमें चमत्कार पर्याप्त है। फिर उनको क्या किया जाय ? क्या वे काव्य की जाति से अलग कर दिये जायें ? ध्वनिकार ने यही सोचकर काव्य की मुख्य-वस्तु (आत्मा) रस को न मानकर ध्वनि को माना। इस ध्वनि मे रस का अन्तर्भाव भी हो जाता है। ध्वनि यानी व्यंजना।

यद्यपि यह सम्भव है कि किसी भी वाक्य से कुछ-न-कुछ व्यग्य निकल आते है पर इसीलिये इस प्रकार के प्रत्येक वाक्य काव्य नही कहे जा सकते। उदाहरण के लिए यदि कहा जाय, 'राजा जाता है' तो उसके नौकर चाकरों का जाना भी ध्वनित हो गया पर, इसीलिये यह वाक्य कविता नही है। अभिनव गुप्त कहते हैं (पृ. 40, लोचन) कि 'इसीलिये कि कुछ व्यंग्य निकल आता है, जिस किसी वाक्य को काव्य नही कहा जाता। आत्मा के सर्वव्यापक होने पर भी 'जीव' शब्द का सर्वत्र व्यवहार नही होता ?।'

ध्वनि के बारे में अधिक कुछ कहने के पहले हम इस बात को देख लेना चाहते है कि वस्तुतः काव्य की आत्मा क्या है ? काव्य की आत्मा के बारे में सबसे पहले वामन 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। भरत ने यद्यपि रस की परिभाषा करने का वैज्ञानिक विवेचन आरम्भ किया पर, रस ही काव्य की आत्मा है यह बात उन्होंने कही भी स्पष्ट नहीं कही। पीछे के आचार्यो ने भी इस विषय पर कलम नही चलायी। ध्वन्यालोक ने जब 'काव्य की आत्मा ध्वनि है'—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो राजानक कुन्तक ने 'वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्' कहकर और विश्वनाथ ने 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' कहकर आवाज उठायी। कुन्तक के वक्रोक्ति के बारे में हम आगे देखेंगे। पर पाठक यहाँ इस भ्रम मे न पड़ जायें कि कुन्तक वक्रोक्ति नाम के अलंकार विशेष को काव्य को काव्य की आत्मा मानते हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, वक्रोक्ति व्यग्य ही का अति संकुचित रूप है। 'वैदग्ध्यभंगी भणितिः'—वक्रोक्ति की यही परिभाषा है। इसके लिए हम पाठको से एक दूसरे अध्याय के लिए धैर्य धारण की आशा रखते हैं।

यद्यपि विश्वनाथ ध्वनि को काव्य की आत्मा न कहकर रस को वही स्थान देते हैं और ऐसा करने के लिए उन्हें जगन्नाथ और गोविन्द का गहरा आक्रमण सहना पड़ा है पर, यदि ध्यान से देखा जाय तो आनन्द वर्धन और अभिनव गुप्त, यहाँ तक कि मम्मट भी वही बात कहते दिखायी पड़ते हैं।[1] अभिनव गुप्त कहते हैं

1. अष्टम उल्लास में मम्मट कहते हैं कि "आत्मन एव यथा शौर्यादय', नाकारस्य तथा रसस्यैव माधुर्यादयो गुणान वर्णानाम्" जिस प्रकार शौर्य आदि आत्मा ही के गुण हैं आकार के नहीं, उसी प्रकार 'गुण' रस के ही गुण हैं, वर्णों के नहीं। इस कथन से सिद्ध होता है कि रस वस्तुत. काव्य की आत्मा है और वर्ण आकार है।

शब्द का व्यवहार हुआ है। पर विशेषता इसमें यह है कि पहले मत में रति का भोग उसके न रहने पर भी (असत्या अपि रतेरास्वादः) कहा गया है पर, इस मत मे वासना रूप से रति का वर्त्तमान होना मान लिया गया है।

रस, फिर क्या चीज है ? लोक मे दो प्रकार के कारण देखे गये हैं—कारक और ज्ञापक। कारक, जैसे कुम्हार घड़ा का। ज्ञापक, जैसे अन्धकाराच्छन्न घर की चीजो के दर्शन का कारण दीपक है। पर रस न तो ज्ञाप्य ही माना गया है और न कार्य ही। क्योंकि विभावादि इसके व्यंजक मात्र हैं, कारण या ज्ञापक नही। फिर जो कार्य भी नही, ज्ञाप्य भी नहीं, वह वस्तु ही क्या हो सकती है ? काव्यप्रकाश कहता है कि नहीं, लौकिक वस्तु के पक्ष मे यह दोष हो सकता है पर रस के लिए तो यह भूषण ही है। पर आगे चलकर वह कहता है कि अथवा चर्वण द्वारा निष्पन्न होने के कारण इसे कार्य भी कह सकते हो।

ध्वनि सम्प्रदाय

अभिनव गुप्त की रस-व्याख्या हमने देखी है। उस स्थान पर वह न तो स्पष्ट ही की गयी है और न स्पष्ट की ही जा सकती है। कारण यह है कि रस को समझने के लिये ध्वनि का समझना आवश्यक है। और ध्वनि का आलंकारिको के यहाँ विचित्र रूप से विकास हुआ है। यदि उस विकास के साथ ही उसका अध्ययन किया जाय तो सम्भव है कि वह अधिक स्पष्ट रूप से पाठकों को समझ पड़ेगी। हम ऐसा ही करने का प्रयत्न करेंगे।

पाठकों को यह बात ज्ञात है कि रस की व्याख्या पहले नाट्यशास्त्र मे आरम्भ होती है। विभाव अनुभाव आदि के द्वारा एक विशेष रस को प्रत्यक्ष करना नाटक का प्रधान उद्देश्य था। इसीलिये नाट्य सूत्र में रस का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है। पर नाटक जिस 'रस' का व्यवहार करेंगे वह सम्पूर्णतः अभिनय के द्वारा ही व्यंग्य होगा। और कविता में यही रस एक प्रधान चीज माना गया है। पर पूर्व के आचार्य रस को सम्पूर्ण अभिनय द्वारा व्यंजनीय समझते थे इसीलिए रस को एक पृथक् शास्त्र के जिम्मे छोड़ देना उन्होंने उचित समझा। क्योंकि उनका काव्य शब्द दृश्य-काव्य की परवा नहीं करता था। काव्य तो एक श्लोक भी कहा जा सकता है पर एक श्लोक से अभिनय का भाव तो प्रकट नहीं किया जा सकता। सम्भव है कि इसी-लिए रस को वे प्रबन्ध-योग्य ही समझते हों। भामह और दण्डी के ग्रन्थ महाकाव्य में रस की आवश्यकता तो समझते हैं पर प्रत्येक प्रकार की कविता में नहीं। इसी के

बाद ध्वनिकार का नाम आता है। उन्होंने सोचा कि नाटक से रस व्यंग्य होते हैं यह तो ठीक है पर फुटकर पद्य भी ऐसे अनेक है जिससे रस का हम अनुभव करते है। इसीलिये रसमय श्लोक नाटक और महाकाव्य के बाहर भी मिल सकते हैं। फिर इसी रस को काव्य की प्रमुख वस्तु क्यो न मान लिया जाय ? पर कुछ विचार करने पर मालूम होता है कि ऐसे श्लोक भी है जिनमे किसी भी रस की कल्पना नहीं की जा सकती, अथच उनमे चमत्कार पर्याप्त है। फिर उनको क्या किया जाय ? क्या वे काव्य की जाति से अलग कर दिये जायें ? ध्वनिकार ने यही सोचकर काव्य की मुख्य-वस्तु (आत्मा) रस को न मानकर ध्वनि को माना। इस ध्वनि में रस का अन्तर्भाव भी हो जाता है। ध्वनि यानी व्यंजना।

यद्यपि यह सम्भव है कि किसी भी वाक्य से कुछ-न-कुछ व्यग्य निकल आते है पर इसीलिये इस प्रकार के प्रत्येक वाक्य काव्य नही कहे जा सकते। उदाहरण के लिए यदि कहा जाय, 'राजा जाता है' तो उसके नौकर चाकरों का जाना भी ध्वनित हो गया पर, इसीलिये यह वाक्य कविता नही है। अभिनव गुप्त कहते हैं (पृ. 40, लोचन) कि 'इसीलिये कि कुछ व्यंग्य निकल आता है, जिस किसी वाक्य को काव्य नही कहा जाता। आत्मा के सर्वव्यापक होने पर भी 'जीव' शब्द का सर्वत्र व्यवहार नही होता ?।'

ध्वनि के बारे में अधिक कुछ कहने के पहले हम इस बात को देख लेना चाहते हैं कि वस्तुतः काव्य की आत्मा क्या है ? काव्य की आत्मा के बारे मे सबसे पहले वामन 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। भरत ने यद्यपि रस की परिभाषा करने का वैज्ञानिक विवेचन आरम्भ किया पर,रस ही काव्य की आत्मा है यह बात उन्होंने कही भी स्पष्ट नही कही। पीछे के आचार्यो ने भी इस विषय पर कलम नही चलायी। ध्वन्यालोक ने जब 'काव्य की आत्मा ध्वनि है'—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो राजानक कुन्तक ने 'वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्' कहकर और विश्वनाथ ने 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्' कहकर आवाज उठायी। कुन्तक के वक्रोक्ति के बारे में हम आगे देखेंगे। पर पाठक यहाँ इस भ्रम मे न पड़ जायें कि कुन्तक वक्रोक्ति नाम के अलंकार विशेष को काव्य को काव्य की आत्मा मानते हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, वक्रोक्ति व्यंग्य ही का अति संकुचित रूप है। 'वैदग्ध्यभंगी भणिति.'—वक्रोक्ति की यही परिभाषा है। इसके लिए हम पाठकों से एक दूसरे अध्याय के लिए धैर्य धारण की आशा रखते हैं।

यद्यपि विश्वनाथ ध्वनि को काव्य की आत्मा न कहकर रस को वही स्थान देते है और ऐसा करने के लिए उन्हें जगन्नाथ और गोविन्द का गहरा आक्रमण सहना पड़ा है पर, यदि ध्यान से देखा जाय तो आनन्द वर्धन और अभिनव गुप्त, यहाँ तक कि मम्मट भी वही बात कहते दिखायी पड़ते हैं।[1] अभिनव गुप्त कहते हैं

1. अष्टम उल्लास में मम्मट कहते हैं कि "आत्मन एव यथा शौर्यादयः, नाकारस्य तथा रसस्यैव माधुर्यादयो गुणान वर्णानाम्" जिस प्रकार शौर्य आदि आत्मा ही के गुण हैं आकार के नही, उसी प्रकार 'गुण' रस के ही गुण है, वर्णों के नहीं। इस कथन से सिद्ध होता है कि रस वस्तुत. काव्य की आत्मा है और वर्ण आकार है।

(लोचन, पृ. 27) कि "वस्तुतः रस ही काव्य की आत्मा है। वस्तु और अलंकार ध्वनि का तो सर्वथा रस के प्रति ही पर्यवसान हो जाता है। ध्वनि को आत्मा इसलिए कहा गया कि यह वाच्यार्थ से उत्कृष्ट होता है। ध्वनि का आत्मा कहा जाना सामान्य वचन है, विशेष नही।"[1]

मम्मट ने ध्वनि का जो वर्गीकरण उपस्थित किया है उसमें रस-ध्वनि का अन्तर्भाव होता है। यद्यपि इस भेद के विरुद्ध जगन्नाथ ने कुछ आवाज उठायी है पर इस विषय मे कि ध्वनि में रस की ही प्रधानता है, वे मम्मट, आनन्दवर्धन और अभिनव के समर्थक ही नही, अनुगामी भी हैं। विश्वनाथ ने थोड़ा-सा विद्रोह अवश्य किया है पर, ध्वनि के महत्त्व को वे भूल नही सके। इस तरह हम इन आचार्यों को एक श्रेणी में रख सकते हैं। दूसरी श्रेणी महिमभट्ट और कुन्तक की है। ये लोग ध्वनि को प्रधान स्थान न देते हों सो बात नही है, ध्वनि को एकदम हटा देना चाहते हैं।

पर, यदि हम वक्रोक्ति जीवित का अवधान पुरस्सर अवलोकन करें तो कुन्तक रस या ध्वनि के उतने विरोधी नही मालूम पड़ते जितने महिमभट्ट। किन्तु कहीं-कहीं तो ध्वनि-सम्प्रदाय से प्रभावित जान पड़ते हैं— ध्वन्यालोक मे आनन्दवर्धन ने अपनी ही एक प्राकृत आर्या लिखी है। वह 'विवक्षित वाच्य' ध्वनि का उदाहरण है। उसका भाव है—'गुण तभी प्रकट होते हैं जब वे सहृदयों के द्वारा गृहीत होते हैं। रवि किरणों से अनुग्रहीत होने पर ही 'कमल 'कमल' होते हैं। यहाँ द्वितीय 'कमल' शब्द अनेक शोभा, श्री, कान्ति, विकासशीलता प्रभृति गुणो को ध्वनित करता है। इस आर्या को उद्धृत करके 'वक्रोक्ति जीवित' कार कहते हैं कि 'प्रतीयत इति क्रियापदवैचित्र्यस्यायमभिप्रायो यदेवं विधेविषये शब्दानां वाचकत्वेन न व्यापारः, अपितु वस्त्वन्तर प्रतीति कारित्वमार्पणेति युक्ति युक्त मप्येतदिह नाति प्रतयन्गते। यस्माद् ध्वनिकारेण व्यंग्य व्यंजक भावोऽस्य सुतरा समर्थितस्तन् किं पौनरुक्त्येन।" कहना व्यर्थ है कि उक्त ग्रन्थकार इस स्थान पर ध्वनि-सिद्धान्त को मानता है। मानता ही नही है ऐसा ज्ञात होता है कि वह अपना प्रबन्ध ध्वनिकार के कही बातों मे जो कमी रह गयी है उसे पूरा करने के लिये कह रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वनि सम्प्रदाय के बाद के सभी लेखक और टीकाकार 'ध्वनि' से प्रभावित है।

मम्मट ध्वनि को शक्ति देनेवाले आचार्य हैं। ध्वन्यालोक ने जिस शरीर की रचना की थी, अभिनव ने उसमे प्राणसंचार किया और मम्मट ने उसे पोस-पालकर बढ़ाया है। कितने विरोधियों के कठिन वाणों को उन्होने काटा है, कितने सम्भव-असम्भव रोगों से उसको उन्होने बचाया है और कितने चोर-डाकुओं से उन्होने इस

2 "तेन रस एव वस्तुत. आत्मा, वस्त्वलंकारध्वनी तु सर्वथा रस प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तौ इत्यभिप्रायेण ध्वनिः काव्यस्यात्मेति सामान्येनोक्तम्।"—लोचन, 271

बच्चे की रक्षा की है यह देखकर उनकी लोकोत्तर प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। विश्वनाथ और जगन्नाथ के समय में तो यह बच्चा काफी तगड़ा हो गया था। यहाँ तक कि जब यह जगन्नाथ के अखाड़े में अपनी शक्ति बढ़ा रहा था उस समय इस का कोई प्रतिभट था ही नहीं। बिचारे जगन्नाथ इस पहलवान को लोकोत्तर शक्तिशाली बनाने के लिए झूठमूठ ही कल्पित प्रतिद्वन्द्वी खड़ा करते हैं और कभी तो यों ही इसकी पीठ ठोंककर डण्ड पेलकर शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए उत्तेजित करते हैं। दुर्भाग्यवश उच्छृंखल यवन शासन के क्रूर चक्र ने यहाँ दूसरा पहलवान पैदा ही नहीं होने दिया। इस प्रकार साहित्य क्षेत्र में 'ध्वनि' अन्तिम और सर्वोत्तम पौधा होकर रह गया।

रस किस प्रकार ध्वनि के भीतर आ जाता है यह दिखाने के लिए हम मम्मट का वर्गीकरण यहाँ रखते हैं"—
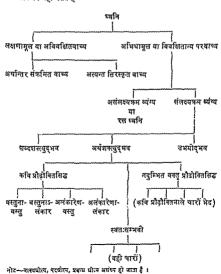
नोट—वाक्यद्योत्य, पदद्योत्य, प्रबन्ध द्योत्य असंख्य हो जाता है।

अर्थशब्दशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम-व्यंग्य के 12 भेदों को छोड़कर बाकी सब ध्वनिकार के कहे हुए है। इस वर्गीकरण का वर्णन ध्वन्यालोक (प्रथम और द्वितीय उद्योत), काव्य प्रकाश (चतुर्थ उल्लास) और साहित्य दर्पण (चतुर्थ परिच्छेद) में पाया जाता है। रस गंगाधरकार मम्मट के वर्गीकरण पर आक्षेप करते हैं। उनके मत से कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध और तदुम्भितवक्तृ-प्रौढ़ोक्ति सिद्ध भेद व्यर्थ हैं क्योंकि 'तदुम्भितोम्भितवक्तृ प्रौढ़ोक्ति सिद्ध प्रभृति सैकड़ों भेद हो सकने से अनवस्था आ जायगी।

कुछ भी हो, इस वर्गीकरण को सभी ने स्वीकार किया है। पर इसके मूल में ही अभिधा और लक्षणा घुली हुई हैं। बिना उनके जाने ध्वनि, और फलतः रस को समझ सकना मुश्किल है। पाठकों ने भारतीय रस सूत्र की अन्तिम व्याख्या में ध्वनि का महत्त्व देखा है। इसलिए उस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ अधिक जटिल प्रपंच की अवतारणा की गयी।

ध्वनि का प्रादुर्भाव कैसे हुआ

प्रपंच में पड़ने के बहाने यही विचार किया जाय। ध्वनि का सर्वप्रथम प्रतिपादक तथा सर्वमान्य ग्रन्थ ध्वन्यालोक है। इस स्थान पर हम इस विवाद में नहीं पड़ना ही अच्छा समझते हैं कि इस ग्रन्थ की कारिका और वृत्ति एक ही ग्रन्थकार की लिखी है या भिन्न-भिन्न।[1] हमको जिस रूप में यह ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है वह कारिका और वृत्ति दोनों का मिश्रित रूप है। इसीलिए दोनों की एक ही साथ

1. इस बात पर प्रायः सभी विद्वान् एक [मत हैं] कि ध्वनिकार और आनन्दवर्धन (ध्वन्यालोककार) तो नहीं एक हो हैं। यद्यपि यह पुस्तक सदा ध्वन्यालोक के ही साथ पायी गयी है और कितने ही प्राचीन ग्रंथकारों ने कारिका और वृत्ति दोनों को ध्वनिकार के नाम से ही लिखा है पर, ध्वन्यालोक में ही इस प्रकार के वाक्यों की कमी नहीं है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये दोनों दो आचार्यों की कृतियाँ हैं। उदाहरणार्थ, आनन्दवर्धन एक जगह कहते हैं कि 'न चैतन्ययोवनम्, अपितु कारिकाकाराभिप्रायेणेति', पृ. 60। इसी प्रकार के अनेक उद्धरण पेश किये जा सकते हैं। प्रो. काने अपनी साहित्यदर्पण की प्रस्तावना में ध्वनिकार (कारिकाकार) का नाम अनुमानतः 'सहृदय' बताते हैं पर, श्री एस. के. दे इस बात पर विश्वास नहीं करते।

यह बात याद रखनी चाहिए कि मम्मट की कारिका और वृत्ति पर भी इस प्रकार का सन्देह उपस्थित किया गया है। पर जिस प्रकार यहाँ वृत्ति और कारिका भिन्न-भिन्न आचार्यों की मानी गयी हैं वहाँ वैसा नहीं किया गया।

आलोचना की गयी । यह ग्रन्थ ध्वनि का ऐसा सुन्दर विवेचन करता है कि एकाएक यह मान लेने में संकोच होता है कि अपने विषय का यह प्रथम प्रयास है। अवश्य ही यह [अनेकानेक विचारों की भित्तियों पर प्रतिष्ठित होगा। स्वयं ध्वनिकार इस बात को] स्वीकार करते हैं। आरम्भ में ही वे कहते हैं—

> काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-
> स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तदन्ये
> केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीय
> येन ब्रूमः सहृदय मनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि ध्वनिकार के पूर्व भी काव्य में ध्वनि का प्रधान स्थान माना जाता था। पर ऐसी कोई पुस्तक अब तक नहीं मिली जिससे उक्त बात को प्रमाणित किया जा सके। अभिनव गुप्त को भी नहीं मिली थी। वह कहते हैं — "अविच्छिन्नेन प्रवाहेण तैरिदमुक्तं भवति यद्यपि विशिष्ट पुस्तकेषु विवेचना-दित्यभिमानः।" (लोचन, पृ. 30) अर्थात् परम्परा से अविच्छिन्न प्रवाह द्वारा वे (आचार्यगण) ऐसा कहते आये हैं कि बिना किसी विशिष्ट पुस्तक में विवेचना किये ही वे ऐसा परम्परावश [सुनकर] मानते हैं।'

ध्वनि को प्राचीन सम्मत सिद्ध करने के लिए [ध्वन्यालोककार] ने वैया-करणों के स्फोट-वाद का आश्रय लिया है। वह कहते हैं···················[illegible] वैयाकरणाः, व्याकरण मूलत्वात् सर्वविधानाम्।···················[illegible] रितिव्याहरन्ति।" इस वाक्य पर जो अभिनव गुप्त की टीका है वह [illegible] महत्त्व की चीज है। वह कहते हैं कि जिस प्रकार घन्टा बजने के बाद भी उसका एक अनुरणन (घनघनाहट) होता है ठीक उसी प्रकार [illegible] अनुरणन होता है। इसी अनुरणन को वैय्याकरण 'ध्वनि' कहते हैं। इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने भर्तृहरि के वाक्यपदीय के कुछ श्लोकों को बड़े आदर से उद्धृत किया है। पाठकों के कुतूहल निवृत्ति के लिए हम उन श्लोकों को नीचे उद्धृत करते हैं।

> प्रत्ययैरनुपाख्येयैर्ग्रहणानुगुणैस्तथा ।
> ध्वनि प्रकाशिते शब्दे स्वरूपमवधार्यते ॥2॥
> यः संयोग वियोगाभ्यां करणैरुपजन्यते ।
> स स्फोटः शब्दजः शब्दो [illegible] ॥[illegible]॥
> अल्पीयसा पिपरतेन [illegible] ।
> यदि वा नैव गृह्यन्ते [illegible] ॥3॥
> शब्दस्योर्ध्वमभि[illegible] ।
> ध्वनयः समुपोहन्ते [illegible] ॥4॥

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि [illegible] जोड़ा गया है। अभिनव [illegible]

मीमांसकों की मतभिन्नता का निराकरण करके वैय्याकरणों का प्रसंग आने पर कहते है कि "अपनों से क्या झगड़ा है। वैय्याकरण तो, जिनका मत लेकर यह हमारा मत प्रतिष्ठित किया गया है, घर के आदमी है।' यही नही, एक लम्बा विशेषण देकर वह वैय्याकरणों की लगे-हाथों खुशामद भी कर देते है।—(परिनिश्चितनिरपभ्रंश शब्द ब्रह्मणा विपश्चितां मतमाश्रित्यैव प्रवृत्तोयं ध्वनिव्यवहार इति तैः सह कि विरोधाविरोधो चिन्त्येते, पृ. 199)।

किन्तु स्फोटवाद ही ध्वनि नही है। जान पड़ता है कि उस काल में प्राचीन आचार्यों की मुहर लगाये बिना माल का मूल्य प्रकट नही किया जा सकता था। इसीलिए ध्वन्यालोककार को स्वीकार करना पड़ा नही तो 'स्फोटवाद' ध्वनि से बहुत कम समता रखता है 'घर' इस शब्द में चार अक्षर हैं—घ्+अ+र्+अ। इन चारों अक्षरों को तो एक के बाद उच्चारण करते हैं पर इन अक्षरों का संस्कार हमारे मन से सम्पर्क कर इन चार अक्षरों के समुच्चय से 'घर' नामक अर्थ वाला पदार्थ सामने स्फुट हुआ। यही है 'स्फोट'। इस 'स्फोट' से ध्वनि वृत्ति के व्यापार के साथ थोड़ा सा सम्बन्ध चाहे हो पर बहुत गहरा सम्बन्ध नही है। आनन्द वर्धन और अभिनव स्वयं यह स्वीकार करते से जान पड़ते हैं। भर्तृहरि के श्लोकों को उद्धृत करके वे (अभिनव) कहते हैं कि 'शब्दो के उच्चारण के बाद द्रुतविलंबितादि भेदात्मक एक प्रकार की अनुभूति श्रोता को होती है यही (वैय्याकरणों को सम्मत) ध्वनि है। (इसीलिये) हम लोगों ने भी अभिधा, तात्पर्य, लक्षणा आदि शब्द व्यापारो से भिन्न व्यञ्जना व्यापार को 'ध्वनि कहा है।'—लो., पृ. 47. मतलब यह कि आलंकारिकों ने ध्वनि शब्द को प्राचीनो के मुंह से सुना है और उसी भित्ति पर अपना नया घर बनाया है। इस विषय पर मम्मट का इशारा अच्छा है। वह कहते हैं (1-4 की वृत्ति) कि ध्वनि वैय्याकरणो के स्फोट शब्द से सम्बद्ध है जिसे दूसरों (आलंकारिको) ने एक कदम बढाकर अपना मत प्रतिष्ठित किया है।

शब्द की वृत्तियाँ

अभिधा, लक्षणा और तात्पर्य

अब हम अपने पाठकों को कुछ जटिल प्रपंच में ले चलना चाहते हैं। यह विषय अलंकारशास्त्रवालों ने मीमांसक वैय्याकरण और नैय्यायिकों से जबर्दस्ती छीन

लिया है। इसीलिए जगह-जगह उनको इन भिन्न-भिन्न मतवादियों से दो-दो चोटें लेकर आगे बढ़ना पड़ता है। जैसा कि पाठकों ने अभिनवगुप्त के पिछले उद्धरणो में देखा है, आलंकारिक अभिधा, तात्पर्य और लक्षणा के बाद एक चौथी वृत्ति-व्यञ्जना की अवतारणा करते है। अपनी इसी सन्तान की रक्षा के लिए उन्हे इन भिन्न-भिन्न मत वाले पहलवानो से हाथ मिलाना पडा है। हमारे पाठको को कुश्ती देखने का शौक है। हो सकता है—इसीलिए इस परिच्छेद की अवतारणा की गयी है।

अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना को यथाक्रम शब्दार्थ शक्ति और व्यक्ति भी कहा गया है। यही तीन वृत्तियाँ आचार्यो द्वारा काव्य मे मानी गयी है। मम्मट (का. प्र 2) तात्पर्य वृत्ति की चर्चा करते तो हैं, 'पर उसे मानते नही। 'तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्'—कहकर वे दूसरों के मत का उपन्यास-भर कर देते हैं।

अभिधा शब्द की वह वृत्ति है जिसके द्वारा शब्द का साक्षात् संकेतित अर्थ ज्ञात हो। इसी को प्राचीनो ने शक्ति कहा है। तर्कसंग्रह शक्ति को इस प्रकार बताता है कि—'इस पद से यह अर्थ ग्रहण किया जाय' इस प्रकार की ईश्वरेच्छा ही का नाम शक्ति है। यह प्राचीन तार्किकों का मत है। आधुनिक तो इच्छा मात्र को शक्ति कहते हैं। तर्क दीपिका मे वही ग्रन्थकार (अलंभट्ट) कहता है कि शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को (जो कि अर्थ स्मृति के अनुकूल है—अर्थात् जिसके द्वारा अर्थ समझा जाता है) शक्ति कहते है। इस प्रकार नैय्यायिक शक्ति, इच्छा और संकेत शब्दों से अभिधा का यह लक्षण करते हैं। अलंकारशेखर भी इन्ही का अनुसरण करके कहते हैं—शक्तिरीश्वरेच्छायाः संकेत इत्युच्यते।

संकेतग्रह की पद्धति यो है—उत्तमवृद्ध (बड़ा-बूढ़ा) ने मध्यमवृद्ध (अपने से छोटे किन्तु बालक से बड़े-बूढे) को [आदेश दिया कि 'घड़े] को लाओ।' बालक सुन रहा था। मध्यमवृद्ध ने सब [कार्य किया। बच्चे ने] घड़े के आनयन रूप व्यापार को समझा। पर, उसे यह [समझ में नही आया] कि 'घड़ा' 'को' 'लाओ' इन सबों का पृथक्-पृथक् अर्थ क्या [है? उत्तमवृद्ध ने] फिर कहा—'घड़े को हटाओ।' घड़ा हटाया गया। बालक ने ['घड़ा' यह शब्द] दोनों जगह सामान्य रूप से सुना पर 'लाने' और 'हटाने' [की प्रक्रिया को समझा।] बस उसे यह ज्ञात हो गया कि 'घड़ा' शब्द अमुक प्रकार [का वाचक है।] फिर 'अवापोद्राप' के द्वारा अन्य शब्दों का अर्थ जान जाता है। अवापद्राप—ग्रहण-परित्याग।

दूसरा प्रकार है आप्तोपदेश। मास्टर ने बताया कि जिस स्थान पर पढ़ाई होती है उसे 'पाठशाला' कहते हैं। लड़के को 'पाठशाला' के संकेतितार्थ का ज्ञान हो गया। तीसरा प्रकार है व्याकरण-कोष आदि का अध्ययन। और एक चौथे प्रकार से भी शक्ति-ग्रहण होता है—'प्रस्फुटित कमल में मधुकर मधुपान कर रहा है,—इस वाक्य को किसी से कहकर उक्त दृश्य को दिखा रहा है। यदि सुननेवाले को सब शब्दों का अर्थ ज्ञात हो और केवल 'मधुकर' शब्द का अर्थ न मालूम हो तो वह अनुमान कर लेगा। इसके सिवाय उपमान, वाक्य शेष, व्याख्या प्रभृति से भी संकेतित अर्थ का ज्ञान होता है। अलंकार शेखर (पृ. 9) कहता है—"सा (शक्तिः)

च कोशव्याकरणाप्तोक्ति वाक्यशेषोपमादितः प्रसिद्ध सम्बन्धपदात व्यवहाराश्च बुद्धिते।" अर्थात् यह शक्ति कोश, व्याकरण, आप्त-वाक्य, वाक्य-शेष, उपमा, प्रसिद्ध सम्बन्ध तथा व्यवहार आदि से जानी जाती है।

यहाँ तक तो ठीक है पर आगे यह विषय विवाद का हो जाता है। संकेत कहाँ किया जाय, इस बात को लेकर भिन्न पाँच प्रकार के मतवादी आपस में झगड़ते दिखायी देते हैं—(1) व्यक्तिवादी, (2) जातिविशिष्ट व्यक्तिवादी, (3) जातिवादी, (4) अपोहवादी, (5) जाति, गुण, क्रिया यदृच्छावादी।

(1) 'घटमानव'— 'घड़े को लाओ' कहते समय माँगनेवाले की इच्छा केवल एक, घट व्यक्ति की ही रहती है। जाति की नही। इसलिए 'घट' शब्द का संकेत केवल व्यक्ति में है। नहीं तो 'घट' जाति का ग्रहण करने से बेचारा नौकर कभी मालिक की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। कैयट अपने प्रदीप में कहते हैं—व्यक्तिवादिनस्त्वाहुः············। जातेस्तूपलक्षणभावेन आश्रयणादानन्त्यादि दो मानव का······।

(2) मगर यदि घट शब्द व्यक्तिमात्र मे [ही प्रयुक्त हो अर्थात्] केवल जिस घट को लाया गया उसी तक उसका अर्थ सीमित [है तब लाया गया] घड़ा, जो है तो उसी जाति का पर प्रयोजन उससे नही, [वरन् घड़ा विशेष उस] शब्द के द्वारा जाना जायेगा। दूसरी तरफ यदि 'घट' [की अपनी आकृति] कम्बुग्रीवादिमद्वस्तु मात्र में किया जाय तो उस समय [हम इस दृष्टि] से सम्पूर्ण घट का बोध कर सकते हैं। साथ ही यह भी ठीक है कि माँगनेवाला एक ही घड़ा माँग रहा है। इससे यह जाना गया कि घट शब्द जाति और व्यक्ति दोनों का एक साथ ही वाचक है।

(3) बौद्धों को ये सब बातें पसन्द नही, वे तो क्षणिकवादी हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु ही क्षणिक है; फिर जाति, जिसको 'नित्यम् एकम् अनेकानुगतम् सामान्यम्' कहा गया है, उन्हे कैसे मंजूर हो सकनी है ? इसीलिए जाति असम्भव वस्तु है। फिर शक्तिग्रहण कैसे हो ? उनका उत्तर है कि अपोह (अतद्व्यावृति) के द्वारा। घट शब्द का अर्थ है, घट भिन्न वस्तुओं (पदादिकों) से इतर पदार्थ अर्थात् घट वह पदार्थ है जो कि घट भिन्न वस्तु नहीं है। यह निषेधात्मक मत 'अपोहवाद' कहा गया है।

(4) मीमांसक केवल जाति मे ही संकेतग्रहण मानते हैं। व्यक्ति तो असंख्य हैं, फिर घट व्यक्ति में एक शब्द का शक्तिग्रहण कैसे हो सकता है ? पर, कहा जा सकता है कि 'घटमानव' कहनेवाले का अभिप्राय तो एक घट व्यक्ति से ही है, घटत्व जाति से तो नही है। इस पर मीमासक कहते हैं कि भई व्यक्ति तो जाति को छोड़कर नही रह सकती। जब हम कहते हैं कि 'घटमानव', तो संकेतग्रहण तो जाति ही में होता है पर जाति से व्यक्ति का आक्षेप कर लिया जाता है। आक्षेप अर्थात् अनुमान। काव्यप्रकाशकार एक जगह कहते हैं कि "गौरनुबन्ध्या' इस वैदिक विधि वाक्य से 'गौः' शब्द यद्यपि गो जाति में ही गृहीत हुआ, पर जाति कहती

है कि मेरा अनुबन्धन कैसे हो सकता है? इसलिए जाति के द्वारा आक्षिप्त हुई। इस उदाहरण मे उपादान लक्षणा नही है।" (का. प्र.) इस स्थान पर मम्मट का आशय इन्ही मीमांसकों से है। तर्कसंग्रह में भी इनका मत उपयन्स्त किया गया है—"गवादि शब्दानां जात्यैन शक्तिर्विशेपणतया, जाते. प्रथमुपस्थितत्वाद् व्यक्तिलाभस्तु आक्षेपादिनेति केचित्"।

(5) पाँचवाँ मत वैय्याकरणो का है। महाभाष्य मे आया है—"चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः"। शब्द चार प्रकार के है,—[जाति, गुण, क्रिया] और यदृच्छा। एक ही गो व्यक्ति चार प्रकार से बतायी जा सकती है। 1. 'चलति शुक्लो गौरयम्' —यहाँ इसका मतलब है कि यह गो जाति का है। 2. [चलन क्रियाशील]—अर्थात् यह चलन क्रियावान् है। 3. यह शुक्ल है (शुक्लोऽयम्)—[अर्थात् श्वेत] गुणवाला है। 4. (डित्थोऽयम्) यह डित्थ है—अर्थात् इसका नाम [डित्थ इसकी उपाधि है।] इस प्रकार शक्ति-ग्रहण व्यक्ति मे न होकर उपाधि में [होता है। उपाधि दो प्रकार] की है—वस्तुधर्म और यदृच्छा सन्निवेशित। पहले के [वस्तु-धर्म के अन्दर] जाति, गुण और क्रिया आ जाती है। फिर वस्तुधर्म को दो भागों [मे] विभक्त किया गया—सिद्ध और साध्य। सिद्ध भी दो प्रकार का है—प्राण-प्रद और विशेपाधान हेतु। यदि गो मे गोत्व न रहे, तो कोई उसे 'गो' शब्द से व्यवहार नहीं करेगा। अर्थात् गोत्व ही (जाति) गो (व्यक्ति) को व्यवहारयोग्य बनाता है। इसीलिए जाति व्यक्ति का प्राणप्रद है। शुक्ल-कृष्ण आदि से भिन्न-भिन्न गो व्यक्ति का परिचय होता है। इसलिए ये विशेपाधान-हेतु या विशेपता बताने के कारण है। इसलिए गुण का दूसरा नाम हुआ विशेपाधान-हेतु। जाति और गुण दोनो ही सिद्ध वस्तुधर्म हैं। पर 'चल' यह साध्य है, सिद्ध नही। इसीलिए क्रिया को दूसरे शब्दों मे साध्य कह सकते हैं। यदृच्छा सन्निवेशित का अर्थ है अपनी मरजी के माफिक नामकरण। पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ एक वर्गीकरण-प्रदर्शक वृक्ष दिया गया है—
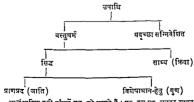
आलंकारिक इसी पाँचवें मत को मानते हैं। पर, इस पर उनका आग्रह नहीं है। मम्मट कहते हैं कि यह 'जात्यादिर्जातिरेव वा' हो सकता है। दोनों को एक ही

साथ क्यों माना ? मम्मट कहते हैं कि इसका कारण है। वस्तुतः जाति, गुण, क्रिया और यहाँ तक कि यदृच्छा भी जाति ही है। गुण को लीजिए। शुक्ल शब्द यद्यपि एक गुण-विशेष का द्योतक है। फिर भी हिम, दूध, शंख, वस्त्र आदि की शुक्लता भिन्न प्रकार की होती है, अतः इन सबके ऊपर भी 'शुक्लत्व' एक जाति है। इसी प्रकार यदृच्छा का शब्द 'राम' लीजिए। भिन्न काम के समय, कभी धोती पहने, कभी पाजामा पहने, कभी बालक, कभी वृद्ध—एक ही राम-शब्द भिन्न-भिन्न [अवस्थाओं में एक 'राम'] हुआ। अर्थात् रामत्व इन सब अवस्थाओं में सामान्य [रूप से रहा। इसलिए] रामत्व भी एक जाति हुई। अथवा शुक, सारिका, स्त्री [बालक, युवा, वृद्ध] प्रभृति के भिन्न-भिन्न प्रकार के उच्चारित राम शब्द [सर्वत्र सामान्य होने से रामत्व] जाति हुई। इस प्रकार संकेत-ग्रहण केवल नाम [गो-राम आदि] यह कहने से भी काम बन जाता है।

यह हुई अभिधा। सीधा-सादा [तात्पर्य] यह है कि जिस शब्द का जो अर्थ प्रचलित है वही अर्थ इस शब्द के द्वारा कहा जाये वह वाचक शब्द है। और उस अर्थ को बोध करानेवाली [शक्ति] का नाम अभिधा है।

अब लक्षणा को लीजिए। लक्षणा वृत्ति उस स्थान पर होती है जहाँ शब्द का मुख्य अर्थ [अभिधा द्वारा सूचित अर्थ] ठीक-ठीक मेल न खाता हो अथच प्रयोजन और रूढ़ि के कारण उससे सम्बद्ध दूसरे अर्थ को लेने से अर्थ निकल आता हो। उदाहरणार्थ, 'गंगायां घोषः'—'यह घर गंगा में है' यदि कहा जाय तो अभिधा-वृत्ति द्वारा 'गंगा' शब्द प्रवाह-रूप अर्थ का बतानेवाला होने के कारण प्रवाह में घर का रहना ठीक-ठीक मेल नहीं खाता। इसलिए गंगा शब्द का अर्थ उससे सम्बन्धित तट आदि किया जायेगा। और कहनेवाले का प्रयोजन होगा शीतल-पावनत्व आदि को प्रकट करना। यहाँ कहा जायेगा कि 'गंगा' शब्द का लाक्षणिक अर्थ 'तट' है। स्पष्ट है कि यदि 'गंगा के तट पर घर है' कहा जाये तो वक्ता का उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसलिए लक्षणा के लिए तीन बातें मुख्य हुईं—1. मुख्य अर्थ में बाधा, 2. मुख्य अर्थ से सम्बन्ध, और 3. रूढ़ि किंवा प्रयोजन में से किसी एक का होना।

फलतः लक्षणा आरम्भ में ही दो प्रकार की हुई—प्रयोजनवती और निरूढा। प्रयोजनवती का उदाहरण दिया जा चुका है। निरूढा का उदाहरण काव्यप्रकाशकार ने "कर्मणि कुशलः" वाक्य को दिया है। 'कुशल' शब्द का अर्थ है कुश ले आने [ग्रहण करने] वाला। पर चतुर आदमी ही कुश ले आ [ग्रहण कर] सकता है इसलिये कुशल शब्द 'चतुर' अर्थ में रूढ़ हो गया है। अब यदि कोई कहे कि अमुक आदमी 'शिल्प कर्म में कुशल है' तो 'शिल्पकर्म में कुश ले आने [ग्रहण करने] वाला है' इस प्रकार का अर्थ बिलकुल मेल नहीं खाता। अतः इसका सम्बन्धी (रूढ़ होने के कारण) चतुर शब्द अर्थ किया गया। पर, विश्वनाथ अपने साहित्यदर्पण में इस बात का खण्डन करते हैं। वह कहते हैं कि व्युत्पत्तिपरक अर्थ दूसरी बात है और अभिधेय (मुख्य) अर्थ दूसरी; क्योंकि वैय्याकरण व्युत्पत्तिपरक अर्थ अनेक कष्ट

कल्पनाओं से बाहर किया करते हैं। कोषकारों ने अनेक शब्दों का व्युत्पत्ति-सिद्ध अर्थ से एकदम भिन्न व्यवहारपरक अर्थ दिया है। शब्द के लिए वस्तुतः व्यवहार ही मुख्य अर्थ है, व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ नहीं। इसके निराकरण के लिए वह कहते है कि 'गो' शब्द का वैय्याकरण 'जानेवाला' अर्थ करते हैं। उणादि सूत्र 'गमेर्डोः' से यह शब्द सिद्ध होता है। यदि इस व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ को ही मुख्य अर्थ मान लिया जाये तो 'गौः स्वपिति'—'गाय सोती है' इस वाक्य में भी लक्षणा मानी जायगी। " 'जानेवाली' सोती है" यह अर्थ स्पष्ट ही मेल नहीं खाता।

काव्यप्रकाशकार लक्षणा के दो भेद करते हैं—शुद्धा और गौड़ी। शुद्धा लक्षणा दो प्रकार की है—उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा। उपादान लक्षणा वहाँ है जहाँ शब्द अपनी सिद्धि के लिए दूसरे का आक्षेप करे। उदाहरण के लिए काव्य प्रकाश का ही उदाहरण "कुन्ताः प्रविशन्ति" को लिया जाता है। इस वाक्य का अर्थ है "भाले प्रवेश कर रहे हैं" पर, क्या भालों में स्वयं प्रवेश करने की शक्ति है? नहीं है। इसीलिए "भाले" पद का अर्थ हुआ "भालेवाले पुरुष"। यहाँ पर 'भाले' पद ने अपनी सिद्धि के लिए 'पुरुष' का आक्षेप किया। बिना 'पुरुष' पद के आक्षेप किये 'कुन्ताः प्रविशन्ति' निरर्थक ही कहा जायगा। लक्षण लक्षणा वहाँ होती है जहाँ शब्द दूसरे की सिद्धि के लिए अपने अर्थ को समर्पण कर देता है। "गंगायां घोषः"—'गंगा में घर है' यह उदाहरण ही यहाँ यथेष्ट होगा। क्योंकि 'गंगा' प्रवाह का जब 'तट' अर्थ किया गया तो गंगा शब्द ने अपनी सर्वशक्ति 'तट' को समर्पण कर दिया। इस स्थान पर काव्यप्रकाशकार ने मीमांसको के बताये दो एक उदाहरणों का खण्डन किया है। वह केवल मनोरंजक ही नहीं, जानने योग्य भी है। क्योंकि उससे आलंकारिकों एवं मीमांसको के दृष्टिकोण का भी पता लगता है।

"गौरनुबन्ध्य"—'गाय अनुबन्धन (हिंसा) के योग्य है' इस श्रुति में गाय शब्द का अर्थ करते समय मण्डन मिश्र कहते है कि " 'गो' शब्द से 'गो' जाति का मतलब है। (हम पीछे यह बता आये हैं कि मीमांसक 'जाति' में ही शक्ति मानते हैं।) फिर जाति कहती है कि हमारा अनुबन्धन कैसे होगा? इसलिए 'जाति' से 'व्यक्ति' का आक्षेप किया गया। अतः यहाँ उपादान लक्षणा है।" काव्यप्रकाशकार कहते हैं कि "वस्तुतः यह बात नहीं है। क्योंकि न तो यहाँ रूढ़ि ही है और न प्रयोजन ही। पर लक्षणा के लिए दो में से किसी एक का होना नितान्त आवश्यक है। यह ठीक है कि जातिपरक शब्दों में व्यक्ति का आक्षेप होता है पर वह इसलिए नहीं कि यहाँ अर्थबाधा है बल्कि इसलिए कि व्यक्ति के बिना जाति रह नहीं सकती। इन दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है। यहाँ का आक्षेप वस्तुतः उसी प्रकार का है जिस प्रकार "करता है" के द्वारा कर्त्ता का या "करो" के लिये कर्त्ता का आक्षेप। इसी प्रकार जो लोग "पहलवान देवदत्त दिन मे नहीं खाता"—'पीनो देवदत्तो दिवा न भुक्ते'—वाक्य में लक्षणा द्वारा यह अर्थ निकालना चाहते हैं कि 'देवदत्त रात को अवश्य खाता है। न खाता तो पहलवान कैसे होता?—वे भी भूल करते

हैं। क्योंकि यह भी अर्थापत्ति का या अर्थापत्ति का विषय है लक्षणा का नहीं।

कुछ न्याय के ग्रंथों में उपादान और लक्षण लक्षणा को क्रमशः अहजहत्स्वार्था और जहत्स्वार्था लक्षणा कहा गया है। विश्वनाथ ने इन्हीं शब्दों को लिया है। रस गंगाधरकार प. जगन्नाथ भी इसी नाम से इन्हें कहते हैं।

आगे चलकर मम्मट ने शुद्धा लक्षणा के फिर दो भेद किये—सारोपा और साध्यवसाना। सारोपा लक्षणा में आरोप्यमाण (जिसका आरोप किया जायगा और आरोप का विषय (जिस पर आरोप किया जायगा) दोनों का निर्देश रहता है। 'कुन्ताः पुरुषाः प्रविशन्ति' इसका उदाहरण है। इसमें 'कुन्ताः' (आरोप्यमाण) और 'पुरुषाः' (आरोपविषय) दोनों का ही उल्लेख है। साध्यवसाना लक्षणा वह है जिसमें विषयी के द्वारा विषय को विगीर्ण कर लिया जाय। अर्थात् जहाँ केवल आरोप्यमाणमात्र का निर्देश हो, आरोप के विषय का नहीं। 'कुन्ताः प्रविशन्ति' उदाहरण के लिए कहा जा सकता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह शुद्धा लक्षणा के बारे में कहा गया है। गौड़ी *लक्षणा भी सारोपा और साध्यवसाना नाम के दो भेदों से कही गई है। इन दोनों के* उदाहरण है—गौर्वाहीकः (सारोपा गौड़ी लक्षणा) और 'गौरयम्' (साध्यवसाना गौड़ी लक्षणा)। शुद्धा और गौड़ी लक्षणाओं में भेद केवल इतना ही है कि गौड़ी लक्षणा सादृश्य सम्बन्ध से होती है और शुद्धा अन्य सम्बन्धों से। "कुन्ताः प्रविशन्ति" (भाले प्रवेश करते हैं) में कुन्त और पुरुष मे सादृश्य नही है इसलिए यहाँ शुद्धा लक्षणा है पर 'गौर्वाहीकः' (वाहीक बैल है) मे सादृश्य ही है। क्योंकि यह वाक्य तभी प्रयुक्त होगा जब वाहीक और गो शब्दों मे किसी अंश (बुद्धि) में समानता हो। इस प्रकार मम्मट की लक्षणा निम्नाकित चक्र से स्पष्ट हो जायगी।
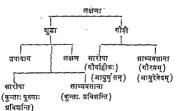
इसीलिए मम्मट लक्षणा को 6 प्रकार की मानते है।—'लक्षणा तेन षड्विधा।' प्रायः सभी आलंकारिक थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन के साथ इसी बात को स्वीकार करते

हैं। पंडितराज जगन्नाथ शुरू-शुरू में निरूढ़ा और प्रयोजनवती दो भेद करके प्रयोजनवती के 6 भेद ज्यों के त्यों यही करते हैं। उपादान और लक्षण लक्षणा की जगह जहत्स्वार्था और अजहत्स्वार्था ये दो नाम अवश्य ही दूसरे रखे गये है पर, नाम भेद से विषय भेद नहीं होता। कुछ नैयायिक अवश्य ही जहदजहत् नाम की एक और लक्षणा बताते हैं[1] पर हम इन पचड़ों मे अब अधिक न पड़कर अपने प्रकृत विषय पर ही आते हैं।

अभिधा और लक्षणा का सामान्य परिचय पाठकों को हो गया। ये ही दो वृत्तियाँ विशेषकर के व्यञ्जना के प्रकरण में पाई जायेंगी पर, आलंकारिकों मे से किसी किसी ने 'तात्पर्याख्या' वृत्ति भी स्वीकार की है। पिछले अध्याय में अभिनव की टीका से इस बात का पोषक एक प्रमाण दिया गया है। यह एक आश्चर्य की बात है ध्वनि सम्प्रदाय के प्रायः सभी आचार्य इसे स्वीकार भी करते है और नहीं भी करते। 'नही भी' इसलिए कि इसकी चर्चा भर करके वे छुट्टी ले लेते है। मम्मट यद्यपि "तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्" कहकर इसे इस प्रकार प्रकाशित करते हैं मानो वे इसको स्वीकार ही नही करते पर, पञ्चम समुल्लास में चलकर "अभिधा तात्पर्य लक्षणात्मक व्यापारत्रयातिवर्ती ध्वननादिपर्यायो व्यापारोऽ वहुवनीय एव" यह कहकर उसे स्पष्ट स्वीकार करते है। इसीलिए व्यंजना की व्याख्या के पहले तत्त्व से इसे समझ लेना चाहिये।

मीमांसकों के दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में तात्पर्यार्थ को लेकर विवाद चलता है। एक हैं 'अन्विताभिधानवादी' और दूसरे 'अभिहितान्वयवादी' पहले वाक्यार्थ समझने के लिए 'घट को लाओ' (घटमानय) एक उदाहरण दिया गया है। उत्तम वृद्ध और मध्यम वृद्ध के कथन और कार्य के बाद अवाय-उद्वाय के द्वारा किस प्रकार बालक को "घटम्" शब्द का अर्थ ज्ञात हुआ यह पाठक जानते हैं। अन्विताभिधान-वादी का कहना है कि "घटम्" शब्द का अर्थ वहाँ पर बालक अन्वित रूप मे ही ग्रहण करता है। अर्थात् उसे नये सिरे से अन्वय नहीं करना पड़ता। उसे वाक्य में के अन्वय किये गये पदों का ही अर्थ समझ पड़ता है। पर अभिहितान्वयवादी को यह मन्जूर नही। वे कहते है कि शब्दों का अर्थ अलग अलग समझकर फिर उनमें तात्पर्यार्थ के द्वारा एक सम्बन्ध स्थापित करके वाक्य का अर्थ जाना जाता है।

वाक्य का अर्थ समझने के लिए जरूरी है कि पदों में आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि रहें। "घोड़ा हाथी है" इस वाक्य का कुछ भी अर्थ नहीं, क्योंकि घोड़ा और हाथी पदों मे आकांक्षा नही है। "आग से सींचता है"—यहाँ योग्यता नही है अतः वाक्य में ज्ञान नही हो सकता। और 'घटनामय'—'घड़ा लाओ' इस वाक्य

1. वृत्ति वार्तिककार का वर्गीकरण यों है —
गौणी लक्षणा दो प्रकार—निरूढ़ा और फल लक्षणा। फल दो प्रकार—सारोपा और साध्यवसाना।
शुद्धा भी दो प्रकार—निरूढ़ा और फल। फल भी पाँच प्रकार—
1. सारोपा, 2. साध्यवसाना, 3. जहल्लक्षणा, 4. अजहल्लक्षणा और 5. जहदजह् लक्षणा।

के प्रत्येक पद को यदि घंटे-घंटे भर के अन्तर पर उच्चारण किया जाय तो उसमें सन्निधि नही रहेगी। इस प्रकार वाक्य के प्रत्येक पद का अर्थ जानने पर भी वाक्यार्थ ज्ञान के लिए इन तीन चीजों का होना आवश्यक है। इन तीनों के वश वाक्य मे के शब्दो में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के पश्चात् एक 'तात्पर्य' नामक अर्थ उत्पन्न होता है यह पदो के पृथक-पृथक अर्थो से भिन्न वस्तु है। यही अभिहितान्वयवादियों का मत है। इसी स्थान पर 'तात्पर्याख्यावृत्ति' की आवश्यकता होती है। आलंकारिक अभिहितान्वयवादियों के पक्ष में ही हैं।

ध्वनि या व्यंग्यार्थ

ध्वन्यालोक आदि

अभिधा, तात्पर्य और लक्षणा के विरत हो जाने पर जिस वृत्ति के द्वारा एक अन्य व्यंग्यार्थ का ज्ञान होता है उसे व्यंजना कहते हैं। व्यंजना से सिद्ध अर्थ को ध्वनि या व्यंग्यार्थ कहा जाता है। हम पिछले प्रकरणो में कह आये हैं कि ध्वनि का मूल प्रमाण, आलंकारिकों ने, स्फोट को माना है। ध्वन्यालोक के पूर्व व्यंजना नाम की कोई वृत्ति नही मानी जाती थी। बाद मे कभी इस विषय पर हमेशा मतभेद रहा है। पर *कविता के लिए निवृत्ति इतनी आवश्यक समझी गयी है कि उत्तम कविता* की कसौटी व्यंग्यार्थ समझ लिया गया है। मम्मट के मत से उत्तम कविता वहाँ है जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ का उत्कर्ष कही बढ़कर होता है। उत्तम काव्य कभी ध्वनि-काव्य भी कहा गया है। पर जहाँ व्यंग्य अर्थ वाच्यार्थ के समान हो किंवा वाच्यार्थ के सामने दब गया हो—गुणीभूत (गौण) हो गया हो, वहाँ काव्य माध्यम हो जाता है। जहाँ व्यंग्यार्थ अत्यन्त फीका पड़ गया हो या हो ही नही, केवल अलंकारों का ही चमत्कार दिखाया गया हो वह अधम या निकृष्ट काव्य है। इस प्रकार से व्यंग्य की प्रधानता स्वीकार करने के कारण ध्वन्यालोक और उसके अनुयायियों को अनेक मतवादियों का सामना करना पड़ा है। जयरथ ने (पृ. 9) मे व्यंजना-वृत्ति के 12 विरोधी मतों का उल्लेख किया है। काव्यप्रकाशकार एक तुमुल युद्ध मे प्रवृत्त दिखायी पड़ते हैं (पंचम उल्लास)। आनन्दवर्धन तो इस झगड़े की जड़ ही हैं।

मे ही आनन्दवर्धन ने तीन विभिन्न मार्गों का वर्णन किया है। पहले हैं जो *ध्वनि को एकदम स्वीकार नही करते*। दूसरे वे हैं जो ध्वनि

को शब्द के विषय के वाहर की बात मानते है। (केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्व मूचुस्तदीयम्) और तीसरे वे हैं जो इसे अभिधा लक्षणा व्यंजना तात्पर्य के भीतर ही अन्तर्भूत कर देना चाहते हैं। या अनुमान के द्वारा व्यंग्यार्थ को समझने का प्रयत्न करते हैं। ध्वन्यालोक ने इन विभिन्न मतवादियो के मतों का निराकरण किया है। यह ध्यान देने की वात है कि कुछ लोग व्यंग्यार्थ को तो मानते हैं पर, व्यंजना-वृत्ति को नही मानते।

मीमांसकों का इसी प्रकार का एक मत है। इन्हें 'दीर्घव्यापारवादी' कह सकते हैं। इनका कहना है कि जिस प्रकार एक ही बाण क्रमशः कवच शरीर आदि का एक ही बार प्रयुक्त होकर छेदन करता है ठीक उसी तरह शब्द की एक ही वृत्ति (अभिधा) एक ही वार में सभी अर्थों को क्रमशः प्रकाशित करती है। अर्थात् अभिधावृत्ति के द्वारा ही तात्पर्य और व्यंग्य अर्थ का भी ज्ञान होता है।'[1]

मीमांसकों का एक दूसरा मत है जिसमे कहा गया है कि शब्द निमित्त है और व्यंग्य अर्थ नैमित्तिक। क्योकि शब्द के न रहने से व्यंजना नही हो सकती। अतः शब्द निमित्त कारण हुआ। यह नियम है कि 'नैमित्तिक के अनुसार ही निमित्त की कल्पना होती है'—नैमित्तिकानुसारेण निमित्तामि कल्पनीयानि—इसीलिए शब्द सुनने के बाद जितने अर्थ समझ पड़ें सबका कारण शब्द ही हुआ और समझ में आनेवाले सभी अर्थ शब्द के द्वारा उत्पन्न हुए। फिर क्यो न मान लिया जाये कि शब्द की अन्य वृत्तियाँ कुछ नही है। केवल एक अभिधा वृत्ति है और सभी अर्थ अभिधेय है? लाक्षणिक, तात्पर्य और वाङ्मय प्रभृति अनेक अर्थो की कष्ट कल्पना से क्या लाभ?

आलंकारिको ने इन बातों का जो उत्तर दिया है वह आगे दिया गया। "दीर्घ-दीर्घतर व्यापारवादियो" की दलील के समर्थन में मीमांसा के एक सूत्र भी मिलता है। वह यह है कि "यत्परः शब्द. शब्दार्थः"—अर्थात् जिस बात के लिए शब्द का प्रयोग होता है वही शब्दार्थ है। उदाहरण के लिए एक श्रुति वे लोग उद्धृत करते हैं—"लोहितोष्णीश ऋत्विज्-श्वरन्ति"—लाल पगड़ी बाँधे ऋत्विज् चलें। यहाँ अगर पहले से ऋत्विजों का चलना सिद्ध हो तो 'लाल पगड़ी'—लोहितोष्णीक्ष-मात्र विधेय हुआ। यही शब्दार्थ है। अर्थात् समूची बात कहने का तात्पर्य यही है कि पहले के विधियों में ऋत्विज् चाहे जिस प्रकार की पगड़ी बांधता हो या न बांधता हो इस विधि मे लाल पगड़ी ही बांधे। कल्पना कीजिये कि ऋत्विज् का पगड़ी

1. 'यथा बलवता प्रेरित एक एक शर' एकेनैव वेगाख्येन व्यापारेणरियोर्लमंच्छेदं मर्मभेदं प्राण हरण च विधत्ते तथा सुकवि प्रयुक्त एक-एक शब्द एकेनैवाभिधाख्यव्यापारेण पदार्थोस्थिति मन्वय बोधं व्यगप्रीतिं च विधत्ते'—प्रदीप के इस वाक्य को भट्टनायक ने भट्टलोल्लट के नाम पर लिखा है। पर श्री एम. के. दे ने श्री सोमानी के इशारे पर इसे अस्वीकार किया है। Sanskirit Poetics के प्रथम भाग में इन्होंने मि. त्रिवेदी की एकावली की टिप्पणी देखकर इस मत को लोल्लट के नाम से लिखा था पर दूसरे भाग में यह विवरण देकर इस उक्त मत को अस्वीकार करते हैं।

बांधना भी पहले से ही सिद्ध है। फिर इस वाक्य का तात्पर्य 'लाल' के विधान-मात्र से होगा। इसी प्रकार हवन क्रिया के पहले से सिद्ध रहने पर भी यदि "दध्ना जुहोति" —'दही से हवन करता है' कह दिया जाये तो तात्पर्य केवल 'दही' मात्र से होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का तात्पर्य भी व्यंग्य अर्थ में ही रहता है तो उसी को शब्दार्थ क्यो न मान लिया जाये ? उदाहरणार्थ, काव्यप्रकाशकार के 'निःशेप-च्युत' इत्यादि उदाहरण में यद्यपि वाच्यार्थ 'नही गयी' यही है पर व्यंग्य अर्थ है 'गई'। अर्थात् वाच्यार्थ निषेधार्थक होकर भी व्यंग्यार्थ 'विधि'-मय है। मीमांसक कहेंगे कि कवि का तात्पर्य तो 'विधि' मे ही है इसलिए शब्दार्थ विधि ही हुआ। और खाहमखाह एक नयी वृत्ति की कल्पना करने से पिण्ड छूटा।

आलंकारिक मीमांसादर्शन के सूत्र का खण्डन नही करते बल्कि आदर ही करते हैं। मम्मट इन दलीलों के जवाब उन्ही की बातों को लेकर देते है। "भूत और भव्य (सिद्ध और साध्य) के एक साथ कहने पर भूत (सिद्ध) की चर्चा केवल भव्य(साध्य)के लिए की जाती है"(भूत भव्य समुच्चारणे भूतं अव्यायोयदिश्यते)। यह भी मीमांसकों का एक नियम है। 'लोहितोष्णीषा ऋत्विज् श्वरन्ति' या 'दध्ना जुहोति' में इस नियम से काम लिया जाता है। 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः—इस रूल से नही। क्योकि कारक पदार्थ क्रिया पदार्थ के साथ अन्वित होकर भी प्रधान क्रिया की सम्पादयित्री अपनी क्रिया के सम्बन्ध से साध्य हो जाते हैं।" फिर जिस प्रकार आधे जले हुए काठ में आग लगा देने से जितना अंश जलने से बाकी है उतना ही जलता है (······) उसी प्रकार जो सिद्ध नही रहता (साध्य रहता है) उसी का विधान होता है। जैसे 'गाय को लाओ' इस वाक्य का 'गाय को' यह कारक पद 'लाओ' इस प्रधान क्रिया की सम्पादयित्री 'गाय का चलना'—रूप क्रिया के के सम्बन्ध से साध्य हो जाता है। 'दध्ना जुहोति' प्रभृति वाक्यों मे भी 'जुहोति' पद भूत है इसलिए सारे वाक्य का तात्पर्य 'दध्ना' इस भव्य (साध्य) पाद के लिए हुआ है न कि 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः (जिसके अर्थ के लिए शब्द कहा जाता है उसी को शब्दार्थ कहते हैं) इस रूल से। क्योकि यह नियम केवल प्राप्त (उपात्त) अर्थ के लिए है, जो कुछ भी अर्थ प्रतीत हो उन सबके लिए नही। नही तो 'पहला आदमी दौडता है'—इसका अर्थ कभी-कभी 'दूसरा आदमी दौडता है' —यह मान लेना होगा। क्योकि 'पहला' कहने ही से 'दूसरा' अर्थ प्रतीत होता है।

दूसरे मीमांसक जिन्होने शब्द को निमित्त माना है आलंकारिको की दृष्टि मे भूलते हैं। मम्मट पूछते हैं कि 'क्यो' शब्द यदि कारण है तो कैसा कारण है ? *कारक या ज्ञापक ? शब्द चूंकि व्यंग्यार्थ का प्रकाशक है इसलिए कारक तो हो* नही सकता। क्योकि प्रकाशक वस्तुज्ञापक कारण होती है,(जैसे प्रदीप, अंधकार से अदृष्ट वस्तुओं का) कारक नही। यदि कहो कि ज्ञापक है तो यह असम्भव है क्योकि ज्ञापक कारण कुछ नये सिरे से वस्तुओ की रचना नही करता वह तो पहले से ही ज्ञात वस्तुओ को प्रकट करता है। फिर शब्द तो जिस अर्थ (व्यंग्य)को प्रकट करता है वह एकदम नया है—अज्ञात है। फिर जो कारक भी नही, ज्ञापक

भी नही, वह कैसा निमित्त ? अतः यह तुम्हारा कहना ठीक नही है।

वाण का उदाहरण देकर एक ही अभिधा व्यापार से भिन्न-भिन्न अर्थों को बोध करा देने की दलीलवाले अन्विताभिधानवादी मीमांसक एक दूसरा और उदाहरण देते हैं। वह यो है। 'एक मित्र अपने दूसरे मित्र से किसी के घर का अन्न खाने से निषेध करता हुआ जब कहता है कि 'विष खाओ पर उसके घर न खाओ' उस समय यद्यपि वह 'विष खाने' का विधान करता है पर आगे के वाक्य से उसका तात्पर्य कुछ और ही मालूम होता है। अर्थात् 'विष खाओ' यह मतलब नही कि सचमुच विष खा जाओ। बल्कि उसका मतलब केवल मात्र यह है कि 'उसके घर का अन्न विष से भी बुरा है।' वह विष खाने का विधान करता हुआ भी वस्तुतः मित्र को 'विष' तथा 'उसके घर का अन्न' दोनों का निषेध करता है। अर्थात् यद्यपि यहाँ शब्द से विधान सूचित होता है पर शब्दार्थ निषेध ही का द्योतक है। इसलिए 'यत्परः शब्द. स शब्दार्थः' वाली बात ठीक उतरी। झूठमूठ व्यजना व्यापार की कल्पना तिरस्कृत की जाये !

मम्मट कहते हैं कि यह तुम्हारा भ्रम है। प्रस्तुत वाक्य एक ही है, दो नही। 'पर', अव्यय पद दोनों को मिलाता है। इन दो वाक्यखण्डो मे एक दूसरे के अंग नहीं हैं (इनमें परस्पर अंगांगिभाव नही है)। यह तो ठीक है कि 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' वाली बात ठीक उतरी पर जैसाकि पीछे बताया गया है इस सूत्र का मतलब उपात्त शब्दार्थ मात्र में है तात्पर्य मे नही। उक्त उदाहरण से उपात्त (शप्त) अर्थ यही है कि 'विष खाने से भी उसके घर का अन्न खाना बुरा है।' बुरा दोनों है। और निषेध भी दोनों का है।

पूर्व मीमासा का एक सूत्र है कि 'श्रुति-लिंग-वाक्य-प्रकरण स्थान-समाख्यानां पूर्व-पूर्व बलीयस्त्वम्' अर्थात् श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या मे पहला दूसरे से, दूसरा तीसरे से, तीसरा चौथे से, चौथा पाँचवे से और पाँचवाँ छठे से बलवान होता है। मम्मट इस सूत्र को उद्धृत कर मीमासको से पूछते है कि यदि शब्द के एक बार उच्चारण से जितने उसके अर्थ है सब प्रतीत हो जाते हैं तो इनमें पूर्व पूर्व बलीयस्त्व कैसे आयगा। यदि श्रुति और लिंग से प्रतीत दो अर्थ सामने आये तो दोनों ही अर्थ स्वीकार करोगे या एक ? यदि दोनो करोगे तो सूत्र के साथ विरोध पड़ेगा और यदि एक करोगे तो तुम्हारा 'दीर्घ दीर्घतर व्यापार' व्यर्थ पड़ेगा। मीमांसा-सूत्र की अवहेलना तो तुम कर नही सकते। फिर क्योंकर अपने मत पर कायम रह सकते हो ?

पर, किसी ग्रन्थ का आधार लेकर किसी के मत का खण्डन करना उचित नही। यह मान लिया जाता है कि श्रुति और लिंग मे विरोध होने पर मीमासक श्रुति को बलवान समझते है[1] और यह भी मान लिया जाता है कि अन्विताभिधानवादी

1. श्रुति लिंग आदि की पृथक्-पृथक् व्याख्याओं के उदाहरण आदि देने में हमारा विषय भी छूट जायेगा और पाठकों का तारतम्य भी जाता रहेगा। इस विषय

(या दीर्घ दीर्घतर व्यापारवादी) मीमांसा दर्शन की दुहाई देने से चुप रह गये पर जो मीमांसक नही है वह भी तो यही दलील उठा सकता है। उसे क्या जवाब दिया जाय ? मम्मट उससे भी एक सवाल करते है कि अच्छा एक वाक्य लो, 'ऐ ब्राह्मण तेरा पुत्र बादशाह हो गया।'[1] ब्राह्मण को इस शब्द के श्रवण के अनन्तर इसका वाच्यार्थ प्रतीत हुआ फिर, हर्ष प्रतीत हुआ। तो क्या हर्ष भी वाच्यार्थ हो गया ? नही हुआ। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक बार शब्द श्रवण के अनन्तर जितने अर्थ प्रतीत हुए सभी वाच्यार्थ नही हैं।

आगे चलकर अनेक उदाहरणों को देकर काव्यप्रकाशकार व्यंजना वृत्ति को अभिधा से काल भेद, (क्योकि पहले अभिधेय अर्थ की प्रतीति होती है फिर व्यंग्य की) आश्रय भेद, (क्योकि वाच्यार्थ सारे शब्द में रहता है, व्यंग्य कभी-कभी उसके एक अंश मात्र मे रहता है। कभी वर्ण संघटना मात्र मे)। निमित्त भेद (वाच्यार्थ तो कोष व्याकरणादि से भी हो जाता है पर व्यंग्य प्रकरण, प्रतिभा नैर्मल्य आदि से) कार्यभेद (क्योकि वाच्यार्थ जो कोई भी समझ लेता है पर, व्यंग्य विदग्ध (सहृदय) को ही चमत्कार दिखाता है), संख्या भेद (एक ही वाक्य के व्यंग्यार्थ भिन्न-भिन्न आदमी को भिन्न प्रकार से होता है पर वाच्यार्थ सबको एक-सा ही मालूम होता है); विषय भेद आदि अनेक भेदो द्वारा अलग होना

को बारीकी से समझने के लिए 'अर्थसंग्रह' नाम की मीमांसा की पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए। पर, विषय ठीक-ठीक समझ मे आ जाय, इसके लिए एक उदाहरण दे देना आवश्यक समझा गया—

'श्रुति' उस शब्द को कहते हैं जो निरपेक्ष है। अपना अर्थ प्रकट करने के लिए किसी का सहारा नही चाहता। लिंग शब्द के सामर्थ्य को कहते हैं (निरपेक्षो रवः श्रुतिः, शब्द सामर्थ्य लिंगम्)। अब एक श्रुति लीजिए। 'ऐन्द्रया गार्हपत्य-मुपतिष्ठते।' अर्थात् ऐन्द्री ऋचा से गार्हपत्य अग्नि का उपस्थान करे। अब श्रुति से स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'गार्हपत्य अग्नि' का उपस्थान करना चाहिए पर 'ऐन्द्रया' का अर्थ है 'इन्द्र सम्बन्धिनी ऋचा द्वारा।' फिर यह सन्देह होने पर कि इस विनियोग का अर्थ इन्द्र की उपासना के लिए है या अग्नि की; लिंग के द्वारा (शब्द सामर्थ्य से) इन्द्रपरक अर्थ ज्ञात हुआ। यही लिंग और श्रुति का विरोध होता है। यहां श्रुति को प्रमाण माना जायेगा क्योकि लिंग द्वारा ज्ञात अर्थ देर से समझ मे आता है (अर्थ विप्रकर्षात्) और श्रुति द्वारा विज्ञात अर्थ बिना किसी बाधा के समझ में आ जाता है।

1. वस्तुतः मम्मट के उदाहरण का यह अनुवाद नही है। मम्मट ने 'ब्राह्मण, पुत्रस्ते जातः कन्या ते गर्भिणी' ये दो उदाहरण दिये हैं इसका मतलब है कि 'ऐ ब्राह्मण तेरे घर पुत्र पैदा हुआ है, (हर्षसूचक वाक्य) और तेरी कन्या (कुमारी) गर्भ मे है, (शोकसूचक वाक्य)। पहले वाक्य से प्रसन्नता और दूसरे से शोक होता है।

बताया है।

एक दूसरे मतवादी कहते हैं कि साहब अनेकार्थ होना ही यदि व्यंजना के अलग स्वीकार करने का कारण है तो एक ही शब्द लक्षणा से भी तो अनेक अर्थ सूचित कर सकते है फिर क्यों न लक्षणा और व्यंजना को एक ही मान लें। उदाहरणार्थ 'अहतुंरामोऽस्मि सर्वसहे '(मैं तो 'राम' हूँ सब कुछ सह सकता हूँ), 'रामेण प्रिय जीवितेन तु प्रिये प्रेम्णः कृतं नोचितम्' (हे प्रिये, राम को जीवन बड़ा प्यारा है उसने प्रेम का उचित पालन नही किया।)' रामोऽसौ भुवनेपु विक्रम गुणैः प्राप्तः प्रसिद्धिम् परान्' (संसार मे उस राम ने अपने पराक्रम और गुणो के द्वारा भारी ख्याति पा ली है) प्रभृत्ति वाक्य राम के ही द्वारा कहे गये है; अतः सर्वत्र 'राम' शब्द लक्षणा द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ का द्योतक है।

इस पर मम्मट कहते है कि लक्षणा द्वारा अनेक अर्थ होते हैं, यह ठीक है पर यह वैसा ही जैसा एक ही शब्द के वाच्यार्थो का भेद होना। इन दोनो की अर्थानकेता और व्यंजना की अर्थानिकता मे भेद है। अभिधा और लक्षणा के द्वारा जो अनेक अर्थ होते है वे नियत होते हैं व्यंजना द्वारा अनियत। यही भेद है। आगे चलकर अनेक उदाहरणों से लक्षणा और व्यंजना की विभिन्नता दिखाकर उन्होंने अनुमान से भी उसकी पृथकता दिखाई है।

महिमभट्ट का व्यक्तिविवेक नामक ग्रन्थ व्यजनावृत्ति नही स्वीकार करता। महिम ने सब व्यंग्यार्थो को अनुमान के अन्दर ले आने का प्रयत्न किया है। अलंकार शास्त्र का यह एक प्रधान सम्प्रदाय है। इसीलिए पाठको से थोड़े धैर्य की आशा की गयी।

अनुमानवादियों को मम्मट के इस उत्तर में जिसमे लक्षणा और व्यंजना के भेद को नियत और अनियत बताकर निराकरण किया गया है, सन्तोप नही होता। वे कहते हैं कि यदि व्यंजना द्वारा प्रतिपादित अर्थ यदि अनियत है तो जहाँ कही जिसी किसी शब्द से जो कुछ अर्थ निकाला जा सकता है। पर, ऐसा नही होता। व्यंग्यार्थ का कुछ न कुछ वाच्यार्थ से सम्बन्ध रहता ही है। फिर अनियतता क्यों ? और जब अर्थ नियत हो सकते हैं तो अनुमान द्वारा ही व्यंग्यार्थ का ज्ञान क्यों न कर लिया जाय ? विशेपकर जब हम सपक्ष सत्व, विपक्ष सत्व और पक्षसत्व ये अनुमान के तीनो रूप पाते हैं। उदाहरणार्थ प्राकृत की उस आर्या को लिया जाता है—

> भमधम्मिअ वीसद्धो सो सुणओ अज्ज भारिओ तेण।
> गोला णई कच्छ कुडंग वासिणां दरिअ सीहेण
> (धार्मिक, अब विश्वस्त भाव से घूमो लता प्रतानो मे
> दूर हो गया भय का कारण, श्वान न अब उन स्थानों में।
> गोदावरी तीर के पागल शेर ने उसे दे मारा।
> जिसका वास स्थान भयानक कच्छ कुंज था अति प्यारा।)

इस आर्या का जो हिन्दी अनुवाद दिया गया है वही उसका वाच्यार्थ है पर,

प्रकरण आदि द्वारा इसका व्यंग्यार्थ बिल्कुल उल्टा है। 'अब सिंह ने उस कुत्ते को मार दिया, जंगल में, हे धार्मिक आप मौज से घूमिये।'-कहने पर यद्यपि वाच्यार्थ विधिमय है पर व्यंग्यार्थ निषेधमय है। व्यंग्य यह है कि 'अभी तक तो कुत्ता ही भय का कारण था अब गोदावरी तीर का पगला शेर आ गया। खबरदार, उधर कभी न जाना।' अनुमानवादी अनुमान के द्वारा इसमे व्यंग्य अर्थ को निकालते हैं।

ध्वनि के विरोधी

पाठकों को पिछले प्रकरण मे व्यंजना के विरोधियों की कुछ दलीलें सुनायी पड़ी हैं पर वे ही भर अलग नही है। अभिनव के समकालीन या परवर्त्ती कितने लेखक ऐसे हुए है जो इस मसला को दूसरी तरह हल करने का प्रयत्न करते दिखाई पड़ते हैं। उन्होने व्यजनावृत्ति को अस्वीकार भर कर दिया हो सो बात नही है। नये उपायों से ध्वनिवादियों की शंकाओं के समाधान का प्रयास भी किया है। इन विरोधियों मे कुन्तक, महिमभट्ट, भट्टनायक और भोजराज का नाम लिया जा सकता है।

भट्टनायक का मत अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती (नाट्यशास्त्र की टीका) तथा लोचन मे अनेकों बार किया है। जान पड़ता है कि ये उनके समसामयिक है। भट्टनायक का सहृदयदर्पण नाम का ग्रन्थ खो गया है। नाट्शास्त्र पर, सम्भवतः उनकी एक टीका भी थी पर वह भी अलभ्य है। रस के प्रकरण मे पाठको ने देखा होगा कि किस प्रकार वे अभिधा के बाद भावकत्व और भोजकत्व नाम के दो व्यापार मानते है। रुय्यक के कथनानुसार ये ध्वनि को काव्य का सर्वोत्तम निरूपक नही मानते। केवल काव्यांश मात्र मानते है। जो कुछ भी हो अभिनव के उद्धरणों से स्पष्ट है कि ये आनन्दवर्धन के घोर विरोधी है।

इनके बाद कुन्तक का नाम है। कुन्तक के वक्रोक्ति जीवित के बारे में पाठको को थोड़ा सा ज्ञान हो गया होगा। यहाँ एक बार फिर उनकी परिभाषा की जाँच की गयी। प्रोफेसर काने ने अपने साहित्यदर्पण की भूमिका (pp. CLIV-CLV) मे इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि वक्रोक्ति सम्प्रदाय आलंकारिकों से बहुत भिन्न नही है। वक्रोक्ति जीवित की 'वैदग्ध भंगीभरिभाति.' इस परिभाषा को लेकर उन्होंने दिखाया है कि रुद्रट ने शब्दालंकार में वक्रोक्ति को स्थान दिया है और काकु और श्लेष वक्रोक्ति नाम के दो भेद किये हैं। मम्मट, रुय्यक मम्टालकार, वाग्भट (काव्यानुशासन), एकावली-कार और हेमचन्द्र ने

रुद्रट का ही अनुसरण किया है। पर रुय्यक इसे अर्थालंकार समझते हैं। पर भामह और दण्डी ने वक्रोक्ति को इतना संकीर्ण नहीं बनाया। भामह प्रायः सभी अलंकारों में वक्रोक्ति का अस्तित्व पाते हैं (2-85) यही बात 1. 36; 2. 86; 5. 66; 6. 23; में भी कहा है। दण्डी भी 'श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायोवक्रोक्तिषु श्रियम्' कहकर वक्रोक्ति मे श्लेष की महत्ता स्वीकार करते हैं।

वामन ने वक्रोक्ति की परिभाषा यों दी है—'सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्ति' और इसके उदाहरण मे 'उन्मिमील कमलं सरसीनां कैरवंच निमिनील मुहूर्त्तात्' (अत्र नेत्रधर्मावुन्मीलत निमीलेयेन सादृश्याद्विकालसे कोचौलक्षयतः) कहा है। ध्यान से देखा जाय तो 'लक्षयतः' न कहकर 'व्यंग्यक्तः' कहते तो ध्वनि सम्प्रदाय वाले इसे ध्वनि मानने में बहुत संकोच नही करते। इस प्रकार देखा जाता है कि पुराने आलंकारिकों ने इसे बहुत विकसित रूप में रखा है। कुन्तक ने उन्ही से अपनी बात को पुष्ट किया है। प्रो. काने के अनुसार यह अलंकार सम्प्रदाय से पृथक् नही है पर प्रस्तुत लेखक के विचार से यह मार्ग ध्वनि सम्प्रदाय का थोड़ा संकुचित रूप है। वक्रोक्ति जीवितकार ध्वनि सिद्धान्त को एकदम न मानते हों सो बात नही है। पिछले अध्याय के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि वे ध्वनिकार का आदर करते हैं और ऐसा ज्ञात होता है कि मानो उनके छोड़े हुए विषयो को पूरा कर रहे हैं। श्री एस. के. दे ने इन्हें ध्वनि सम्प्रदाय का विरोधी माना है। प्रस्तुत लेखक के मत में ये ध्वनि सम्प्रदाय के विरोधी केवल इस अंश मे है कि वे ध्वनि को काव्य की आत्मा समझते हैं और ये वक्रोक्ति को।

भोजराज ध्वनि के विरोधी इस अर्थ मे है कि उन्होने ध्वनि की चर्चा नही की। जैसाकि एस. के. दे का कहना है भोज का सरस्वती कण्ठाभरण और अग्नि पुराण का अलंकार अंश एक दूसरे से विचित्र मेल रखते हैं। एक साथ दोनों को मिलाकर देखने से आश्चर्य होता है। वस्तुतः सरस्वती कण्ठाभरण दण्डी के काव्यादर्श का कुछ विकसित रूप है। विशेषता यह है कि इस पर इन्होने काफी प्रकाश डाला है। और आठ रसों मे दो-तीन और बढ़ा दिये हैं। 'शृंगार' ही इनके मत से एक मात्र रस है। यानी पुरातन रस है। अर्थ गुणो मे से प्रत्येक (शब्द गुण और अर्थ गुण) को रस तक बढ़ा दिया है। इसी अर्थ मे ये ध्वनि के विरोधी हैं ऐसे नही तो वैसे महिमभट्ट की भाँति ये ध्वनि के विरोधी नही हैं।

सच पूछा जाय तो ध्वनि सम्प्रदाय के प्रबल विरोधी एकमात्र महिमभट्ट हैं। इनका ग्रन्थ आश्चर्य जनक रीति से कविता को अनुमान के अन्दर ले आता है। उदाहरणो को ध्वन्यालोक से ही उठाकर उन्होने व्यंग्य के बदले अनुमेव अर्थ को सिद्ध करने के लिए ग्रन्थकार आवश्यकता से अधिक सावधान और सतर्क जान पड़ता है। पिछले प्रकरण मे एक उदाहरण देकर दिखाया गया है। अधिक प्रपंच में पड़ने से कुछ लाभ नही।

रीति, गुण और दोष

गुणों की चर्चा भरत के नाट्यसूत्र में पायी जाती है। भरत काव्यार्थ के श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, ओज, पद सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति इन दस गुणों की जिक्र करते हैं।[1] रुद्रदामन् (150 ई.) ने माधुर्य, कान्ति और उदारता इन तीन गुणों का उल्लेख किया है। इस प्रकार बहुत पुराने जमाने से गुणों का नाम पाया जाता है। नाट्यशास्त्र मे गुणों को अलंकारों के साथ ही पाया जाता है। पर दण्डी ने गुणों को विशेष स्थान दिया है। (1-40-101) दण्डी का ग्रन्थ गुणों और अलंकारों के वर्णन से भरा पड़ा है। दण्डी ने इन दस गुणों को वैदर्भी रीति का प्राण बताया है और गौड़ी रीति में इनका विपर्यय बताया है (काव्यादर्श 1.42) पर वामन ने इसे इस प्रकार नही माना। वे तीन रीतियो का पहले वर्णन करते हैं। ये तीन रीतियाँ हैं वैदर्भी, गौड़ीया और पांचाली। (3.9) वामन के मत से ये रीतियाँ ही काव्य की आत्मा हैं (2.7)। रीति अर्थात् गुणमय पद रचना। (रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्टा पदरचना रीतिः। विशेषो-गुणात्मा)। विदर्भ गौड़ और पांचाल देश में दृष्ट होने से इन रीतियों का नाम रखा गया है (2.10)। हमें गुणों के विषय में जो कुछ कहना है वह अधिकाश वामन की परिभाषा पर। इसलिए यहाँ उनकी थोड़ी-सी चर्चा आवश्यक समझी गयी।

वामन के अनुसार वैदर्भी रीति में दसों गुण होते हैं, गौड़ीया में केवल ओज और कान्ति होते है और पांचाली में माधुर्य और सौकुमार्य।

1. ओज पदबन्ध की गाढ़ता को कहते हैं। उदाहरणार्थ 'विलुलित मकरन्दा मंजरीनर्त्तयन्ति'—पद्य दिया गया है।

2. प्रसाद बन्ध की शिथिलता को कहते है। उदाहरण के लिए 'कुसुम शयन न प्रत्यानंनचन्द्र मरीचयः।' यह पद्य दिया गया है।

3. श्लेष पदों की मसृणता को—जिसके कारण बहुत से पद एक से ही जान पड़ते है, कहते है। यथा —"अस्त्युत्तरस्या दिशि' आदि पद्य।

4. समता मार्ग के अपभेद को कहते हैं। अर्थात् जिस मार्ग से कविता चली उस मार्ग का न छोड़ना समता है। उदाहरण वही 'अस्ति' इत्यादि।

5. *आरोह और अवरोह क्रम को समाधि कहते है, किसी-किसी मत से क्रमशः* चढ़ाव-उतार का नाम समाधि है। आरोह (चढ़ाव) पूर्वक अवरोह (उतार) यथा —'निरानन्दः कौन्दे मधुनि परिमुक्तोज्झित रसे।' और अवरोहपूर्वक आरोह यथा—नराःशील भ्रष्टाव्यसन इव मज्जन्ति तरवः'

6. पदों की पृथकता ही माधुर्य है। उदाहरण वही "अस्त्युत्तरस्यां दिशि'

7. कोमलता (अजरवत्यं···अपारुष्यम्) सौकुमार्य है उदाहरण वही।

8. पदों की निकटता को उदारता कहते हैं। उदाहरण—'स्वचरण विनिविष्टै

नूपुरैनर्त्तकीनां भरियति रणितमासीत्तन चित्र कलं च।

9. पढते ही जिससे अर्थ स्पष्ट समझ में आ जाय उसे 'अर्थ व्यक्ति' कहते हैं। उदाहरण वही 'अस्त्युत्तरस्याम्'

10. वाक्य की उज्ज्वलता को कान्ति कहते हैं। उदाहरण के लिए 'कुरंगीनेत्रा-ली सप्त कितव नाली परिसरः' इत्यादि पद्य उद्धृत किया है। इस गुण के विरुद्ध जो दोष (विपर्यय) है उसे पुराणच्छाया कहते हैं।[1]

इस विवरण से गुण की एक साधारण धारणा पाठकों को हो जायगी। पर, यह नही समझना चाहिए कि सभी आलंकारिक इसे ऐसा ही समझते हैं। वामन के इन गुणों का उल्लेख इसलिए किया गया कि वे कविता में इन्ही को सर्वोत्तम स्थान देते हैं। क्योकि जिस रीति को वे काव्य की आत्मा मानते हैं वह वस्तुतः इन्ही गुणों का गुम्फन मात्र हैं। काव्यालंकार सूत्र की वृत्ति में वह स्वयं कहते है कि

श्लोकाश्चात्र भवन्ति—

....

यथा विच्छिद्यते रेखा चतुरं चित्र पण्डितैः
तथैव वागपि प्राज्ञै. समग्र गुण गुम्फिता।

दण्डी ने दस गुणों को स्वीकार किया है और बताया है वैदर्भी रीति के ये दसो गुण प्राण है किन्तु गौण वर्त्य (गौड़ी या रीति) में प्रायः इनका विपर्यय ही होता है (काव्यादर्श 1.42)।

जिस प्रकार शब्द के ऊपर दस गुण बताये गये अर्थ के भी ये गुण होते हैं। दण्डी शब्दगुण और अर्थगण को पृथक्-पृथक् नही बताते। पीछे के आलंकारिकों

1. यह बात ध्यान देने की है कि यद्यपि वामन के दसो अलंकार वही हैं जो नाट्यशास्त्र या दण्डी के; पर सबने एक ही परिभाषा नही स्वीकार की। उदाहरण के लिए कुछ परिभाषाएँ तीनों की दी गयी :

ओज— "समासवद्भिर्विविधै विचित्रैश्च वदैर्युतम्
सानुस्वरै सदारैश्च् तदोज. परिकीर्त्यन।"—भरत
"ओजः समास भूयस्त्वम्"—दण्डी
"गाढ़बन्धत्वनोजः"—वामन

समाधि — "अभियुक्तैर्विशेषस्तु योऽर्थस्यैवोपलभ्यते।
तेन चार्थेन सम्पन्नः समाधिः परिकीर्त्यते॥"— भरत
"अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोक सीमानुरोधिना
सम्यगाधीयते यत्र स समाधिः स्मृतः...."—दण्डी
आरोहावरोह क्रमः समाधिः—वामन।

ने वामन के भेदों को स्वीकार किया है।[1] भोजराज ने अर्थगुण और शब्द गुणों के चौबीस-चौबीस भेद किये हैं।[2]

अग्निपुराण ने जो गुण की परिभाषा दी है वह किसी रीति या (दण्डी के शब्दो में मार्ग) से सम्बद्ध नही जान पड़ती। वह कहता है कि 'मः काव्ये महतीं छाया अनुगृह्णात्यसौ गुणः।' उक्त पुराण गुण को सामान्य और विशेष इन दो भेदों मे बांटता है। (345.3) आगे चलकर समास गुण नाम के गुण को तीन प्रकार का बताया है, अर्थतः, शब्दतः और उभयतः। श्री एस. के. दे का कहना है कि यही पुराण गुण को पहले-पहल तीन भागों में विभक्त करता है (पृ. 259)। अग्निपुराण के अनुसार शब्द गुण सात हैं—श्लेष, गाम्भीर्य, लाटीय, सौकुमार्य, उदारता, सत्या और यौगिकी। अर्थ गुण 6 हैं—माधुर्य, संविधान, कोमलत्व, उदारता, प्रौढ़ि और सामयिकता। शब्दार्थ गुण भी 6 हैं—प्रसाद, सौभाग्य, यथा-संख्य, प्रशस्तत्व, पाक और राग। आश्चर्य की बात है कि दण्डी का ओज नामक गुण यद्यपि शब्दगुणों में पढ़ा नही गया फिर भी परिभाषित है (दण्डी 1.80; अग्नि 345.10)।

मम्मट ने रसात्मक काव्य पुरुष के माधुर्य ओज आदि गुणों की तुलना, पुरुष के शौर्यादि गुणों से की है। वह कहते है कि जिस प्रकार शौर्य आदि गुण आत्मा ही

1. वामन के अर्थ गुणों की परिभाषा भी उन्हीं के शब्दों में दी गयी :
   1. अर्थस्य प्रौढ़िः ओज.। 2. अर्थ वैमल्यं प्रसादः। 3. घटना श्लेषः (घटना शब्द का अर्थ स्वयं वामन ही अपनी वृत्ति में यों करते हैं—क्रम कौटिल्यानुल्वणो-पपत्तियोगो घटना—अर्थात् क्रमशः कुटिलता और सरलता की उपपत्ति का योग घटना है)। 4. अवैषम्यं समता। 5. अर्थ दृष्टिः समाधिः (अर्थ का स्पष्ट दर्शन समाधि है। अर्थ भी दो प्रकार का अयोनि (सुनते ही अवधान मात्र से—बिना किसी कारण के जो समझ मे आ जाय) और अन्यच्छाया-योनि (दूसरे काव्य की छाया जिसके समझे जाने मे कारण है); अर्थ के और भी दो भेद हैं व्यक्त और सूक्ष्म।) 6. उक्तिवैचित्र्य माधुर्यम्। 7. अपारुष्यं सुकुमारता। 8. अग्राम्यत्वम् उदारता। 9. वस्तुस्वभाव स्फुटत्वम् अर्थव्यक्तिः। 10. दीप्तरसत्वं कान्तिः। कान्ति की परिभाषा मे जो 'रस' शब्द आया है उस पर पाठकों का ध्यान निबन्ध के शुरू में ही आकर्षित किया जा चुका है।
2. ये चौबीसों गुण एक ही नाम से शब्द और अर्थ दोनों के होते है। नाम ये हैं : 1. श्लेष, 2. प्रसाद, 3. समता, 4. माधुर्य, 5. सुकुमारता, 6. अर्थव्यक्ति, 7. कान्ति, 8. उदारता, 9. उदात्तता 10. ओजः, 11. और्जित्य, 12. प्रेयः, 13. सुशब्दता, 14. समाधिः, 15. सौक्ष्म्य, 16. गाम्भीर्य, 17. विस्तर, 18. संक्षेप, 19. संमितत्त्व, 20. भाविकत्व, 21. गति, 22. रीति, 23. उक्ति और 24. प्रौढ़ि।

के होते हैं, आकार के नहीं उसी प्रकार गुण रस के ही होते है वर्णों के नहीं। वामन के दस गुणों को काव्यप्रकाश मे मम्मट ने तीन गुणों के ही अन्दर अन्तर्भूक्त किया है। वे तीन है माधुर्य, ओज और प्रसाद। भिन्न रसों के लिए इन गुणो की उपयोगिता भी बतायी गयी है। माधुर्य के आह्लादक होने के कारण द्रुति का कारण होता है। करुण और विप्रलम्भ (शृंगार) रसों में यह अधिकाधिक द्रुति का कारण होता है। ओज चित्त को विस्तृत और दीप्त करता है और वीररस का सहायक है—वीर रस मे द्रुति ले आता है। वीभत्स और रौद्र में उसकी अधिकाधिक स्थिति है। जिस प्रकार सूखी लकड़ी में आग सहसा लग जाती है और जिस प्रकार स्वच्छ जल किसी वस्तु को सहसा ही व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार प्रसाद गुण सहसा चित्त को व्याप्त कर लेता है। यह सभी रसों का सहायक है।

वामन के गुणो के बारे में काव्यप्रकाशकार का कहना है कि वे दसों में से अनेक तो इन्ही तीनों मे आ जाते हैं और कई, दोषों के त्याग मात्र हैं, गुण नही। जैसे श्लेष, समाधि, उदारता और प्रसाद के जो लक्षण वामन ने दिये है वे काव्य-प्रकाश के ओज में आ जाते हैं। माधुर्य को वामन ने *'पृथक्-पृथक् माधुर्यम्'* ऐसा बताया है। यह समास त्याग से ही स्पष्ट है (?)। अर्थ व्यक्ति प्रसाद में आ जाती है। समता (मार्ग की अभेदता) कही-कही दोष है और कही गुण। कष्टत्व और ग्राम्यत्व जिनके त्याग को (अपारुष्यं) वामन ने सौकुमार्य कहा है वस्तुत: दोष हैं।

अर्थ गुणों को तो मम्मट एकदम अस्वीकार करते हैं।

गुणों के प्रकरण में भी मम्मट व्यंजना को नही भूलते। वे खास-खास प्रकार की पदरचना को खास-खास गुणों का व्यंजक समझते हैं। उदाहरणार्थ, ट, ठ, ड, ढ इन चार को छोड़ सभी स्पर्शवर्ण जो अपने-अपने पंचम वर्ण से युक्त हों, ह्रस्वान्तरित रेफ और णकार, समासहीन किंवा अल्प समास पद रचना माधुर्य की व्यंजिका है। वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्ण जहां क्रमशः द्वितीय और चतुर्थ से जुड़े हों (कवट्ट आदि) रेफ पूर्व में किंवा पर मे युक्त हो, ण भिन्न ट वर्ग, श, ष दीर्घ समासमयी विकट रचना ओज गुण को व्यक्त करती है; और सुनते ही जिससे समग्र अर्थ प्रकट हो जाय वह सभी रसों को व्यक्त करनेवाली रचना प्रसाद गुण को व्यक्त करती है। कहीं-कहीं रचना वक्ता के स्वभावादि के अनुसार ही होती है वहाँ किसी भी रस के लिये किसी प्रकार की रचना (वक्तस्वभावानुवर्तिनी) हो सकती है। इसी प्रकार अन्य कई स्थानों मे भी और नियम का विपर्यय हो सकता है।

विश्वनाथ गुणो के विषय में अक्षरशः मम्मट के अनुयायी हैं। इस विषय पर मम्मट ने जो कुछ कहा है सभी उन्हें स्वीकार है। एक जगह तो स्पष्ट कह भी देते हैं कि यह चिरन्तनों (मम्मट ?) का बताया मत है। रीति के बारे मे अवश्य ही ये मम्मट से कुछ भिन्न मत रखते हैं। मम्मट उपनागरिका, (जिसमें माधुर्य व्यंजक वर्ण हों), परुषा (जिसमें ओज-प्रकाशक वर्णों की अधिकता हो), कोमला (जो

इन दोनों से भिन्न वर्णों से भरी हो), इन तीन वृत्तियों का उल्लेख करके कहते हैं कि इन्हीं वृत्तियों को अन्य आचार्यों ने वैदर्भी, गौडी और पांचाली नाम दिया है (नवम उल्लास)। साहित्य दर्पणाकार एक और रीति बढ़ाकर तीन को चार कर देते है। वह वृत्ति है लाटीया। इस वृत्ति को पहले पहल रुद्रट ने लिखा है।

यह बात ध्यान देने की है कि राजशेखर ने यद्यपि तीन ही रीति का उल्लेख किया है पर अपनी कर्पूर मंजरी में जिन तीन रीतियों का उल्लेख किया है उनमें कुछ नयी प्रकार की रीतियां है—(············)

(सं. वात्सगुल्मी—वत्स गुल्म प्रदेश आधुनिक बरार के वासिम स्थान का नाम था—प्रो. काने), माअही (मागधी) और पंचालिआ (पांचाली) वात्सगुल्मी और वैदर्भी सम्भव है एक ही हों। फिर भी वामन के मत से चार रीतियाँ हैं— वैदर्भी (वात्सगुल्मी ?) मागधी, गौड़ी और पांचाली। भोजराज 6 रीतियों को मानते हैं, इन्हीं चारों मे और दो अवन्ती और लाटी जोड़कर। पण्डितराज जगन्नाथ पहले के आचार्यों के बताये दस गुणों की परिभाषा देकर फिर मम्मट भट्ट का मत उद्धृत करके विशिष्ट विचारों की अवतारणा करते हैं।

रीति और गुणों की चर्चा यही छोड़कर अब हम अलंकार शास्त्र के अन्य महत्त्वपूर्ण अंग की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करते है। यह है दोष। भरत ने केवल दस दोषों का वर्णन किया है। (16-44) दण्डी ने और भामह ने भी ग्यारह दोषों की चर्चा की है। मम्मट ने और उनके बाद के आचार्यों ने दोषों के लिए पन्ने रँग डाले हैं। मम्मट का काव्यप्रकाश रस और अलंकार के दोषों को भी बताता है। ध्वन्यालोककार ने रस के औचित्य (पृ. 144) और रस के विरोधी बातो के त्याग की ओर (पृ. 161) विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। फलतः इस विषय पर उसके अनुयायियों ने काफी प्रकाश डाला है। दोषों का विस्तृत वर्णन काव्यप्रकाश आदि ग्रन्थों मे ही देखना चाहिए। पाठकों के मनोरंजन के लिए विभिन्न आलंकारिको के बताये दोषों की नामावली परिशिष्ट में दी जा रही है। दोषो के लक्षण उनके नाम से ही स्पष्ट हैं।

कविता के भेद

जैसा कि हम आगे बताने का प्रयत्न करेंगे वर्त्तमान काल मे कविता के अनेक भेद माने गये हैं। पाश्चात्य लेखकों में से अनेकों ने गद्य और पद्य दोनो में कविता की सम्भावना स्वीकार की है। संस्कृत के आलंकारिक तो सदैव एकमत मे गद्य और

व्यवहार किया गया है, अन्त में उसे बदल देना चाहिए। सर्ग के अन्त मे आगेवाली कथा की सूचना दे देनी चाहिए। सन्ध्या, सूर्य, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, षट् ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र, उदय आदि का वर्णन सांगोपांग और यथासम्भव करना चाहिए। कवि के नाम से (जैसे माघ), चरित्र के नाम से (जैसे कुमार सम्भव) अथवा चरित्रनायक के नाम से (जैसे रामायण) इसका नामकरण होना चाहिए। सर्ग की वर्णनीय कथा के नाम से सर्ग का नाम रखना चाहिए। आर्ष महाकाव्य में सर्गों को 'आख्यान' कहा जाता है। प्राकृत महाकाव्य में सर्गों को आश्वास कहते हैं। यदि महाकाव्य अपभ्रंश भाषा मे लिखा गया हो तो सर्ग को कुड़वक कहना चाहिए।

भाषा (संस्कृत, प्राकृत) विभाषा (अपभ्रंश) का लिखा एक कथावाला पद्यबन्ध (सर्गमय) ग्रन्थकाव्य कहा जाता है। महाकाव्य में नाटक की संधियाँ आवश्यक हैं पर काव्य में नही।

काव्य के एक देश का अनुसारी ग्रन्थ खण्डकाव्य कहा जाता है।

फुटकर, परस्पर निरक्षेप, पद्यों के संग्रह को कोष कहते हैं। सजातीय पद्यो को सजा-सजाकर रखने से यह अत्यन्त सुन्दर जँचता है। इस ढंग को व्रज्या कहते हैं।

गद्य चार प्रकार के हैं। मुक्तक (समास रहित गद्य), वृत्त गन्धि (जिसमें कुछ पद्य भी हो), उत्कलिका प्रायः (दीर्घसमास विशिष्ट) और चूर्णक (जिसमें छोटे-छोटे समास हों)।

कथा वह गद्य काव्य है जिसमे सरस वस्तुओं का प्रतिपादन गद्य के द्वारा ही किया गया हो, जिसमें जगह-जगह आर्या, वक्र और अपवक्त्र छन्द हों। प्रारम्भ मे पद्यबन्ध नमस्कार और खल दोष कीर्त्तन हों। जैसे कादम्बरी।

आख्यायिका वह गद्य काव्य है जो कथा के समान ही हो, उसमे कवि वंश का वर्णन हो और जगह-जगह अन्य कवियों के पद्य भी हों। कथा भागों को आश्वास कहते हैं। आश्वास के अन्त में आर्या आदि छन्दो के द्वारा भावी कथा भाग की सूचना मिल जानी चाहिए। जैसे हर्षचरित।

गद्य पद्य मय काव्य को चम्पू कहते हैं।

गद्य पद्यमयी राजस्तुति को विरुद कहते हैं।

अनेक भाषाओं से निर्मित काव्य को करम्बक कहते हैं।

ध्यान से देखने से मालूम होगा कि ये लक्षण पहले के ग्रन्थों को देखकर बनाये गये हैं। महाकाव्य के लक्षण में एक वंश के ही अनेक राजाओं का नायक होना इसलिए बताया गया है कि महाकाव्य की पंक्ति मे रघुवंश को सम्मिलित कर लिया जा सके। कादम्बरी कथा में खल कीर्त्तन आदि लक्ष्य ग्रन्थों को देखकर इस प्रकार के लक्षण किये गये हैं। अवश्य ही परवर्त्ती कवियों ने लक्षणों को देखकर ग्रन्थ लिखे।

अलंकार

यह निबन्ध वस्तुतः अपूर्ण ही रह जायगा, यदि अलंकारों की चर्चा न की जाय। पर हमारा साहित्य अलंकारों की चर्चा से इतना भरा पड़ा है कि इसकी परिभाषा और उदाहरण को लेकर ज्यादा कहना पिष्ट पेषण मात्र होगा। हिन्दी का सबसे अधिक परिचय अलंकार और नायिका भेद से है। इसीलिए इन दो विषयों को हम छोड़ देना ही उचित समझते हैं फिर भी एक सामान्य ऐतिहासिक विवरण इसलिए आवश्यक समझा गया कि उससे इस अंश के विकास के अध्ययन में सहायता मिल सके।

पाठकों ने देखा है कि भरत ने नाट्यसूत्र के 16 अध्याय में, काव्य के लक्षण (ये लक्षण बहुत कुछ अलंकार ही हैं) उनके उदाहरण और उपमा, रूपक, दीपक और यमक ये चार अलंकारों, दश शब्द गुण और दश दोषों का विवेचन किया है। आरम्भ में जैसे (······) अलंकारों का वर्णन मिलता है। नीचे कुछ अलंकारो के नाम दिये जा रहे हैं जो दण्डी, भामह, उद्भट और वामन के ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

अतिशयोक्ति, अनन्वय,[1] अनुप्रास, अपह्नुति, अप्रस्तुत प्रशंसा (भट्टि मे नही), अर्थान्तरन्यास, आक्षेप,[2] उत्प्रेक्षा,[3] उदात्त, उपमा, उपमारूपक (उद्भट में नहीं है, दण्डी इसे रूपक में रखते हैं और वामन संसृष्टि का भेद बताते हैं), उपमेयोपमा (भट्टिभिन्न) ऊर्जस्वि (वामन भिन्न) तुल्य योगिता (दण्डी के मत से स्तुति निन्दार्थ), दीपक, निदर्शना, परिवृत्ति, काव्यलिंग (भट्टि के मत से यह अर्थान्तरन्यास नहीं होनी चाहिए), पर्यायोक्ति, प्रतिवस्तूपमा (भट्टि भिन्न) प्रेयः (वामन भिन्न) भाविक (वामन भिन्न) मिश्र यथासंख्य (वामन के मत से क्रम), यमक (उद्भट भिन्न) रसवत् (वामन् भिन्न) रूपक, विभावना, विरोध, विशेषोक्ति (वामन की विशेषोक्ति औरों से नही मिलती वह रूपक की भाँति एक चीज है) व्यतिरेक, व्याजस्तुति, श्लिष्ट, संसृष्टि,[4] समासोक्ति, ससन्देह (दण्डि भिन्न), समाहित[5] और सहोक्ति। इसके सिवाय निम्नलिखित अलंकार निम्नांकित आचार्यों ने अधिक माने हैं—

1. दण्डी के मत से यह असाधारणोपमा है।
2. वामन का आक्षेप समासोक्ति या प्रतीक कहा जा सकता है।
3. उत्प्रेक्षावयम नाम का एक अलंकार और है भट्टि, भामह, वामन (संसृष्टि का भेद) में पाया जाता है। दण्डी इसे उत्प्रेक्षा के अन्दर रखते हैं।
4. दण्डी का संकीर्ण जिसमे संसृष्टि और संकर हैं। उद्भट के मत से यह संकर से भिन्न है।
5. दण्डी का समाहित साहित्यदर्पण का समाधि है, वामन का दण्डी और उद्भट दोनों से भिन्न है। भट्टि का समाहितवाला पद्य मल्लिनाथ के मत से स्वभावोक्ति है।

दण्डी : आवृत्ति, लेश (भामह इसका खण्डन करते हैं), सूक्ष्म (भामह नहीं मानते)।

आशी : (भट्टि, भामह) स्वभावोक्ति (भामह और उद्भट भी मानते हैं।) हेतु (भट्टि में भी है)।

वामन : व्याजोक्ति (इनका कहना है कि अन्य लोग इसे मायोक्ति कहते हैं) वक्रोक्ति।

उद्भट : स्वाभावोक्ति, संकर, काव्यलिंग, छेकानुप्रास, दृष्टान्त, लाटानुप्रास, दृष्टान्त।

भट्टि : वार्त्ता, हेतु (दण्डी में भी है)।

इनमें से कितने ही अलंकारों को मम्मट ने खण्डन किया है और कितने ही नये अलंकारों को रखा है। निम्नलिखित अलंकारों की सत्ता मम्मट ने स्वीकार नहीं की--

अत्युक्ति, अनुगुण, अनुज्ञा, अनुपलब्धि, अनुमान, अर्थापत्ति, अल्प, अवज्ञा, असम्भव, असम, उदाहरण, उन्मीलित, उपमान, उल्लास, उल्लेख, ऊर्जस्वि, ऐतिह्य, गूढोक्ति, छेकोक्ति, जाति, निरुक्ति [......] परिणाम, विहित, पूर्वरूप, प्रत्यक्ष प्रस्तुतांकुर, प्रहर्षण, प्रेय, प्रौढ़ोक्ति [......], मुद्रा मुक्ति, रत्नावली, रसवत्, ललित लेश लोकोक्ति, [......] विकल्प, विकस्वर, विचित्र, वितर्क, विधि विवृतोक्ति, विशेष, विवाद, विशेषारय, सम्भव, सम्भावना और हेतु।

प्राय. प्रचलित अलंकारों को इस प्रकार श्रेणीबद्ध किया जा सकता है—अवश्य ही ये अर्थालंकार हैं। शब्दालंकारों की एक सूची आगे दी गयी है।

(अ) सादृश्य गर्भ—इसके तीन भेद किये जा सकते हैं: (1) भेदाभेद मूलक, (2) अभेद मूलक (3) गम्यौपगम्याश्रय।

भेदाभेद मूलक अलंकार हैं: उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय और स्मरण। अभेद मूलक के दो भेद हैं: (1) आरोप मूलक, (2) अध्यवसाय मूलक। पहली में रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमन्, उल्लेख और अपन्हुति आदि हैं और दूसरी में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति। गम्यौपगम्याश्रय में भारी प्रपंच है। (1) पदार्थगत (जिसमें तुल्ययोगिता और दीपक हैं); (2) वाक्यार्थगत (प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना); (3) भेद प्रधान (व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति); (4) विशेषण विचित्याश्रय (श्लेष); (5) अप्रस्तुत प्रशंसा (समासोक्ति के विरुद्ध); (6) अर्थान्तरन्यास; (7) पर्यायोक्त; (8) व्याजस्तुति और (9) आक्षेप।

(आ) विरोध गर्भ—इसमें निरोध, विभावना, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात हैं।

(इ) शृंखलाबन्ध मूल—कारणमाला, एकावली, मालादीपक और उदार।

(ई) तर्कन्याय मूल—काव्यलिंग और अनुमान।

(उ) काव्य न्याय मूल—यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प समुच्चय, समाधि।

(ऊ) लोकन्याय मूल—प्रत्यनीक, प्रतीत, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्-

गुण और उत्तर।

(ऋ) गूढ़ार्थ प्रतीति मूल---सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त और रसवदादि (रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वि, समाहित, भावोदय, भावसन्धि, भाव शबलता)।

निम्नलिखित शब्दालंकारों को मम्मट ने माना है---

अनुप्रास, खड्गबन्ध, पद्मबन्ध, पुनरुक्तवदाभास, मुरजबन्ध; यमक; वक्रोक्ति, वृत्ति, लाट अनुप्रास, और सर्वतोभद्र।

रस और भाव आदि

कला क्या है?

अतीत के जटिल जाल से एक बार हम पाठकों को मुक्त कर देना चाहते हैं। हम आज जिस जगत् में रहते हैं, वह अतीत का संशोधित संस्करण नहीं है बल्कि बिल्कुल परिवर्त्तित और परिवर्द्धित संस्करण है। भीतर से हम परिवर्त्तित हुए हैं और बाहर से परिवर्द्धित। अब हम कविता का विवेचन करते समय कला को पकड़ लाते हैं और अतीत की चिन्ताओं की ओर से एकदम मुंह फेर लेते हैं। जो कुछ करने के लिए हम हाथ बढ़ाते है, सब नये सिरे से। इस समय हमारा आधार 'कुछ नहीं' है। हम मानो अभी-अभी सभ्यता का प्रकाश देख रहे हैं। कविता या कला की विवेचना करते समय आजकल का समालोचक एक लक्षण बनाता है और एक भयानक शब्दस्तूप खड़ा करके उसकी पूर्णता के लिए वह घास, पात, ईंट, पत्थर, नद, नदी, पहाड़, समुद्र, रेल, तार, डाक, जहाज यहाँ तक असीम--सर्वत्र उसे अपनी परिभाषा की सत्यता का अनुभव होता है। सोते, जागते, उठते, बैठते सदा-सर्वदा उसे कविता दिखायी देती है। गरीब पाठक इस सर्वग्रासिनी कविता को कुछ न समझकर झुंझला पड़ता है। समालोचक दया करके उसे ससीम में असीम का अनुभव कराता है, विराट् का अखण्ड स्वरूप खोल के रख देता है, आँधी और झड़ में बहता हुआ कविता का अजस्रप्रवाह उन्मुक्त कर देता है। वह काले-काले अक्षरों का जबर्दस्त पहाड़ उसके दिमाग पर पटक देता है और स्वयं वह उससे दूर रहता है।

अंग्रेजी की एक कहावत बचपन में सुनी थी---Every why has no reply. 'प्रत्येक क्यों का जवाब नहीं होता।' आजकल कविता एप्रिशिएट करने वाले

के लिए any why has no reply 'किसी क्यों का जवाब नही होता।' चलती भाषा में इसी को 'कला' (Art) कहते हैं।

पर कला वस्तुतः यही नही है। मानव हृदय अपनी आन्तरिक अनुभूतियो को विश्वविदित करने के लिए उत्सुक रहता है। बाह्य जगत् का—सुन्दर किंवा असुन्दर—जो कुछ प्रतिबिंब उसके हृदय पर पड़ा है वही मानो प्रत्यावर्त्तित होकर ललित कलाओं के रूप में फिर जगत् में आता है। गेंद को दीवाल पर फेंकने से वह टकराकर एक बार फिर उसी ओर घूम पड़ता है जिधर से चला था। समग्र जगत् इस प्रकार के प्रत्यावर्त्तन का उदाहरण है। इसीलिए जगत् की छाया भी मानव हृदय से टकराकर फिर बाहर आता है। चोट जितनी ही तेज़ होगी, प्रत्यावर्त्तन का वेग उतना ही अधिक होगा। इसी प्रकार बाह्य जगत् की अनुभूति जितनी ही तीव्र होगी, कला का स्वरूप उतना ही स्पष्ट होगा।

चित्रकार चित्र के द्वारा, गवैया गान के द्वारा, कवि कविता के द्वारा, और नाचनेवाला नृत्य के द्वारा इसी आन्तरिक अनुभूति को प्रकट करता है। अर्थात् कला अन्तर्जगत् का बाह्य और मूर्त्त स्वरूप है। कविता भी एक कला है।

बाहर जो कुछ देखते हैं अपनी कविता के द्वारा हम उसी को प्रकट करना चाहते है। इस दृष्टि से भूतमात्र कवि है। पर जैसा कि कन्दुक के उदाहरण से स्पष्ट है, प्रत्यावर्त्तन का वेग सदा पूर्व वेग से कम होता है। बाह्य जगत् की अनुभूति भी जैसी कवि या चित्रकार के हृदय में है ठीक वैसा ही वह नहीं प्रकट कर सकता। रामचरितमानस में जिस आदर्श को हम पाते हैं, तुलसीदास उससे कहीं बड़े थे! मीरा के पदों में जो कचोट है मीरा के हृदय में वह उससे कहीं अधिक थी। सूर्यकान्त मणि जिस प्रकार चन्द्रमा के बिम्ब से प्रत्यावर्त्तित होकर स्निग्ध और बहुत चमत्कारपूर्ण हो जाती है बाह्य जगत् की कठोर और कर्कश छाया सहृदय-हृदय से प्रत्यावर्त्तित होकर उसी ज़हर से मधुर हो जाती है। इसीलिए जगत् के वे व्यवहार जो अपने वास्तविक जगत् में कठोर और कर्कश होते हैं कवि के हृदय से निकलने पर सरस और मधुर हो जाते हैं।

यह समझना और समझाना भूल है कि कवि इस जगत् के बाहर की रहस्यमयी रचना को प्रत्यक्ष करता है। जो रहस्य है, जो 'उस पार' की चीज़ है, जिसका 'कुछ-न जाने-कैसा' रूप उसने देखा है वह कवि के हृदय से प्रत्यावर्त्तित होने पर और भी अधिक सरस और अधिक-न-जाने कैसी-चीज हो जाती है। वहाँ कवि न कुछ समझ पाता है और न समझा पाता है।

शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध का ही हम प्रत्यक्ष करते हैं इनसे अतिरिक्त किसी षष्ठ पदार्थ का न तो हम अनुभव करते हैं और न कर ही सकते हैं। इसीलिए जगत् को हम इसी रूप में देखते हैं, हमारे ज्ञान की सीमा यहीं तक है। आगे की बात हम नहीं देखते। पर, हमारा अनुमान है कि जो कुछ हम जानते हैं वही सब कुछ नहीं है। इसके बाद भी कुछ है। नीबू देखने में आँखों को सुन्दर लगता है चखने में जिह्वा को रस-मय। अन्य इन्द्रिय भी इसका, अपने अधिकार के अनुसार,

ज्ञान प्राप्त करते हैं। पर, यदि नीबू में एक और कोई बात हो जिसके लिए हमारे पास कोई इन्द्रिय नही है—जो शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध से भिन्न है, तो यह चीज अज्ञात ही रह गयी। ऐसी वस्तु एक भी हो सकती है, अनेक भी हो सकती है और नही भी हो सकती। कवि का हृदय अपनी पराधीनता को अनुभव कर छटपटा पड़ता है। कहिये तो, कह सकते हैं कि रहस्यवाद की कविता का यही मूल है। नाम रखने के हम विरोधी नहीं, पर तथा-कथित रहस्यवाद (......) और इस रहस्य-वाद में आकाश-पाताल का अन्तर है।

वस्तुतः जगत् और कुछ नहीं हमारे इन्द्रिय-सम्बन्धी संवेदनाओ का ही रूप है। अन्धे के लिए रूप कुछ नही है और बधिर के लिए शब्द कोई चीज नही। मनोजगत् की वस्तु भी ऐन्द्रियिक संवेदनाओं के भीतर आ जाती है। फिर इस जगत् के बाहर की वस्तु को समझना या समझाना बुद्धि-वैभव का विषय भले ही हो, तथ्य या सत्य नही है।

तो क्या मानव हृदय अनादिकाल से जिस एक निर्गुण—तुरीय सत्ता पर विश्वास करता आ रहा है वह मिथ्या है? इस स्थूल सृष्टि के पीछे जो एक सूक्ष्म है, इस अनित्य प्रपंच के दूसरी ओर जो एक नित्य सत्य है, इस मायास्वप्न के बाद जो एक प्रकृत सत्य है वह क्या एकदम कुछ नही है? नही। वह सब उतना ही सत्य है जितना यह स्थूल जगत्, यह अनित्य प्रपंच और यह मायास्वप्न। पर सत्य इसी अंश में है कि जगत् ऐन्द्रियिक समवेदना का विषय है और उसी के आदर्श पर रचित ये सत्य भी मानसिक जगत् की रचनाएँ हैं। हम इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते। मनुष्य किसी ऐसे तत्त्व को पकड़ सकता है जिसे पकड़ा नही जा सकता। वस्तुतः ये कैसी सत्ता है। मनुष्य ने त्रिगुणातीत की कल्पना त्रिगुणात्मक प्रकृति मे ही किया है यही कारण है कि केवल निषेध रूप मे ही उसका परिचय दिया जा सकता है, ऊहापोह रूप में ही वह समझा जा सकता है। वह हमारे इन्द्रियगम्य वस्तु के उस पार की सत्ता है इसीलिए 'न-जाने-कैसा' नही है बल्कि 'जो-कुछ-जानते-हैं-वैसा-नही' है। कहना नहीं होगा कि जिस क्षण वह त्रिगुणातीत अनि-षेधात्मक रूप मे आता है उस समय श्रीकृष्ण वृन्दावन में वंशी बजाते दृष्टिगोचर होते है।

अतः इस अनित्य प्रपंच का अर्थ है हमारे इन्द्रियगण द्वारा ग्राह्य (गृहीत) वस्तु जात। इसी अनित्य प्रपंच का प्रत्यावर्तित रूप कविता है। वह हमारे भीतरी मनोभावों का चित्र है। वह एक प्रयत्न है जिसके द्वारा मनुष्य अपने अन्तरनुभूति को जगत् के सामने रखता है। वह एक न-जाने-कैसी वस्तु नही है।

अतएव कविता के भारतीय समालोचकों ने इन आन्तरिक वृत्तियों को ही पहले पकड़ा। रस चाहे आठ, नव या अधिक स्वीकार किये गये हों पर हैं सब अन्तर्जगत की चीज। मनोभावों को कई भेदों मे बांटा गया है। मनोभावों मे से कुछ ऐसे है जो स्थायी होते हैं और कुछ ऐसे हैं जो चंचल है। शकुन्तला दुष्यन्त के प्रति एक मनोभाव है जो विरह में, मिलन में, मान मे, अपमान मे, स्मृति में, विस्मृति

में, चिन्ता में, श्रम मे, समान रूप से रहता है। यह स्थायी मनोभाव है रति। रति शब्द में प्रेम और तन्मयता का एकत्र समावेश होता है। चिन्ता आती हैं चली जाती है, विवाद आता है निकल जाता है, लज्जा आती है हट जाती है, वियोग की कातर वेदना आती है लौट जाती है पर यह रति ज्यों की त्यों रहती है। प्रेम और तन्मयता क्षणभर के लिए भी नहीं हटतीं। दूसरा स्थायी भाव है उत्साह। महाराणा प्रताप के ऊपर विपत्तियो का पर्वत टूट पड़ता है, चिन्ता की भयानक ज्वाला हृदय को भस्म करती रहती है, स्त्री और बच्चों की करुण ध्वनि हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर देती है पर उत्साह स्थिर रहता है। उसमें विकार नहीं। कविता की विवेचना करते समय हमारे आचार्यों ने इन स्थायी भावों का वैज्ञानिक विवेचन किया है।

रति जब पुरुष और स्त्री के बीच होती है तो उस समय जिस रस का उद्भव होता है उसे श्रृंगार कहते हैं। पर यही रति जब देवता या माता-पिता आदि के बारे में होती है तो उसे भाव कहते हैं। भारतीय कविता में लोकसंग्रह की भावना बड़ी प्रबल है। इसीलिए स्त्री या पुरुष के अनुचित प्रेम (रति) को यहाँ बहुत निकृष्ट समझा गया है। आलंकारिक ऐसे स्थानों में रस नहीं रसाभास मानते हैं। यहाँ पर एक बार यह देख लेना आवश्यक होगा कि आया यह लोक संग्रह की भावना समाज की दृष्टि सेअ नुचित है या उचित।

[1]
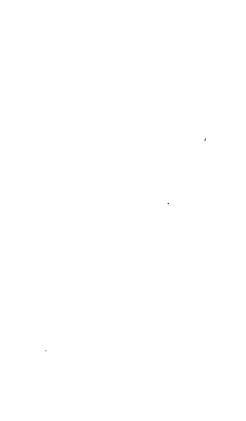
द्विवेदीजी,

'पुनर्नवा' पढ़ गया। जब इसके कुछ अंश 'कल्पना' में प्रकाशित हुए थे उस समय आपने आरम्भ मे ही मोटे-मोटे अक्षरो में इसकी यह विशेषता भी बता दी थी कि "जिसमें व्योमकेश शास्त्री की भूमिका नही दी जा सकी"। उस समय मैंने सोचा था कि आप ब्योमकेश शास्त्री की भूमिका से ऊब गये है, इसलिए मैंने 'पुनर्नवा' पढना भी छोड दिया था। भला हो भीष्म साहनी का जिन्होंने 'पुनर्नवा' पर आपको कुछ लिखने के लिए बाध्य किया और आपने अपनी बला मेरे सिर टाल दी। अच्छा ही हुआ। क्योंकि मुझे 'पुनर्नवा' पढ़ने का अवसर मिल गया। पढ़कर मुझे सन्तोष हुआ। गप्प मारना कोई आपसे सीखे। काल्पनिक घटनाओ का आपने ऐसा समावेश किया है कि पाठक भ्रम मे पड़ जाय कि वह इतिहास पढ़ रहा है। वैसे तो जब आपने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' लिखी थी, उसी समय आपने यत्र-तत्र अपने श्लोक भी जोड़ दिये थे। करालादेवी की स्तुति ऐसा ही श्लोक है। एक निष्ठावान संस्कृत विद्वान ने उसे किसी प्राचीन संस्कृत का श्लोक मानकर एक बार उसकी ऐसी व्याख्या की कि मैं कुछ विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि आपने स्वप्न में भी उसका ऐसा अर्थ नही सोचा होगा। हालांकि कोई भी नहीं बता सकता कि वह या कोई अन्य व्यक्ति स्वप्न मे सोचेगा और क्यों सोचेगा। फिर भी मनुष्य का मन अटकल तो लगाता ही रहता है। लेकिन प्रतिवर्ष मे तो आपने अपभ्रंश के दोहे और पद भी गढ़कर चला दिये हैं। आप और लोगों को चाहे भ्रम मे डाल दें परन्तु मुझसे आपका कुछ भी छिपा नही है। भ्रम मे पड़नेवाले कोई और होंगे।

मुझे अच्छी तरह याद है कि आपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में लिखा था कि "भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम-भर लिया है, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण-संग्रह की

ओर कम; कल्पनाविलास का अधिक मान था, तथ्यनिरूपण का कम; सम्भावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम; उल्लसित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम। इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा। ऐतिहासिक तथ्य इन काव्यों में कल्पना को उकसा देने के साधन मान लिये गये हैं। राजा का विवाह, शत्रुविजय, जलक्रीड़ा, शैल-वन-विहार, दोला-विलास, नृत्य-गान-प्रीति–ये सब बातें ही प्रमुख हो उठी हैं। क्रमश इतिहास का अंश कम होता गया और सम्भावनाओं का जोर बढ़ता गया। राजा के शत्रु होते है, युद्ध होता है। इतिहास की दृष्टि में एक युद्ध हुआ, और भी तो हो सकते थे। कवि सम्भावना को देखेगा। राजा के एकाधिक विवाह होते थे, यह तथ्य अनेको विवाहों की सम्भावना उत्पन्न करता है, जलक्रीड़ा और वनविहार की सम्भावना की ओर संकेत करता है और कवि को अपनी कल्पना के पंख खोल देने का अवसर देता है। उत्तरकाल के ऐतिहासिक काव्यो मे इसकी भरमार है। ऐतिहासिक विद्वान् के लिए संगति मिलाना कठिन हो जाता है।" मैंने उस समय आपसे पूछा था कि "इसको आप अच्छा समझते है या बुरा।" आपने सीधे जवाब न देने की अपनी शैली मे कहा था, "आधुनिक इतिहासवेत्ता झुंझला जाते हैं लेकिन जो सहृदय है, जिनकी दृष्टि रस ग्रहण करने की है उन्हें तो यह अच्छा ही लगता है।" मैंने आपसे फिर प्रश्न किया था कि "आज के युग में इस प्रकार का रस-प्रधान कोई कथाकाव्य लिखा जाय तो कैसा हो।" आपने हँसकर कहा था, "कोई शक्तिशाली आधुनिक कथाकार इसका प्रयोग करे और इतिहास-रस को बचाते हुए इस विशुद्ध भारतीय दृष्टि से निजन्धरी कथाओं का प्रयोग करे तो परिणाम अच्छा भी हो सकता है।" मैंने कहा था, "किसी शक्तिशाली कथाकार की प्रतीक्षा करने के स्थान पर स्वयं ही आप ऐसा प्रयोग करें तो कैसा हो!" आपने, मेरी दृष्टि में ईमानदारी के साथ ही, कहा था कि "प्रयोग करने से ही तो उत्तम रचना नही बन जाती" और फिर अनमने भाव से कहा था, "करके देखा भी जा सकता है।" बात बहुत पुरानी है, मैं ठीक से कह नही सकता कि आपको उस समय का वार्त्तालाप याद है कि नहीं। परन्तु 'पुनर्नवा' पढ़ने के बाद मैं इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा कि आपने प्रयोग कर दिया है। आप मेरे सम्बन्ध मे कहा करते है कि मैं आलोचक हूँ, सहृदय नही। फिर भी मुझे यह साहित्यिक प्रयोग रुचा है, जो सहृदयो को लक्ष्य करके लिखा गया है, वह अच्छा लगा है। मुझे ऐसा लगता है कि आजकल के आधुनिक कथाकार यह भूल ही जाते हैं कि कथा मे साहित्यरस का होना आवश्यक है। मुझे खुशी है कि आप नहीं भूले हैं।

मैं जानता हूँ कि 'पुनर्नवा' के पात्र वास्तविक जीवन से लिये गये हैं। वह पूरा परिवेश आपका अत्यन्त परिचित और आत्मीय है जिसमें कथा को जड़ा गया है। हलद्वीप आधुनिक हल्दीप है; द्वीपखण्ड, द्रवहड है; च्यवन भूमि, जपही है, यह तो लोग अन्दाज से समझ भी सकते हैं; परन्तु द्वीपखण्ड का सरस्वतीविहार जो आपकी अपनी जन्मभूमि है यह कम लोग समझ पायेंगे। मैं आपका अत्यंत निकट आत्मीय होने

के कारण चन्द्रा और सुमेर काका को पहचानता हूँ। श्यामरूप और गोपाल आर्यक को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ और आर्य देवरात भी मेरे जाने हुए है। इन चरित्रों में जो-जो सामान्य स्तर से अधिक उत्कर्ष आपने दिखाया है वह भी यथार्थ पर आश्रित है, ऐसा मेरा विश्वास है; परन्तु इन जाने-माने गाँवों के चरित्रों को आपने जो गरिमा दी है वह आपका विशिष्ट अवदान है। किसी दूसरे के हाथ में पड़ने पर ये कदाचित् और तरह के हो जाते। हर लेखक का अपना व्यक्तित्व और संस्कार होता है और वह उसके पात्रों मे प्रतिफलित होता है, परन्तु विश्वास मानिए कि ये चरित्र आज भी जीवन्त है। इस क्षेत्र के देहातों मे घूमते समय मैंने पाया है कि ये चरित्र केवल पुस्तक तक सीमित नही है, प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं, बात करते है और प्रच्छन्न भाव से सहृदयो को आमन्त्रित करते है कि 'मुझे पहचानो, मुझे उजागर करो'!

मुझे मालूम है कि जब आप नीरस कामों से थक जाते हैं तो इस प्रकार के गप्पों की रचना में विश्राम पाते है। 'कालिदास की लालित्य योजना' लिखते समय आपके चित्त में अनेक मूर्त्तियाँ उभरी थी जिन्हे आप रूपायित करना चाहते थे। शोध-कार्यों में पग-पग पर प्रमाण की आवश्यकता होती है और कल्पना को यथासम्भव दूर ही रखने का प्रयत्न होता है। आप ऊबे हुए थे। आप चाहते थे कि 'भावानुप्रवेश' को प्रत्यक्ष दिखायें और इसलिए आपने 'पुनर्नवा' का आरम्भ किया था, मगर मुझे लगता है कि कालिदास को आप इस ग्रन्थ में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित नहीं कर सके। आपके चित्त मे जो एक द्वन्द्व है कि काव्यकार कालिदास और नाटककार कालिदास एक ही व्यक्ति है या नही, उस द्वन्द्व ने आपको बुरी तरह से अस्पष्ट कर दिया है। आपकी इस द्विविधा को मैंने पहले-पहल 'चारुचन्द्र लेख' में ही देखा था। नाटककार कालिदास को ईसवीपूर्व के प्रथम शताब्दी मे प्रायः सिद्ध कर चुके थे। 'प्रायः' इसलिए कहता हूँ कि वहाँ भी आपके चित्त का द्वंध बाधक बन गया था। 'पुनर्नवा' में तो इस द्विविधा ने आपको कोई बात स्पष्ट कहने नही दिया है, यह दोप है। परन्तु मैं जानता हूँ कि आप अपने स्वभाव से लाचार हैं।

आपने साहसपूर्वक 'मृच्छकटिक' के गोपाल आर्यक और शार्विलक को लोक-कथा में प्रसिद्ध लोरिक और सावरूँ से जोड़ने का प्रयास किया है, साथ ही चारुदत्त और वसन्तसेना की कथा को ऐतिहासिक आवरण से मुक्त करके निजन्धरी कथा मे ले आने का साहस किया है। मेरी दृष्टि मे यह उचित हुआ है, परन्तु उसी साहस और स्पष्टता के साथ आप कालिदास को नहीं उभार सके। उभारते-उभारते रुक गये हैं। मेरा आपसे अनुरोध है कि इस कमी को पूरा करें, भले ही कोई और गप्प मारने की योजना बनानी पड़े।

मैं इस आशा से लिख रहा हूँ कि आप इतिहासरस की रक्षा करने में समर्थ होकर भी अनावश्यक द्विविधाओं के शिकार न हों। वैसे 'पुनर्नवा' कथानक की दृष्टि से मुझे बहुत शिथिल नही जान पड़ती। शिथिलता इसकी इस बात मे है कि इसका आरम्भ कालिदास के भावो को उजागर करने के उद्देश्य से हुआ था।

'पुनर्नवा' नाम भी कालिदास के एक श्लोक से प्रेरणा ग्रहण करके लिया गया था। इसकी तर्कसम्मत परिणति कालिदास के भावों को और स्पष्ट करने में होती।

मैं आपकी उस युक्ति से परिचित भी हूँ और प्रभावित भी हूँ कि "जो हो सका वह सामने है, जो नहीं हो सका उसके लिए कौन हाय-हाय करे।" 'पुनर्नवा' जैसी है उसी पर विचार करना चाहिए। फिर भी मेरा मन बार-बार 'जो नहीं हुआ' उसकी ओर खिंच रहा है, क्षमा करें।

2.4.1975 व्योमकेश शास्त्री

[रचनाकार 'द्विवेदीजी' के नाम 'व्योमकेश शास्त्री' (आलोचक) के इस पत्र से एक ही साहित्यिक व्यक्तित्व के दोनों रूप उजागर होते हैं। 'पुनर्नवा' पर अपनी प्रतिक्रिया के रूप में इसे संलग्न करते हुए लेखक ने कथाकार भीष्म साहनी को लिखा था।]

[2]

2.4.75

प्रिय भाई भीष्म जी,

'पुनर्नवा' पर तो मैं कुछ नहीं लिख सका परन्तु मेरे अभिन्न 'व्योमकेश शास्त्रीजी' से अनुरोध किया कि वे अपनी प्रतिक्रिया लिखें। वही आपकी सेवा में भेज रहा हूँ।

आशा है स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम

[1]

शान्तिनिकेतन
11-4-36

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

पत्र मिल गये। आपने महिला अंक और कहानी अंक के लिए सुझाव मांगे हैं। अभी मुझे कुछ सूझ नहीं रहा है। एक मात्र सुझाव जो इस समय मैं दे सकता हूँ वह यह है कि इसका नाम महिला-अंक न रखकर महिला-संख्या रखिए। इस अवस्था में महिला-अंक से आपका किसी प्रकार का सम्बन्ध आशंका का कारण है नही तो क्या? राष्ट्रीय अंक से उतर कर एकदम महिला-अंक मे आने की आइडिया किसके दिमाग में आयी है, आपके या वर्माजी के? देखते हैं पत्थरों के शहर में भी वसन्त का प्रभाव कम नही है।

'योगी' का जो कटिंग आपने भेजा है, उसे किसी एक और मित्र ने कलकत्ते से ही भेजा था। स्वयं योगी वालों ने उसे गुरुदेव और विश्वभारती के पास भेजा था। हम लोगों ने उसकी अपेक्षा करना ही सोचा था। असल में उसका टोन इतना असंस्कृति-पूर्ण है कि उसका कुछ जवाब दिया ही नहीं जा सकता। आप कितनी भी अधिक युक्ति देकर उस आदमी को कैसे कायल कर सकते हैं जिसने मान लिया है कि नाचना और गाना स्त्रियों के लिए सबसे बड़ा विघातक पाप है क्योंकि योगी के सम्पादक रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी हैं। उनके विचार कितने उलझे हुए हैं जो वेश्यावृत्ति भी नष्ट करना चाहते हैं, संगीत और कला की प्रतिष्ठा भी करना

चाहते हैं, और गृहदेवियों को इससे अलग रखने का भी उपदेश देते हैं। लेख में गुरुदेव के सम्बन्ध में इतनी उच्छृंखल बातें हैं कि पढ़कर क्रोध होता है। गोसाईं जी ने ऐसे नियमों के लिए दो व्यवस्थायें दी हैं।

काटिय जीह जो चलइ बसाई।
स्रवन मूंदि न तु चलिय पराई।

वश चले तो जीभ काट लो और नहीं तो कान मूंदकर भाग चलो। हमारी राय है कि दूसरा ही उस काम में लाया जाय।

लेकिन अगर अपने नाम से आप इसका प्रतिवाद करना ही चाहते हैं तो मैं दो-एक दिन में लिखकर भेज देता हूं।

एडवर्ड कार्पेन्टर (Edward Carpenter) का काम हो गया हो तो किसी आते-जाते के हाथ भेज दीजियेगा। साल के अन्त में ये लोग किताबों का हिसाब मिलाते है।

गुरुदेव आजकल कलकत्ते में ही हैं। उनकी दौहित्री का शुभ विवाह 19 अप्रैल को होने जा रहा है तब तक वे यहाँ आवेंगे। शेष कुशल है।

आपका
हजारी प्रसाद

वर्माजी के भाई साहब के स्वर्गवास के समाचार से बड़ा दुख हुआ। जो ऐसा हुआ था, वह अत्यन्त भयंकर था। उनकी हसंमुख सौजन्य भरी मूर्ति भूलती नहीं। भगवान् की लीला है।

[2]

शान्तिनिकेतन
20.4.36

श्रद्धेय चतुर्वेदी जी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिल गया था हरिबाबू के स्केच के सम्बन्ध में तथ्यादि संग्रह करके मैं दो-एक दिन में भेज दूंगा। स्केच आप ही अच्छा लिख सकेंगे। मैं इस समय एक दम आ रहा हूं।

'महिला अंक' में हैवलक एलिस का 'फेमिली' नामक प्रबन्ध जरूर अनुवाद करके दीजिये। इसमें इस विषय में संसार के सर्वश्रेष्ठ मनीषी का सभी समस्याओं का बड़ा सुन्दर विवेचन होगा। यह लेख जरा छोटा जरूर है पर बहुत उपयोगी है। सन्तति नियमन के सम्बन्ध में दोनों पक्ष की पूरी-पूरी दलीलें संस्कृत भाषा में नितान्त आवश्यक हैं।

हमारे पुस्तकालय में इस विषय की जो पुस्तकें हैं उसे बृहस्पतिवार को

निकालूंगा। प्रभात बाबू से सलाह ले रहा हूँ। गुरुदेव की सबसे नयी कविता पुस्तक 'विचित्रा' में 'आधुनिका' नामक कविता है। यह अपराजिता देवी नामक एक आधुनिका देवी के उत्तमयोगो(?)के उत्तर मे पत्र रूप में लिखी गयी थी। मजे की चीज है। दे सकते हैं।

श्री जैनेन्द्र कुमारजी आप ही के यहाँ रहते हैं न। उन्हें मेरा प्रणाम कहिए। बड़ी इच्छा थी कि उनसे ही···कोशिश पर विवश हूँ, मिल नही सकता। हिन्दू समाज व्याख्यानमाला के सम्बन्ध मे आप उन्हें पूरी सूचना दे दीजिए। 'विशाल-भारत' के राष्ट्रीय अंक में उनकी पट्टी साफ कीजिए। आपकी टिप्पणी बहुत अच्छी है। एक ही अंक मे क्रोपाटकिन और शास्त्रीजी के विषय मे लिखकर आपने यह सिद्ध किया है कि आपकी दृष्टि में मनुष्यता सबसे बड़ी चीज है, कोई वाद नही। शास्त्रीजी वाले लेख मे आपने उनके कोमल हृदय का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। वर्माजी का जवाहरलाल का स्केच खूब है। राष्ट्रीयअंक में सभी लेख पठनीय हैं। यह अंक बहुत सफल हुआ है, सम्पूर्णानंद जी का लेख बडा सुन्दर हुआ है। पर जो चीज मुझे सबसे अधिक रुची है वह नवीनजी की कमला देवी संबंधी कविता। यह दिल को दहला देने वाली कविता है। नवीनजी को इसके लिए बधाई दी जानी चाहिए।

आपका

हजारीप्रसाद

आश्रम अब जुलाई मे ही खुलेगा। चेचक का प्रकोप अब एकदम शान्त हो गया है। गुरुदेव यहीं है जिनकी दौहित्री का 25 को विवाह है। आज मणी या जैनेन्द्रजी इधर आना चाहें तो आ भी सकते हैं।

[3]

शान्तिनिकेतन
10-6-36

मान्यवरेषु

अनेक प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। यह पत्र न भी मिला होता तो मैं आज पत्र लिखता क्योंकि पत्र लिखने का समय आज आ गया था। बात यह थी कि मैं इन दिनों विषम चिन्ता का शिकार बन गया था। सौभाग्यवश मुझे एक हल्का सा काम मिल गया था। मेरी आखें जहा तक काम दे सकती थी मैं इसी मे चिपटा रहा। पत्र लिखना बंद कर दिया था। कल पूरे सौ रुपये का काम समाप्त कर चुका हूं। अगले सप्ताह में भगवान की कृपा होगी तो 20 रुपये का और कर लूंगा। इस प्रकार इस जून

के भीतर 120 रुपये पा जाऊंगा और ऋण की एक किश्त जो जेठ की पूर्णिमा को दे देनी चाहिए थी आषाढ़ में निश्चित रूप से चुका सकूंगा। यह रुपया मुझे अप्रत्याशित रूप से मिल गया है। इसके लिए आप लोगों का आशीर्वाद और स्नेह ही कारण हैं।

इस बीच आपका कृपा पत्र और सुधाकरजी की पुस्तक मिल गयी थी। मैं जल्दी में समालोचना न कर सका। इस अंक के लिए आज कल मे भेज रहा हूँ। पुस्तक अच्छी है शैली जटिल है। आपकी आज्ञानुसार पुस्तक समालोचना के बाद पुस्तकालय को दे दूंगा। अभी मेरे ही पास है।

इस मास का 'विशाल भारत' मिला। हरि बाबू बहुत प्रसन्न हुए हैं और कुशलता प्रकट की है। विशाल भारत के इस अंक में सत्यवती देवी की कहानी मैंने पढ़ी। दो-एक महीने पहले भी एक कहानी पढी थी। दोनों कहानियो में सचाई है। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि सत्यवतीजी बहुत शीघ्र अनेक कहानी लेखकों को पीछे छोड़कर आगे निकल जायँगी। यद्यपि मैंने जो दो कहानियाँ पढी हैं उनका वक्तव्य एक ही जान पड़ता है पर यह कोई कारण नही कि यह समझ लिया जाय कि उनका विषय सीमित है। हो भी तो कोई हर्ज नही। सचाई चाहिए और वह इन कहानियों मे है। मुझे यह बात और भी अच्छी लगी कि सत्यवतीजी अनावश्यक विस्तार नही करती। इस अंक में अज्ञेयजी के लेख की यह बात मेरे मन की है कि हिन्दी एक प्रादेशिक भाषा है। इसका रूप, इसकी प्रगति अभी लोगों को निर्माण करना चाहिए। राष्ट्रभाषा का नाम देकर इसमें अन्य प्रदेश वालों का अनुचित हस्तक्षेप कभी-कभी असह्य हो उठता है। अगर यह राष्ट्रभाषा है तो दूसरों के लिए है। हमारे लिए तो यह मातृभाषा है और हमारा और इसका जीवन-मरण का सम्बन्ध है। दूसरों के लिए राष्ट्रभाषा का सवाल प्रयोजन और सुविधा का है। हमारे लिए यह प्रयोजन और अप्रयोजन से परे है। हमारे हास और अश्रु, प्रेम और रोष, भक्ति और श्रद्धा को रूप देनेवाली भाषा को अगर कोई राष्ट्रीय व्यावहारिक या राजनीतिक कारणों से सुविधाजनक मान ले तो हम पर कृपा नहीं कर रहा है कि हम उसकी अंगुली के इशारे पर अपनी मर्म-स्पर्शी वाणी में परिवर्तित करते रहें।

पर यह भी ठीक है कि हिन्दी भाषा सरल होनी चाहिए। इसलिए नहीं कि बाहर वालों को इससे सुविधा होगी बल्कि इसलिए कि हमारे साहित्य का विकास होगा। लघुभार भाषा आसानी से उद्देश्य सिद्धि की ओर अग्रसर हो सकती है।

विशाल भारत के इस अंक में मैं नेमियर रिपोर्ट के बारे में कुछ पढ़ने के लिए आस लगाये बैठे था। मैं सोचता था कि या तो कोई खोजपूर्ण लेख या सम्पादकीय टिप्पणी इस पर मिलेगी। पर न मिली। अगले अंक में क्या कुछ मिलेगा।

साहित्य सम्मेलन के सम्बन्ध में आपकी टिप्पणी बहुत अच्छी है। बेनीपुरीजी का पत्र पढ़कर उनकी विशेषता मालूम हुई। बिचारे सम्पादक को इतना लाचार रहना पड़ता है, यह बात काफी दुखजनक है। एक बात और। उस पत्र का अन्तिम

अंश शायद मजाक में लिखा हुआ है। उसका आपने बड़ा कड़ा और सिरियस होकर जवाब दिया है। "विहार के जातीय पात" शब्द का इस्तेमाल शायद आपने व्यंग्य करके किया है। यह बात आपकी प्रकृति के विरुद्ध हुई है।

हिन्दी समाज का वार्षिकोत्सव जब आपकी सुविधा हो कर लिया जायेगा। जैनेन्द्रजी को और अज्ञेयजी को जुलाई में अन्तिम सप्ताह या अगस्त के प्रथम सप्ताह मे बुला लूंगा। आप अपनी सुविधा के अनुसार तारीख बता दीजिये। विचार है कि मैथिलीशरणजी की स्वर्ण जयन्ती हिन्दी समाज की ओर से मनाई जाय। कैसा होगा ?

गुरुदेव आजकल यही है। आश्रम प्रायः सूना है। इस समय अपने पुत्र और कन्या के साथ आ जायें तो अच्छा ही होगा। और अगर उन लोगों को बाल अवस्था मे आश्रम दिखाना चाहते है तो 22 जून के बाद आइये। 22 जून को पढाई शुरू हो जायेगी।

भगवती प्रसाद चन्दोला वी. ए. में पास हो गये है। हिन्दी के सभी लड़के एफ.ए. और वी. ए. में पास हो गये हैं। केवल एक लडकी फेल है। शेष कुशल है।

आपका

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[4]

शान्तिनिकेतन

10-7-36

मान्यवर चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। कलकत्ते मे मेरी पत्नी का जो आपरेशन हुआ था वह बहुत सफल रहा। वे अब स्वस्थ हो आयी है। कानोडियाजी और सेकसरियाजी ने मेरे ऊपर बहुत कृपा की है। धावलेजी से मालूम हुआ था कि आपने ही कानोडियाजी से पहले कहा था और उसके फलस्वरूप कानोडियाजी ने मुझमे कलकत्ते आकर इलाज करने को कहा। अर्थात्, इसमे भी आप दूर से बैठे सूत्रधार का काम कर रहे थे।

मैं और चन्दोलाजी हिन्दी भवन के क्वार्टर्स मे आ गये है। हाल मे बैठे-बैठे मैं कुछ पढ़ने-लिखने का कार्य कर रहा हूँ। लेकिन अभी भी हिन्दी भवन का वायु-मण्डल बन नही पाया। इस विषय में आप कुछ करें या हम लोगों को कोई रास्ता सुझावें। मैं काम करने को तैयार हूँ परन्तु कोई निश्चित प्लैन और व्यवस्था बहुत आवश्यक है। गुरुदेव ने परसों इस विषय पर बहुत-सी बातें की। उन्होंने फिलहाल मुझे अपनी पुस्तक 'बंगला भाषा परिचय' के आदर्श पर 'हिन्दी भाषा परिचय' नाम

से पुस्तक लिखने को कहा है। वे चाहते हैं कि पुस्तक में हिन्दी की भिन्न-भिन्न बोलियों से ऐसे शक्तिशाली प्रयोगों को स्टैण्डर्ड भाषा में परिचित कराया जाय जो उसमें प्राप्त नहीं है। यह कार्य है तो बहुत महत्वपूर्ण पर मुझे अपनी शक्ति के सम्बन्ध में सन्देह है। मैंने अध्ययन शुरू कर दिया है देखें सफलता कहाँ तक मिलती है।

चन्दोलाजी को उन्होंने हिन्दी साहित्य की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व कर सकनेवाली कविताओं को संग्रह करने का काम दिया है। इस कार्य में हम दोनों लग गये हैं, पर यहीं पर। मैं चाहता था कि हिन्दी भवन एक जीवित संस्था बने। वह विद्याभवन की तरह दो-चार आदमियों के रिसर्च करने की तो जगह न हो। उससे हिन्दी भाषी जनता को···मिले।···और युवक साहित्य आते-जाते रहें। कैसे इस संस्था को इस प्रकार सजीव बनाया जा सकता है यह बात आप सुझावें। रथी बाबू को लिखना उचित समझें तो उन्हें भी लिखें।

[5]

शान्तिनिकेतन
21-12-36

श्रद्धास्पदेषु,

प्रणाम।

प्रेमचन्द दिवस बड़े उत्साह से मनाया गया। क्षितिमोहन बाबू अध्यक्ष थे। उनका भाषण वि. भा. के लिए भेजूँगा। बड़ा अच्छा है। भारतीय कथा साहित्य में युग-गुरु प्रेमचन्द का स्थान उस व्याख्यान का विषय था। चन्द्रगुप्तजी की कहानी का मूल भेज दीजिए। मलिकजी ने कहा है। वैसे कहानी के मत से बहुत अच्छी नहीं है। वे कहते हैं कि बाहर की दुनिया में पहले-पहल सेकेन्ड रेट की चीज न जाय। चन्द्रगुप्त जी की कोई दूसरी फर्स्ट रेट की कहानी हो तो अच्छा हो। जैसे आप कहें। प्रेमचन्दजी का अंग्रेजी अनुवाद कुछ-कुछ हो रहा है। पहला अनुवाद (ठाकुर का कुआँ) कल पढ़ा गया था। खूब समादृत हुआ।

मैंने सुना है कि आप दुबले होते जा रहे हैं सदा चिन्ताग्रस्त रहते हैं। विनोद जी ने ऐसा लिखा है। मैं आपकी इस हालत को सुनकर क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता। डर की कोई बात है नहीं। अपने नानाविध दुःख की अवस्थाओं में गुरुदेव के इस भजन से बड़ा उत्साह पाता हूँ। शायद आपको भी इससे रोशनी मिल सके। इसी आशा से आज इस भजन को भेज रहा हूँ। सवेरे उठकर एक बार पढ़ने से जरूर साहस और बल मिलेगा। मेरा अनुभव है। पहले अनुवाद और बाद में कविता दे रहा हूँ। 'विपत्ति में मेरी रक्षा करो' यह मेरी प्रार्थना नहीं है। ऐसी शक्ति दो कि मैं विपद से न डरूँ। अगर तुमने दुःखताप से व्यथित चित्त में

सान्त्वना न दी तो कोई बात ।ही, लेकिन ऐसा करा कि मैं दुःख को जीत सकूँ। यदि मेरा कोई सहाय न मिले, तो इतना ही हो कि मेरा अपना बल न टूटने पावे। अगर मेरे संसार का कुछ नुकसान हो जाय, मैं केवल वंचना ही पाऊँ तो भी ऐसा हो कि मैं अपने मन मे क्षीणता न मानूँ---

विपदे मोरे रक्षा कर,
ए नेह मोर प्रार्थना,
विपदे आमि ना येन करि भय।
दुःख तापे व्यथित चित्ते,
नाइ वा दिल सान्त्वना,
दुःखे येन करिते पारि जय।
सहाय मोर ना यदि जुटे,
निजेर बल ना येन टुटे,
संसारे ते घटिल क्षति,
लभिले शुधु वंचना,
निजेर मने ना येन मानि क्षय।

'तुम मुझे बचाओ' यह मेरी प्रार्थना नही है। केवल इतनी शक्ति दो कि मैं तैर सकूँ। कोई बात नहीं, अगर तुमने मेरा भार हल्का करके सान्त्वना न दी! केवल ऐसी ही हो कि मैं (इस भार को) ढो सकूँ। सुख के दिनों मे सिर झुकाकर तुम्हारा मुँह पहचान लूँगा लेकिन दुःख की रात मे जिस दिन सारी पृथ्वी मुझे वंचना कर रही हो उस दिन, ऐसा हो कि, तुम्हारे ऊपर सन्देह न करूँ---

आमारे तुमि करिबे त्राण
ए नहे मोर प्रार्थना,
तरिते पारि शक्ति येन रव।

आमार भार लाघव करि'
नाइवा दिले सान्त्वना,
वहिते पारि एमनि येन हय।

नम्र शिरे सुखेर दिने
तोमारि मुख लइब चिने,
दुखेर राते निखिल धरा,
ये दिन करे वंचना,
तोमारे येन ना करि संशय।

मैंने यह नुस्खा वैद्य की भाषा मे लिखा है। यद्यपि मैं वैद्य होने का दावा नही करता पर निश्चयपूर्वक आप इससे फायदा पावेंगे ऐसा कह सकता हूँ। क्योंकि इस विषय मे मेरा थोड़ा सा अनुभव है।

शेष कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद

[6]

शान्तिनिकेतन
7-1-37

मान्यवर चतुर्वेदीजी,
प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। बलराम की चर्चा महाभारत मे नाना प्रसंगों पर आई है। एक बार वे पाण्डवो का दुःख देखकर सोचने लगते है कि क्या बात है कि पुण्यात्मा पाण्डव दुःख पा रहे हैं और पापी दुर्योधन आनन्द कर रहा है। पर भीम और दुर्योधन दोनों ही उनके शिष्य थे। इसलिए वे किसी भी पक्ष की ओर से युद्ध नहीं करना चाहते। इस विषय मे उनसे अधिक दृढता का परिचय महाभारत का कोई भी पात्र नही दे सका—भीष्म, द्रोण; कृपाचार्य इत्यादि कोई नही। उद्योगपर्व के दूसरे अध्याय में जबकि पाण्डवों की मन्त्रणा सभा बैठी थी उन्होने स्पष्ट रूप से कहा कि युधिष्ठिर ने अपने दोष से राज्य खोया है। इसमें दुर्योधन का कोई अपराध नहीं। वे जुआ खेलने गये ही क्यों ? इसीलिए लड़ाई करके दुर्योधन से राज्य मांगना अन्याय है। शान्ति से नम्रतापूर्वक ही उससे व्यवहार करना चाहिए—

अयुद्धमाकांक्षत कौरवाणं साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम् (उद्योग 2 : 13)

इसके बाद जब दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण को अपने-अपने पक्ष मे लेने के लिए द्वारका गये और श्रीकृष्ण ने एक तरफ स्वयं नि.शस्त्र रहने और दूसरी तरफ दस हजार नारायणी सेना देने का वचन दिया तो दुर्योधन ने सेना लेना स्वीकार किया और फिर बलराम से मिलने गये। बलराम ने फिर भी कहा कि मैं दोनों पक्षों में से किसी की ओर नही जा सकता। मैं बार-बार कहता हूँ कि मेरा सम्बन्ध दोनों ओर बराबर है—'मया सम्बन्धक स्तुल्यइति राजन्पुनः पुनः।' और न तो मैं पार्थों की सहायता करूँगा और न दुर्योधन की। कृष्ण को देखते हुए यही मेरी निश्चित राय है।

नाहं सहाय. प्रार्थना नापि दुर्योधनस्य वै।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्यह (उद्योग 7-29)

इसके बाद समर सज्जा हो चुकने के बाद एक बार बलराम फिर पाण्डवों के पास जाते हैं और युधिष्ठिर से कहते है कि मैं देख रहा हूँ कि यह दारुण युद्ध होकर ही रहेगा। मैंने कृष्ण से बार-बार कहा कि पाण्डव और कौरव हमारे लिए समान हैं। इन सम्बन्धियों के साथ समान व्यवहार करो। हमारे लिए जैसे पाण्डव वैसे ही दुर्योधन। तुम उसकी भी सहायता करो। लेकिन कृष्ण ने अर्जुन की ओर देख कर (पक्षपात करके) मेरी कही न की। मैं कृष्ण को छोड़कर (उनके बिना) संसार को देख नहीं सकता। इसलिए अगत्या मुझे भी उनकी इच्छा का अनुवर्त्तन करना पड़ता है। भीम और दुर्योधन दोनों ही मेरे समान रूप से प्रिय शिष्य हैं। दोनो ही

गदा युद्ध में विशारद हैं। इसलिए मैं सरस्वती तीर्थ को जा रहा हूँ क्योंकि नष्ट होते हुए कौरवों की मैं उपेक्षा नहीं कर सकता --

भविषयं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः
दिष्टमेतद् ध्रुवं मन्ये नशक्य मह्विर्वतितु । 25
उनमो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपह्वरे ।
सम्बन्धिसु समां वृत्ति वर्तस्व मधूसूदन । 28
पाण्डवा हि यथायाकं तथा दुर्योधनोनृप ।
तस्यापि भ्रियता साह्यं स पर्येति पुनः पुन । 29
तदच मे नाकरोकतं त्वदर्थे मधुसूदनः ।
निविष्टः सर्वभावेन धनञ्चपमवेक्ष्यह । 30
न चाहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुं ।
ततोऽहमनुवर्तामि केशवस्य चिकीर्जिताम् । 32
उभो शिष्यौहिवीरौ गदायुद्ध विशादौ ।
तुल्यस्तेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधनेनृपे । 33
तस्माद् यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्वा निषेवितुम् ।
न हिशक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम् । 34

(उद्योग. 156 अध्याय)

अन्तिम वाक्य ही शायद इस कथा का मूल है कि जो कमजोर होगा, बलराम उसी की ओर से लड़ेंगे। मेरी जानकारी जहाँ तक है, संस्कृत महाभारत में ऐसा वाक्य नही है। एक और प्रसंग पर बलराम की चर्चा है। उसे भी लिख देता हूँ। शायद उससे आपका अभीष्ट सिद्ध हो। जिस तीर्थयात्रा की बात बलराम ने कही है वह जब समाप्त हो गयी तो लौटकर उन्होंने देखा कि लड़ाई प्रायः समाप्त हो गयी है। भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध होने जा रहा है। दोनों पक्ष के अनुरोध पर बलराम शिष्यों की लड़ाई देखने गए। भीषण युद्ध हुआ। अचानक भीम ने उछलकर वार करने की चेष्टा करते हुए दुर्योधन की जांघ पर गदा का आघात कर दिया। ऊरु भंग हो गया और दुर्योधन कातर आवाज के साथ धरती पर लोट गये। यह बात गदायुद्ध के सिद्धान्त के विरुद्ध थी। क्योंकि इस युद्ध में नाभि के ऊपर ही आघात करने का नियम है। बलराम ने जो यह अन्याय देखा तो क्रोध से जल उठे और लांगल उठाकर भीम पर पिल पड़े। कृष्ण ने बड़े परिश्रम से उन्हें शान्त किया। वहाँ पर बलराम के कथन का एक श्लोक यहाँ दे दे रहा हूँ।

हे कृष्ण केवल दुर्योधन ही नही गिरा है, दुर्योधन, जो विषम होते हुए भी मेरे समान योद्धा था, बल्कि आश्रित की दुर्बलता से आश्रय की भी निन्दा होती है (अर्थात् दुर्योधन यहां अकेला और मेरा आश्रित था, मैं उसका आश्रय था। उसका पतन मेरा भी पतन है!)

न चैष पतितः कृष्ण केवलं मत्समोऽसमः
आश्रितस्य तु दौर्बल्यात् आश्रयः परिभत्स्यंते ।(शल्य पर्व, 60 अध्याय)

(यह श्लोक केवल बम्बई के छपे महाभारत मे है। कलकत्तावाले में नहीं। पर *अन्य कई हस्तलिखित प्रतियो मे है।*)

कुछ विस्तारपूर्वक मैंने इस प्रसंग की चर्चा इसलिए की कि आप अपनी जरूरत के अनुसार उपयोग करें। बहुत खोजने पर भी मैं आपके पत्रोक्त वाक्य (दुर्बल का पक्ष ग्रहण करूँगा) न पा सका।

मेरा एक लेख बहुत दिनो से पडा है। जरा Controvrsil हो सकता है। भेजता हूँ, पसन्द आवे तो छाप दीजियेगा। किसी पर कोई व्यक्तिगत आक्षेप नही और न किसी के किसी लेख का जवाब है। अर्थात् विशाल भारत की नीति के विरुद्ध नही है।

शेष कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद

[7]

शान्तिनिकेतन
11-1-37

मान्यवर पण्डितजी,

प्रणाम।

कई पत्र मिले, समय पर जवाब न दे सका। क्षमा प्रार्थी हूँ। और हां, आप यात्रापर लेख लिख रहे है, ठीक ही कर रहे है। संस्कृत के कवि ने प्रवास के कई गुण गिनाये हैं, दोष केवल एक है। गुण यथा—तीर्थ दर्शन, परिचय, पैसा कमाना, अचरज भरी चीजें देखना, वुद्धि की चतुरता, वाणी की प्रशस्तता। लेकिन दोष यह है सो भी महान—*कि 'मुग्धा के मधुराधर सुधापान के विना' रहना पड़ता है।* तो इससे आपका क्या ?

तीर्थानामवलोकनं, परिचयः सर्वत्र, वित्तार्जनं,
नानाश्चर्यनिरीक्षणं, चतुरता वुद्धेः, प्रशस्तागिरः
एते सन्ति गुणा. प्रवास विषये, दोषोऽस्ति चैको महान्
यन्मुग्धा मधुराधराधरसुधापानं विनास्थीयते !

पर यह ठीक है कि देश-देश का कौतुक देखकर, पैसा कमाकर, विरहोत्कण्ठिता स्त्री से मिलनेवाले भी कम धन्य नही हैं।

देशे-देशे किमपि कुतुकादद्भुतं लोकमानाः
संपाद्यैवं द्रविणमतुलं सद्य भूयोऽप्यवाप्य
संयुज्यन्ते सुचिर विरहोत्कंठिताभिः सतीभिः
गोप्यं धन्याः किमपिदधते गर्वमंगत्वमुद्धाः।

सचमुच 'वह दुर्गति दरिद्र होता है जो अन्य व्यापार को छोड़कर बहू का

मुँह देख-देखकर ही घर में सोता रहता है।'

व्यापारान्तरमुत्सृज्य वीक्षमाणो वधूमुखम्
यो गृहेष्वेव निद्राति दरिद्राति‍प्त दुर्मतिः।

असल में जो देशाटन करता है और पण्डितों की सेवा करता है उसकी बुद्धि जल में तैल विन्दु की तरह से विलारित होती है, पर जो ऐसा नही करता उसकी बुद्धि जल में घी के बूंद की तरह जम जाती है।

यस्तु संचरते देशान् यस्तु सेवेत पंडितान्
तस्य विस्तारिता बुद्धिः तैलविन्दुरिवाभसि
यो न संचरते देशान् यो न सेवते पंडितान्
तस्य संकुचिता बुद्धिः घृतविन्दुरिवांभसि

लेकिन सही बात तो यह है पण्डितजी, कि जो अलस दुर्बुद्धि पुरुष घर मे ही बैठा रहता है वह अकिंचन और अत्यन्त परिचय के कारण स्त्री से भी उपेक्षित होता है, और राजाओं का अनुमरण न करने के कारण सबसे डरता रहता है, ऐसा कुएँ के कछुए का सधर्मा पुरुष संसार का हाल क्या जानता है और कौन सुख भोगता है ?

आकिञ्चन्यदतिपरिचयाज्जाययोपेक्षमाणः
भूपालानामननुसरणाद्विम्यदेवाखिलेभ्यः
गेहेतिष्ठन् कुमतिरलसः कूपकूर्मैः सधर्मा
किं जानीते भुवन चरितं किं सुखं चोपभुक्ते ?

रामचरितमानस के आरम्भ मे ही कहा है (दोहा न. 6 के बाद)

मुदमंगलमय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥

यहाँ आपकी सुविधा के लिए वैदिक साहित्य से कुछ उपयोगी श्लोक दे रहा हूँ। शायद काम आवें।

साहित्यांक के लिए मैं संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त परिचय देना चाहता हूँ। महाभारत पर दूसरे अंक में लिखना अच्छा होगा। या जैसा आप समझें। महाभारत पर लिखना चाहें तो मुझे विशाल भारत के 24 कालम दीजिए। मेरी ओर से यह विश्वास रखिये कि उसमे एक अक्षर भी भरती का न होगा और म •ारत के सम्बन्ध में सारी जानकारी यथासाध्य दी जायेगी। आप हिन्दी अक्ष मे छपे महाभारत में व्यर्थ ही 30-40 रुपये न गलाइये। महाभारत का ग ग सस्ता संस्करण बंगवासी प्रेस न बंगला अक्षरो मे (मूल संस्कृत को) छापा है। दा 5 रुपये था। इधर कुछ बढ़ा दिया है। इसमे नीलकण्ठ की समूची टीका भी आगयी है। शेष कुशल है।

हजारीप्रसाद

[8]

शान्तिनिकेतन
7-9-37

श्रद्धेय चतुर्वेदी जी,
प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। विशाल भारत में दे सकने लायक कुछ टिप्पणियाँ आज्ञानुसार भेज रहा हूँ। जो अच्छी लगें उनमें यथोचित परिवर्तन के साथ दे दें। हिन्दी भवन का समाचार आनन्द के साथ सुना। अब आपका स्वप्न सच होगा। 'जा कर जा पर सत्यसेनहू। सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू।' मैंने एक टिप्पणी इस विषय पर भी दी है। वह ज्यों की त्यों छापने के लिए नहीं; मेरा नाम तो उसमें नहीं ही आना चाहिए। आप अपने नाम पर उसी 'लाइट' में टिप्पणी लिख दें। मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध इस बात से होने के कारण मैं अपनी ओर से कुछ कहने में संकुचित होता हूँ। आप से कहने में कोई संकोच नहीं। मैं आप से अपने हृदय की बात कह रहा हूँ। शान्ति निकेतन मे रहकर मैं जो कुछ साहित्यिक कार्य कर सकता हूँ। वह नहीं कर सकता। मुझे 30-35 पीरियड प्रति सप्ताह काम करने के बाद भी प्रतिदिन पेट की चिन्ता के लिए कई अनावश्यक यांत्रिक काम करने पड़ते हैं। जो क्लास मैं लेता हूँ उनमे ग्यारह घण्टे संस्कृत में दो घण्टे स्तोत्र में। 6 घण्टे गणित पढ़ाने में सम्मिलित हैं। हिन्दी का कार्य कुल 10-11 घण्टे करता हूँ। इस प्रकार 19 घण्टे मेरा कम करके साहित्यिक रचनात्मक कार्य में लगाया जा सकता है। मेरी बहुत इच्छा है कि विंटरनित्स के "भारतीय साहित्य" के ढंग पर समस्त भारतीय साहित्य का एक परिचयात्मक इतिहास हिन्दी में लिखूँ पर 'रुटीन वर्क' के बोझ से ऐसा करना एकदम असम्भव है। इसी प्रकार चंदोलाजी से भी बहुत कुछ साहित्यिक कार्य की आशा की जा सकती है। पर यह सब तभी हो सकता है जब हम लोगों को कुछ रचनात्मक कार्य करने की भी सुविधा हो। हिन्दी भवन की व्यवस्था में ऐसे 'प्रोविजन' की जरूरत है। मैं जोर देकर कहता हूँ कि केवल भाषा का प्रचार ही अगर हिन्दी भवन का लक्ष्य हो तो यह 15 हजार रु. अन्यत्र ज्यादा काम कर सकता है। शान्तिनिकेतन मे हिन्दी भवन का प्रयत्न गम्भीर साहित्यिक प्रतिष्ठान के रूप मे होना चाहिए। मुझे अगर कुछ रचनात्मक कार्य करने की भी सहूलियत हो तो मै तो बच जाऊँ। यह सब बातें केवल आप से कह रहा हूँ।

यह सुनकर कि आप विशाल भारत को छोड़ भी सकते हैं जी मे कैसा कैसा लग रहा है। ऐसा आपने क्यो निश्चय किया। विशाल भारत से हमारी एक गहरी आत्मीयता है वह आपके ही कारण है। इधर धन्यकुमार जी ने इस्तीफा दे दिया है। विशाल भारत का क्या होगा। विशाल भारत के लिए आपको क्या किसी सहायक की जरूरत है? मैं एक बहुत योग्य युवक का नाम 'सजेस्ट' करता हूँ। भक्त-

दर्शन तो आपको याद होंगे। उन्होंने इलाहबाद से राजनीति मे एम. ए. पास किया है और स्वयं पत्र निकालने का विचार कर रहे हैं। बहुत सुलझे हुए आदमी और आपके नितान्त अपने है। इनको आप बुला सकते हैं।

आगे जो कुछ लिखकर भेज रहा हूँ उसे आप अपनी भाषा मे कर लें तो अच्छा हो।

शेष कुशल है। आप क्या अब भी यहाँ से भागने का विचार रखते है। लम्बी छुट्टी पर जाने के पहले क्या यहाँ एक बार नहीं आयेंगे। हिन्दी भवन के बार मे कुछ विधि व्यवस्था के सम्बन्ध मे बाते करने का विचार था। आप जाने की तारीख लिखें तो हम लोग भी आने की चेष्टा करेंगे।

आपका
हजारीप्रसाद

[9]

शान्तिनिकेतन
26-1-38

पूज्य पण्डितजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। मुझे आपका निमत्रण स्वीकार है। इसी का सुयोग पाकर एक बार आपके दर्शन कर सकूँगा और कई बातों मे आपकी सलाह ले सकूँगा। गुरुदेव के सम्बन्ध मे मेरा भाषण लिखित ही होगा। वही शायद आप पसन्द भी करें। मैं बिना लिखे बोल नही सकता। रथी बाबू से आपकी बात कह दी। उन्होंने मुझे स्वीकृति दी है। शेष आने पर। कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद

[10]

शान्तिनिकेतन
11-2-38

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

मैं कल यहाँ सानन्द पहुँच गया। ग्वालियर मे मैं अपना व्याख्यान थोड़ा-सा ही पढ़ पाया। लेकिन दूसरे दिन विक्टोरिया कालेज में विद्यार्थियों के सामने भाषण

दिया। इसका विषय भी रवीन्द्रनाथ और शान्तिनिकेतन था। वह व्याख्यान काफी सफल था। मैं 70 मिनट बोलता रहा पर कोई ऊबा नही। आगरे मे नागरी प्रचारिणी सभा मे मैं मंगलवार के दिन सभापति था। सौभाग्यवश मुझे थोड़ा ही बोलना पडा नही तो उतनी बड़ी सभा को मैं अधिक देर तक सँभाल सकता कि नही, मालूम नही। श्री महेन्द्र जी बड़े उत्साही और सज्जन हैं। श्री गुलाब राय जी मुझे बहुत सौम्य और सत्पुरुष मालूम हुए। पं. हरिशंकर शर्माजी तो सौजन्य की मूर्त्ति ही है। आपके दोनों पुत्रों के सौजन्य से मैं बहुत खुश हुआ। चौबे होस्टल में और भी कई मित्रों ने मेरी बड़ी खातिर की। कमलेशजी की कविता मैंने बड़े चाव से सुनी। हम लोग उस रात को खूब हँसे। चौबे लोगो के रक्त में शायद हँसी का कीटाणु ही घुस पडा है।

विजय गढ के मित्रों से श्री द्विवेदीजी, जैनजी तथा अन्य सज्जनों से मेरा प्रणाम कहिए। उनकी कृपाओ को मैं कभी भूल नही सकता। श्री इन्द्रायणसिंह जी का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। दुर्भाग्यवश समयाभाव के कारण मैं बनारस उतर नही सका। इसलिए उनके लड़के से मिल नही सका। उनसे मेरी ओर से क्षमा माँग लीजिये। महाराज साहब की उदारता और सज्जनता का मेरे ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा।

शेष फिर

आपका
हजारीप्रसाद

[11]

शान्तिनिकेतन
3-4-38

पूज्य चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र और लेख मिले। आपने जो विचार व्यक्त किये हैं उससे मैं लगभग पूर्णरूप से सहमत हूँ। दो तीन महीने पहले 'उत्थान' में मैंने ऐसे ही विचार प्रकट करने की कोशिश की थी, यद्यपि उसका विषय कुछ और (हिन्दी भाषा कैसी हो) होने के कारण वह ज्यादा एकेडेमिक सा लगता था और आपके लेख मे जो जोर है उसका तीन चौथाई उसमें नही था। आपने उचित मौके पर अधिकारपूर्वक इस विषय की ओर साहित्य सम्मेलन का ध्यान आकृष्ट किया है। आपने नाना प्रदेशों में वास किया है और प्रत्यक्षत: तत्तत् प्रदेशों की जनमण्डली का हिन्दी भाषा के प्रति रुख जाना है। मैं इतना अनुभव नही रखता। मैंने सारी जिन्दगी बंगाल और यू. पी. में काटी है। गैर-हिन्दी भाषी प्रदेशों में एकमात्र बंगाल के ही देखने-समझने का अवसर मुझे मिला है। सो इस प्रदेश के बारे में आप मुझ से अधिक ही

अनुभव रखते हैं। फिर भी एक बात में आपकी कुछ सहायता कर सकता हूँ। मैंने बँगला साहित्य पढ़ा है, बंगाली मित्रों के बीच दिन-रात वास किया है—आपकी अपेक्षा कहीं अधिक बंगाली हो सका हूँ, इसीलिए उनकी मनोवृत्ति भी समझ सकता हूँ। (आपके यहाँ से लौटती बार जब मैं ग्वालियर गया था तो कुछ विद्यार्थियों ने मुझे बंगाली ही समझ रखा था, ऐसा जान पड़ा और आगे जो कुछ लिखने जा रहा हूँ उससे आपको मालूम होगा कि बंगाल में बहुत हाल में जो आन्दोलन शुरू किया जाने वाला है उसके अनुसार मैं 'खाँटी बँगाली' हो जा सकूँगा।

बंगाल के साहित्यिकों के साथ घनिष्ठता बढ़ाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। ऐसे आदमियों की कमी नहीं है जो स्वीकार करते है कि बंगाल में हिन्दी प्रचार होना चाहिए। परन्तु उनमें सौ फीसदी हिन्दी साहित्य के ही जिज्ञासु है। अर्थात वे हिन्दी साहित्य को जानना चाहते है। हिन्दी भाषा को नहीं। मुझे ऐसा बंगाली विद्वान् नही मिला है जो बिना 'किन्तु' लगाये हिन्दी के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करता हो। हमारे कई मित्रों ने प्रेमचन्दजी और सुदर्शनजी की कहानियों का :नुवाद करना शुरू भी किया है, पर सही बात यह है कि हिन्दी साहित्य के प्रति उनका अनुराग बढ नही पाता। वे उस साहित्य मे अपनी क्षुधा मिटाने की पूरी तैयारी नही पाते। कुछ तो अपनी अपेक्षा से और कुछ हमारी साहित्यिक दरिद्रता के कारण। जो कुछ अच्छा साहित्य रचित हुआ है उसका प्रदर्शन हम नही कर सके हैं। आपको एक ताजी घटना सुनाऊँ। गुरुदेव ने एक सप्ताह पहले हम लोगो को बुलाकर हिन्दी साहित्य के बारे में बातचीत की। उस दिन हम भी पूरे मूड मे थे और गुरुदेव भी। वे बहुत प्रसन्न थे। उन्होने कहा कि तुम्हारी भाषा बड़ी शक्तिशालिनी है, तुम्हें अभी आदमी नहीं मिला है, नहीं तो यह भाषा नि.सन्देह भारतवर्ष की सर्वाधिक सम्पन्न भाषा होती। मैंने प्रेमचन्दजी की याद दिलायी, उन्होंने अफसोस के साथ कहा कि यह दुख की बात है कि प्रेमचन्द इसी उमर मे चल बसे। उनसे तुम्हें बहुत आशा थी। इसके बाद ही आपकी दिशा मे रहनेवाले एक वृद्ध साहित्यिक ने अपनी संग्रह की हुई हिन्दी की वर्तमान कविताओं का सर्वश्रेष्ठ संग्रह भेज दिया। गुरुदेव ने उसे उलट-पुलट कर देखा और अत्यन्त निराश भाव से दूसरे दिन कहा—'बापू याइ बलो न केन, तोमादेर एखनो साहित्यिक सेन्स हय नि'। (यह वाक्य अखबारों में छपाने के लिए नहीं है।) और उनकी सारी आइडिया खराब हो गई। क्योंकि इस संग्रह के वृद्ध संग्राहक गुरुदेव से मिलकर यह इम्प्रेशन डाल चुके थे कि वे हिन्दी के धनी-धोरी हैं। गुरुदेव से मैंने फिर ज़ोर देकर कहा कि यह आधुनिक हिन्दी काव्य का उत्तम प्रदर्शन नही है। वे बोले—तो तुम क्यों नही एक अच्छा संग्रह करते। ऐसे ही संग्रहों के बल पर तुम हिन्दी साहित्य के प्रति दूसरों का प्रेम आकृष्ट करोगे लेकिन सच पूछिये तो मैं लज्जा से तब और भी अधिक गड़ गया जब उस पुस्तक मे सचमुच ही उन कविताओं के बल पर राष्ट्रभाषा का डिण्डिम घोष किया गया था। मैं कहता हूँ कि क्यों हिन्दी को हिन्दी नहीं कहा जाता,

क्यो उसे मातृभाषा नही कहा जाता, क्यों इस बात को स्वीकार करने में हम हिचकते हैं कि उसके द्वारा करोड़ों का सुख-दुःख अभिव्यक्त होता है ? राष्ट्रभाषा अर्थात तिजारत की भाषा, राजनीति की भाषा, कामचलाऊ भाषा---यही चीज प्रधान हो गयी और मातृभाषा, साहित्य भाषा, हमारे रुदन हास्य की भाषा गौण ! हमारे साहित्यिक दारिद्र्य का इससे वढ़ कर अप-प्रदर्शन और क्या होगा।

अभी 'देश' के इसी अक (2 अप्रैल) 1938 मे एक मजेदार लेख छपा है। यह टिपिकल वंगाली मनोवृत्ति का सूचक है और उससे भी अधिक सूचक है इसी अंक की सम्पादकीय टिप्पणी, यद्यपि उसकी भाषा मे उजड्डपन अधिक है। लेख का सारांश यह है कि हिन्दी भाषा-भाषियो की प्रकृत सख्या 1 करोड़ 60 लाख के आसपास है और वगला वोलने वाले जिनमें लेखक ने समूचे विहार, युक्त प्रान्त के पूर्वी जिले, उडीसा और असम को मान लिया है, दस करोड़ के आसपास आती है। वंगला भाषा ही, इसलिए राष्ट्रभाषा हो सकती है क्योकि उसके बोलने वाले अधिक भी है और वह समृद्ध भी है। 'देश' की टिप्पणी को गाली कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। उसमे हिन्दी भाषी खास कर विहारियों को कड़ी सुनायी गयी है। 'देश' आपको मालूम है कि आनन्द वाजार पत्रिका परिवार से सम्बद्ध साप्ताहिक है और उसका सर्कुलेशन भी वहुत अधिक है,(शायद 12 हजार)। इस प्रकार वंगाल के लोग राष्ट्रभाषा के विरोधी हैं। यहां, जैसा कि मैंने पहले ही आप से कहा था, भाषा के प्रचार की कोशिश करना व्यर्थ है। यहां यह प्रचार तभी सफल हो सकता है जव सस्कृति का महत्वपूर्ण साहित्य प्रचारित हो। यह काम चुपचाप वहुत दिनो से श्री क्षितिमोहन बाबू कर रहे हैं। एक बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार विभाग ने (या ऐसी ही किसी संस्था ने, मुझे ठीक याद नही) वर्धा से उन्हें सदस्य होने का अनुरोध किया था उस समय क्षितिबाबू ने मुझसे एकान्त में एक बात कही थी वह काफी गुरुत्वपूर्ण है। मैं उनसे उसके प्रकाशित करने की आज्ञा तो नही ले सका पर आप से विषय का गुरुत्व प्रगट करने के लिए कह रखूं। उन्होंने वताया कि मैं इस संस्था का सदस्य नही हो सकता क्योंकि इसके सदस्य होने से मेरा सब कार्य चौपट हो जायेगा। लोग समझेंगे कि यह भी हिन्दी प्रचारक है। इसका अर्थ यह है कि इस प्रदेश मे हिन्दी प्रचार का कार्य स्वार्थमूलक समझा जाता है और प्रचारकों के उद्देश्य को कोई अच्छी दृष्टि से नही देखता। इस हालत मे मैं समझता हूं, हमे प्रचार शब्द से अपने को दूर रखना चाहिए। ध्यान देने की बात है कि जव तक प्रचार शब्द का आविष्कार नही हुआ था तव तक वंगाल ने हिन्दी की बहुत जबर्दस्त सेवा की है। अब प्रचार का फल यह हुआ कि 'देश' के लेख में वताया गया है कि बंगालियों को कभी हिन्दी मे वोलना न चाहिए।

मेरा दृढ विश्वास है कि हिन्दी का प्रचार अच्छे साहित्य के निर्माण मे ही हो सकता है। अगर आप इस प्रदेश मे अपने साहित्य और मातृभाषा की मर्यादा रखना चाहते है तो अपना साहित्य समृद्ध कीजिए और उसके उत्तम अंगो का परिचय कराइये ! और कोई भी रास्ता सुगम नही जान पड़ता। हमे दुनिया भर के झमेलो मे

पढ़कर अपनी शक्ति नष्ट करने की अपेक्षा घर सँभालने मे अपनी सारी शक्ति लगाना चाहिए। आपने बिल्कुल ठीक कहा है कि अपने अन्य भाषा भाषी मित्रों से हमे साफ कह देना चाहिए कि हिन्दी प्रचार का काम हमारे स्वार्थ का नही है। इसमे आज आपको कोई फायदा मालूम होता हो तो सीखिये नही तो अपने-अपने रास्ते जाइये। इसमे इतना और जोड़ देना चाहिए कि अगर आपको इसमे फायदा मालूम होता है तो कृपापूर्वक हमे आज्ञा दीजिए हम यथा साध्य सेवा करने के लिए तैयार है।

पत्र बहुत लम्बा हो गया। आपको अगर इसमे कोई बात उपयोग योग्य जान पड़े तो ले लीजियेगा। 'देश' के लेख और टिप्पणी की कटिंग भी भेज रहा हूँ।

इस समय शान्तिनिकेतन मे 77 विद्यार्थी हिन्दी शिक्षण पर है। 30 सदस्य हिन्दी समाज मे हैं। 6 बंगाली अध्यापक हिन्दी मे अपने विचार प्रकट करने की चेष्टा करते हैं। यह सब कुछ करते समय मैंने सदा अपनी नीति चुप रहने की ही रखी है। प्रचार-प्रचार कहते रहने से काम खराब होता है। यदि इस पत्र के किसी वाक्य के प्रकाशन से आपको ऐसा जान पड़े कि मेरी चुपचाप की नीति पर कोई भला-बुरा असर पड़ता है तो उसे मेरे नाम से न दीजिए।

यह जानकर अफसोस हुआ कि आपकी होली भी खुश्क हो गयी। खैर, कुछ चिन्ता नही, इस ग्रीष्म काल मे भी अगर पद्माकरजी का नुस्खा इस्तेमाल कीजिए तो 'हरिअरी' आ सकती है :श्री इन्द्रायण सिंहजी से मेरा प्रेम कहिए तथा गौरीशंकर जी द्विवेदी और जैनजी को मेरा प्रणाम अन्य सभी मित्रो को मेरा स्मरण करा दीजिये। यहाँ कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[12]

पूज्यवरेषु,

शान्तिनिकेतन
30-7-38

सादर प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। गुरुदेव के सम्बन्ध मे लिखी जानेवाली पुस्तक के लिए जो पारिश्रमिक आप लिख रहे है उसमे मुझे कोई आपत्ति नही है। आप जैसी चाहिए वैसे ही शर्तें प्रकरण मे लिख सकते है। आप भी तभी लिखते तो भी पुस्तक की भाषा सुधारने का भार मैं आपको देता। पुस्तक का खाका तैयार करके आपको भेजूंगा। उसमें परामर्श तो आपको देना ही पड़ेगा। असल मे जीवन चरित्र लिखने के क्षेत्र मे मैं एकदम विद्यार्थी हूँ और अगर आपने स्वयं ही इस कार्य के लिए मेरा नाम

सुझाया होता तो मुझे इस क्षेत्र मे अग्रसर होने का साहस ही न होता। मैंने शुरू मे प्रो. इन्द्रजी को सुझाया था कि कवि की जीवनी का प्रधान प्रतिपाद्य उसके काव्य की अन्त.प्रेरणा और उसके विकास की व्याख्या ही होनी चाहिए। परन्तु वे पुस्तक lay man के योग्य चाहते है। इस बात को दृष्टि में रखकर ही परामर्श दीजियेगा।

मेरी चिट्ठी को आपने इतना महत्त्व दिया यह पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ। अगर आपको मेरे विचार पसन्द है तो मैं उन्हे लेखबद्ध कर सकता हूँ। उस चिट्ठी के प्राइवेट अंश को निकालकर छपाने मे मुझे कोई आपत्ति नही है, पर छपने को देने से पहले उसे अगर मै भी देख लूं तो अच्छा होगा। वैसे मैं जानता हूँ कि मैं न भी देखूं तो कोई हर्ज नही होगा क्योकि आपके हाथ से ऐसे अंश प्रेस में जा ही नही सकते जो व्यक्तिगत मामलो से सम्बन्ध रखते हों।

आपका ऊर्श क्या अब भी कष्ट दे रहा है? सुनकर चिन्ता हो रही है। लौटती डाक से अपने स्वास्थ्य का संवाद दीजियेगा। मलिकजी आपको प्रणाम कहते हैं। पिछली गर्मियों मे वे भी इसी रोग से तंग रहे। फिर उनको कुछ हृदय की बीमारी भी रही। क्षितिमोहन बाबू भी आपको प्रणाम कहते हैं। मलिकजी कहते हैं कि उनके घर पर एक ऐसी दवा है जिससे दो हजार आदमियों का ऊर्श आराम हुआ है। आपकी आज्ञा हो तो भिजवा दें। बिल्कुल hareuless है वे स्वयं हृदय दौबल्य के कारण व्यवहार नही करते।

हिन्दी भवन बन रहा है। दो महीनों मे तैयार हो जाएगा। तैयार हो जाने के बाद आप आवें तो कैसा रहे? इस समय गुरुदेव कलकत्ते में है। उनके जाने के कारण यह है कि प्रो. मोहलानबीस की पत्नी रानी देवी को टायफायड हो गया है। उन्हें गुरुदेव बहुत प्यार करते है। लोगों ने बहुत मना किया पर वे न माने। मजा यह कि जिस दिन जाने का निश्चय किया उसी दिन घण्टे भर पहले तक रथी बाबू को भी मालूम नही होने पाया कि वे जा रहे हैं।

गुरुदेव के विषय मे जो बातें आप चाह रहे हैं उन्हें बाद में भेजूंगा।

पूजा की छुट्टियों मे आने की इच्छा तो है, पर समय निकाल सकूँगा या नही, यह नही कह *सकता*। असल मे आजकल तो क्लास से फ़ुरसत नही मिलती। जिस पुस्तक के लिखने की बात हो रही है वह छुट्टियो में ही लिखी जा सकती है। बाहर जाने पर उपयुक्त सामग्री नही मिल सकेगी।

आप क्या सचमुच हैजे के डर से फीरोजाबाद आए हुए हैं? मैंने तो समझा था कि भेड़ियों का उपद्रव बढ गया है। बरसात मे दूर-दूर के भेड़िये जंगल-पहाड़ लांघ कर बस्ती तक आ जाया करते हैं। खैर, यह जानकर आश्वस्त हुआ कि ऐसी कोई बात नही है।

पिताजी को मेरा प्रणाम कहिये। आपके दोनों पुत्र आजकल क्या घर पर हैं? उन्हें मेरा प्रेम कहिये।

मैं यहाँ सानंद हूँ। चतुर्वेदी, आदि भी अच्छे हैं। हिन्दी समाज की ओर से

आगामी मंगलवार को तुलसी जयन्ती धूमधाम से मनाई जा रही है। प्रातःकाल तुलसीदास के भजन से ही प्रभात फेरी और वैतालिक गान होंगे। शाम को तुलसीदास के भजन और कविता का पाठ तथा व्याख्यानो का प्रबन्ध किया गया है। एक दिन के लिए आश्रम मे गुरुदेव के स्थान पर तुलसीदास विराजेंगे।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[13]

पूज्य चतुर्वेदी जी,
प्रणाम।

शान्तिनिकेतन
13-9-38

बहुत दिनों के बाद पत्र लिखने बैठा हूँ। आपने जिन सज्जनों को पत्र लिखने को कहा था उन्हें उसी दिन लिख दिया था। डा. धीरेन्द्र वर्मा और श्री भगवती प्रसाद वाजपेयीजी की प्रीति पूर्ण पत्रियाँ पा भी चुका हूँ।

हिन्दी भवन के बनने मे अब विशेष देर नही है। दीवालें बन चुकी है। छत बनने की देर है। पूजा की छुट्टियों तक निश्चित रूप से तैयार हो जायेगा। आपकी निष्ठा का बीज इस प्रकार सदेह प्रत्यक्ष हो गया। ज्यों-ज्यों भवन बनता जा रहा है त्यो त्यो चिन्ता बढती जा रही है। अब क्या होगा। हिन्दी भवन बना ही समझिये। इस समय हम तीन अध्यापक हिन्दी का काम कर रहे है। मैं और चंदोलाजी तो आप के पूर्व परिचित ही हैं। एक नये मित्र और भी आये है जो अभी अवैतनिक भाव से कार्य कर रहे हैं। इनको भी आप शायद जानते है। इनका नाम है श्री बलराज साहनीजी। पंजाब के एम. ए. है। हाल ही मे यहाँ आये है। बहुत ही मिलनसार और उत्साही आदमी है। हिन्दी समाज मे इस समय लगभग 50 विद्यार्थी सदस्य है जो सभी उच्चतर शिक्षा के लिए आये है। हमारा लोभ बढ गया है, कार्य भी जटिलतर हो रहा है। अब सवाल यह है कि हिन्दी भवन का कार्यक्रम क्या हो। इस विषय मे आपने एण्ड्रूज साहब के व्याख्यान के द्वारा कुछ सुझाया था। हिन्दी भवन को हम एक क्रियात्मक और जीवनदायी साहित्यिक और सांस्कृतिक केन्द्र के रूप मे देखना चाहते है। परन्तु हमारे पास साधन बहुत ही कम हैं। हिन्दी मे जो दो-चार संस्थायें साहित्य-सर्जन का काम कर रही है उनमें प्रधान हैं, काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दुस्तानी एकेडेमी। हिन्दी भवन को इनके ऊपर, नही तो समकक्ष तो होना ही होगा। लेकिन हमारे कार्यक्रम मे नवीनता और मौलिकता भी होनी चाहिए। आप सुझावें कि हम किस प्रकार अपना कार्यक्रम स्थिर करें। अगर आप सलाह दें तो इस विषय मे अनुभवी विद्वानों से भी विचार

विनिमय किया जाय ।

एक बात की सख्त जरूरत है। वह यह कि हम लोग जो यहाँ हैं किसी नियत लक्ष्य की पूर्ति करने के लिये सदा बँधे रहे। इसके लिए हमने आपस में सलाह करके तय किया है कि विश्वभारती क्वाटर्ली के टक्कर का एक हिन्दी सांस्कृतिक त्रैमासिक निकालें और इस प्रकार सदा नियत समय पर नियत कार्य करने के लिए जुटे रहें। पर यह एक 'सजेशन' भर है। आपकी राय जानकर ही हम लोग इस विषय में और कुछ सोचेंगे। अगर आपको यह बात पसंद आ गई तो दूसरा सवाल आर्थिक होगा। हम इस विषय में ही ओरछे की ओर देखेंगे। खैर।

किसी-किसी मित्र की राय है कि त्रैमासिक न निकालकर ट्रांजेकशन्स निकाले जायँ। इस पर भी गौर कीजिएगा। फिर एक बड़ी-सी लाइब्रेरी की भी जरूरत है। अगर हमारा कोई त्रैमासिक आदि निकलने लगे तो पुस्तक संग्रह करने का काम भी होता रहेगा।

हमें कुछ छात्रवृत्तियों की भी जरूरत होगी। लेकिन यह सब कुछ हमारे कार्य-क्रम पर निर्भर करता है। पहले यह तो निश्चय हो जाना चाहिए कि हमें क्या-क्या करना है।

आप इस विषय में कुछ सोचकर लिखें। फिर जरूरत पड़ने पर मैं आ भी सकता हूँ और आपको तो इस बार आना ही पड़ेगा। उद्घाटन समारोह के दिन जरूर उपस्थित रहें।

प्रो. इन्द्रजी ने मुझे पुस्तक लिखने को कहा है लेकिन आपकी चिट्ठी जब उन्हें नहीं मिली थी तब। जो कुछ भी हो मैं पुस्तक लिखूंगा। दो सौ पृष्ठों से मेरा काम नहीं चलेगा। मैं इन्डेक्स बना रहा हूँ। फिर उसको सजाने के बाद में बता सकूँगा कि उसकी रूपरेखा क्या होगी। उसमें मैं विशद रूप से रवीन्द्रनाथ की जीवनी और साहित्यिक कृतियों की आलोचना और समसामयिक हिन्दी साहित्य की प्रगतियों की आलोचना करने की इच्छा रखता हूँ। आगे हरि इच्छा।

इस समय आपका स्वास्थ्य कैसा है? वात्स्यायनजी को आपने जो पत्र लिखा था वह मैंने देख लिया है। पत्र पढ़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। यह मैं मानता हूँ कि इस उम्र में आपको फिर से आकाश वृत्ति के आसरे में साहित्यिक खुदाई खिदमतगारी में नहीं कूदना चाहिए। पर मैं यह नहीं मानना चाहता कि इससे आपकी साहि-त्यिक तेजस्विता म्लान होगी। आप किसी विशेष विषय पर लिखने में हिचकते हों तो ठीक है। पर इसे आप मानसिक थकान क्यों समझते हैं? एक विषय पर से दूसरे विषय पर मन को ले जाना विश्राम ही कहलाता है, इसमें depressed होने की कोई बात नहीं है। मै आप से केवल इतना ही अनुरोध करता हूँ कि आप अपने को थका हुआ न समझिये। जो कुछ करते हैं या कर सकते हैं उसी को भगवान की दी हुई थाती समझकर आनन्दपूर्वक लगन के साथ करते जाइये। इसमें न तो कोई संकोच की बात है और न थकान की। ये बातें मैं अपने मानसिक दुःख के कारण लिख रहा हूँ। मुझे यह सुनकर बडा दुःख होता है कि आप कहे कि चूँकि

आपको एक राजा के यहाँ रहना पड़ता है। अतएव वहाँ भी प्रसन्न और लापरवाह देखना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि आप वहाँ रहकर भी ऐसा रह सकते हैं। शेष कुशल है। मित्र को प्रणाम।

आपका
हजारीप्रसाद

[14]

शान्तिनिकेतन
8-12-38

पूज्य पंडितजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। बबुआ की माँ कई दिनों से बहुत सख्त बीमार थी। अब अच्छी हो रही है। इसी झंझट में रहा। आपके पत्र का विस्तृत उत्तर दो-चार दिन बाद दूंगा। गुरुदेव से दस्तखत कराके भेजूंगा। क्षिति बाबू आने को तैयार हैं। आप जनरल सेक्रेटरी (रथी बाबू) को एक पत्र लिखें तो उनको सुविधा होगी। आप क्षिति बाबू को भी पत्र लिख सकते हैं। अगर वे गये तो मैं भी साथ हो लूंगा। हिन्दी भवन अभी कुछ बाकी है। इस महीने शायद उसका उद्घाटन नहीं हो सकेगा।

वेत्रवती के सम्बन्ध में कुछ references बाद में (दो-चार दिन बाद) भेजूंगा। चाचा वाली कविता लिख रखी है पर अनुवाद करना बाकी है। उसे भी यथा समय भेजूंगा।

शेष कुशल है। आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न हैं। जल्दी मे लिख रहा हूँ। सब मित्रों को प्रणाम कहिये। चंदोलाजी, साहनीजी और मलिकजी आपको प्रणाम कहते हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

[15]

शान्तिनिकेतन
19-3-39

पूज्य चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। कटिंग का अनुवाद साथ मे भेज रहा हूँ। हिन्दी प्रचार के सम्बन्ध मे आपने जो विचार भेजे हैं, मेरे विचार मे ठीक हैं। विशाल भारत के

गांधी अंक में हिन्दी प्रचार की समस्या नाम देकर मैंने ठीक में ही विचार व्यक्त किये थे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक हम अपने साहित्य को समृद्ध नहीं करेंगे। तब तक हमारा भाषा का प्रचार करना उपहासास्पद बना रहेगा। जब मैं यह बात कहता हूँ तो मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिन्दी का साहित्य अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य से हर बात में पिछड़ा हुआ है। कई बातों में वह पिछड़ा है तो कई बातों में वह अन्य प्रान्तीय भाषाओं को बहुत पीछे छोड़ गया है। हिन्दी पाठकों की दृष्टि निश्चयपूर्वक बहुत व्यापक और उदार है। हाल में वह अधिकाधिक विस्तृत होती गयी है। मैं नया लेखक ही हूँ। अधिक-से-अधिक बारह वर्ष से कलम चला रहा हूँ। परन्तु जहाँ-जहाँ मुझे जाने का अवसर मिला है वहाँ नई पीढ़ी के विद्यार्थियों ने मेरे लेखों के सम्बन्ध में प्रश्न किये हैं। उन प्रश्नों का अध्ययन करके मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि नयी पीढी का विद्यार्थी बड़ी सावधानी से हमारी प्रत्येक बात की जाँच कर रहा है। जाँच करने में उसकी दृष्टि प्रादेशिक संकीर्णता से आविल नहीं रहती। वह सारे जगत के साहित्य में इन लोगों का स्थान जानना चाहता है। कभी-कभी वह अपने अनुसंधान को मनोनुकूल न पाकर सोचने लगता है। इस नई पीढ़ी को आप विशेष करके देखिये तो साफ पता चलता है कि इसकी दृष्टि में हिन्दी की कोई प्रतिद्वन्द्विता बंगला या उर्दू से नहीं है। उसकी प्रतिद्वंद्विता अंग्रेजी या रूसी साहित्य से है। नई पीढ़ी का विद्यार्थी अपने साहित्य को उसी प्रकार सर्वांग सम्पूर्ण और समृद्ध देखना चाहता है। उसकी दृष्टि में शब्दों और पंक्तियों पर कलाबाजी दिखानेवाले का कोई मूल्य ही नहीं है। वह उनकी बात भी नहीं करता। इस प्रकार साहित्य की समृद्धि का अर्थ प्रान्तीय भाषाओं से अपनी हीनता अनुभव नहीं है। उनसे हमारा कोई झगड़ा भी नहीं है, कोई ईर्ष्या भी नहीं। आपका यह विचार मुझे बहुत ही पसंद है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन को दक्षिणी भाषाओं तथा बंगला आदि के लिए विशेष अध्ययन की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि हिन्दी के जरिये हम कम से कम सारे भारतीयों की आशा आकांक्षा को व्यक्त नहीं कर सकते तो राष्ट्रभाषा का शोरगुल व्यर्थ का परिश्रम है। हिन्दी साहित्य समस्त जगत के समृद्ध साहित्यों में से एक हो, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए और अन्य प्रान्तीय भाषायें भी इस लक्ष्य की ओर अधिकाधिक अग्रसर हों, यही उनके प्रति हमारा रुख होना चाहिए। मेरा दृढ विश्वास है कि उपयुक्त नेतृत्व मे यदि इस महालक्ष्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया जाय तो हमारी नयी पीढी बड़े उत्साह से उस कार्य को आगे बढाने में सहायक होगी।

आज समयाभाव से विशेष कुछ नहीं लिख रहा हूँ। आप यदि मेरे इन विचारों का किसी लेख में उपयोग करना चाहें तो यथेष्ट कर सकते हैं। मेरी इच्छा रही कि मैं इस विषय पर कुछ लिखूँ।

क्षिति बाबू आपको प्रणाम कहते हैं। आपके पत्र से वे बहुत हँसे। चंदोलाजी कुशल से हैं।

हजारीप्रसाद

[16]

शान्तिनिकेतन
5-4-39

माननीय चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र आज ही मिला। आपने पारिश्रमिक का एक अंश भिजवाने का आदेश देकर मेरा बड़ा उपकार किया है। अभी मिला नही है। कल-परसो तक शायद मिल जायेगा।

एक अपराध हो गया है। जैनेन्द्रजी ने आपके नाम यहाँ एक पत्र भेजा था। मैंने पता पढ़े ही बिना खोल लिया। वह तो कहिये कि यह कोई प्रेम पत्र नही था। अगर यह प्रेम पत्र होता तो अपराध की सार्थकता हो पाती। इस कम्बख्त पत्र से अपराध तो हो गया पर नितान्त नीरस अपराध। इसे क्षमा करने में भी आपको कोई मजा न आयेगा। यह सोचकर मैंने एक दिन तक इसे रोक रखा था कि शायद आप यहाँ आने वाले हों। पर आप आये भी नही। यहाँ तक आकर भी आप इधर न आ सके।

मैं शायद हिन्दी'''के लिए भी जाऊँगा। क्या आप भी पहुँचेंगे ? मैंने आपको सुनाने के लिए अपने साहित्यिक विचार नोट किये थे। उन्हे दिल्ली मे सुनाऊँगा। और फिर आपको भेज दूंगा। और सब कुशल है। आशा है आप सानान्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

पी. एस.—आपका वेहवावाला लेख मिल गया था।

[17]

तुलसी पुस्तकालय,
मन्दिर गली,
कलकत्ता।
30-5-39

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिल गया था। आपको घुमाई हुई लाठी भी देखने को मिल गयी। लोगों को लगी है, यह भी नाना पत्र-पत्रिकाओं से पता चला परन्तु मानसिक स्थिति ऐसी नही रही कि जवाब दे सकता। अपनी पत्नी की चिकित्सा के लिए

गांधी अंक में हिन्दी प्रचार की समस्या नाम देकर मैंने ठीक में ही विचार व्यक्त किये थे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक हम अपने साहित्य को समृद्ध नही करेंगे। तब तक हमारा भाषा का प्रचार करना उपहासास्पद बना रहेगा। जब मैं यह बात कहता हूँ तो मैं यह नही कहना चाहता कि हिन्दी का साहित्य अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य से हर बात में पिछड़ा हुआ है। कई बातों में वह पिछड़ा है तो कई बातों में वह अन्य प्रान्तीय भाषाओं को बहुत पीछे छोड़ गया है। हिन्दी पाठकों की दृष्टि निश्चयपूर्वक बहुत व्यापक और उदार है। हाल में वह अधिकाधिक विस्तृत होती गयी है। मैं नया लेखक ही हूँ। अधिक-से-अधिक बारह वर्ष से कलम चला रहा हूँ। परन्तु जहाँ-जहाँ मुझे जाने का अवसर मिला है वहाँ नई पीढ़ी के विद्यार्थियो ने मेरे लेखों के सम्बन्ध में प्रश्न किये हैं। उन प्रश्नों का अध्ययन करके मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि नयी पीढ़ी का विद्यार्थी बडी सावधानी से हमारी प्रत्येक बात की जाँच कर रहा है। जाँच करने में उसकी दृष्टि प्रादेशिक संकीर्णता से आविल नहीं रहती। वह सारे जगत के साहित्य में इन लोगों का स्थान जानना चाहता है। कभी-कभी वह अपने अनुसंधान को मनोनुकूल न पाकर सोचने लगता है। इस नई पीढ़ी को आप विशेष करके देखिये तो साफ पता चलता है कि इसकी दृष्टि मे हिन्दी की कोई प्रतिद्वन्द्विता बंगला या उर्दू से नही है। उसकी प्रतिद्वंद्विता अंग्रेजी या रूसी साहित्य से है। नई पीढ़ी का विद्यार्थी अपने साहित्य को उसी प्रकार सर्वांग सम्पूर्ण और समृद्ध देखना चाहता है। उसकी दृष्टि में शब्दों और पक्तियों पर कलाबाजी दिखानेवाले का कोई मूल्य ही नही है। वह उनकी बात भी नही करता। इस प्रकार साहित्य की समृद्धि का अर्थ प्रान्तीय भाषाओं से अपनी हीनता अनुभव नही है। उनसे हमारा कोई झगड़ा भी नही है, कोई ईर्ष्या भी नही। आपका यह विचार मुझे बहुत ही पसंद है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन को दक्षिणी भाषाओ तथा बंगला आदि के लिए विशेष अध्ययन की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि हिन्दी के जरिये हम कम से कम सारे भारतीयो की आशा आकांक्षा को व्यक्त नही कर सकते तो राष्ट्रभाषा का शोरगुल व्यर्थ का परिश्रम है। हिन्दी साहित्य समस्त जगत के समृद्ध साहित्यों में से एक हो, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए और अन्य प्रान्तीय भाषायें भी इस लक्ष्य की ओर अधिकाधिक अग्रसर हों, यही उनके प्रति हमारा रुख होना चाहिए। मेरा दृढ विश्वास है कि उपयुक्त नेतृत्व में यदि इस महालक्ष्य की ओर बढने का प्रयत्न किया जाय तो हमारी नयी पीढ़ी बडे उत्साह से उस कार्य को आगे बढाने मे सहायक होगी।

आज समयाभाव सेविशेष कुछ नही लिख रहा हूँ। आप यदि मेरे इन विचारों का किसी लेख मे उपयोग करना चाहें तो यथेष्ट कर सकते हैं। मेरी इच्छा रही कि मैं इस विषय पर कुछ लिखूं।

क्षिति बाबू आपको प्रणाम कहते है। आपके पत्र से वे बहुत हँसे। चंदोलाजी कुशल से हैं।

हजारीप्रसाद

[16]

शान्तिनिकेतन
5-4-39

माननीय चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र आज ही मिला। आपने पारिश्रमिक का एक अंश भिजवाने का आदेश देकर मेरा बड़ा उपकार किया है। अभी मिला नही है। कल-परसों तक शायद मिल जायेगा।

एक अपराध हो गया है। जैनेन्द्रजी ने आपके नाम यहाँ एक पत्र भेजा था। मैंने पता पढ़े ही बिना खोल लिया। वह तो कहिये कि यह कोई प्रेम पत्र नही था। अगर यह प्रेम पत्र होता तो अपराध की सार्थकता हो पाती। इस कम्बख्त पत्र से अपराध तो हो गया पर नितान्त नीरस अपराध। इसे क्षमा करने में भी आपको कोई मजा न आयेगा। यह सोचकर मैंने एक दिन तक इसे रोक रखा था कि शायद आप यहाँ आने वाले हो। पर आप आये भी नही। यहाँ तक आकर भी आप इधर न आ सके।

मैं शायद हिन्दी···के लिए भी जाऊँगा। क्या आप भी पहुँचेंगे ? मैंने आपको सुनाने के लिए अपने साहित्यिक विचार नोट किये थे। उन्हे दिल्ली मे सुनाऊँगा। और फिर आपको भेज दूँगा। और सब कुशल है। आशा है आप सानान्द है।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

पी. एस.—आपका वेहवावाला लेख मिल गया था।

[17]

तुलसी पुस्तकालय,
मन्दिर गली,
कलकत्ता।
30-5-39

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिल गया था। आपको घुमाई हुई लाठी भी देखने को मिल गयी। लोगो को लगी है, यह भी नाना पत्र-पत्रिकाओं से पता चला परन्तु मानसिक स्थिति ऐसी नही रही कि जवाब दे सकता। अपनी पत्नी की चिकित्सा के लिए

कलकत्ते आया हूँ। एक महीने से कभी यहाँ कभी वहाँ रहता हूँ। बच्चों को सम्हालने से इतनी फ़ुरसत भी नहीं मिल पाती कि जमकर पत्र लिख सकूँ। कल आपरेशन हुआ है। कनोडियाजी की कृपा से मातृसेवा सदन मे प्रबन्ध हो गया है। उन्होंने बडी कृपा की है। अब देखें कब तक छुट्टी मिलती है। डाक्टर कहते हैं पन्द्रह-बीस दिन लग जायेंगे।

और सब कुशल है। मेरा एक लेख बहुत दिन का लिखा हुआ पड़ा है। बौद्ध और जैन साहित्य में क्या है। यह विषय है। आपने संस्कृत साहित्य वाला लेख पसंद किया था। यह भी उसी तरह का है। कहिये तो भेजूँ। अवश्य ही अभी उसे पेपर करना बाकी है।

भाषा वाली आपकी टिप्पणी अच्छी है। मुझे केवल एक बात उसके विषय में निवेदन करनी है। वह यह कि क्या विषय के अनुकूल भाषा नहीं बनानी चाहिए। इस तरह सब जगह कठिन भाषा का प्रयोग दोष नहीं भी हो सकता है। तुलसीदास की विनय पत्रिका का आरंभ कितना आडम्बरपूर्ण है? इतने संशोधन के साथ आपका मत मान्य है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[18]

शान्तिनिकेतन
5-9-39

श्रद्धास्पदेषु,

सादर प्रणाम।

कृपा पत्र दोनों मिले गए। बडे दादा के विषय में गुरुदेव ने कहा कि मैं उनके इतना निकट रहा हूँ कि ऐसे मौके के उपयुक्त चीज लिखने मे बिल्कुल अयोग्य हूँ। मुझ से पक्षपात हो पाएगा। देखता हूँ, उनकी जीवन स्मृति मे काम की कोई चीज मिल जाय तो अनुवाद कर लूंगा। आप काम बाँट दीजिए। मुझे क्या करना होगा और कब तक? चंदोलाजी को क्या करना होगा और कब तक? क्षिति बाबू से लिखने को कह चुका हूँ। मालवीयजी भी थोडा-सा अपना संस्मरण लिख रहे है। गुरुदेव ने हेमलता देवी का नाम सुझाया है। वे आ जाएँगी तो उनसे भी कुछ लिखाने का प्रयत्न करूँगा। पुस्तक जो होगी उसे हिन्दी भवन की ओर से निकालने की बात उठी तो रथी बाबू के मन मे एक संकोच का-सा भाव दिखायी दिया। उन्हे भय हो रहा था कि शायद लोग यह समझने लगें कि हिन्दी भवन टैगोर फेमिली के विज्ञापन का साधन बनाया जा रहा है। यह बात मुझसे सुधाकान्त बाबू ने कही है। रथी बाबू ने स्वयं अभी तक कुछ नहीं कहा। खैर।

आप कब तक आएँगे? चित्र के उद्घाटन के सम्बन्ध में क्या-क्या करना

चाहिए। कनौडियाजी को भी एक पत्र लिखकर बता देना चाहिए। एक चित्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भी मिल जाने की उम्मीद है। हो सका तो दोनों के उद्‌घाटन का उत्सव एक दिन ही कर लेंगे। हिन्दी भवन के विषय में अक्टूबर के वि. भा. में लिखने की कोशिश करूँगा। पहले भाग में आपकी यात्राओं की और मनोविनोदों की चर्चा करूँगा। इसमें स्व. एम. नारायण जी का जरूर जिक्र होना चाहिए। नि.सन्देह वे पर्दे की ओट में से उक्त कार्यों का संचालन कर रहे थे, उन्होंने अगर आपको बहुत-सी जवाबदेहियों से मुक्त किया होता तो कौन जानता है क्या होता? एण्ड्रूज साहब तो होंगे ही, सुधाकान्त बाबू के प्रयत्नों का भी जिक्र होना चाहिए। पर मैं इस अंश को उतना सजीव नहीं लिख सकूँगा। आप उसे रिटच कीजिएगा। दूसरे अंश में मैं अपने विचारों को लिखूँगा कि मैं क्या चाहता हूँ। इस विषय में आपकी विशाल भारत वाली टिप्पणी और एण्ड्रूज साहब वाला व्याख्यान आधार का काम कर सकते हैं। फिर गुरुदेव के परामर्श तो हैं ही।

इस पत्र के साथ ही आपको एक कविता मिलेगी। इन कविताओं में मुझे एक अभिनव सौन्दर्य दिख पड़ा है। यह अगर आपको भी पसन्द आ जायें तो वि. भा. में एकाध को प्रकाशित करें।

मेरा एक लेख भी जा रहा है। मैंने नये ढंग से, कुछ हल्के से ढंग में, समालोचना का प्रयास किया है। आपको यह ढंग पसन्द हो तो लिखिए। अगर आपको पसन्द आया तो कुछ साहित्यिक कार्यकर्त्ताओं (व्यक्तियों के नाम से) चिट्‌ठी लिखने की सोच रहा हूँ। जैसे समालोचक जी के नाम, कवि जी के नाम, सम्पादकजी के नाम। इनमें यथासम्भव काम की बातें ही होगी पर हल्के ढग से लिखी हुई। हाँ, हिन्दी भवन का अभी मन्दिर ही बना है। देवता की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हुई है। वही असली चीज है।

राय प्रवीण पुस्तकालय की नीव कब डाल रहे है? मेरे विचार से गढ़ कुण्डेश्वर का भेड़िया-घर उसके लिए उपयुक्त स्थान है। जब उक्त शुभ तिथि की सूचना मिलेगी तब मैं प्रमाणित कर दूँगा कि आपका यह अदेशा गलत है कि 'राय प्रवीण की भूमि पर मेरी अकृपा है'।

यहाँ और सब कुशल है। चन्दोलाजी और साहनीजी आपको प्रणाम कह रहे है। यहाँ हिन्दी समाज में एक दुर्घटना हो गई है। हिन्दी समाज का असिस्टेंट सेक्रेट्री हरिशंकर नाम का एक विद्यार्थी था। गत बुधवार को वह पानी में डूबकर मर गया। हम उसकी स्मृति के रूप में एक निबन्ध प्रतियोगिता और पदम देने की व्यवस्था कर रहे है। बड़ा होनहार लड़का था।

आशा है आप सानन्द होंगे।

आपका

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[19]

शान्तिनिकेतन
17-9-39

मान्यवर चतुर्वेदीजी,

प्रणाम।

आपके पहले पत्रों का जवाब मैंने दिया था पर मालूम नहीं हो सका कि वह पत्र आपको मिला भी या नहीं। दूसरे पत्र के पाने के पहले ही गुरुदेव माडव्यू को रवाना हो चुके थे। इसलिए इण्टरव्यू वाली बात का सवाल ही नहीं उठता। सम्मेलन होने से पहले वे शायद यहाँ नहीं आएँगे। आपके पत्र का जवाब वही से दे दें तो ठीक है।

आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए इस वर्ष के प्रोग्राम की बात पूछी है। मेरा विचार यह है कि साहित्य सम्मेलन का प्रधान कार्य साहित्य का निर्माण और साहित्य का ही प्रचार होना चाहिए। साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं ने साहित्य के प्रचार में अद्‌भुत सहायता पहुँचाई है, यह सम्मेलन का मौलिक और ठोस कार्य है। मुझे स. के इस पद्धति के आविष्कार का गर्व रहता है। परन्तु इन परीक्षाओं में एक बड़ी भारी त्रुटि रह गई है। अगर किसी भी साहित्य-रत्न उपाधिधारी विद्वान् की साहित्यिक आलोचना आप पढ़ें तो आपको मेरी बात मे कोई सन्देह नही रह जाएगा। आलोचना के नाम पर इन परीक्षाओं में रीतिकालीन ग्रन्थ और लक्षण ग्रन्थों का इतनी अधिक मात्रा में अभ्यास कराया जाता है कि उस चक्रव्यूह से निकला हुआ महारथी साहित्यिक कन्वेंशन के ऊपर उठने में प्रायः असमर्थ हो जाता है। हमारे साहित्य की आलोचना भी इसीलिए समग्र जगत की उन समस्याओं को दृष्टि मे रखकर नही होती जो नित्य हमें जूझने को ललकार रही है बल्कि संकीर्ण रीतिमनोवृत्ति द्वारा परिचालित हो रही हैं। उचित यह था कि सम्मेलन का परीक्षा विभाग इस विषय की परवाह किये बिना कि उसकी परीक्षा की पाठ्य-पुस्तकें किसी विश्वविद्यालय की पाठ्य-तालिका से घटकर न हों, संसार की अभिनव चिन्तधारा से परिचय करनेवाली पुस्तकों को प्रधान स्थान देते। जिन विषयों मे पुस्तकें मौजूद न हों उन पर पुस्तकें लिखावें और लेखको को प्रोत्साहित करें। ऐसा करने से शायद युक्त प्रान्त की कांग्रेसी सरकार या और कोई सरकार उसकी परीक्षाओं को स्वीकार न करे। कोई हर्ज नही। सम्मेलन को कभी भी सरकार से सुलाह करने की मनोवृत्ति को प्रचय नही देना चाहिए। सरकार चाहे तो परीक्षाओं को स्वीकार कर ले मगर सम्मेलन को उसकी परवा नहीं होनी चाहिए। जिन विषयो की पुस्तकें हमारे साहित्यिक संस्कारों को बनाने के लिए नितान्त जरूरी हैं उनकी एक सूची मैंने विशाल भारत में मई (या उसके आस-पास) के अंक में प्रकाशित की है। मैं चाहता हूँ कि 'साहित्य की आलोचना' शब्द

को कविता का कहानी की आलोचना के रूप में ही व्यवहार न किया जाय, उसे समूचे जीवन की आलोचना के अर्थ में व्यवहार किया जाय। विशाल भारत में लिखे हुए उस मेरे लेख का नाम है, "साहित्यिक संस्थाएँ क्या कर सकती है।"

मैं परीक्षा विभाग की बात ही इसलिए कर रहा था कि सम्मेलन का वह विभाग सर्वाधिक संगठित और ठोस है। वस्तुतः सम्मेलन का प्रधान कार्य है साहित्यिक रुचि का परिमार्जन करना। यह काम परीक्षाएँ बड़े सुन्दर ढग से कर सकती है और अगर अब तक के किए गए कार्य पर से इनका महत्त्व कूता जाय तो निःसन्देह उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया है। आप अगर सम्मेलन के अधिकारियों से पूर्वोक्त रास्ता स्वीकार करने का आवेदन करें तो शायद कुछ कार्य हो भी सके।

सम्मेलन को साहित्य निर्माण के कार्य को अधिक दृढता के साथ अपने हाथ में लेना चाहिए। तीन छोटे-छोटे विभाग खोलने की बात मैं सोच सकता हूँ। एक विभाग नये विचार के परिचायक ग्रन्थों का प्रणयन कराये। अगर इन नये विचारों के परिचायक ग्रन्थों की एक योजना बनाने का मुझे अवसर मिले तो दो-चार मित्रों की सहायता से मैं ऐसे 120 ग्रन्थो की योजना बना सकता हूँ। जिसे सम्मेलन दस वर्षो मे प्रकाशित करे या कराने का जिम्मा ले। दूसरे विभाग को मौलिक कार्य करने का भार दिया जाय। यह मौलिक कार्य कहानी या नाटक लिखने का न होगा। कोई भी सस्था प्रोग्राम बना के इन विषयो को नही लिखा सकती। मेरा मतलब है हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भाषा शास्त्रीय, नृतत्व विषयक धार्मिक परिस्थितियों के वैज्ञानिक अध्ययन से। यह कैसा अन्धेर है कि अपने देश के विषय में भी हमें अँग्रेजों की लिखी पुस्तकें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना पडे। सम्मेलन का यह विभाग पहले अध्ययन के लिए युक्तप्रान्त को ही चुन सकता है। विशेषज्ञों की एक कमिटी इस विषय के लिए दस वर्ष का प्रोग्राम आसानी से बना सकती है। यह इतना आवश्यक कार्य है कि इसके लिए एक क्षण भी विलम्ब ठीक नही जान पड़ता। आप 'विशाल भारत' से इसका श्रीगणेश क्यों नही करते? क्यों न बुन्देलखण्ड में ही शुरू किया जाय। टूण्डे जिस जाति का है उसका ऐतिहासिक, सामाजिक और नृतत्व शास्त्रीय दृष्टि से कितना महत्त्व है। खंगारों का आगमन (शायद मंगोलिया से), उनका उत्थान और पतन सभी अत्यन्त आश्चर्यजनक व्यापार है। अंग्रेज इतिहास लेखकों के यहाँ सिज्दा करने के सिवा इस विचित्र जाति के विषय मे जानने का क्या उपाय है? डॉ. कोलिन्स से एक बार मैं पूछने गया था कि क्या कार्य करूँ। बूढ़े ने मेरी ओर अवज्ञा भाव से देखकर कहा—तुम? तुम्हारे देश में क्या काम हुआ है? सब तो करने को बाकी पड़ा है। जिस जिले से आए हो वहाँ के आदिवासियों के बारे मे लिख सकते हो? वहाँ की बोली के विषय में लिख सकते हो। अपनी जाति का इतिहास। अपने आस-पास बिल्कुल नजदीक रहनेवाली किसी जाति के आचार-विचार, नृत्य-गीत, पूजा-पार्वण, गहने, कपड़े—जिस

किसी विषय को क्यों नही उठा लेते ? गुरुदेव से जब हिन्दी भवन के कार्यक्रम के विषय मे पूछा तो उन्होने चन्दोलाजी से कहा कि तुम अपने यहाँ की स्त्रियो के विवाह आदि सम्बन्धी स्त्रियांचार के विषय में लिखो । मुझसे कहा कि तुम अपनी भाषा में से उन प्रयोगो को ढूँढ निकालो जिनका प्रचलन तुम्हारी किताबी भाषा मे नहीं हो रहा है और जिनके अभाव में भाषा निश्चय ही कमजोर होती जा रही है। काका कालेलकर से पूछने गया था उन्होने भी वही जवाब दिया। अपने जिले के खेत-खलिहान के शब्दों को इकट्ठा करो, रीति-रस्म का अध्ययन करो। इस प्रकार सभी चिन्ताशील व्यक्ति इस कमी को समान भाव से अनुभव करते हुए दिखाई दिए। सम्मेलन को इस दिशा मे कदम उठाना चाहिए। अपने यहाँ हिन्दी भवन मे यह कार्य किया जा सकता था पर हमारी कठिनाइयाँ और तरह की हैं उनकी चर्चा फिर कभी करूँगा। पहले विभाग के कार्य में तो हम निःसन्देह यहाँ से कार्य कर सकते हैं।

तीसरे विभाग का काम प्राचीन संस्कृत के दार्शनिक वैज्ञानिक ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद और हिन्दी प्रस्तावना के साथ सम्पादन होना चाहिए। मेरा मतलब हिन्दी के पुराने ग्रन्थो का सम्पादन से नही है। वह कार्य नागरी प्र. सभा बड़े सुन्दर ढंग से कर रही है। मैं इसे संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के ग्रन्थों का समीक्षात्मक सम्पादन से है। अब तक यह कार्य अंग्रेजी और जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओ मे ही होता रहा है। यही कारण है कि साधारण हिन्दी विद्वान् अपनी प्राचीन संस्कृति के विषय मे बड़े भ्रम मे है। इस विषय की भी सवा सौ पुस्तकें तैयार करायी जा सकती हैं। मेरा प्रस्ताव यह है कि एक समिति ऐसी नियुक्त की जाय जो इन विषयों की एक-एक सूची तैयार कर दे। प्रत्येक सूची मे 120 ग्रन्थ हों। प्रत्येक विभाग नियम से हर महीने एक ग्रन्थ प्रकाशित कर दे। इस प्रकार दस वर्ष में सम्मेलन एक लाइब्रेरी तैयार कर सकता है। इस प्रस्ताव का एक व्यावहारिक पहलू भी सुझा दूँ तो शायद काम आ जाय। इस प्रकाशन के कार्य में रुपये की तो जरूरत होगी ही। सम्मेलन के पास स्वयं प्रकाशित कर सकने लायक रुपये का न होना ही स्वाभाविक है। पर वह आसानी से दस-बारह अच्छे प्रकाशकों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। ये लोग सम्मेलन की सिफारिश पर उसकी ओर से पुस्तकें प्रकाशित करेंगे। मैंने बहुत-से प्रकाशको से सुना है कि उन्हे अच्छी किताबें नही मिलती। सम्मेलन का सहयोग पाने पर उनकी यह शिकायत दूर हो सकेगी। ऊपर हमने यथामति प्रोग्राम की ओर इशारा कर दिया।

मैंने पहले एक लेख और कुछ कहानियाँ भेजी थीं, आपने उन पर अपनी राय अभी तक नहीं लिखी।

यहाँ सब कुशल है। आशा है आप सानन्द हैं।

विशेष : पिछली छुट्टियों मे मैं अपनी पत्नी की चिकित्सा के लिए कलकत्ते गया था। तब से बजट एकदम गडबड़ हो गया है। इस महीने अनेक कोशिश करके भी एक जरूरी मद में कुछ रुपये जमा नही कर सका। मैंने 1000 रुपए का

इन्श्योर कराया है। उसके लिए हर तीसरे महीने 131 रुपए देना पड़ता है। इस बार की अन्तिम तारीख 31 अगस्त बीत गई। 30 सितम्बर तक और समय है। क्या वि. भा. से उसके पहले 131 रुपये मिल सकता है। (क्या अराजकवादी बीमे में विश्वास नहीं रखते ?) अगर यह सम्भव हो तो वर्माजी को कलकत्ते मे लिख दीजिए। मैं उनके पास मनीआर्डर फार्म भरकर भेज देता हूँ। यदि न हो सके तो मुझे चिट्ठी लिखकर बता दें मैं कोई और व्यवस्था करूँगा।

आशा है आप सानन्द है। हम सब कुशल है।

विनीत
हजारीप्रसाद द्विवेदी

पुनश्च : वि. भा. मे छपे हुए मेरे लेखो की कुछ रिप्रिण्ट कापियो के मिल जाने की व्यवस्था कर दीजिये।

[20]

श्रद्धास्पदेषु,

शान्तिनिकेतन
3 10 39

प्रणाम।

कृपा पत्र मिल गया। तीन पैसे वाला तार भी। 10 रुपए मिल गए थे। काम चल गया था। श्री क्षिति मोहन बाबू रंगून जानेवाले थे पर अब उन्होंने वहाँ का प्रोग्राम बदल दिया है। यदि आपके यहाँ जाने की व्यवस्था हो जाय तो जा सकते है। टीकमगढ या आसपास के साधु-सन्तो और मठो को देखने से उन्हे आनन्द मिलेगा। वे आपसे और शर्माजी से मिलने के लिए उत्सुक है। आप जैसा कहे वैसा उनसे कह दूँ। हमारा आश्रम 14 को बन्द हो जायगा। आप कब बनारस आ रहे है ? हम लोग भी वहाँ आने की सोच रहे है। अगर आप पहुँचे तो वही दर्शन होगे।

वनो के विषय मे मसाला संग्रह करूँगा।

आपका
हजारीप्रसाद

[21]

श्रद्धास्पदेषु,

शान्तिनिकेतन
7-10-39

प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। आपने मेरे नगण्य पत्र को जैसा महत्त्व दिया है वह मेरी कल्पना के भी बाहर है। आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना तो धृष्टता होगी पर

संकोच प्रकट करने का अधिकारी अवश्य हूँ। बनारस जाने का मेरा विचार है। अगर कोई विशेष बाधा नही आई तो जरूर उपस्थित हूँगा। यहाँ हम लोग उस पत्र पर आपस मे आलोचना कर रहे हैं। एक प्रस्ताव के रूप में उसे बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। बनारस में ही उसे आपको दिखाऊँगा। आप ही उसे उपस्थित करें तो उसका कुछ मूल्य होगा। मेरे जैसो को वहाँ कौन पूछता है ?

रुपया फिलहाल मत भिजवाइए। प्रतिनिधि बनकर जाने की इच्छा नही है। आशा है आप सानन्द हैं।

आपका

हजारीप्रसाद

श्री चन्दोलाजी और साहनीजी भी बनारस जा रहे है। क्षिति बाबू से पूछ लिया है। इस बात का ख्याल रखिए कि मुझे बोलने का अभ्यास एकदम नही है।

श्री हरिशंकर शर्मा के पास एक दूसरा लेख भेज दिया है। शर्माजी ने लिखा था।

[22]

18-11-39

पूज्य पण्डितजी,

प्रणाम।

आपकी दो चिट्ठियाँ आयी। जवाब अब तक नही दे सका था। प्रान्तीय सम्मेलनों के बारे मे आपका कार्यक्रम निर्देश पढ़ा। वह बहुत ही व्यावहारिक और उपयोगी है। कवि सम्मेलनों के विषय मे आपने जो सलाह दी है वह महत्त्वपूर्ण है। काशी सम्मेलन का कवि सम्मेलन बहुत निरुत्साहपूर्ण था। यह भड़ौआपन नही हो तो अच्छा। हाँ, अगर अच्छे कवियो का कोई छोटा-सा समाज है तो आशा हो।

आपने जो पत्र व्यवहार के लिए भिन्न-चक्र स्थापन करने की बात सोची है, मैं उसका स्वागत करता हूँ। मुझे ऐसी बहुत-सी बातें जानने की जरूरत पड़ती है जिनके विषय में आप ऐसी मण्डली मे चर्चा छोड़ी जाय तो अभीष्ट सिद्धि में सहायता मिले। परन्तु बहुत सावधानी से इस मण्डली को दल या गुट नही बनने का प्रयत्न करना होगा। अगर व्यक्तिगत कारण के अभाव मे सैद्धान्तिक आधार पर दल हो तो कोई बुरी बात नही है। पर सम्मेलन के कई गुट अनुभवो मे से और एक अनुभव यह है कि अपने लोगों मे व्यक्ति-प्रधान दलबन्दी का भाव ही प्रबल है। इसीलिए इस मण्डली में ऐसे लोगो को भी रखना चाहिए जो व्यक्तिगत रूप से भिन्न-भिन्न दल के अगुओ के रूप में गलती से और दुर्भाग्यवश समझे जाने लगे हैं। इन व्यक्तियों को चुनते समय इस बात का ख्याल

कर रहे हैं, पर भीतरी हाल मे अच्छी फ्रेस्को के लिए पैसों की जरूरत होगी। ऊपर से चार फीट नीचे तक दीवाल पर नये सिरे से पलस्तर करना पड़ेगा और तब उस पर चित्र बनाये जा सकेंगे। मुझसे नन्दबाबू के सहकारी विनोद बाबू कह रहे थे कि फ्रेस्को वैसे तो 100-50 मे भी हो जायेगा लेकिन अच्छे काम के लिए उपयुक्त मसाले और आदमियों (मजदूरों) आदि के लिए कम-से-कम 1000 रुपये की जरूरत होगी। अभी इस विषय पर नन्दलाल बाबू से बातें नहीं हुई हैं। क्योंकि अभी तक मैं विश्राम ही कर रहा हूँ। घूमने-फिरने की मनाही है। चित्रों के विषय मे मेरा विचार इस प्रकार है कि ऊपर फ्रेस्को में तो प्राचीन कवियों के चित्र रहें और नीचे आधुनिक साहित्यिकों के। फ्रेस्को में मैं हिन्दी कवियों के साथ जयदेव, चण्डीदास और चैतन्यदेव के चित्र भी देना उचित समझता हूँ। जयदेव और चण्डीदास इसी जिले के रहनेवाले थे। चण्डीदास बंगला के सूरदास है और चैतन्य-देव समस्त बंगाल की आध्यात्मिक साधना के प्रतिनिधि हैं। इन तीनों को रखकर हम बंगाल की सहानुभूति पा जायेंगे और अपना जो उदारता का सिद्धान्त उसे भी पालन कर सकेंगे। आधुनिक साहित्यिकों के चित्रों के बीच में एक गुरुदेव का और एक एण्ड्रूज साहब का भी चित्र रहे। मुझे निश्चित विश्वास है कि आप इस योजना को पसन्द करेंगे। आज शर्माजी यदि आ जायेंगे तो उनसे भी इस विषय पर बात करूंगा।

हमें एक बड़ी दरी की (हाल के लिए) बहुत सख्त जरूरत है। आलमारियो के साथ ही इसे भी आप ध्यान मे रखें। कही टिप्पस बैठ जाय तो इसे भी स्वीकार कर लें। मैंने शर्माजी के कानो भी बात लगा दी है।

आप फिर इधर कब आ रहे है। शर्माजी कह रहे थे कि उनके चले जाने पर आपका आना जरूरी होगा। इस समय विशाल भारत को ठीक ढर्रे पर लाने के लिए आप दोनों मे से किसी एक का रहना आवश्यक है। यदि आप इधर आयेंगे तो मैं अपनी लिखी एक छोटी-सी पुस्तिका दिखाऊँगा। यदि न आ सकेंगे तो डाक से भेजकर आपकी राय लूंगा। पुस्तक का नाम होगा 'भारतीय साहित्य की प्राण-धारा' या ऐसा ही कुछ।

मेरठ के श्रीकृष्णजी को मैं पत्र लिख रहा हूँ।

आपने हिन्दी प्रचार समिति को जो सन्देश भेजा है वह मुझे बहुत अच्छा लगा। हिन्दी प्रचार प्रेम से ही होना चाहिए। आपका मत ठीक है। निरालाजी को आपने 'राष्ट्रभाषा' के बारे में जो लिखा है, मैंने भी उन्हें इसी आशय का पत्र लिखा था।

आशा है आप सानंद हैं।

आज आपको भेजा हुआ निरालाजी के नाम का पत्र (कल) मिला। मुझे बहुत पसन्द आया। मैं समझता हूँ, आपको इस पत्र मे यह नही लिखना चाहिए

था कि आप साहित्य में रपट पड़े थे और कोई साहित्यिक कार्य आपने नहीं किया है।

आपका

हजारी प्रसाद

अपरंच : 'विशाल भारत' का जनवरी वाला अंक निसन्देह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसकी सामग्री में कहीं भी भरती की कोई बात नहीं है। आपका लेख इसमें अधूरा रह गया है, ऐसे लेखों को अधूरा नहीं रहने देना चाहिए था। शर्माजी का लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। नागरी लिपि के प्रथम ग्रन्थ वाला लेख नाना दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह लेख लिपिसुधार के विरोधियों की भी आँख खोलने का कार्य करेगा। मैंने फरवरी के लिए गुरुदेव वाला लेख अनुवाद करने के लिए रखा है।

एक स्वार्थगत बात। मेरे छोटे भाई की परीक्षा फीस के लिए इस माह में 35 रुपये के करीब अधिक देना पड़ेगा। वि. भा. से कोष से क्या कुछ मिल सकने की आशा है? एण्ड्रूज साहब के साथ धावले और विनोद आदि के साथ जो ग्रुप फोटो आपने लिया था वह ठीक आया है, एक प्रति भेज दें तो अच्छा हो।

[24]

शान्तिनिकेतन

11-2-1940

पूज्य चतुर्वेदीजी,

प्रणाम,

कृपा पत्र मिला। 20 रुपये मनीआर्डर प्रेमीजी के यहाँ से मिल गया है। अत्यन्त उपकृत हुआ हूँ। एण्ड्रूज साहब का कल पाक-स्थली में आपरेशन हुआ है। यद्यपि आपरेशन सफल हुआ है, पर अमिय बाबू ने तार दिया है कि अवस्था बहुत ही चिन्ताजनक है। तार में केवल ये शब्द है :

Operation successful, Condition serious

हम लोगों को इतनी ही खबर अभी तक मिली है। आश्रम में बड़ी चिन्ता छाई हुई है। कुछ लोग आज शाम को जाने का विचार कर रहे है।

यहाँ और सब कुशल हैं।

महात्माजी 17 को आ रहे हैं।

त्रिपाठीजी से कहें कि उनका पत्र मिला था, आज जल्दी में हूँ। उन्हें बाद में पत्र लिखूँगा। उनका लेख भी मिल गया था।

क्षिति बाबू ने बड़े दादा के सम्बन्ध में लेख लिख लिया है। छपकर आ जाये तो अनुवाद कर दूँगा। क्या उसके पहले ही अनुवाद चाहिए?

आपका

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[25]

भारती संसद्, विश्वभारती
शान्तिनिकेतन
8-7-40

श्रद्धास्पदेषु,

सादर प्रणाम।

कृपापत्र मिला। दो महीने तक छुट्टियाँ रही। घर चला गया और वहाँ 'गृह-कारज नाना जंजाला' मे फँस गया। काम कुछ भी नही हुआ। पुराना पण्डित बड़े दुःख और कटु अनुभव के बाद लिख गया था कि 'यदि वांछसि मूर्खत्वं ग्रामे वस दिन त्रयम्।' अर्थात् यदि मूर्खता चाहते हो तो गाँव में तीन दिन जाकर वास करो। ग्रामसुधारकों से क्षमा माँग लेता हूँ! आपसे क्षमा माँगने की कोई जरूरत नही, क्योंकि आपका बडा दुश्मन भी कुण्डेश्वर की कोठी को गाँव नही मानेगा। सो, छुट्टियों के पहले जो नाना भाँति की साहित्य-साधना का कार्यक्रम बनाया था वह जहाँ का तहाँ रह गया। इस बार फिर से उत्साह बटोरकर लग गया हूँ। इच्छा है कि बौद्ध महायान सूत्रों का हिन्दी अनुवाद कर डालूँ। पूज्य शास्त्री मशाय ने प्लैन बना दिया है। वे ही मार्गदर्शक भी होंगे। विद्यालय का कार्य भी शुरू हो गया है। जो कुछ थोड़ा-थोड़ा समय मिलेगा उसमे वही करूँगा। फिर प्रकाशन आदि की बात बाद मे सोच ली जायेगी।

यह जानकर बडा आनन्द हुआ कि श्री बुद्धिप्रकाश जी यूनिवर्सिटी मे प्रथम आये है। भगवान् उन्हें भावी जीवन में और भी सफलता दें। पुत्र पिता के धर्म मे बढता है—वार्ढं पुत्र पिता के धर्मा—ऐसा शास्त्रकार कह गये है। यह बात बिल्कुल ठीक है।

चन्दोलाजी आ गये है—अकेले। मुसकराना कारगर हो जाता मगर बीच ही में योरोपियन लड़ाई ने मजा किरकिरा कर दिया। शायद उन्हे भय था कि कंस्क्रिपशन मे गढवाली जवान पहले पकड़े जायेंगे। पर आखिर कब तक। एक पते की बात आपको बताता हूँ। जिस मुहल्ले मे हिन्दी भवन आबाद है उसका पुराना नाम तो नीचू बंगला है पर नया 'Non-official' नाम 'वहु-पल्ली' हो गया है। इसमे नव वधुओं का ही प्राधान्य है। कुछ क्वारे भी है पर वे शीघ्रता से 'बहू-पल्ली' के प्रभाव में आते जा रहे है। चन्दोलाजी कब तक जल मे रहकर मगर से बैर करेंगे? लेकिन चिन्ता उन लोगों के लिए है जो अनजाने मे आकर कभी-कभी इस मुहल्ले मे अतिथि हो जाते हैं। कही उन पर न यहाँ की हवा लगे।

पं. विष्णुदत्तजी शुक्ल को आज पत्र लिख रहा हूँ। फर्मे के लिए तगादा करने के लिए पं. बसन्तलालजी चतुर्वेदी को रवीबाबू की ओर धन्यवाद का पत्र लिखाया था और आफिस की ओर से रसीद और चिट्ठी भी। एक गड़बड़ी अनजाने में हुई

जिसका कुछ मतलब समझ में नही आया। अलमारी के वे रुपये किसी की स्मृति में दिये गये थे। ऐसा आपने भी कहा था और शर्माजी ने भी। रसीद में इनके नाम के आगे 'The late'... लिखा गया था और चतुर्वेदीजी (पं. वसन्तलालजी) ने उस रसीद को लौटा दिया था कि इसमे से 'The late' शब्द काट दिया जाय। उनकी इच्छानुसार वह काट दिया गया। पर मन मे सब लोग जरा उद्विग्न हुए कि क्या जीवित व्यक्ति के लिए हमने गलती से 'The late' लिख दिया था? असल में चूंकि वह रुपये स्मृति में दिये गये थे इसलिए स्वभावतः ही हम लोगों ने समझा था कि 'स्वर्गीय' व्यक्ति की ही स्मृति मे दिये गये हैं। अब भी हम ठीक-ठीक नही समझ सके हैं कि वह शब्द लगाना हमारी गलती थी या उन्हें वह शब्द अप्रीतिकर है। भगवान् करें वह हमारी गलती ही हो। इतनी-सी ही गलती हुई है। वैसे पत्र वगैरः बहुत अच्छी तरह से लिखे गये है और वे भी प्रसन्न ही हुए है, ऐसा उनके पत्र से समझा जा सकता है। अलमारी भी बन गयी है। इधर सुना है कि कनौडियाजी आदि ने 4,000 रुपये फर्नीचर और लायब्रेरी के लिए देने को कहा है और यह भी लिखा है कि इससे अधिक वे लोग सहायता नही कर सकेंगे।

'गुरुवर' श्री एण्ड्रयूज तो अब रहे नही। पिछले साल इन दिनों जब वे आये थे तो हिन्दी भवन के विषय में इतने चिन्तित थे कि जब मुलाकात होती थी, चाहे राह मे, या घर पर, या सभा मे, सर्वत्र हिन्दी भवन की ही बात करने लगते थे। यहीं रहने का विचार भी कर रहे थे और आज उनकी स्मृति ही रह गयी है। हिन्दी भवन के शिलान्यास के अवसर पर मैंने दो दोहे बनवाये थे जो ताम्रपत्र पर खोदकर नीव मे रखे गये थे। उन दोहों मे एक ने था कि---

'गुरुवर श्री एण्ड्रयूज ने किया शिलाविन्यास' पहले मैंने लिखा था 'दीन बन्धु एण्ड्रयूज' ने पर गुरुदेव और श्री क्षिति बाबू ने कहा कि इस आश्रम मे उन्हे 'गुरु' शब्द मे ही सम्बोधन रखना चाहिए। तब मैंने ऊपर का संशोधन किया था। जब उन्हें सुनाने गया और बताया कि गुरुदेव ने 'दीन बन्धु' की अपेक्षा 'गुरुवर' को अधिक पसन्द किया है तो बड़े खुश हुए और बोले 'I am very glad, this is better than दीन बन्धु' और फिर जोर से हँस पड़े। हँसी बिल्कुल नाभि के पास से निकली थी। इतने सरल, इतने महान् और इतने प्रेमी थे वे। अब केवल उनकी स्मृति है और है उनका अमोघ आशीर्वाद।

आपका 'हम क्या करें?' हमने मित्रों में बाँट दिया है। आपस में हमने कुछ विचार भी किया है और जैसा कि चन्दोलाजी कहते हैं आपने इतने detail में बातें लिखी है कि उन पर जो कुछ विचार किया जा सकता है वह उसमें आ गया है। इसीलिए मैं उसका परिशिष्ट लिख रहा हूँ। अर्थात् 'हम क्या न करें?' इसकी जरूरत है। मैं जिन दो-चार समाजो में आ गया हूँ वहाँ देखा है कि हिन्दी के तरुण साहित्यिक इतनी 'abestract' बहस करते है कि सुननेवाले का दिमाग चकरा जाता है। फिर और भी छोटी-मोटी बातें हैं जिनका विचार करना है। कल तक वे विचार लिपिबद्ध कर लूंगा ऐसी आशा है। एण्ड्रयूज अंक के लिए क्षिति बाबू

लिख देंगे। मैं लिख रहा हूँ। मलिकजी भी लिख देंगे और किससे कहूँ। आप कब तक आ रहे हैं ? लिखिये। श्री प्रयाग नारायणजी को मेरा प्रणाम कहें।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[26]

हिन्दी भवन
शान्तिनिकेतन
26-8-40

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी,

कृपा पत्र और लेख मिल गये थे। उत्तर देने मे विलम्ब हो गया। नाना कार्यों मे व्यस्त था। और आपके पत्र के लिए जमकर लिखने की जरूरत थी। सो देर होती ही गयी। इसके पहले आपने जो लेख लिखा था—'हम क्या करें' उसका परिशिष्ट भी लिखा रखा है। अभी तक उसे इसलिए नही भेजा था कि उसके एकाध अंश कमजोर जान पड़ते थे। इस बार उसे भी भेज रहा हूँ।

आपने साहित्य और जीवन नामक व्याख्यान मे जो विचार प्रकट किये हैं उससे चौदह आने तो सहमत हूँ, बाकी दो आने से भी शायद सहमत हो जाता परन्तु आपके वक्तव्य से मुझे यह नही समझ पडा कि मैं जिस अर्थ में सहमत हूँगा वही आपका अभिप्राय है या नही। सो दो आनेवाले अवशिष्ट अंश के विषय मे ही अपना मत प्रकट करूँगा।

1. मै मानता हूँ कि मोरियों की सफाई साहित्यिक कहे जानेवाले कार्य में साढे सतासी फीसदी (रुपये में चौदह आने) की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

2. यह भी मानता हूँ कि जिसे अपने आस-पास की दुनिया से परिचय नही उसे साहित्य सेवा का अधिकार नही। यह जरूर है कि आस-पास की *दुनिया* का अर्थ चाहिए। 'साहित्यिक के द्वारा लिखे जानेवाले विषय से सम्बद्ध दुनिया।' उदाहरणार्थ, यदि कोई गुप्त काल का इतिहास लिख रहा है तो उसे यह जानने की तो जरूरत नही है कि आलू की बुआई और सिंचाई कब होनी चाहिए। जाने तो बुरा नही है पर उसे यह जरूर जानना चाहिए कि उसके आस-पास जो मन्दिर, तालाब आदि है, उन पर उस युग का कोई चिन्ह है या नही, उसके गाँव मे बसनेवाली जातियो का उक्त युग से क्या सम्बन्ध है, उस गाँव मे बोली जानेवाली बोली मे कही उक्त युग का प्रभाव पाया जा सकता है या नही इत्यादि। हर एक साहित्यिक के लिए हर एक बात की जानकारी आवश्यक नही है।

3. पूज्य द्विवेदीजी वाली बात आपने शायद पत्रकार या सामयिक साहित्य की चर्चा करनेवाले लोगो का ध्यान मे रखकर उद्धृत की है। मैं, आपके ही समान कहना चाहता हूँ कि जिसे अपने जिले, प्रान्त और देश की छोटी-बड़ी सभी महत्त्व-

पूर्ण संस्थाओं—पुरानी और नयी, सरकारी और गैर-सरकारी की कार्रवाइयों से परिचय नहीं है उसे पत्रकार का कार्य छोड़कर कुछ और करना चाहिए। वह यदि पत्रकार का कार्य करेगा तो निश्चित रूप से देश को क्षति पहुँचायेगा। उसके द्वारा भोली-भाली जनता अपने ज्ञान की तृष्णा बुझाती है। उसे किसी ऐसे विषय पर कलम चलाने का लोभ नहीं करना चाहिए, जिसके विषय में वह अच्छी तरह नहीं जानता।

4. जब मैं 'दो आने' साहित्य को अपने प्रथम मन्तव्य से निकालता हूँ तो मेरा मतलब साहित्य कही-जानेवाली चीज का दो आना है, वस्तुतः यही दो आना वास्तविक साहित्य है, जो जियेगा और जिसका बनना कुनाइन बाँटने से कम उपयोगी नहीं है। ज्यादा है।

5. आपने रसेल का जो यह वाक्य उद्धृत किया है वह हमारे कर्त्तव्य को योग्यतापूर्वक प्रकट करता है। "कर्मशील पुरुषों की अपेक्षा हमें इस समय ऐसे विद्वानों की, अर्थशास्त्रियों की, वैज्ञानिकों की, विचारकों, शिक्षा विशेषज्ञों तथा साहित्य सेवियों की अधिक आवश्यकता है जो जातीय ज्ञान के क्षेत्र को, जो इस समय गम्भीर रेगिस्तान के समान है, विचारों की धारा से सींचकर जरखेज बना दें।" क्योंकि जब हम राष्ट्र की आत्मा में एक उच्च जगत् का निर्माण करना प्रारम्भ कर देते हैं तब हमारे देश का वाह्य रूप भी सुन्दर तथा सम्मान योग्य बन जाता है।"

6. इस आदर्श का अनुमित अर्थ यह हुआ कि "यदि किसी देश का वाह्य रूप सुन्दर तथा सम्मान योग्य नहीं बन सका है तो समझना चाहिये कि उस राष्ट्र की आत्मा में एक उच्च जगत् का निर्माण किया जाना शुरू नहीं हुआ है। यह सच है और हमारे साहित्य की दिन-रात उन्नति देखने के बाद भी यदि महसूस हो कि उसका वाह्य रूप गन्दा और अश्रद्धेय है तो मानना चाहिए कि हम साहित्य के नाम पर जो कुछ दे रहे हैं वह कोई और चीज है। साहित्य नहीं।

7. यदि ऊपर की बातें आप भी मानते है तो उसका अर्थ यह हुआ कि साहित्य सेवा के लिए आवश्यक शर्त हर एक छोटी बड़ी बातो की जानकारी नहीं है बल्कि एक ऐसी अदमनीय आन्तरिक आकांक्षा है, जो अपने देश को और प्राणिमात्र को भीतर से और बाहर से सुन्दर तथा सम्मान योग्य देखना चाहती है। अगर यह आकांक्षा है तो साहित्य सेवी लिखने के साथ-साथ उन सारी आवश्यक सामग्रियों का ज्ञान जरूर प्राप्त करेगा, जो उस अभिलाषा की पूर्ति के साधन है। अगर यह आकांक्षा नहीं तो शास्त्रीय विषयों का ज्ञान एक जजाल समान ही होगा, और दुनियादारी की होशियारी एक ढकोसला मात्र होगी। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वह प्रसिद्ध कविता आपको मालूम ही है जिसमें उन्होंने कहा है कि 'पथ आमारे पथ देखावे'—रास्ता ही हमें रास्ता दिखायेगा, जो साहित्यिक निष्ठापूर्वक ऐसी इच्छा लेके रास्ते पर निकल पड़ेगा वह रास्ता खोज लेगा। पूज्य द्विवेदीजी ने ऐसे ही रास्ता खोज लिया था, गुरुदेव ने भी इसी तरह रास्ता खोजा था।

8. संक्षेप मे यों कहिये कि यदि किसी साहित्यिक में सम्पूर्ण समाज की आन्तरिक और वाह्य सुन्दरता प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है तो उसे न तो मोरी साफ करने मे कोई संकोच होगा और उन गन्दे विचारों को साफ करने में, जिनके कारण मोरियाँ जी रही है। वह दोनों पर एक साथ झाड़ू चला सकता है। शायद दूसरे पर झाड़ू चलाने से काम ज्यादा हो। आपने ऐसा ही किया है। आपका सारा व्याख्यान विचारों पर झाड़ू चलाना ही तो है।

आपने मेरी सम्मति जाननी चाही इसके लिए कृतज्ञ हूँ।

पुनश्च:

[अभी स्टाफ का एक फुटवल मैच होने जा रहा है। Ninteenth Century Vs. Twientieth Century, मैं दूसरे दल का नेता हूँ। जरा छुट्टी लेकर चलता हूँ।]

[मैच कोई जीता भी नहीं, हारा भी नहीं। आपकी शताब्दी की नाक रह गयी!!]

चन्दोलाजी से मालूम हुआ कि आपने मेरा स्केच लिखने के लिए उनसे सामग्री माँगी है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अभी मेरे सम्बन्ध में कोई स्केच न लिखें। कुछ और तपस्या करने दें, कुछ दिन अगर सम्भव हो तो मुझे लोक चक्षु के अन्तराल मे रहने दें। लोगों की 'नजर' लगने से बचाना ही गुरुजनों का कर्त्तव्य है। आप भी ऐसा ही करें।

इस बार हिन्दी भवन के सामने ही वृक्षारोपण उत्सव होगा। गुरुदेव स्वय अपने हाथों वृक्षारोपण करेंगे।

विनीत
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[27]

अभिनव भारती ग्रन्थमाला
171-ए, हरीसन रोड,
कलकत्ता

श्रद्धेय पण्डित जी,

प्रणाम।

कृपा पत्र मिला। मेरे पत्र का टाइप किया हुआ कागज भी मिल गया। आज ही उसे कलकत्ते भेज रहा हूँ।

मैं और क्षिति बाबू 10 अक्टूबर के आस-पास टीकमगढ़ आना चाहते है। बम्बई विद्यापीठ वालों के पास पैसे की कमी है। उन्होने लिखा था कि वे थर्ड क्लास का किराया दे सकते हैं। क्षितिबाबू को थर्ड क्लास से किराया देने का प्रस्ताव

करना मेरे लिए कठिन पड़ा। अगर आप टीकमगढ़ की यात्रा के प्रसंग में इण्टर क्लास के किराये से कुछ अधिक भिजवा दें तो बम्बई तक हम इण्टर क्लास का इन्तजाम कर लेंगे। पर आप ऐसा तभी करें यदि यह आसानी से हो सकता हो। श्री भानुकुमारजी के पक्ष से जान पड़ता है; उनसे ज्यादा की माँग शुरू करने से सारा भार उनके ही ऊपर पड़ेगा। कृपया शीघ्र लिखें। और सब कुशल है।

हाँ, पं. दुर्गाप्रसादजी तीन वर्ष यूरोप रहकर इसी महीने सकुशल लौट आये हैं। आपको बार-बार प्रणाम कह गये हैं।

वे आरक्योलाजी में डाक्टर होकर आये हैं। आप टीकमगढ की मूर्त्तियों का कैटलाग बनवाना चाहते हो तो वे बड़ी खुशी से करेंगे। उन्हें कुछ मिहनताना नही देना पड़ेगा। केवल यातायात और रहने आदि का खर्च ही पर्याप्त होगा। अगर आप लिखें तो मैं उनसे वहाँ जाने के विषय मे बात करूँ।

और सब कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[28]

शान्तिनिकेतन,
25-9-40

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपको इसके पहले मैंने एक पत्र दिया था, उसका कोई उत्तर आपकी ओर से नहीं मिला; शायद वह पत्र आपको मिला ही नही।

मैंने निम्नलिखित दो बातें आप से पूछी थी :—

1. क्या बम्बई जाते समय क्षिति बाबू को आप टीकमगढ़ मे अभी बुलाना चाहते है, या लौटकर या किसी अन्य समय? 20 अक्टूबर को उन्हें बम्बई में काम है। मैं भी साथ रह सकता हूँ। कृपया लिखिये कि वे अपना कार्य-क्रम स्थिर कर सकें।
2. टीकमगढ़ में जो मूर्त्तियाँ आपने संग्रह की हैं, उनके लिये मैंने हमारे मित्र पं. दुर्गा प्रसादजी का नाम सुझाया था, वे तीन वर्ष तक हालैण्ड और इंग्लैण्ड में आरक्योलाजी पढ़कर डाक्टर होकर हाल ही में लौटे हैं। अभी खाली हैं। केवल उनके यात्रा और रहने का खर्च लगेगा और मूर्त्तियों का बहुत अच्छा कैटलाग हो जायेगा। इन दोनों बातों का उत्तर शीघ्र लिख कर दें।

और सब कुशल है।। आप सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[29]

शान्तिनिकेतन
30-9-40

आदरणीय पण्डितजी,

प्रणाम।

शर्माजी के पत्र के अनुसार हमने यह प्रोग्राम बनाया है। क्षिति बाबू पूछते हैं कि आपको यह सुविधाजनक रहेगा या नही।

1. 12 अक्टूबर को सवेरे की गाड़ी से (आठ बजे के आसपास) हम ललितपुर पहुंचेंगे। 13-14 को आपके साथ रहेंगे।
2. 15 को रवाना होकर उसी दिन शाम को आगरे पहुँचेंगे।
3. 16 को आगरे में और 17 को शर्माजी के गाँव।
4. 18 को बम्बई के लिये रवाना हो जायेंगे।

क्षिति बाबू के एक व्याख्यान की आप व्यवस्था कर रहे है न? वह अगर हो तो 13 अक्तूबर की शाम को रखिये। 12 अक्टूबर की शाम को भी रख सकते है। एक दिन जताए देखने जायगें। जताए के विषय मे मैंने थोड़ा सा लिख रखा है। आते-आते उसे पूरा कर सका तो लेता जाऊँगा।

आप श्री क्षिति बाबू को निम्नलिखित पत्ते पर पत्र लिखें।

C/o Prof. Shailendranath Das Gupta
University Quarters
Badshah Bagh
Lucknow

मुझे यही के पते से लिखा था।

आपको शायद मालूम ही होगा कि गुरुदेव सख्त बीमार है। दार्जिलिंग से कलकत्ते ले आये गये है। रास्ते मे गाड़ी मे बेहोश हो गये थे। किडनी की बीमारी है। अब अच्छे हो रहे हैं।

आपका
हजारी प्रसाद

[30]

4-10-40

आदरणीय,

प्रणाम।

पहले मैंने लिखा था कि हम लोग 12 अक्टूबर को ललितपुर पहुंचेंगे। पर अब हम ने यही तै किया है कि आपके तार के अनुसार 10 को सवेरे वहां पहुँचें। हम ललितपुर सवेरे 10 अक्टूबर को पहुँच रहे है।

और सब कुशल हैं।

आपका
हजारी प्रसाद

[31]

विलेपार्ले
बम्बई
19-10-40

आदरणीय पण्डितजी,

प्रणाम।

हम लोग यहाँ 17 अक्टूबर को पहुँच गये। यहाँ आकर हमे बड़ी प्रसन्नता हुई है। नाना दर्शनीय स्थानों को देखने का एक साथ मौका मिला है। समुद्र तो मैंने पहली बार देखा है और वह भी एक ऐसे तूफान के बाद जिसका वेग 75 मील प्रति घण्टे था। रास्ते में जंगल, पहाड़, नदी देखते हुए हम लोग नवीन जीवन अनुभव कर रहे हैं। मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि मैदान के रहनेवालों को नई स्फूर्त्ति पाने के लिये इन पहाड़ो, जंगलों और नदी-नालों को तथा समुद्र को जरूर देखना चाहिये। बिन इनके देखे हम जीवनी शक्ति की अखण्ड धारा का अनुभव नही कर सकते। कितना विराट है हमारा देश, कितना मनोरम, कितना विचित्र। इसके लिये प्राण देना कोई बड़ी कीमत नही है। इसे खोकर हम सचमुच हीन हो गये हैं। मैं बराबर अनुभव करता रहा हूँ कि यह जो आनन्द और स्फूर्त्ति अनुभव कर रहा हूँ उसके कारण आप है। अब तो मैंने निश्चय कर लिया है कि हिमालय देखने जरूर जाऊँगा। बिना प्रकृति के इस सौन्दर्य और तेज को देखे जीवन एकांगी और एक-धृष्ट हो जाता है। मैदान के रहने वालों की रीति मनोवृत्ति अगर दूर करना है तो उन सीधे इस जीवन के जंगल में ले आइये जहाँ कठोर पत्थर को तोड़कर कोमल तृण उगे हैं।

श्री क्षिति मोहन वाबू आपको नमस्कार कहते है।
मैं यहाँ से 22 को चला जाना चाहता हूँ।
और सब कुशल हैं।

आपका
हजारी प्रसाद

[32]

17-2-41

श्रद्धेय पण्डितजी,

प्रणाम।

कृपा पत्र और श्री शंकर देव जी का पत्र मिल गया था। गुरुकुल के एक अध्यापक पं. हरिदत्त शर्मा जी आ गये थे। बहुत-बहुत उपायों से बहुत कुछ असाध्य साधन-सा करके गुरुदेव का भाषण उनको दिलवा दिया है। क्षिति बाबू को यहाँ के लोग छोड़ना नही चाहते क्योंकि 13 अप्रैल को गुरुकुल का दीक्षान्त संस्कार है और 14 अप्रैल को यहां वर्षारम्भ और गुरुदेव का जन्मोत्सव। इसीलिये रथी बाबू इस अवसर पर क्षिति बाबू को छोड़ना नही चाहते। वैसे मैंने क्षिति बाबू को राजी कर लिया है। आप रथी बाबू को एक पत्र लिखें कि क्षिति बाबू को वहाँ जाने दें तो शायद वह राजी हो सकें।

वसन्तोत्सव का लेख हमारे पास तैयार था। मैंने उसी समय भेज दिया था। अवश्य ही मिल गया होगा।

और सब कुशल है।

आपका
हजारी प्रसाद

घर पर एक नया अतिथि और आया है। चौथी सन्तान और तीसरी कन्या। पुनश्च-'मधुकर' के एक हजार धन्यवाद और सात रुपये मिल गये। एक विभाग घाटे में रहा। क्योंकि सिर्फ दो आने कमीशन में ही उसे इतना ढोना पड़ा।

[33]

विश्वभारती
शान्ति निकेतन
14-5-41

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

पं. राजकुमार जी का पत्र मिल गया। उन्हें अलग से पत्र लिख दिया है। वे यहाँ आयेंगे तो कोई तकलीफ नहीं होनी पायेगी। आजकल कबीरदास के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने में उलझा हुआ हूँ। यथासम्भव सभी प्राचीन पण्डितों

की धारणा और उनके प्रकाश में कबीर के अपने मत का उद्घाटन ही हमारा प्रधान उद्योग है। सदा तो बहुत रहा हूँ, पर देखूँ कहाँ तक सफलता मिलती है। इस बार कोशिश कर रहा हूँ कि प्रस्तुत ऐसी लिखूँ कि आपको भी सर्टिफिकेट देना पड़े। यह हिन्दुस्तानी तो नहीं होगी और संस्कृत तो निश्चय ही नहीं होगी। शास्त्रीय विषयों को सहजभाषा में लिखने में काफी अड़चन पड़ रही है। पर देखिए कहाँ तक सफल होता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि जुलाई तक इसका मसौदा तैयार हो जायेगा।

और सब कुशल है। इस बार छुट्टियों में कहीं गया नहीं। यह अच्छा ही हुआ है क्योंकि यहाँ रहने से कुछ पढ़ाई-लिखाई के लिये अवसर मिला गया है।

8 मई को गुरुदेव का जन्म दिन हम लोगों ने धूमधाम से फिर मनाया आदमी थोड़े थे पर और भी अच्छी बात थी। सब एक और उत्साह ही था। महाराज त्रिपुरा ने गुरुदेव को 'भारत भास्कर' की उपाधि दी तो उसे लेकर उनके प्रतिनिधि यहाँ आये थे। हम लोग यहाँ थोड़े ही हैं, इसलिये खूब उत्साह से उत्सव मनाते हैं। छुट्टियों में ये उत्सव मरुभूमि में ओएसिस के समान है।

और सब कुशल है।

आशा है आप सानन्द हैं।

आपका
हजारी प्रसाद

[34]

शान्ति निकेतन
21-5-41

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

दोनों कृपा पत्र मिले। आपका वहाँ भेजा हुआ पत्र देखकर मैं अपने आपके विषय में ही कुतूहली हो गया हूँ। आपके मन में मैंने इतना अच्छा स्थान पाया है, यही मेरा परम सौभाग्य है। सन् 1933 में पहली जनवरी को आपने मेरा एक लेख देखकर पहली बार खूब प्रशंसा की थी। मैं उससे इतना उत्साहित हुआ था कि कह नहीं सकता। उस पत्र को मैंने अपने सर्टिफिकेट के बण्डल में डाल दिया। यह पत्र भी उसी की शोभा बढ़ायेगा। मुझे बिल्कुल भरोसा नहीं है कि मेरी वहाँ पुछवायी होगी। परन्तु आपकी शुभाकांक्षा मुझे इस सिलसिले में मिल गयी इतना लाभ तो हो ही गया। अब आप दरख्वास्त देने को कहते हैं तो मेरे मन में दो कारणों से संकोच होता है।

(1) आपके Confidential पत्र के पहुँचने के बाद मेरा application जाना क्या उसकी Confidential nature के विषय में सदेह नहीं उत्पन्न कर देगा?

(2) आपके इतने जोरदार पत्र के बाद मेरी अर्जी देना क्या ठीक है ? आपने लिखा है कि The only difficulty to persue the poet similar to that इत्यादि इस बात को दृष्टि में रखकर क्या एप्लीकेशन भेजना ठीक होगा ? यही सब सोचकर मैंने आप से पूछना उचित समझा। यदि आप कहें तो अर्जी दे दू। मुझे आशा एकदम नही है। 31 मई तक अर्जी पहुँचनी चाहिए। यहाँ से 29 को भी भेजूंगा तो ठीक समय पर पहुँच जायेगी। आप उत्तर शीघ्र दें। मैं इस बीच अर्जी तैयार रखता हूँ कि आपकी चिठ्ठी हल्की न पड़ने पावे।

जहाँ तक मेरी योग्यता का प्रश्न है, वह तो मुझे भलीभाँति मालूम है। पर अब मुझे वैसा बन जाना होगा जैसा आपने लिखा है। आपकी वाणी सत्य हो यही मेरा प्रयत्न होगा।

मेरी उमर 34 वर्ष है। 2 महीने कम। आपने not more then fifty लिखा है। ठीक ही है। पर ऐसा मालूम होता है कि आप और भी 6 वर्ष की तैयारी का मौका देते हैं। एक बार बडी गद्दी मिलने पर तो अपनी इज्जत बचाते ही समय निकल जाता है, तब कुछ पढ़ना-लिखना तैयार होना कहाँ सम्भव होता है। सबका यही इतिहास है। बडी गद्दी पाने पर विरले ही मिहनत कर पाते हैं। खैर, इसकी अभी फिलहाल कोई चिन्ता नही है।

जातिभेद अलग से भेज रहा हूँ।

आशा है आप सानन्द हैं।

आपका
हजारी प्रसाद

[35]

अभिनव भारती ग्रन्थमाला
शान्तिनिकेतन
9-8-41

परम श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

बहुत दिनों बाद पत्र लिख रहा हूँ। बीच में आँखें फिर खराब हो गयी थीं और पढना-लिखना बन्द कर देना पड़ा था। अब ठीक हो रही हैं।

समाचार तो आपको मिल ही गया होगा। गुरुदेव अब नही रहे। एक ही दिन में आश्रम की श्री आधी से अधिक नष्ट हो गयी है। वह सभ्यतापूर्ण बातें, स्नेहमय परिहास, सदा काम करने को उत्तेजित करने वाला उपदेश, उत्साह संचारी व्यक्तित्त्व अब केवल स्मरण की वस्तु रह गये। आश्रम अब सब तरह से अनाथ हो गया है।

आज शनिवार है। 15-16 दिन पहले हमने उन्हें यहाँ से विदा किया था। हम लोग कतार बांधकर खड़े थे और वे सबकी ओर गम्भीर पीड़ा के भीतर से भी प्रसन्न मुद्रा से देखते हुए चले जा रहे थे। कल हमने उसी प्रकार कतारें बांधकर उनके चिता भस्म का स्वागत किया। आश्रम इस प्रकार हतश्री कभी नही हुआ था।

बहुत दिनों से आपका कोई समाचार नही मिला। आप स्वस्थ तो है। वहाँ के सभी मित्रों से मेरा प्रणाम कहें।

आपने लिखा था कि आपके पास कबीर सम्बन्धी कुछ सामग्री है। वह मेरे काम आ सकती हो तो मैं देखना चाहता हूँ।

और सब कुशल हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

[36]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी भवन
शान्ति निकेतन, बगाल
14-11-41

श्रद्धेय पडिण्तजी,

सादर प्रणाम।

बहुत दिनों से आपका कोई समाचार नही मिला। सुना था कि आप कुछ अस्वस्थ हो गये हैं। शर्माजी बता रहे थे कि आप जब आगरे गये थे तब काफी अस्वस्थ रहे। उनसे ही मालूम हुआ कि अब आप स्वस्थ हैं। कृपया लौटती डाक से अपने स्वास्थ्य का समाचार अवश्य दें।

इधर विश्वभारती की ओर से हिन्दी का एक त्रैमासिक निकलने जा रहा है। आयोजन तो बहुत दिनों से हो रहा था पर ऐसे आयोजन कई बार होकर रह गये थे और इसीलिए मैं तब तक आपको खबर नही देना चाहता था। जब तक उसका निकालना पक्का न हो जाये। अब यह पक्का हो गया। पहला अंक जनवरी में निकल रहा है। इस अंक में गुरुदेव के निम्नलिखित लेख जा रहे हैं: (1) एशिया के जागरण में ही यूरोप का कल्याण है, (2) पहली बार विलायत में, (3) आधुनिक काव्य (4) नामन्जूर कहानी और दो तीन कवितायें भी दे रहा हूँ। क्षिति बाबू का एक लेख और नन्द बाबू का गुरुदेव की चित्रकला के विषय में एक विचारपूर्ण लेख भी जा रहा है। मूल तिब्बती से एक लामाजी ने सिद्धों का जीवन चरित्र अनुवाद किया है। उसका एक अंश भी देग रहा हूँ। एक लेख मैं सिद्धों के

रक्षा के बारे में और एक अपना 'रस' के विषय में। बाहर से अभी तक कोई लेख नहीं मिला है। आप सुझाइये कि किस प्रकार इस पत्रिका को हिन्दी और विश्व-भारती के गौरव के उपयुक्त बनाऊँ। मैं इसमें ऐसा कुछ भी नहीं देना चाहता जो उस गौरव को लेशमात्र भी क्षुण्ण करे। पर हिन्दी मे अधिकारपूर्वक लिखे हुए लेखों की बड़ी कमी है। किन से कहूँ। कृपया आप इस विषय में मुझे जरूर मार्ग बताते रहे। फिर यह भी जरूरी है कि पत्रिका अपने पैरों पर खडी हो जाय। विज्ञापन अगर अच्छा हो तो हमें लेने में कोई आपत्ति नही है।

आपके उत्तर की आशा में हूँ। पत्रोत्तर जरूर दें।

आशा करता हूँ। आप सानन्द होगे।

आपका
हजारी प्रसाद

[37]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी भवन
शान्तिनिकेतन, बंगाल
22-11-41

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

कृपा पत्र पाकर आनन्द हुआ। इस पत्र के साथ एक विज्ञप्ति भेज रहा हूँ। इससे आपको पत्रिका के उद्देश्यों के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त होगा। यदि सम्भव हो तो मधुकार में इसका कुछ अंश छाप दें। और सब कुशल हैं।

शिवरात्रि तो अभी बहुत दिन है। इच्छा तो जरूर है कि आप से मिलकर कुछ दिन गप्प करूँ पर समिति से बार-बार पाथेय लेने में संकोच होता है। इस बार शिवरात्रि नही तो किसी और छुट्टी के समय अपनी ओर से ही आऊँगा। और सब ठीक है। अपने स्वास्थ्य का जरूर ध्यान रखें। यह अच्छा है कि आपने उसे सुधारने की प्रतिज्ञा कर ली है। बुन्देलखण्ड में स्वास्थ्य बिगड़ना उचित नही है। आशा है अब आप कुछ तगड़े हो चले होगे। मैं काफी स्वस्थ हूँ। बच्चे भी सकुशल हैं। सबका प्रणाम स्वीकार करें।

आपका
हजारी प्रसाद

[38]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी भवन
शान्तिनिकेतन, बंगाल
20-1-42

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी,

सादर प्रणाम।

'विश्वभारती पत्रिका' का प्रथम अंक निकल गया। शीघ्र ही सेवा में पहुँचेगा। इस अंक मे एक नोट मैंने 'प्रांतीय साहित्यों के अध्ययन' पर दिया है। आपने लिखा था कि बुन्देलखण्ड पर श्री कृष्णानन्दजी से आप लिखाएंगे। यदि वे इस अक के लिये उक्त लेख दे सकें तो अच्छा हो। उनको हम अलग से भी पत्र दे रहे हैं। आपको भी थोड़ा कष्ट देना चाहता हूँ। प्रान्तीय साहित्यों का अध्ययन किस ढंग से होना चाहिए और उसका उद्देश्य क्या होना चाहिए। इस विषय पर आप अपनी राय हमे लिख कर भेजें। आशा करता हूँ कि इस समय आपका स्वास्थ्य ठीक ही होगा और लिखने में आपको विशेष कष्ट नही होगा।

स्टेट में पत्रिका के दो-चार ग्राहक हो सकते है क्या ? आप समय पाकर ऐसे महानुभावों का नाम सुझायें जिन्हें हम Complimentary copies इस आशा से भेज सकें कि वे भविष्य में ग्राहक बन जायें।

और सब कुशल हैं। आशा है आप सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

पं. बनारसीदासजी चतुर्वेदी

हमारे प्रथम अंक पर अपनी बहुमूल्य सम्मति भेजकर हमें अनुग्रहित करें।

[39]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी भवन,
शान्ति निकेतन, बंगाल
20-2-42

परम श्रद्धास्पदेषु,

सादर प्रणाम।

आप इसके पहले एक पत्र और विश्वभारती पत्रिका की एक प्रति भेजी थी। आशा करता हूँ कि वह आपको मिल गयी होगी। आपने अभी तक उसका कोई

जवाब नहीं दिया और बहुत दिनों से कोई पत्र भी नहीं दिया। इस पर से मैं अनुमान करता हूँ कि या तो आप किसी कारणवश नाराज हैं या फिर अस्वस्थ हैं। प्रथम कारण मुझे ठीक नहीं जँचता क्योंकि आप नाराज होते तो और कुछ नहीं तो डाँटकर पत्र जरूर लिखते। आप नाराज होकर गुस्से को मन में पोस रखनेवालों में नहीं हैं। इसीलिए मुझे यही लग रहा है कि आप फिर अस्वस्थ हो गये हैं। कृपया लौटती डाक से लिखें कि क्या बात है ? मुझे इतना तो मालूम ही है कि आपका स्वास्थ्य इधर अच्छा नहीं जा रहा है।

'विश्वभारती पत्रिका' के विषय में आपसे बहुत कुछ मार्ग प्रदर्शन की आशा रखता हूँ। पहला अंक करीब-करीब समूचा हमारे हाथों का लिखा हुआ है। दूसरा अंक भी तथैव च। लेख मैंने सभी ऐसे प्रकाशित किये हैं। (गुरुदेव को छोडकर) जो पहले कहीं प्रकाशित नहीं हुए। पर अधिकांश लेख यहाँ बँगला और अंग्रेजी में मिलते हैं और सब कुछ हमीं लोगों को लिखना पड़ता है। इसमें परिश्रम पड़ता है किन्तु पत्रिका में एकरूपता आ जाती है। परन्तु हिन्दी वालों का कंट्रिब्यूशन कुछ भी नहीं जा रहा है। कई सज्जनों को पत्र लिख-लिखके हार गया हूँ। न तो कोई जवाब आता है न लेख ; शायद हिन्दी क्षेत्र में बिना रुपयों के लेख मिलते ही नहीं, या फिर कोई और कारण हो। लगभग डेढ़ सौ प्रतियाँ समालोचना और भेंट में भेज चुका हूँ। एक दर्जन से अधिक लोग ऐसे नहीं मिले जिन्होंने पहुँच की भी सूचना दी हो। समालोचनाएँ भी बहुत कम निकली हैं। कर्मवीर, हंस, विश्ववाणी, और विशाल भारत ने बहुत शीघ्र और सुन्दर समालोचना निकाली है। बाकी किसी ने पहुँच की भी सूचना नहीं दी। गैर-हिन्दीभाषी पत्रों ने ज्यादा भद्रता और तत्परता दिखायी है। देश में भी नन्द बाबू वाले लेख का अनुवाद भी छपा है। पर हिन्दी वालों की ओर से ऐसी कुछ भद्रता या तत्परता नहीं दिखायी दी। शायद सभी लोगों को ऐसा ही अनुभव हो। परन्तु मैं चिन्ता में जरूर पड़ गया हूँ। जिस कागज की महँगी के युग में हमने यह साहस किया है उसको ध्यान में रखते हुए डेढ़ सौ प्रतियाँ कम नहीं है। मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या ऐसा ही होता है और हमें चिन्तित होने की जरूरत नहीं या और कोई ऐसी गलती हम से हुई है जिससे लोग उपेक्षा का भाव दिखा रहे है। जहाँ तक लेख देने का प्रश्न है मैंने उन सब लोगों को अपनी शक्ति भर लिखकर दिया जिन्होंने मुझसे माँगना ठीक समझा है। इसका मैंने हिसाब नहीं रखा। आप जिस प्रकार मुझे स्वयं उद्योगी होकर पैसा भेज देते थे वैसा और लोग बहुत कम करते थे। फिर भी मैं अपनी शक्ति-भर सबकी सेवा करता रहा हूँ। असुविधाओं के होते हुए भी। शायद इसीलिए मैंने मन ही मन आशा की थी कि लोग मेरी भी सुनेंगे, पर जान पड़ता है, ऐसी बात नहीं है खैर।

अगर आपका स्वास्थ्य ठीक हो तो आप मुझे कुछ रास्ता बताइये। किस प्रकार सात्विक और ठोस साहित्य पाया जाय और दिया जाय। किन-किन विषयों पर विशेषभाव से जोर दिया जाय। ग्राहकों की दृष्टि से हमारी पत्रिका का दाम ज्यादा जरूर है, पर इतने पर भी हम घाटे में ही हैं। अगर कुछ अच्छे विज्ञापन

मिलते तो शायद घाटा कम पड़ता और पत्रिका भी सस्ती होती। आप इन विषयों पर हमें जो कुछ बता सकें सो जरूर बताइये।

जामवन्त मैं पूछों तोहीं।
उचित सिखावन दीजे मोहीं॥

और सब कुशल है। आशा है आप सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

कृपया इस पत्र की बात अपने तक ही रखें।

[40]

शान्ति निकेतन
28-3-42

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

दोनों कृपा पत्र यथासमय मिल गये। इधर घर पर एक अतिथि और आ गये हैं—पुत्र-रत्न। सो उनकी खातिरदारी मे ही उलझा हूँ। आपको विस्तृत पत्र दो एक दिन बाद दूँगा। 'पलाश' के विषय मे तो शीघ्र ही भेज दूँगा पर नदियो के बारे में दस-बारह दिन बाद। इस बीच आपको सूचित कर दूँ कि 'एकेडेमिसियन' मैं नही होना चाहता हूँ। 'युष्मदादि' साहित्यिको से सम्बन्ध होना मेरे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। विश्वभारती पत्रिका बिल्कुल एकेडेमिक पत्रिका नही है और उसके सम्पादन के लिए मैं अकेला जवाब दे नही सकता हूँ। साथ ही इस पत्रिका की सबसे बड़ी सार्थकता यह है कि वह बंगाल के हृदय में हिन्दी के प्रति सम्मान बढ़ावे। यह बात निरन्तर मेरे मन मे काम करती रहती है। अगर विश्व भारती–शान्तिनिकेतन से नही निकलकर यह कही और स्थान से निकलती और मैं ही सम्पादक होता तो भी उसका रूप ठीक यही नही होता। इन सब बातों को विचार कर आप कोई धारणा बनावें। गलतियाँ हो तो जरूर सुझावें। मैं आपके प्रत्येक शब्द का मूल्य ठीक-ठीक जानता हूँ। कोई भी आपकी सूचना या आदेश मेरे लिए बहुत मूल्यवान् है। मैं नाना कारणों से उसका पालन न भी कर सकूँ तो भी निश्चित जानिए कि आज नहीं तो दस साल बाद किसी अनुकूल परिस्थिति मे उनका ठीक-ठीक उपयोग होगा ही। पण्डित मैं बनना जरूर चाहता हूँ परन्तु ठूँठ पण्डित नही, जीवंत, सरस, गतिशील। आपका आशीर्वाद रहे तो इस जन्म मे नहीं तो अगले जन्म में।

हजारीप्रसाद

[41]

शान्तिनिकेतन
28-5-42

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

कृपा पत्र यथासमय मिल गया था। बीच में कई दिन के लिए कलकत्ते चला गया था, समय पर जवाब नहीं दिया। विश्वभारती पत्रिका का दूसरा अंक आपको अच्छा लग रहा है, जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। परिषद् की ओर से भिजवाया हुआ मनीआर्डर (छह रु. का) आ गया।

श्री L. K. Elmhirst का पता इस प्रकार है :

L. K. Elmhirst, Esqr.
Totnes,
Devonshire
England

उनकी जीवनी मुझे कहीं नहीं मिली। गुरुदेव ने अपनी एक चिट्ठी में उनके बारे में लिखा है। वह चिट्ठी मैं खोजकर निकाल नहीं पाया। पर शीघ्र ही मिलने पर अनुवाद करके भेज दूँगा। 'मधुकर' में उनके नाम के आगे 'स्व.' छपा है। कृपया उसका अर्थ स्वनामधन्य समझिये, 'स्वर्गीय' नहीं ! आपने लिखा है कि उन्होंने 60 हजार से कम न दिये होंगे। 60 हजार क्या वे कई वर्षों तक श्रीनिकेतन को 50 हजार वार्षिक देते रहे और अब भी करीब 40000 रुपये वार्षिक देते हैं। श्रीनिकेतन उन्हीं की सहायता से आरम्भ हुआ है। वस्तुतः उन्होंने ही पहले-पहल गुरुदेव के साथ (···) गाँव में अकेले ही धूनी रमायी थी। वे बहुत ही महान् हैं। प्रत्यक्ष सहायता के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी उन्होने विश्वभारती को सहायता दी है। लेकिन श्रीमती एलमहर्स्ट ही वस्तुतः रुपये की मालकिन हैं। उनसे विवाह होने के बाद ही श्रीमान एलमहर्स्ट धनी हुए हैं और इस दान यज्ञ का बड़ा अंश श्रीमती की सहृदयता का ही फल है। मैं उनके जीवन के विषय में कुछ और तथ्य आपको भेजूंगा। और सब कुशल हैं। आशा है आप सानन्द है।

हजारीप्रसाद

पुनश्च : अजमेरीजी की कविता पाने के लिए कहाँ पत्र लिखूं। पता लिखिए। मैं व्यक्तिगत रूप से उसका कुछ पारिश्रमिक भिजवा दूँगा।

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपके दो-तीन पत्र आ चुके है और आपने कई छोटे-मोटे काम भी करने को दे रखा है, फिर भी मैं आपको अब तक उत्तर नही दे सका। पिछले पन्द्रह दिन मेरे लिए वड़े कठोर सिद्ध हुए है। घर में मेरी पत्नी बीमार है। मुझे बच्चो को सम्हालने से लेकर शुश्रुषा सेवा तक सब कुछ अकेले ही करना पडा है। बहुत कष्ट में रहा हूँ। इच्छा रहते हुए भी आपको पत्र नही लिख सका हूँ, अब पत्नी की तबीयत कुछ अच्छी हो रही है। फुरसत पाते ही मैं आपकी सभी आज्ञाएँ यथाशीघ्र पालन करने की कोशिश करूँगा। नदियो के माहात्म्य के विषय मे बहुत कुछ सग्रह कर चुका हूँ पर वह इतना अधिक है कि 'मधुकर' लायक बनाने में काफी परिश्रम करके सक्षेप करना पड़ेगा। नदियों के माहात्म्य संस्कृत साहित्य में इतने प्रकार से आये है :

1. काव्य मे—सौन्दर्य की दृष्टि से
2. पुराणों में—पुण्य की दृष्टि से
3. आयुर्वेदिक ग्रन्थों मे—स्वास्थ्य की दृष्टि से
4 ज्योतिष ग्रन्थो में—उनके बहाव आदि पर से शुभाशुभ फल की दृष्टि से
5. पुष्कल

पाँचों का थोड़ा-थोड़ा संग्रह देना उचित होगा।

आशा है आप सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

'नदी' सम्वन्धी मसालो की प्रथम किश्त भेज रहा हूँ। कुछ काम-काज बढ़ गया था और समय पर भेज नही सका था। अब शीघ्र ही समूचा मसाला एकत्र करके भेज दूंगा। गुरुदेव के कुछ गानों को आपने माँगा था, अनुवाद समेत कुछ प्रेरणादायक गाना भेज रहा हूँ।

अब आपका स्वास्थ्य कैसा है? कभी इधर आने की इच्छा नहीं है क्या? यशपालजी की पत्नी शायद इधर कुछ लिखने के उद्देश्य से आना चाहती हैं। अक्टूबर तक प्रतीक्षा कर लेना अच्छा होगा। अब भी इधर बहुत-कुछ अनिश्चित ही-सा है।

श्री बुद्धिप्रकाशजी को और 'कवि गुपलेन' जी को मेरा नमस्कार कहें। पिताजी को प्रणाम कहें।

हम लोग सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

[44]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी भवन,
शान्तिनिकेतन, बंगाल
22-10-42

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

श्री यशपालजी के पत्र से मालूम हुआ कि आप और आपके अन्य साथी मलेरिया से आक्रान्त हैं। इधर भी कुछ ऐसी ही हवा है। मैं भी इस हवा का शिकार बन गया था। शरीर कुछ म्लान हो गया है। वैसे कोई विशेष दुर्बलता नहीं है। पर दिमाग जैसे सूना हो गया है। कुछ लिखने-पढ़ने में उत्साह नहीं पा रहा हूँ। रुटीन का काम किये जा रहा हूँ। नदियों वाला मेरा लेख सुना है, आप तक नहीं पहुँचा। फिर लिख रहा हूँ, पर ऐसी ही लिखूंगा कि आप उसे अपने ढंग से व्यवहार कर सकें अर्थात् मसाला ही इकट्ठा करके भेज दूंगा। दो-एक दिन में आपको मिल जायगा। इधर और सब समाचार ठीक है। एक बड़ा भयंकर तूफान (साईक्लोन) तीन-चार दिन पहले यहाँ आया था। उसने आश्रम के पेड़ों को बुरी तरह मसल डाला है। महर्षि के युग के सभी पेड़ गिर गये हैं। छातिमवाले अब भी खड़े हैं पर उनके पास का विशाल वटवृक्ष गिर गया है। कई मकान भी गिर गये हैं। साईक्लोन लगभग चौदह घण्टे तक समान वेग से चलता रहा। उस दिन 9 इंच पानी भी बरसा। मेरी छोटी-सी पुदीनेवाली बगीची भी बुरी तरह नष्ट हो गयी है। आशा करता हूँ यह तूफान उस तरफ नहीं पहुँचा होगा। आपका स्वास्थ्य अब कैसा है? कुनाइन थोड़ा-थोड़ा जरूर लेते रहिए। अगर कुनाइन का इंजेक्शन ले लें तो और भी अच्छा हो।

साहित्यिक गोष्ठीवाला आपका लेख पढ़ा है। निस्सन्देह साहित्यिक स्फूर्ति के

लिए ऐसी गोष्ठियों का होना आवश्यक है। आपके लेख पढ़ने के बाद मुझे दो प्रकार की काव्य गोष्ठियो का स्मरण हुआ। वात्स्यायन की बतायी हुई और राजशेखर की बतायी हुई। दूसरी विशुद्ध साहित्यिक है। कभी विस्तृत रूप से इनका विवरण आपके पास भेजूँगा। आपको रुचेगा।

आपका
हजारीप्रसाद

[45]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी-भवन,
शान्तिनिकेतन, बंगाल
23-10-42

प्रिय भाई यशपालजी,

सादर प्रणाम।

आपका कृपा पत्र मिल गया था। मै भी कुछ मलेरिया मे परेशान था। समय पर उत्तर न दे सका। आशा करता हूँ कि आप सब लोग सानन्द है। शान्तिनिकेतन नाना कारणों से इस समय सूना हो रहा है। कालेज तो लगभग दो महीने मे बन्द ही है। अब गाड़ी चलने लगी है, आप अगर इधर आना चाहे तो नवम्बर के अन्त में आना अच्छा होगा। परन्तु हर हालत मे मेरा पत्र देख लीजिएगा।

नदियो के सम्बन्ध मे सामग्री दो-एक दिन के भीतर भेज रहा हूँ। इस समय दिमाग भी खाली हो गया है। और कुछ लिखने-पढने मे दिल नही लग रहा है। इसे ही क्या 'वृद्धत्व जरसा विना' कहते है? और सब कुशल है। श्री भाई सीतारामजी को नमस्कार कहें।

आपका
हजारीप्रसाद

[46]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी-भवन,
शान्तिनिकेतन, बंगाल
23-11-42

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

यह पत्र 15 दिन देर से लिख रहा हूँ। 8 नवम्बर को लिखना उचित था। परन्तु आजकल मैं विश्वभारती पत्रिका का सम्पादक, लेखक, मैनेजर, क्लर्क, प्रूफ-रीडर··············! — सब हूँ। क्या इसी को आप लोग जर्नेलिस्टिक भाषा

मे 'सर्वेसर्वा' कहते है ? हां तो मैं इस समय सर्वेसर्वा हूँ और दम मारने की फ़ुरसत नही पा रहा हूँ लिखना-पढ़ना तो हवा हो गया है। परन्तु असन्तुष्ट नही हूँ।

अब 8 नवम्बर की बात सुनिए। कहते हैं आदमी 12 वर्ष मास्टरी करने के बाद गधा हो जाता है। अमेरिका मे सुना है, ऐसे आदमी की गवाही अदालतें नामंजूर कर देती हैं। पिछली 8 नवम्बर को मैं 12 वर्ष का अध्यापक-जीवन समाप्त कर गया। उस पवित्र तिथि को आपको प्रणाम करना था, पर एक साल की सम्पादकी ने बारह वर्ष की मास्टरी को ऐसा पछाड़ा कि समय ही नहीं मिल सका। अब मेरा पक्का विश्वास है कि एक वर्ष का सम्पादक 12 वर्ष के मास्टर की अपेक्षा उक्त पदोन्नति का अधिक अधिकारी है। परन्तु आप एक साल के सम्पादक को वह पद दीजिए या बारह वर्ष के मास्टर को—'दुं हूँ हाथ मनमोदक मोरे'।।'

सो देर से ही सही, आज 8 नवम्बर का प्रणाम आपके पास भेज रहा हूँ। लौटा न दीजिएगा। गोष्ठीवाला आपका नोट जरा संक्षेप करके पत्रिका में दे दिया है। आपने देखा होगा। सब दे सकता तो अच्छा होता पर जरा देर से मिला इसीलिए संक्षिप्त कर देना पड़ा।

हमारे नये अंक के लिए आप कुछ दे सकते तो बड़ी कृपा होती।

आपने स्व. मुशी अजमेरीजी के घर का पता नही दिया। मैं उनके स्मरण के अनुवाद को माँगना चाहता हूँ। उसके लिए यथासाध्य कुछ सहायता भी भिजवाऊँगा। पत्रिका की ओर से नही तो पत्रिका के किसी पाठक की ओर से। आज अनुवाद आपके पास हों तो भेज दें। रजिस्ट्री से।

और सब कुशल है। आपका भेजा हुआ श्री कृष्णानन्दजी गुप्त का ग्रन्थ (प्रसादजी के दो नाटक) मिल गया है। साथ वाला पत्र उन्हे भिजवा दें। शेष कुशल है। आशा है अब आप मलेरिया से मुक्त हो गये होगे। पैरों को ठण्ड से जरूर बचावें। मिल सके तो परवल के पत्तों का (जड़ का नही) और करैले के पत्तों का साग खाइए। मलेरिया के बाद बहुत जरूरी है।

मैं स्वस्थ हूँ।

आपका
हजारीप्रसाद

[47]

शान्तिनिकेतन
1·6·34

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपका कृपा पत्र और श्री बुद्धि प्रकाश जी को लिखे हुए पत्र की कापी मुझे मिल गयी है। श्री क्षिति मोहन बाबू और मलिक जी यहाँ नही हैं। मलिक जी ने

सालभर की छुट्टी ली है और शायद अब नही ही आयेंगे। इसीलिए अकेले ही मैंने पत्र पढ़ा है और इस पत्र के साथ वृद्धि प्रकाश जी के पत्र की कापी लौटा रहा हूँ। क्षिति बाबू के आने पर उन्हें उसकी बातें बता दूगा। आपने जो संकल्प किया है उसका महत्त्व मैं समझता हूँ और उसे मैं एक अत्यन्त आवश्यक कार्य समझता हूँ, परन्तु आपने जो आशंका प्रकट की है कि इससे लोग आपको क्या-क्या कह सकते हैं वैसी आशंका मुझे नहीं है। मेरा अपना अनुमान है कि इस देश के अधिकाश *विचारशील लोगो की दृष्टि मे आपका कार्य निश्चय ही उत्तम होगा।* आपके कार्य को कोई संकीर्ण राष्ट्रीयता की दृष्टि से भी गलत नही कह सकता। वैसे कोई गाली देने की प्रतिज्ञा ही करके बैठा हो तो क्या उपाय है। भगवान ने जब मुंह दिया है तो आदमी जो चाहे कह सकता है, दस हाथ की दर्द की चर्चा भी कर *सकता है—'मुखमस्त्रीति वक्तव्य दशहस्ता हरीतकी'। एण्ड्रयूज जैसे महानुभाव* किसी एक जाति के नही है वे समूची मानव जाति के अपने है। सो, आप नि.शंक होकर उनके सम्बन्ध मे लिख सकते है। वे मानवता के भूषण है और उनकी चर्चा पुण्य है।

मैं इस विषय मे थोड़ी अपनी रुचि की बात भी जोड़ दूं। जिन महात्माओं ने साहित्य, पुरातत्व, ज्ञान-विज्ञान आदि की खोज करके भारतीय नैतिक बल को सौ गुना बढ़ा दिया है उनकी बात आप न भूलें। सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर, फर्ग्युसन शलर, टाम्स डेविड, ग्रियर्सन, वेनर आदि विद्वानों की बात मैं कह रहा हूँ। गुरुदेव की शिक्षा सम्बन्धी चिट्ठियाँ एक दिन मैं देख रहा था। उन्होंने शान्तिनिकेतन के एक अध्यापक को लिखा था—'हमारे देश मे भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भिक दिनों की बात याद करो। डिरोजियो, कैप्टेन रिचार्डसन, डेविड हेयर, ये लोग शिक्षक थे, शिक्षा के सांचे नही और न नोटों के बोझ ढोने वाले थे। उन दिनो विश्वविद्यालयों के व्यूह इतने भयकर नही हो गए थे, तब भी उनमे प्रकाश और हवा के घुसने का उपाय था। उन दिनो नियमो के दरार मे जगह खोजकर शिक्षक अपना आसन जमा सकते थे।' गुरुदेव ने इन शिक्षकों के बारे मे इतनी प्रशंसा लिखी है तो निश्चय ही ये स्मरणीय होगे। मैंने एक वृद्ध सज्जन से इसके विषय मे पूछा था। उन्होने हेयर साहब के विषय मे कहा कि ऐसा साधुचरित अंग्रेज भारतवर्ष मे दूसरा नही आया। पर खेद है कि हम उनके विषय में कुछ भी नहीं जानते। महामति हैवेल की ही बात सोचिए। कितने उदार और खुले हृदय के महात्मा थे वे। वे न होते तो पता नही श्री अबनीद्र ठाकुर की शैली और शिष्य मण्डली और आधुनिक भारतीय कला की क्या दशा होती। उनके विषय मे अबनीद्र नाथ ठाकुर से सुनिए तो मालूम होगा कि वे कैसे महान् थे। मेरे कहने का मतलब यह है कि ऐसे साधुचरित अंग्रेज इस देश में बहुत हो गए हैं जिनका नाम प्रात.स्मरणीय होगा। उसके विषय में हमें और जानने की उत्सुकता होनी चाहिए। आपने यह संकल्प करके जो महत्कार्य का आरम्भ किया है, इसमें किसी को भी शंका नही होगी। मुझ से जो कुछ सेवा सम्भव होगी मैं अवश्य करूंगा।

और आपने जो लिखा है कि आपके पिछले कई वर्ष व्यर्थ चले गए, यह पढ़कर मैं सोचता हूँ कि मैं अपने जीवन को क्या कहूँ। केवल किसी प्रकार पेट पालने में ही तो सारी शक्ति खर्च हो गयी। और अब दूर तक बढ आने के बाद देखता हूँ कि पेट पालने योग्य भी नही रह गया हूँ। दिन रात इसी उधेड़ बुन में लगा रहता हूँ कि इस भयंकर मंहगी के दिनों मे अपना और अपने कहे जानेवालो का पेट कैसे भरू ? इस व्यर्थता का कोई हिसाब है। आप नही जानते कि आपका कोई वाक्य कितनी स्फूर्ति देता है। जो आपका सान्निध्य पा चुका हो और फिर बरसों तक उससे अलग हो चुका हो वह जानता है। गौरा आयी थी और वह भी यही बात कह रही थी। इसलिए आप की अपनी दृष्टि में आपके पिछले साल जैसे भी बीते हों, कितनों ही के लिए वे सार्थक हैं और आपके असन्तुष्ट होने का कोई कारण नही है।

आशा करता हूँ आप प्रसन्न हैं। जयन्ती देवी के शुभ विवाह का समाचार मुझे मिल गया था। मैंने आपका आशीर्वाद लिख दिया है।

हम लोग यहाँ कुशलपूर्वक हैं।

आपका
हजारी प्रसाद

[48]

हिन्दी भवन
शान्तिनिकेतन, बंगाल
21·3·43

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपका कृपा पत्र मिल गया। विश्वभारती पत्रिका के अब तक के प्रकाशित सभी अंक रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भिजवा दिया है। आशा करता हूँ ठीक समय पर मिल जाएगा। इधर कुछ दिनों से मेरी आँखें ठीक-ठीक काम नहीं कर रही है इसलिए पढ़ने-लिखने में कम परिश्रम करता हूँ। जरा आँखें और ठीक हो जाएँ तो नदी महिमा वाला लेख पूरा करूँगा। इस बीच श्री जगदीश्वर प्रसाद जी चतुर्वेदी का भी एक पत्र आया है जिसमें उन्होंने मुझसे बुन्देलखण्डी विश्वकोष में एक लेख लिखने का अनुरोध किया है। आँखो की अस्वस्थता के कारण ही उसमें भी विलम्ब हो सकता है। मैं उनको अलग से भी पत्र लिखूंगा।

यहा सब कुशल हैं। आशा करता हूँ कि आप सानन्द है। पद्मा (हजारी बाग) से श्री मुक्त जी ने लिखा था कि आप उस ओर आने वाले हैं। यदि उधर आवें तो

कल्पलोक के निवासी हैं । उनके मस्तिष्क के कोमल उद्भिस्वमान अंकुरों का स्पर्श मैं उनके पत्रों से पाता हूँ । उनकी भाषा रंगीन होती है, कल्पना सर्जनशील होती है और श्रद्धा का भण्डार सबके लिए अबाध भाव से उन्मुक्त होता है । वे जो विशेषकर गुरुदेव को देते हैं उसे ही मुझे भी दे देने में लेशमात्र भी संकुचित नहीं होते । उनके औदार्य का स्रोत स्वच्छ और चंडगतिशाली होता है । वे बराबर इस प्रकार शुरू करते हैं कि आधुनिक शिक्षा उन्हे पसन्द नही है, शान्तिनिकेतन मे कुछ सीखना चाहते हैं, गुरुदेव के आदर्शों के प्रति श्रद्धा है और प्रायः अन्त मे अत्यन्त कातर प्रार्थना के साथ लिखते हैं : वे गरीब है, पढ़ने का खर्च नहीं दे सकते और शान्तिनिकेतन में कोई व्यवस्था हो जाय तो बरतन भी माँज सकते है । लड़कियों के जो पत्र आते है वे और भी करुण होते है । मेरा विश्वास है कि इनमें प्राण है और अन्ततः 50 फी सदी ऐसे जरूर हैं जिनको उचित वातावरण में रखा जाय तो देश के काम आ सकते हैं । इन्हें कभी कोई पुरस्कार नही मिलेगा, कोई पारितोषिक नही देगा । और इनकी भाषा में इतनी रंगीनी होती है कि शायद ही कोई पत्र-पत्रिका इनके लेख कभी छापें । पर मेरा विश्वास है---नही, अनुभव है कि—ऐसे विद्यार्थी आगे चलकर अच्छे निकलते हैं । क्योंकि ये गतानुगतिकता से बाहर निकलने के लिए छटपटाते होते है और उनकी औदार्य युक्त विशेषण पद्धति और कल्पनामयी चिन्ता सरणि केवल इस बात का सबूत है कि वे कुछ करना चाहते है । क्यों यह वे नही जानते । हम लोगों में से कितने हैं जिन्होंने प्लैन बनाकर साहित्य रचना शुरू की थी ? आप बताइए कि एसे विद्यार्थियों के लिए क्या प्रोत्साहन दिया जा सकता है ? मेरी राय इस विषय में भी नही है । सारे देश में लाइब्रेरियों और निःशुल्क वाचनालयों का जाल बिछ जाना चाहिए, देश के विभिन्न भागो मे ऐसे आश्रम स्थापित होने चाहिए जहाँ सेवा, ज्ञान और सौन्दर्य का वातावरण हो । लड़कियों के लिए विशेष रूप से व्यवस्था होनी चाहिए । आपको याद होगा एक बार शान्तिनिकेतन मे हम लोग विशाल भारत की बिक्री बढाने की बात करते-करते इस नतीजे पर पहुँचे थे कि जब तक हमारे अन्तःपुर सुनिश्चित नही हो जाते तब तक साहित्य का प्रचार समस्या ही बनी रहेगी । लाइब्रेरियाँ एक दिन में नही बनेंगी । आश्रम स्थापित भी हुए तो उपयुक्त वातावरण बनाने में बरसों समय और दर्जनों व्यक्तियों की तपस्या लगेगी । यह मौलिक प्रश्न है । इसी पर केंद्रित किया जाय तो 25 वर्ष बाद सुफल फलेगा । पुरस्कार और पारि-तोषिक सम्मान देते हैं । परन्तु वे प्रोत्साहन नही है । वे भी जरूरी हैं, पर प्रोत्साहन और भी अधिक जरूरी है । इतना ही मुझे विशेष कहना है । मैं इस दिशा मे कुछ सुनता-गुनाता रहा हूँ इसलिए इस ओर शायद कुछ पक्षपात भी है । बाकी मैं आपकी सभी बातें ज्यों का त्यों स्वीकार करता हूँ ।

आशा है आप प्रसन्न हैं ।

आपका

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[50]

ओझवलिया
(वलिया)
27.10.43

श्रद्धेय पण्डितजी,

कृपा पत्र और ग्वालियर विश्वविद्यालय सम्बन्धी पत्र तथा लेख मिले है। विस्तृत उत्तर शान्तिनिकेतन पहुँच कर लिखूँगा। छुट्टियों मे घर आ गया हूँ। चार-पाँच दिन और रहकर यहाँ से शान्तिनिकेतन जाऊँगा। आपने अपने पत्र मे जिन सैद्धान्तिक आधारों की चर्चा की है उसके विषय मे अधिक चर्चा होनी चाहिए। किन्तु उसमें जो मेरे विषय मे लिखा हुआ अश है उसे हटाकर ही प्रचारित करना चाहिए। यदि आप आज्ञा दें तो विश्वभारती पत्रिका मे इस पत्र का सारांश दे दूं। वहाँ जाकर ही आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन का मत लिख सकूँगा। आशा करता हूँ अब आप स्वस्थ और प्रसन्न होगे। हम लोग सकुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद

[51]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी भवन
शान्तिनिकेतन, वंगाल
11-12-43

आदरणीय पण्डितजी,

कृपा पत्र मिला। पाँच जनो की जो जमात आप इकट्ठी कर रहे हैं उनमे अधिकांश मेरे परिचित हैं। ब्योहार साहब को व्यक्तिगत रूप से मैं नही जानता पर आपने जो कुछ लिखा है उससे इतना स्पष्ट है कि वे हमारी जमात के अच्छे मेम्बर हो सकते हैं। आपको यह सूचित करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है कि मैं पहले से कुछ ज्यादा चतुर हो गया हूँ और यह समझने लगा हूँ कि धनी आदमी और गरीव आदमी एक ही समान धरातल पर खड़े नही हो सकते। पर इस चतुरता को अवान्तर प्रसंग समझने मे मुझे बराबर आनन्द मिलता है। सब मिलाकर मैं आपके सांस्कृतिक मण्डल का स्वागत करता हूँ। एक बात बड़ी मिहनत और तपस्या के बाद समझ सका हूँ, वह सहजभाव से ही आपको भी बता देना चाहता हूँ। वह यह कि वही सास्कृतिक संस्था पनप सकती है जो अपने भीतर से अपना कार्यकर्ता तैयार

करती रहे। बाहर की ओर जो संस्था ताकेगी वह मरने को बाध्य है। जो कोई भी सांस्कृतिक संस्था हम बनावें उसके मूल मे यह सिद्धान्त जरूर काम करना चाहिए। उसे अपने योग्य भिन्न-भिन्न कार्यों के निर्वाहक आदमी अपने मे से ही तैयार करना चाहिए। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का शान्तिनिकेतन इसलिए बड़ा हो सका है कि उन्होने विश्वासपूर्वक अपने लोगों मे से ही विधुशेखर भट्टाचार्य, क्षितिमोहन सेन, जगदानन्द राय, कालीमोहन घोष, नन्दलाल बोस आदि आदमी पैदा किये है। ये लोग आश्रम के वैसे ही अध्यापक थे जैसे अन्यत्र हुआ करते है। पर कवि ने उन्हें काम देकर अपने महान् हृदय और महान् आदर्श के अनुकूल बना लिया। दूसरी बात इस प्रसंग मे जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है वह यह कि आदमी तैयार करने के लिए काम देने की आवश्यकता है। कामकाज के भीतर से ही आदमी तैयार होते है। केवल नाम कमाने के लिए या ढिंढोरा पीटने के लिए नहीं बल्कि निश्चित रूप से मानव जाति की सेवा करने वाले लोगो की पंक्ति में बैठने की शुभाभिलाषा लेकर काम करनेवाले ही संस्था को जीवित रख सकते हैं। यह समझकर अगर शुरू किया जायेगा कि हिन्दी पिछड़ी हुई भाषा है और उसमें जहां कही से नोच-बटोरकर कुछ लिख देने से ही सांस्कृतिक काम हो जायेगा तो मूल में भूल होगी। हिन्दी के माध्यम से हमें उसी श्रेणी की मनुष्य-जाति की सेवा करनी है जो संसार की समृद्ध-से-समृद्ध भाषा के माध्यम से उक्त क्षेत्र का श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ व्यक्ति कर गया है। यह बात मैं आपकी परिकल्पित संस्था के लिए भी कह रहा हूँ और उन अन्य शुभ प्रयत्नों के लिए भी जो हिन्दी विश्वविद्यालय या और वैसे ही महान् प्रतिष्ठानो के लिए हो रहे है। हिन्दी मे हमे घटिया दर्जे का काम नही करना है। हिन्दी का मुकाबला संसार की बड़ी-से-बड़ी भाषा से है। नही, हिन्दी उतनी ही सेवा का स्वप्न देखती है जितनी अन्य समृद्ध भाषाएँ कर रही है, यदि बन पड़े तो वह अधिक सेवा और अधिक त्याग का अवसर भी खोना नही चाहती।

एक और तीसरी बात मेरे और आपके बीच की है। वह यह कि मैं मानता हूँ कि दुनिया खेल का मैदान है। खेल में क्या हार और क्या जीत। लड़के भी खेल में रोने से हिचकिचाते हैं। सो इस दुनिया को खेल ही माना जाये। जब तक खेला जाये तब तक जमके खेला जाये। हार जाया जाये तो राम राम, जीत गये तो राम राम। आपको कैसी लगती है यह बात। मुझे ऐसा लगता है कि आपको भी पसन्द आयेगी! सो जो कुछ किया जाये खेल की मस्ती के साथ। मैं सर्वदा आपके साथ हूँ। हां, यह आपने बहुत अच्छी कही कि हमारा मण्डल सम्मेलन की कुर्सियों की परवा न करे। इन कुर्सियो का लोभ हास्यास्पद ढंग से हमारे साहित्यिकों को ग्रस रहा है। समाचार पत्रो के वक्तव्य देखकर मुझे तो हँसी आती है। सो यह ठीक है।

ओरछा के ज्योतिषी ने यदि आपको 75 वर्ष की आयु का आश्वासन दिया है तो शान्तिनिकेतन का ज्योतिषी क्या ऐसा गया-गुजरा है कि एक साथी का भी इन्तजाम न कर सके! खेद है कि आपने यहां के ज्योतिषी की शक्ति को कम कूता है। आप बिल्कुल निश्चिन्त रहे!

घर पर सभी कुशलपूर्वक है। यहाँ का चतुर्वेदी आपको प्रणाम करता है। एक छोटा और है। सब आपको प्रणाम कहते है।

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन और मैं इस बार ओरियेण्टल कांफ्रेंस (बनारस) मे विश्वभारती के प्रतिनिधि होकर जा रहे है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि शास्त्री मोशाय (पं. विधुशेखर शास्त्री) फिर यहाँ आ गये है। स्थायी रूप मे यही रहेगे।

शेष कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद

[52]

20-1-44

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपका पत्र यथासमय नही मिला। इसलिए उसका उत्तर भी देर से जा रहा है। सबसे पहले आपके वामन अवतार धारण करने पर बधाई दूँ और इस शुभ अवसर का प्रणाम निवेदन करूँ। अगर इसी वेग से अवतार धारण करते गये तो श्री कृष्णावतार में काफी देर है। अपने पत्र में आपने मुझसे ऐसा कठिन प्रश्न पूछा है कि मैं कोई जवाब हो नही खोज पा रहा हूँ। यदि मुझे अखबारनवीसी के कालेज का प्रिंसिपल बना दिया जाय तो मै क्या करूँगा, बताऊँ? सन्यास ग्रहण करूँगा। गृहस्थ रहकर इस व्यवसाय मे घुसना बहुत कठिन है। इस कार्य मे तो वह घुसे जो किसी से कुछ चाहता न हो पर चाहता सबको हो। नारद बाबा ने इसीलिए शादी ब्याह की झंझट मोल नही ली थी। एक बार मोह हुआ भी तो भगवान् ने खुद उस मोह को तोड़ दिया। गृहस्थी का गट्ठर पीठ पर लादकर सारी दुनिया के सामने खरी बात कहते फिरना सम्भव नही है। इच्छा-द्वेष से परे रहकर ही आदमी सच्चा पत्रकार बन सकता है। आपने मुझे जिस प्रकार सम्मान देकर स्मरण किया है वह मुझे अत्यन्त लज्जित करता है। ऐसा न लिखा करें। मैं तो आपका सिखाया हुआ ही साहित्य-क्षेत्र मे आया हूँ। आपके प्रोत्साहन से ही लिखता रहा हूँ और आपका अंकुश भी मानकर चलता रहा हूँ। मुझे ऐसा ही बराबर समझते रहें। बच्चे सानन्द हैं। शास्त्रीजी नमस्कार कहते हैं।

हाँ, आपने एक बार मुझे एक कलम दिलवाने की बात कही थी। अगर कोई जजमान इस युद्ध के बाजार मे अच्छा रोजगार कर सका हो तो उससे कुछ दान

दच्छिना की व्यवस्था कराकर एक 'कलम' दान करवाइये। मेरा मतलब 'झरना कलम' या फाउण्टेन पेन से है। है कोई जजमान ?

आपका
हजारीप्रसाद

काशी में भाई राजकुमारजी मिले थे। बड़े ही सहृदय और प्रेमी हैं। ऐसे व्यक्ति को आपने मित्र बना दिया है, तदर्थ कृतज्ञ हूँ।

[53]

शान्तिनिकेतन
5-3-44

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

मैं बीच मे अस्वस्थ हो गया था। इस बीच आपके दो पत्र आये थे। शान्तिनिकेतन आश्रम की ओर से एण्ड्रूज साहब की निधन तिथि मनायी जाती है। पिछली बार मन्दिर में कलकत्ते के प्रधान पादरी साहब ने अपना प्रवचन दिया था। इस बार भी किसी विशिष्ट सज्जन को बुलाया जायेगा। मैंने जिस दिन आपका पत्र पाया उसी दिन उसे आफिस में भेज दिया था। मुझे बहुत बुखार था। मुझे बाद में सूचना मिली कि निधन तिथि को ही शान्तिनिकेतन की ओर से स्मृति दिवस मनाया जायेगा।

जनपद विषयक आपके पत्र का अभी तक मैंने जवाब नहीं दिया। मैं जरा विस्तृत रूप से ही उस पर लिखना चाहता हूँ। यदि आप राय देंगे तो विश्वभारती पत्रिका या मधुकर में भी लिख सकता हूँ।

आपका स्वास्थ्य इस समय कैसा है ? मैं सकुशल हूँ।

आपका टीकमगढ़ वाला निमन्त्रण पूरा करने के लिए समय निकालूँगा। इस समय तो थोड़ा व्यस्त हूँ। परन्तु कलम पाने के उत्साह मे कब निकल पड़ूँगा सो कह नहीं सकता।

भाई यशपालजी से नमस्कार कहें। आशा है वे प्रसन्न हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

[54]

हिन्दी भवन
शान्तिनिकेतन, बंगाल
24-4-44

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम ।

कृपा पत्र मिला । अर्द्धकथानक की 'रिव्यू' निकाल रहा हूँ । क्षितिमोहन बाबू ने अनुरोध किया है । वे लिख सके तो अच्छा ही है, नही तो स्वयं लिखूंगा । आपके स्वास्थ्य ठीक न होने से चिन्ता हुई है । कुछ दिन हवा-पानी बदलना क्या ठीक नही रहेगा ? यहाँ आकर एकाध महीने रहे तो कैसा रहे ? मैं समझता हूँ इससे आपका स्वास्थ्य कुछ अच्छा ही रहेगा और लगे हाथों हिन्दी भवन का स्वास्थ्य भी कुछ ठीक हो जायेगा । इस प्रस्ताव पर आप अवश्य विचार करें ।

हाँ, फाउण्टेन पेन मुझे जरूर चाहिए । 25 फाउण्टेन पेन के लिए कम-से-कम 75 वर्ष और आपको जीवित रहना पड़ेगा । क्योंकि एक पेन को मैं तीन वर्ष से कम नही चलाऊँगा । इसलिए ज्योतिषी की भविष्यवाणी का अर्थ हुआ 75 वर्ष और ।

आशा करता हूँ कि यह पत्र जब आपको मिलेगा, उस समय आप स्वस्थ और प्रसन्न हो गये होंगे । एक बार इधर आइये जरूर ।

बच्चे सानन्द हैं । हम सब लोगो का प्रणाम स्वीकार करें ।

आपका
हजारीप्रसाद

श्री भाई यशपालजी को सादर नमस्कार ।

[55]

शान्तिनिकेतन
10-7-44

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम ।

आपको एक खुशखबरी देनी है । हिन्दी भवन अब तक मकान ही मकान था । इस विषय में कुछ प्रयत्न नही किया गया था । आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री कनोडियाजी और श्री पुरुषोत्तम हलवासियाजी की कृपा से इस वर्ष मे कुछ ठोस कार्य किये जाने की व्यवस्था हो रही है । दो विद्वान् स्कालरों और एक अध्यक्ष का खर्च देना हलवासिया ट्रस्ट ने स्वीकार कर लिया है । मैं चाहता हूँ कि आप

उचित समझें तो एक पत्र श्री पुरुषोत्तम हलवासिया को उत्साहित करने के लिए लिख दें। उनकी उमर अभी कम है पर रुचि अच्छी है और हृदय विशाल है। उनका पता है—

श्री पुरुषोत्तम दास जी हलवासिया,
47, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता

एक पत्र कनोडियाजी को भी लिख दें तो अच्छा रहे। आप वहाँ बैठे-बैठे भी दो-चार चिट्ठियाँ लिखते रहें तो हिन्दी भवन का बहुत लाभ हो। आपकी ही कृति है।

एक और निवेदन है। श्री गुरुदयाल मलिकजी हिन्दी भवन में ही रहना चाहते है। वे इन दिनो यहाँ नहीं हैं। एण्ड्रूज साहब उन्हें कितना प्यार करते थे, यह आप जानते ही है। गुरुदेव के और गांधीजी के वे समान भाव से प्रिय हैं। उनके जैसा आदर्श चरित्र और उच्च आत्मबल का व्यक्ति हिन्दी भवन को मिल रहा है, यह हमारा अहोभाग्य है। वे यहाँ रहकर कुछ काम करेंगे। एण्ड्रूज साहब के बारे मे भी उनसे लिखवाया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि उनके खर्च की कोई व्यवस्था हो जाती। इस विषय में क्या टीकमगढ़ के महाराजा साहब से कोई आशा कर सकता हूँ। आप जो उचित समझें वह करें या मुझे करने को लिखें। मैं इन विषयों मे अल्पज्ञ हूँ।

हिन्दी भवन की योजना बनाने के लिए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल आदि विद्वानों से सलाह लेने की व्यवस्था हो रही है। इसके बाद विस्तृत रूप में आपको लिखूँगा।

कृपया शीघ्र ही पत्रोत्तर दें।

आपका
हजारीप्रसाद

[56]

हिन्दी भवन
शान्तिनिकेतन
7-10-44

प्रिय भाई जगदीश प्रसादजी,

'मधुकर' का जनपद आन्दोलन अंक मिला। मैने भी इस अंक के लिए लेख लिखा था, वह अधूरा ही पड़ा रह गया है। अब इस अंक मे प्रकाशित सामग्री के आधार पर उसमें और भी सुधार किये जा सकेंगे। खैर।

मधुकर का यह अंक बड़ा ही सुन्दर और उपयोगी हुआ है। मैं आपकी सफलता के लिए आपको बधाई देता हूँ। आपका लिखा हुआ 'इतिहास और समीक्षा' बहुत

साफ और स्पष्ट है। शुरू से ही मुझे ऐसा लग रहा था कि चतुर्वेदीजी, अग्रवालजी और राहुलजी के भिन्न-भिन्न श्रेणी के विचारों को लोग एक मे सानकर गलती कर रहे हैं। इस अंक मे आपने इस गलतफहमी को एकदम दूर कर दिया है।

मैं अपने अधूरे लेख को पूरा कर देना चाहता हूँ पर वह कुछ जरूरत से ज्यादा लम्बा हो गया है। मधुकर के साधारण अंक मे तो क्या अटेगा। विश्वभारती पत्रिका और विशाल भारत मे यदि सम्भव हुआ तो छपाने का प्रयत्न करूँगा।

आशा है आप प्रसन्न है। भाई यशपालजी को मेरा सस्नेह सादर नमस्कार कहे। श्रद्धेय चतुर्वेदीजी क्या बम्बई से लौट आये है।

आपका
हजारीप्रसाद

[57]

लखनऊ
29-1-45

परम पूज्य पण्डितजी,

कल लखनऊ विश्वविद्यालय ने आनरेरी डी. लिट्. की उपाधि दी। बार-बार इच्छा हो रही थी कि आपके चरणों पर सिर रखूं। आपका ही प्रसाद है। आपसे लेखक जीवन के आरम्भ मे ही जो शिक्षा मिली थी वह मेरे जीवन की सबसे बडी निधि रही है। वही मेरा ध्रुव नक्षत्र बनी रही है। मैं आज अपने कई गुरुजनों को इस अवसर पर नही पा रहा हूँ, मन बडा उदास है। पर सौभाग्यवश आपको प्रणाम निवेदित कर सकता हूँ। मेरा सादर प्रणाम ग्रहण करें और भविष्य मे मुझे आशीर्वाद पानेवालों मे सबसे आगे स्मरण किया करें।

संयोगवश, श्री बुद्धिप्रकाशजी से भेंट हो गयी, बडा आनन्द मिला। ऐसा लगा कि आप ही मिल गये हों।

वारवार प्रणत
हजारीप्रसाद

[58]

हिन्दी समाज
शान्तिनिकेतन
2-2-45

परम श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम। आपका और अन्य मित्रों के आग्रहपूर्ण पत्र पा चुका हूँ। मैलेरिया से इस साल परेशान हूँ। जिस समय श्रीयुत् महेन्द्र शास्त्रीजी का दन्य

आया था उस समय मुझे बुखार था। चार दिन से बुखार नही आया है। आशा करता हूँ स्वस्थ हो जाऊँगा। पर आपके पास न पहुँच सकने के कारण मेरा मन बहुत व्याकुल हो रहा है। आशा करता हूँ छपरा मे आपकी यात्रा साहित्यिक जागरण मे बहुत सहायक होगी। मेरी विवशता आप आसानी से समझ सकते हैं। मेरे अन्तर में वहाँ न पहुँच सकने के कारण कैसी छटपटाहट हुई है यह मैं लिख नही सकता।

आशा है आप प्रसन्न है।

आपका
हजारीप्रसाद

[59]

हिन्दी भवन,
शान्तिनिकेतन
15-4-45

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

इतना समीप आकर भी आप इधर नही आ सके, इसका मुझे बड़ा खेद है। मैं भी दर्शन करने वहाँ नही जा सका, यही सोचता रहा कि आप यहाँ आ रहे है। अब तो सिर्फ अफसोस ही हाथ रह गया। मुशीजी का अनुवाद मिल गया है। आपने जिस प्रकार की सामग्री संग्रह करने की आज्ञा दी है, वैसी सामग्री सग्रह करके भेज दूंगा। लगभग दस दिन बाद यह सामग्री आप तक पहुँच जायेगी। इस बीच मैं एक और काम से निबट लूँगा। काशी जा रहा हूँ। 21-22 को प्रसाद परिषद के उत्सव मे योग देना है। उसके बाद ही आपके पास सामग्री भेज सकूँगा। कोशिश कर रहा हूँ कि शीघ्र ही 100 रुपये मुशीजी के परिवार की सहायता के लिए आपके पास भिजवा दूँ।

आशा है, आप सानन्द है। हम लोग कुशलपूर्वक हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[60]

शान्तिनिकेतन
5-9-45

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपने जो लेख भेजा था उसमे कुछ और जोड़कर लौटा रहा हूँ।

आपके छपरावाले मुकद्मे का क्या हुआ, कुछ समाचार नही मिला। क्या

सरकार को सुबुद्धि हुई और उसको उठा लिया ?

मधुकर का नया अंक देखा ; बहुत अच्छा है। इसमे हिन्दी और हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में रचनात्मक सुझावों के लिए मत माँगकर छापें तो कैसा रहे ? मै एकेडेमिक बहस की बात नही कर रहा हूँ। शीघ्र ही भारतवर्ष को स्वराज्य मिलेगा और भाषा की समस्या अत्यन्त नग्नरूप में उपस्थित होगी। मुझे कोश-व्याकरण बनाकर भाषा को 'रूप देने वाला' प्रयत्न सफल होता नही दिखता। फिर भी इस विषय मे लोगो से लिखने की प्रार्थना की जाय तो 'वादे वादे जायते तत्त्वबोध.' शायद कुछ अच्छी बात निकल भी आये।

यहाँ सब कुशल है। आशा है, प्रसन्न है।

आपका
हजारीप्रसाद

[61]

शान्तिनिकेतन
19-9-45

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

6 पैसे के तार के लिए अनेक धन्यवाद। आपकी तन्दुरुस्ती की खबर से बडी चिन्ता हुई। मैलेरिया बुरा रोग है। गतवर्ष मुझे बहुत सताया इसने। मैपाक्रिन की गोलियों से मुझे बहुत लाभ हुआ था। आजकल ये गोलियाँ सर्वत्र मिलने लगी है। अगर वहाँ न मिलती हो तो मुझे तुरन्त लिखिए मैं यहाँ से भिजवा दूंगा। मैपाक्रिन की गोलियाँ पीली-पीली होती है। ये कुनाइन से अच्छी समझी जाती है। यद्यपि यह स्थान मलेरिया से मुक्त नही है तो भी खुला हुआ है। आप कुछ दिन यहाँ आकर रहें तो परिवर्तन से कुछ लाभ हो सकता है। आपको मानसिक आनन्द भी मिलेगा। 'सेवेन परसेंट' तो इधर भी बहुत निकल रहे हैं। परन्तु आप निश्चिन्त रहें, ये लोग 'शिवजी की आज्ञा से' ही कही-कही दिख जाया करते हैं। आपके 'शिव' तो एण्ड्रूज ही थे। हम लोगों ने उनका नाम 'गुरुवर' दिया था, सो 'गुरुवर' बराबर आपकी रक्षा कर रहे हैं। कुछ परवा न करें। मिस माइरन जो इस समय एण्ड्रूज पीठ के लिए आई हैं, अंग्रेज महिला हैं। बंगला अच्छी तरह जानती हैं। काम अंग्रेजी में करेंगी। सम्भवतः मलिकजी भी नवम्बर मे आ जाएँगे। आपकी पुस्तक के अनुवाद के बारे में मैंने पब्लिशिंग बोर्ड से पूछ-ताछ की है। अभी उनका कोई उत्तर नहीं आया है।

मेरी आर्थिक स्थिति पहले से अच्छी है। बच्चों का स्वास्थ्य ठीक है। यद्यपि सबसे छोटे दो बच्चों को ही थोड़ा-थोड़ा दूध मिल पाता है पर आपके आशीर्वाद

से वे स्वस्थ और प्रसन्न रहते हैं। चतुर्वेदी स्वस्थ है। पिछले आठ महीनों से मैं हिन्दी भवन का डिरेक्टर हूँ और इसलिए मेरी तनखाह 100 रुपए की जगह 200 रुपए हो गई है। पुराना कुछ उधार और ऋण है। उसको चुका रहा हूँ। पिछले आठ महीनों में ऋण लेने का मौका नहीं आया। यह जगह अभी भी अस्थायी ही है।

प्रिंसिपल ध्रुव वाली घटना मैं आपको सुना देता हूँ। परन्तु इसे अभी छापिए नहीं। ध्रुवजी अब स्वर्गीय हो गए है। और मेरे साथ जो घटना हो गई वह शायद आकस्मिक ही थी, स्वभाव से वे दयालु ही थे। बात यों हुई कि मैं संस्कृत कालेज मे पढता था। इतना आप ध्यान में रखें कि हिन्दू विश्वविद्यालय का संस्कृत कालेज न होता तो मै शायद कुछ भी पढ़ नही सकता था। मैंने इधर-उधर से सीखकर थोड़ी अग्रेजी पढी और एडमिशन की परीक्षा में बैठा। प्रथम श्रेणी मे पास हो गया। हिन्दू विश्वविद्यालय के सेण्ट्रल हिन्दू कालेज में मैं बड़े उत्साह से इण्टरमीडिएट में पढने गया। मेरे घर की आर्थिक अवस्था की बात न कहना ही ठीक है। मुझे याद आता है कि पिताजी ने बडी कठिनाई के बाद गाँव के एक व्यक्ति से 40 रुपए उधार लिये थे। यह मेरी इण्टरमीडिएट की भर्ती करायी की प्रथम बली थी। मैं इसके बाद केवल क्लास में बैठता और फीस नही देता। हिन्दू विश्वविद्यालय मे उन दिनों बहुत से गरीब शिष्य थे, जबरदस्ती क्लास मे बैठा करते थे। साल के अन्त में ध्रुवजी और मालवीयजी की कृपा से उनका उद्धार हो जाता था। मैं भी उसी श्रेणी मे था। कई बार चेतावनी मिली पर मेरे पास एक कौड़ी नही थी। संस्कृत कालेज मे 15 रुपए वृत्ति मिलती थी और 5 रुपए का एक ट्यूशन करता था। कुछ खाता था, कुछ बचाकर घर भेज देता था। घर की अवस्था बडी दयनीय थी, आज भी याद करता हूँ तो रोएँ खडे हो जाते है। साल के अन्त में मेरा नाम कट गया। मैंने सुना था कि ध्रुवजी के पास जाने से सब ठीक हो जाता है। मैं डरते-डरते प्रिंसिपल ध्रुव के कमरे मे गया। वे कुछ झल्लाये हुए बैठे थे, शायद मेरे जैसे और भी लक्ष्मी के त्यक्त पुत्र उनकी सेवा मे हाजिर हो चुके थे। मैंने अपनी कहानी सुनायी। बीच ही मे झल्लाकर बोल उठे—जाओ, मैं नही सुनना चाहता। यूनिवर्सिटी गरीबों के लिए नही है। जाओ ईंटा ढोओ। मेरा अनुमान है कि वे किसी कारण गुस्से मे थे। नही तो उनका स्वभाव दयालु था, परन्तु मुझे तो जैसे बाण लग गया। मैंने आधी बात जहाँ की तहाँ छोड़ दी और उठकर प्रणाम करके तुरन्त लौट आया। वे दरवाजे तक मुझे जाते देखते रहे। सम्भवतः मुझे पागल समझा। मैं अपने संस्कृत कालेज के होस्टल मे—जिसे विश्वविद्यालय के धनी मानी विद्यार्थी 'अस्तबल' रहा करते थे—लौट आया और खूब रोया। मेरी पढ़ाई वही रुक गई। मेरे एक अध्यापक ने कहा कि चलो मैं तुम्हे फिर से ध्रुव जी के पास ले जाता हूँ। गरज पड़ती है तो सौ बार जाना होता है, पर मेरी रीढ़ टूट चुकी थी। मैं नही गया। मालवीयजी के पास जाने की भी हिम्मत नही हुई। बाद मे मैंने केवल अंग्रेजी लेकर परीक्षा दी। संस्कृत के शास्त्री पास

विद्यार्थी केवल अंग्रेजी लेकर बी. ए. तक की परीक्षा दे सकते थे। वह भी एक मजेदार कहानी है। परीक्षा मे फीस बहुत कम लगती थी पर उतना दे सकने लायक पैसा भी मेरे पास नही था। मेरे पास ओढ़ने के लिए कपडे भी नहीं थे। मुझे किसी से माँगने की कला नही आती थी। सो मैंने बगल में पोथी दबाई और कथा बाँचने चला गया। मेरे एक मित्र थे। श्री सीताराम द्विवेदी। इस अगस्त आन्दोलन मे वे गिरफ्तार हुए और जेल मे ही स्वर्ग सिधार गये। उन्होंने कोआथ (आरा) में मेरी कथा बैठा दी। वे खुद आर्यसमाजी थे पर मेरी सहायता के लिए उन्होंने इस बात की परवा नही की। कथा सात दिन तक हुई। और आठवें दिन चढ़ावा चढा। 35 रुपये एक रजाई, कुछ साड़ियाँ, कुछ कपड़े, कुछ धोतियाँ और प्रचुर अन्न मुझे मिला। रजाई कोआथ के हकीम बन्धुओं ने दी थी। मेरे जीवन में इससे बड़ी सहायता न कभी मिली और न मिलेगी। आप आसानी से समझ सकते हैं कि साडियों और धोतियों का मेरे घर मे कैसा स्वागत हुआ होगा। 35 रुपये तो मेरे लिए बहुत बड़ी सिद्धि थी। सो मैं इन्टरमीडिट की नदी पार कर गया। आचार्य पास करने के बाद मैंने एक बार और कथा बाँची थी। उसमें 68 रुपये मिले थे। मेरे परम मित्र बाबू बबन सिंह ने इसकी आयोजना की थी। ये दो कथाएँ मैंने बाँची हैं। सोचता हूँ कि थोड़ा बूढा हो जाऊँ तो अपने जीवन के दुःखो और उनको दूर करने में सहायता देनेवालों का संस्मरण लिखूँ पर जब सूची पर ध्यान देता हूँ तो वह बहुत विराट मालूम होती है। पर लिखूँगा जरूर।

शायद माधुरी में छपा हुआ आपका एक लेख मैंने पढा था। वह 'शन्तिनिकेतन में चौदह मास' या ऐसा ही कुछ था। मुझे उस समय शान्तिनिकेतन एक स्वप्नलोक की भाँति लगा था। मुझे क्या मालूम था कि शान्तिनिकेतन और उसमें चौदह मास बसनेवाले आगे चलकर मेरे भविष्य का निर्माण करेंगे। शान्ति-निकेतन में मैं किस प्रकार आया, यह कहानी शायद आपको सुना चुका हूँ। जीवन में 'टर्निंग पाईंट' की बात आपने पूछी है। मेरे जीवन की सबसे बडी घटना शान्ति-निकेतन में गुरुदेव का दर्शन पाना है। न जाने किस पूर्व पुण्य फल से मुझे यह सौभाग्य मिला था। दर्शन पा सकना ही परम पुण्य का फल है, परन्तु मुझे तो स्नेह मिला था। बाद में 'गुरुवर' के दर्शन मिले। आहा! भागीरथी की निर्मल जलधारा के समान उस प्रेमिक महापुरुष का साहचर्य कितना आह्लादकर था, इस बात को वही जान सकता है जिसने कभी उस रस का अनुभव किया हो।

मेरे साहित्य-गुरु तो अनेक हैं पर जिनकी एक चिट्ठी ने मेरे अन्दर अपूर्व जीवनी शक्ति भर दी थी उनको मैं क्या कहूँ। उन दिनों मे अज्ञात आख्यात लेखक था। रवीन्द्रनाथ की कविताओं पर एक लेख लिखकर 'विशालभारत' में छपने को भेजा था। 2 जनवरी को मुझे एक पत्र मिला कि 'आप हमारे जैसे बहुतेरों को पीछे छोड़ गये हैं', मैं आश्चर्य से उस पत्र को बार बार पढता रहा। उस दिन मुझे एक नयी शक्ति का अनुभव हुआ। आपको नहीं मालूम कि उस एक चिट्ठी ने मुझे कितना बल दिया था। उसके एक-एक शब्द में प्रेम और प्रेरणा का ज्वार था।

साहित्य क्षेत्र में आप मेरे गुरु हैं। मैं कृतज्ञतापूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ। मेरा एक बड़ा सौभाग्य यह रहा कि मुझे गुरु बड़े मस्त और उदार मिलते गये। मैं काशी में ज्योतिष पढ़ता था। स्व. पं. रामयत्न ओझा मेरे गुरु थे। बड़े उदार और बड़े मस्तमौला। मुझे बहुत प्यार करते थे। हालांकि मैं कई बातों मे उनसे मतभेद रखता था। शान्तिनिकेतन आने के बाद मैंने 'व्योमकेश शास्त्री' इस प्रच्छन्न नाम से एक लेख 'सनातन धर्म' में लिखा। सनातन धर्म मालवीयजी का पत्र था। और हिन्दू विश्वविद्यालय से निकलता था। आपने मुझे प्रच्छन्न नाम से लिखने को मना किया था। मैं लज्जापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि कई बार मैंने प्रच्छन्न नाम से लेख लिखा है। परन्तु बराबर आपकी बात इस अर्थ में पालन करता रहा हूँ कि जब भी कोई जवाबदेही का काम होता है तो अपने असली नाम से ही लिखता हूँ। केवल अनुवाद आदि कभी-कभी प्रच्छन्न भाव से लिखता हूँ। आप इतने की छूट तो दे ही देंगे। परन्तु व्योमकेश शास्त्री का सनातनधर्म वाला लेख सचमुच संकोच और भय के कारण ही गुप्त नाम से लिखा गया था। उसमें गुरुजी के ज्योतिषिक मत की आलोचना थी। उन्ही दिनो इंदौर में ज्योतिष सम्मेलन होने जा रहा था। मालवीयजी महाराज सभापति थे। उद्योक्ताओं को मेरा लेख पसंद आया और 'व्योमकेश शास्त्री' उस सम्मेलन की निर्णायक समिति में बंगाल के प्रतिनिधि के रूप में चुन लिए गए! उनके पास चिट्ठी गई, तार गया, रजिस्ट्री से सब सामग्री भेजी गई और मैं सब पाता गया। शान्तिनिकेतन में जिस हिन्दी पते वाली चिट्ठी का कोई ठिकाना नही लगता वह मेरे पास आ जाती है। व्योमकेश शास्त्री की चिट्ठी भी मेरे पास आई और मैंने ले ली। मैंने सम्मेलनवालों को भ्रम मे नही रखा। उन्हे साफ साफ अपना नाम बता दिया। फिर भी उन्होने मुझे निर्णयक समिति में रहने पर जोर दिया। लेकिन मैं वहाँ जाने की हिम्मत नही कर सका क्योंकि गुरुजी उस निर्णायक समिति के सामने अपने पक्ष की स्थापना करने वाले थे। यदि मैं जाता तो मुझे उनके मत का सर्वांश में तो नही पर कई बातो में समर्थन करना कठिन जान पड़ता। निर्णायक के आसन पर बैठकर मै किसी भी व्यक्ति के प्रति संकोच और पक्षपात को पाप मानता हूँ सो, मैं नहीं गया। गुरुजी भी वहाँ स्वयं उपस्थित नही हो सके थे। यह सारी कहानी गुरुजी को बाद में मालूम हुई। वे बहुत प्रसन्न हुए और मुझे डाँटते हुए कहा कि मैं तो उस दिन अपनी विद्या सफल मान लेता जिस दिन तू मेरे मत की परीक्षा के लिए निर्णयक की गद्दी पर बैठता। सर्वत्र जय मिच्छते पुत्रात् शिष्यात पराजय। सब जगह जीत की इच्छा रखनी चाहिए पर पुत्र से और शिष्य से हार की इच्छा रखना ही उचित है। गुरुजी बड़े भारी विद्वान थे। उनकी विद्वता सारे भारतवर्ष में स्वीकार की जाती थी परन्तु विद्वान् से भी अधिक वे उदार मनुष्य थे। पण्डितो में इस प्रकार बहुत कम लोग मिलते हैं। ऐसा मस्तमौला पण्डित आपने नही देखा होगा। दुर्भाग्यवश उनकी मृत्यु हो गई है। नही तो और नहीं तो उनके दर्शन के लिए ही आपको एक बार काशी ले जाता।

रवीन्द्रनाथ को देखने का जिस दिन मुझे अवसर मिला वह दिन मेरे अनेक

जन्म के पुण्यों का फल था। मैंने विलकुल नयी दृष्टि और नया विश्वास पाया। दोष मुझमे अनेक हैं। सब ठीक से छिपे हों ऐसी बात नहीं है। कितनी बातें जानीं फिर भी उन्हें सुधार सकने की क्षमता नही है। इसलिए मैं रवीन्द्रनाथ को जितना ग्रहण करना चाहिए उतना ग्रहण नही कर सका। परन्तु उनके दर्शन से मेरे अन्तर में निश्चित रूप से आलोड़न हुआ था और कुछ-कुछ मैल जरूर गिर गयी थी। फिर भी पण्डितजी, आपसे सत्य कहता हूँ मेरा जीवन कुछ सार्थक नही मालूम होता। आपने राहुलजी और अग्रवालजी के साथ मेरा नाम लेकर मुझे लज्जित किया है। आप सहज स्नेहभाव से जो कुछ कह गये हैं वह उचित नहीं है। आप आगे कभी इस तरह न लिखें। यदि मैं कुछ अच्छा कर सका हूँ तो, विश्वास मानिए, वह मेरे कृपालु गुरुजनों और मित्रों की कृपा का फल है। मैं जितना ही विचारता हूँ उतना ही लगता है कि मैं भार के वेग ले चलनेवाले मजदूर की भाँति भागता रहा हूँ। बोझ में यदि कोई मूल्यवान् वस्तु है तो वह मेरी नही है। मैंने अब भी तत्त्व का आभास नही पाया है। मेरे जीवन के 38 वर्ष बीत गये पर मैं ऐसा कुछ नही पा सका जिसे किसी की परवा किये बिना अपने रास्ते चल पाऊँ। गुरुदेव (कविवर रवीन्द्रनाथ) ने किसी दुःख और वेदना से भरे क्षण में एक गीत गाया था। कभी-कभी मैं भी उसे गुनगुनाता हूँ और आराम पाता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि मेरा अन्तरतर इसी प्रार्थना को पुकार-पुकारकर गा रहा है। आपके विनोद के लिए वह गान लिखे देता हूँ। पहले अनुवाद और बाद में गान है। (आगेवाले पृष्ठ पर) मैंने ये सारी बातें आपके पूछने के कारण लिखी है। उन्हें आप अपने तक ही रखें।

मेरी आर्थिक स्थिति पहले से अच्छी है। पिछले दिसम्बर तक 100 रुपये मासिक पाता था। जनवरी से 200 रुपये पा रहा हूँ। पिछले ऋण मे कुछ कट जाता है और घर भाड़ा में 8 रुपये जाते हैं। सब काट-कूट के इन दिनों 140-145 तक हाथ में आ जाते हैं। बुरा नही है। किस हिन्दी लेखक को इतना भी मिलता है। नयी नौकरी अस्थायी है। 2 साल तक की। यदि फिर नयी हिन्दी भवन-योजना के लिए रुपये नही मिले तो पुरानी नौकरी पर ही लौटना पड़ेगा। अभी साल भर तक तो इसी पर हूँ। लम्बे पत्र के लिए क्षमा करें। पुरानी चिट्ठियाँ जरूर आपके पास जायेंगी। आशा है प्रसन्न हैं।

हजारीप्रसाद

(हे मित्र)	(बन्धु)
तुमने जितना भार दिया था उसको सहज कर दिया था।	तुमियत भार दियेछ से भार करिया दियेछो सोजा
मैंने जितना भार जमा लिया है वह सब बोझ हो गये हैं।	आमि यत भार जमिये तुलेछि सकलि हयेछे बोझा।
(हे मित्र)	(बन्धु)
मेरे मित्र, तुम मेरे इस बोझ को	ए बोझा आमार नामाओ बन्धु,

उतारो, भार के वेग से न जाने कहाँ चला जा रहा हूँ इस यात्रा को तुम रोको।	नामाओ भारेर वेगे ते चलेछि कोथाय ए यात्रा तुमि थामाओ। (बन्धु)
(मित्र) मैंने खुद-बखुद जिस दुख को बुला लिया है वह वज्र की अग्नि से मुझे जलाया करता है। और (सब कुछ को) ऐसा कोयला बना देता है कि वहाँ कोई फल फलता ही नहीं।	आपनि ये दुख डेके आनि से ये ये ज्वालाय वज्रानले अंगार करे रेखे जाय से था को नो फल नाहि फले। (बन्धु)
(हे मित्र) तुम जो कुछ देते हो वह तो दुख का दान होता है वह सावन की झड़ी के समान पीड़ा के रस से प्राण को सार्थक कर देता है।	तुमि याहा दाओ से ये दुःखेरदान श्रावणधाराय वेदार रसे सार्थक करे प्राण। (बन्धु)
(हे मित्र) मैंने जहाँ जो कुछ पाया है सिर्फ जमाता ही गया हूँ जो देखता है वही आज हिसाब माँगता है कोई भी क्षमा नही करता।	ये खाने किछु पेयेछि केवली सकलि करेछि जमा ये देखे से आज मागे ये हिसाब केह नाहि करे क्षमा। (बन्धु)
(हे मित्र) हे मित्र, मेरे इस बोझ को उतारो, उतारो। भार के वेग से ठेला जाता हुआ चल रहा हूँ, इस यात्रा मे मुझे रोको।	ए बोझा आमार नामाओ बन्धु, नामाओ भारेर वेगे ते ठेलिया चलेछि ए यात्रा मोरे थामाओ। (बन्धु)

(मेरे मित्र)

'चतुर्वेदी' स्वस्थ है। आपको प्रणाम कहता है।
सब बच्चे प्रसन्न हैं। हम सबका प्रणाम स्वीकारें।

आपका
हजारीप्रसाद

[62]

शान्तिनिकेतन
27-10-45

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपकी तीन चिट्ठियाँ मिली। एक का उत्तर दे ही नही पाता कि दूसरी हाजिर है। आजकल चाय कौन बनाता है, यह जानने की इच्छा हो रही है। सिर्फ चाय के पत्तो से (बुढ़ापे ! मे) इतनी स्फूर्ति तो नही आ सकती। जरूर वह 'चौवई बूटी' का प्रयोग कर रहा है ! प्रश्नो के उत्तर इस प्रकार हैं।

1. मेरे सहकारी मित्र श्री मोहनलाल वाजपेयी बाहर गये है। उनके आते ही चिट्ठियों का संग्रह आपके पास भिजवा दूंगा। अनावश्यक चिट्ठियाँ छाँटकर निकाल दूंगा।
2. शान्ति निकेतन की सीख थोड़ा लिख लिया है पर बड़ा लम्बा होता जा रहा है। इसलिए इस अंक के लिए संस्कृत साहित्य से क्या सीखा जा सकता है, भेज रहा हूँ। शान्तिनिकेतन वाला भी भेज दूंगा। काम लायक बना लिया जाएगा।
3. व्यासजी का जीवन मैं लिखूंगा। पर देर से। मैं आपकी बतायी हुई पुस्तक world of yesterday कलकत्ते से मँगा रहा हूँ। उसे पढ़कर ही व्यासजी की जीवनी लिखूंगा।
4. विदुला उपाख्यान नितान्त उपेक्षित नही है। इसका जर्मन अनुवाद जैकोनी जैसे पण्डित ने किया था और अँग्रेजी कविता मे J. Muir ने बहुत सुन्दर अनुवाद किया है। (दे. Metrical Translation from Sanskrit Writers p. 120-133).

   मुझे इसका हिन्दी अनुवाद करने मे बड़ी प्रसन्नता होगी परन्तु इस समय मैं बुरी तरह उलझा हुआ हूँ। हिन्दी भवन को जरा चलता बनाकर तब आपकी सब आज्ञाओं को एक साथ उठा लूंगा। आशा है प्रसन्न होगे। यहाँ कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद

[63]

हिन्दी-भवन
शान्तिनिकेतन, बंगाल
29.2.46

पूज्य पण्डितजी,

आपके कई पत्रों का उत्तर न देने का अपराधी हूँ। बीच मे एक छोटी लड़की की मृत्यु हो जाने से अशान्त हो गया था। अब धीरे-धीरे फिर स्वस्थ हो आया

हूँ। लेकिन उसकी माँ अब भी प्रकृतिस्थ नहीं हुई।

मधुकर में मुझे दो-तीन लेख लिखने हैं। यह बात मुझे पूरी तरह याद है। मेरे अनुभव बड़े मजेदार हैं। नवीन लेखकों को उनसे केवल मनोरंजन मिल सकता है, शिक्षा विशेष कुछ नहीं। जो बात मुझे आसानी से सौभाग्यवश मिल गयी थी वह सभी नवीन लेखकों को नहीं मिलती, यह बात जब मैं सोचता हूँ तो मुझे बड़ा क्लेश होता है। अपने अनुभव लिखने का मतलब है संयोगवश मुझे जो सौभाग्य मिल गए थे उनका बखान। यह संकोच की बात है पर बहुत से अनुभव मनोरंजक अवश्य हैं।

मैं थोड़ा और देर करके आपको लेख भेजूंगा। आपकी एक आज्ञा और भी पड़ी हुई है। मैं कबीरपन्थी सिद्धान्तों के बखेड़े में बुरी तरह उलझ गया हूँ। कभी-कभी ऊब जाता हूँ कि यह बवाल क्यों मोल लिया। लेकिन अब किनारे तक पहुँच-कर ही दम लूंगा। आपके आशीर्वाद से यह एक 'काम' जैसा काम हो जायेगा।

बंगला में हिन्दी साहित्य का परिचय लिखने के लिए विश्वभारती ग्रन्थ-विभाग बहुत जोर दे रहा है। इस बार उसे भी समाप्त करना ही है। इन्हीं उलझनों में फँसा हूँ। देखें कब तक उद्धम होता है।

आशा है, प्रसन्न हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

[64]

शान्तिनिकेतन
24.3.47

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

बहुत दिनों से आपका कोई समाचार नहीं मिला। 'मधुकर' का अन्तिम अंक मिला था। अब क्या कुछ नया कार्य आरम्भ करने का विचार है? कृपया लिखें कि आजकल कहाँ हैं और आगे का क्या कार्यक्रम है।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दी भवन में एक और ब्लाक बढ़ाने के लिए हालवालिया ट्रस्ट ने रुपया दिया है। लाइब्रेरी को समृद्ध करने के लिए भी 4 हजार रुपये दिये हैं। और चालू खर्च भी एक वर्ष के लिए और देने का निश्चय किया है। सब मिलकर 23500 रुपये मिले हैं जिसमें साढ़े आठ हजार चालू खर्च के लिये हैं। यह सब श्री कानोडियाजी के सहयोग से हुआ है। आप

कभी पत्र लिखें तो उन्हें इस बात के लिए बधाई दें और हिन्दी भवन की ओर से कृतज्ञता प्रकट करें।

यहाँ और सब कुशल है। आशा है, आप सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद

[65]

ओझवलिया
पो. आ. नसरिकापुर
जि. बलिया (यू पी.)
21.5.47

श्रद्धेय पण्डितजी

सादर प्रणाम।

मैं छुट्टियों में यहाँ घर आया हुआ हूँ। आपका पत्र शान्तिनिकेतन से लौट-कर आया है। मैनेजर ने लिखा है कि आपने जो अंक माँगा है वह भेज दिया गया है। आशा है, मिल गया होगा।

इधर बड़ी महँगी है। दारिद्र्य का तो प्रत्यक्ष नृत्य हो रहा है। लोग पूछते हैं कि सचमुच 'सुराज' हो रहा है। जब पूछते है तो उनका मतलब बराबर यही होता है कि क्या ढंग से अन्न-वस्त्र मिलने लायक हालत सचमुच आ रही है? 'सुराज' का अर्थ यहाँ पेट-भर मोटा अन्न और तन-भर वस्त्र ही है।

आशा करता हूँ आप प्रसन्न हैं। बीच में मैंने सुना था कि आप टीकमगढ नहीं रह रहे हैं। परन्तु आपके पत्र से मालूम हुआ कि वह खबर गलत थी। आजकल स्वास्थ्य कैसा चल रहा है।

'चर्तुवेदी' का यज्ञोपवीत 29 मई को हो रहा है। आपका शुभाशीर्वाद माँगता हूँ।

शेष कुशल है।

आपका
हजारीप्रसाद

[66]

शान्तिनिकेतन
29.6.47

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

'गुरुदेव और हिन्दी' वाले लेख की कुछ प्रतियाँ अवश्य भेज दीजिए। यद्यपि यह तो निश्चय-सा ही था कि एक न एक दिन आप वहाँ से चल देंगे, परन्तु फिर

भी आपके निश्चित रूप से चल देने की सूचना पाकर मन कैसा-कैसा हो गया। अब कहाँ जाने का विचार है। अपना प्रोग्राम लिखिए। मैं बहुत दिनों से सोच रहा था कि आप से मिलूँ। कई बातों में सलाह लेनी है। दिवाली बाद यदि आप फ़िरोजाबाद रहेंगे तो वहाँ भी आ सकता हूँ। पूजा की छुट्टियों मे, यदि भगवत्कृपा से स्वास्थ्य ठीक रहा तो हरिद्वार जाना है। वहाँ से उधर आसानी से जाया जा सकता है। हरिद्वार में गुरुकुल के आचार्यजी का निमन्त्रण है, कुछ व्याख्यान देने के लिए। लड़के का जनेऊ आपके आशीर्वाद से सानन्द सम्पन्न हो गया। आपका पत्र पढ़कर 'चतुर्वेदी' लेखक बनने को उत्साहित हुआ है। पर साहित्य की दुनिया तो थर्ड क्लास का डब्बा है। किसी नये चढ़ने वाले को देखकर लड़ने की ही इच्छा होती है। कुछ लोग बिना टिकट के ही इसमें चढ गए हैं।

आशा है, प्रसन्न हैं।

आपका

हजारीप्रसाद

[67]

शान्तिनिकेतन

3-10-47

पूज्य पण्डितजी,

आपका 4-9-47 का कृपा पत्र बहुत देर से मिला है। संस्कृत का कोई बड़ा कवि या नाटककार ऐसा न मिलेगा जिसने किसी-न-किसी बहाने तपोवनों का वर्णन न किया हो। शकुन्तला में तो है ही, रघुवंश में और कुमारसम्भव में भी (पंचम सर्ग) कालिदास ने बहुत सुन्दर तपोवन वर्णन लिखा है। भवभूति के उत्तरचरित में, बाणभट्ट की कादम्बरी में (कथामुख में जाबालि आश्रम और बाद मे महाश्वेता और कपिञ्जल के आश्रम) बहुत ही चित्ताकर्षक वर्णन है। रामायण और महाभारत में भी अरण्यों और आरण्यकों का मनोहर वर्णन है। टीकमगढ़ में ये पुस्तकें शायद मिल जायें। न मिलें तो लिखें। मैं कोई व्यवस्था करूँगा। कालिदास की समूची ग्रन्थावली बनारस से अनुवादित होकर प्रकाशित हो चुकी है। यद्यपि अनुवाद उतना सरस नहीं है तो भी मूल भी साथ रहने से रसग्रहण में सहायक अवश्य है। आशा है, प्रसन्न हैं।

आपका

हजारीप्रसाद

[68]

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी-भवन,
शान्तिनिकेतन, बंगाल
16-12-47

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

बहुत दिनों से कोई समाचार नहीं मिला। कल ग्वालियर से निकलनेवाले एक समाचारपत्र में यह पढ़कर बड़ी चिन्ता हुई कि आप देर से अस्वस्थ रह रहे हैं। कृपया तुरन्त समाचार दें कि कैसे हैं? क्या शिकायत है?

हम लोग यहाँ सकुशल हैं। सुना है, इस वर्ष का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मुझे मिल रहा है। 'कबीर' नाम की एक पुस्तक मैंने लिखी है, उसी पुस्तक पर यह पारितोषिक मिला है। 'कबीर'-साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा तो मुझे स्व. गुरुदेव और आचार्य क्षितिमोहन सेन से मिली थी पर यदि आपके संसर्ग में न आया होता तो मुझे शायद लिखना ही नहीं आता और लिखना आता भी तो गलत रास्ते ला सकता था। इस अवसर पर मैं कृतज्ञतापूर्वक आपको अपना विनम्र प्रणाम निवेदन करता हूँ।

स्वास्थ्य का समाचार शीघ्र दें।

आपका अनुज
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[69]

शान्तिनिकेतन
1-6-48

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

कल आचार्य नन्दलाल वसु महाशय से आपके गांधीभवन की दीवालों पर चित्रांकन के लिए कहा था। वे कहते हैं किसी छुट्टी में अर्थात् अक्टूबर में या मई-जून में कलाभवन में अध्यापक विनोद विहारी मुखर्जी अपने कुछ विद्यार्थियों के साथ जा सकते हैं। इस समय विनोद बाबू यहाँ नहीं है। अतः उनसे बातचीत नहीं हो पाती है। उन्होंने ही हिन्दीभवन में चित्र बनाये हैं। बड़ा नया और उत्तम टेकनीक जानते हैं। मैंने मास्टर महाशय (नन्दबाबू) से आपकी ओर से टीकमगढ़ जाने का भी निवेदन किया है। वे राजी भी हैं। यदि दिसम्बर के अवकाश में उन्हें वहाँ ले

जाया जा सके तो बहुत अच्छा हो।

शेष कुशल है। लेनिन और गुरुदेव के प्रसंग पर दूसरे कार्ड पर लिख रहा हूँ। दो कार्ड खर्च करना एक लिफाफे की अपेक्षा सस्ता है।

आपका
हजारीप्रसाद

[70]

शान्तिनिकेतन
26-9-48

पूज्य पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

कृपापत्र मिला। आपको किसी ने गलत खबर दी है कि मैं हिन्दीभवन छोड़ रहा हूँ। ऐसा करता तो आपसे एक बार पूछता अवश्य। काशी से निमन्त्रण आया था, रुपये का प्रलोभन भी था और अपनी मातृसंस्था की गोद में पहुँचने का आकर्षण भी, पिताजी तथा अन्य गुरुजनों का आग्रह भी था। परन्तु इस बार तो आपके आशीर्वाद से मैं विचलित नहीं हुआ। गुरुदेव की इस पुण्यभूमि का बन्धन ज्यादा मजबूत साबित हुआ। और मैं रह गया। इधर गंगाजी की बाढ़ से मेरा पूरा गाँव बह गया है, मैं बेघर बनकर—'अविक्त' हो गया हूँ। आपके पास मैं अपना निर्णय नहीं लिख पा रहा था। एक बार आपने काशी के किसी अधिकारी को वहाँ के प्रोफेसर पद के लिए मेरा नाम सुझाया था और मैं समझ रहा था कि मेरे न जाने से कहीं आपको मानसिक क्लेश न हो। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप मुझे हिन्दी-भवन नहीं छोड़ने को ही लिख रहे हैं। मेरा घर बहुत छोटा था, पर वही एकमात्र स्थान था जिसे मैं अपनी पैतृक सम्पत्ति कह सकता था। अब तो···के विषय में जो कुछ जानता हूँ वह दूसरे पत्र मे लिखूँगा।

आशा है प्रसन्न है।

आपका
हजारीप्रसाद

[71]

30-10-75

श्रद्धेय पण्डितजी,

प्रणाम।

कोटद्वार में आपके दर्शन करके मुझे आशातीत आनन्द प्राप्त हुआ। आपके दर्शन तो हुए ही, कोटद्वार के अनेक मनीषी विद्वानों और सहृदय जनों का भी

सत्संग प्राप्त हुआ। कण्वाश्रम तो मन पर छाया हुआ है। बहुत ही मनोरम स्थान है। मैं थोड़ा भावुक हो गया था। मुझे लगता था कि बहुत पुराने पुण्यों के फल-स्वरूप मुझे 'मालिनी तट' का वह मनोहर आश्रम देखने को मिला था। मैं मुख्य-मन्त्री श्री बहुगुणाजी को एक पत्र लिख रहा हूँ उसकी नकल आपको भेज दूँगा। मैं उनसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि कण्वाश्रम को विकसित करके उसे अधिक आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया जाय। वहाँ से लौटकर बार-बार मन में अभिलाषा हो रही है कि उस स्थान पर कुछ और रहने का अवसर मिलता तो कितना अच्छा होता। लेकिन जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है कि पूर्वजन्म के किसी पुण्य से ही यह सम्भव होगा। शायद मेरे पुण्य के खाते में इतनी अधिक राशि नहीं है। लेकिन जो देख आया हूँ वही बहुत है। कोटद्वार जाकर आयुष्मान बुद्धिप्रकाशजी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान ने जैसा शील और सहृदयता उन्हें दी है, उससे निस्सन्देह वे निरन्तर उन्नति करते जायेंगे। घर पर बहूरानी आदि को मेरा स्नेह और आशीर्वाद दें। बच्चों को प्यार भी।

आशा है स्वस्थ और सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

पुनश्च : आपने श्री माकिनोजी का पत्र भेजा था वह मिल गया है। मैं उन्हें एक पत्र लिखूँगा। मेरे विचार से जापान भवन दिल्ली के आस-पास कहीं बनना चाहिए। कम-से-कम वह हिन्दी क्षेत्र में तो अवश्य होना चाहिए। लखनऊ की बात भी सोची जा सकती है परन्तु क्या यह अच्छा नहीं होगा कि आरम्भ में गैर-सरकारी स्तर पर ही इसका आरम्भ हो। बाद में भारत सरकार और जापान सरकार से सहायता ली जा सकती है। सरकारी स्तर पर काम शुरू करने में कठिनाइयाँ भी हैं और कुछ अनावश्यक हस्तक्षेप की आशंका भी। यदि अवसर मिला तो मैं व्यक्तिगत रूप से शिक्षा मन्त्रीजी से इस विषय पर बात करूँगा। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि यह कार्य किसी भारत-जापान मैत्री समाज जैसी गैर-सरकारी संस्था को हाथ में लेना चाहिए। मैं अब भी अपना मत बना नहीं पाया हूँ। कुछ दिन बाद आपको सूचित करूँगा।

आशा है स्वस्थ है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[72]

16-11-74

श्रद्धेय पण्डितजी,

आपके दोनों पत्र मिल गये। मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ। चार वेद वाले जल्दी बूढ़े नहीं होते। हमारे पास हिन्दी साहित्यकारों की सूची आयी है जिनमें तीन चतुर्वेदी अस्सी पार करके अभी तक पूर्ण रूप से कर्मठ है। इससे लगता है कि जरूर चतुर्वेदियों को जीने की कला मालूम है। इस सूची में अस्सी पार करनेवालों मे एक द्विवेदी हैं, वियोगी हरिजी। परन्तु उन्होंने नाम के आगे द्विवेदी लगाना छोड़ ही दिया है। अगर एक भी द्विवेदी न होता तो कहना पड़ता कि द्विवेदियों को यह कला नहीं मालूम है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि बुद्धिप्रकाशजी की पदोन्नति हो गयी है और वे कोटद्वार (गढ़वाल) प्रधानाचार्य होकर जा रहे हैं। उन्हें मेरी हार्दिक बधाई दें। रामानन्द बाबू के बारे में लिख रहा हूँ लेकिन मेरे मन लायक नहीं हो रहा है। पूरा हो जायेगा तो देखने के लिए आपके पास भेजूंगा। पूर्वांचल के बारे में आप लिखने जा रहे हैं यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई, मगर यह भी तो यहाँ बहुत ज्यादा है परन्तु सरलता और श्रद्धा में आप इनका सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

आशा है स्वस्थ है।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[73]

10-3-75

श्रद्धेय पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपका कृपापत्र मिला। 'हिन्दी बंगला शिक्षक' मैंने यहीं बनारस से ही खरीदकर भेजा था। और आवश्यकता हो तो भिजवा दूंगा। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके बहन की पौत्री आयुष्मती अलका साहित्य में बहुत रुचि रखने लगी है। मेरे पास मेरा अपना कोई अच्छा चित्र नहीं है फिर भी मैं अपना कोई चित्र हस्ताक्षर के साथ अवश्य भेज दूंगा। इस बीच आपने यदि मेरा कोई चित्र भेजा तो उस पर भी हस्ताक्षर करके भेज दूंगा। आपने मेरे कई चित्र लिये थे, उसमें कुछ अच्छे भी थे। वैसे सुना है कि नाई लोग हजामत बनाना अहीर के सिर पर ही सीखते हैं और देखा है कि चतुर्वेदी लोग फोटो की शूटिंग के लिए द्विवेदी को ही लक्ष्य बनाते हैं, परन्तु भगवान जब सहायता करता है तो हजामत भी अच्छी

बन जाती है और फोटो भी अच्छा आता है। शान्तिनिकेतन मे आपने मेरे और बच्चों के कई चित्र लिये थे। एक तो बड़ा अच्छा था जिसमे हम लोग अमरूद की डाल पर बैठे थे। एक मेरे भी पास था। इस समय ध्यान में नही आ रहा है कि इस समय मेरे पास है या नही। यदि आप उन्ही चित्रों में से भेजना चाहते हैं तो निश्चय ही यह एक ऐतिहासिक घटना होगी।

'शरीरमाद्यं खल धर्म साधनं' यह नारदजी का वचन नही है साक्षात् शिव का वचन है जो ब्रह्मचारी भेप में छिपकर पार्वती की परीक्षा लेने गये थे। पार्वती की तपस्या देखकर ही उन्होने यह प्रश्न किया था 'अपि स्वगक्त्या तपसि त्वमतसे' और समाधान कर दिया था कि 'शरीरमाद्यं खल धर्म साधनं'। यह कुमारसम्भव का श्लोक है।

आपका स्वास्थ्य कैसा है। मन में कई बार आपके दर्शन की इच्छा हुई लेकिन देखें कब संयोग मिलता है।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[74]

प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी के नाम

ए 33 रवीन्द्रपुरी,
वाराणसी-5
दूरभाप : 67014
दिनांक 14-9-77

प्रिय आयुष्मती इन्दिराजी,

आपका 3 सितम्बर का पत्र मिला। मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसा कभी नही हुआ कि मैंने आपको पत्र लिखा हो और उसका उत्तर तुरन्त न मिल गया हो। निर्वाचन का परिणाम मालूम होने के बाद मैंने कोई पत्र नही लिखा था, स्वयं दिल्ली जाकर आपसे मिला था। यद्यपि वहाँ मिलनेवालो की बड़ी भीड़ थी, फिर भी आपने मुझे अलग से 15-20 मिनट का समय दिया था। पत्र मैंने नही लिखा था। अगर पत्र लिखता भी और उत्तर नही पाता तो भी मैं किसी से यह कहता नही। टण्डनजी को किसी ने यों ही कह दिया होगा, मेरी तो इधर उनसे मुलाकात ही नही हुई। आपके मन में यह कष्ट नही होना चाहिए कि मेरे पत्र का उत्तर नही दिया।

आपके पत्र से यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप वेदान्त के तत्त्व ज्ञान को भारतीय मनीषा की सबसे बड़ी देन समझती हैं और उसके अनुसार चलने का

प्रयत्न भी कर रही है। परमात्मा आपको इस मार्ग पर चलने की शक्ति दें।

जब मैं विद्यार्थी था उन्हीं दिनों पूज्य मालवीयजी से महाभारत का एक श्लोक सुना था। वह श्लोक कठिनाइयों के समय मुझे सदा बल देता रहा है। उसे आप तक पहुँचा देने का प्रलोभन नहीं रोक पा रहा हूँ। श्लोक इस प्रकार है—

सुखं वा यदि वा दुःखं, प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत, हृदयेनापराजितः।

[सुख हो या दुःख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाये उसे प्रसाद रूप में ग्रहण कर लेना चाहिए लेकिन सदा हृदय या मन से अपराजित रहकर।]

हृदय या मन को सदा अपराजित रहना चाहिए। पूरे महाभारत का यही उपदेश है।

भगवान् से मेरी प्रार्थना है कि आपको इस मार्ग पर चलने की सदा शक्ति दें।

शुभेच्छु
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[75]

व्रजमोहन वर्मा (विशाल भारत, कलकत्ता) के नाम

हिन्दी समाज
शान्तिनिकेतन
बुधवार
[19-8-36]

प्रिय वर्माजी,

वन्दे।

वर्षामंगल का उत्सव आगामी शनिवार (22 अगस्त) को होनेवाला है। आप शुक्रवार की शाम की गाड़ी से चलकर यहाँ आ जायें। चतुर्वेदीजी आ सकें तो उन्हें भी लेते आइये। मैं उनके नाम से एक लम्बी चिट्ठी लिख रहा हूँ। जब तक वह चिट्ठी लिख न जाय तब तक उन्हें बता दीजिये कि हिन्दी समाज का उत्सव अभी रोक रखना ही उचित जान पड़ता है। 'आधुनिका' जा रही है। अनुवाद अच्छा नहीं हुआ है। पं. दुर्गाप्रसादजी रवीन्द्रसाहित्य की स्त्रियों का संग्रह कर रहे हैं। आपके काम की चीज होगी! अगर यह लेख समय पर आपको मिल जाय तो 'आधुनिका' को रोक रखियेगा। और सब ठीक है। नन्दबाबू से इन्टरविऊ तो आप ले ही लेंगे। शेष कुशल।

आपका
हजारीप्रसाद

[76]

कथाकार यशपाल के नाम

हिन्दी-भवन,
शान्तिनिकेतन, बगाल
23-10-42

प्रिय भाई यशपालजी,

सादर नमस्कार।

आपका कृपा पत्र मिल गया था। मैं भी कुछ मैलेरिया से परेशान था। समय पर उत्तर न दे सका। आशा करता हूँ कि आप सब लोग सानन्द हैं। शान्तिनिकेतन नाना कारणो से इस समय सूना हो रहा है। कालेज तो लगभग दो महीने से बन्द ही है। अब गाड़ी चलने लगी है, आप अगर इधर आना चाहे तो नवम्बर के अन्त मे आना ठीक होगा। परन्तु हर हालत मे मेरा पत्र देख लीजिएगा।

नदियों के सम्बन्ध मे सामग्री दो-एक दिन के भीतर ही भेज रहा हूँ। इस समय दिमाग भी खाली हो गया है और कुछ लिखने-पढ़ने में दिल नही लग रहा है। इसे ही क्या "वृद्धत्वं जरसा विना" कहते हैं? और सब कुशल है। श्री भाई सीतारामजी को नमस्कार कहें।

आपका
हजारीप्रसाद

[77]

रामनारायण उपाध्याय के नाम

काशी
30-1-53

प्रिय भाई,

आपका कृपापत्र मिला। मेरे सम्बन्ध में आपने जरूरत से ज्यादा ऊँची धारणा बना ली है। आपके पत्र मे मुझे यह आनन्द तो मिला कि मेरे लेखों से सहृदयों का मनोरंजन हो जाता है। इससे अधिक मेरा प्राप्य नहीं है।

आप निमाडी गीतों का संग्रह अवश्य भेजें। कुछ 'जनपद' के लिए भी भेज सकें तो कृपा हो। आपको शायद पता हो कि हायरस सम्मेलन का प्रयत्न एक त्रैमासिक पत्र के रूप मे प्रकट हुआ है। 'जनपद' वही त्रैमासिक है।

आशा है प्रसन्न हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[78]

इन्द्रनाथ मदान के नाम

बनारस
26-6-61

आदरणीय भाई मदानजी,

सादर सप्रेम नमस्कार।

मैं चण्डीगढ़ से लौटकर अभी बनारस पहुँचा हूँ। चण्डीगढ़ मे सदा आपकी याद आती रही। आपकी कृपा से ही मेरा चण्डीगढ़ आना सम्भव हुआ है। कभी-कभी विपत्ति मे अद्भुत सम्पत्ति के दर्शन होते हैं। आपके समान उदार विशाल-हृदय मित्र जिसे प्राप्त हो उसे किस बात की चिन्ता हो सकती है ? मैं पहली जुलाई से वहाँ स्थायी रूप से रहने जा रहा हूँ पर आपके दर्शन जब तक नही होते तब तक बहुत-सी बातें अस्पष्ट रहेंगी। कृपया बताइए कि कब कहाँ मुलाकात हो सकेगी।

आशा है, स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[79]

कवि शिवमंगलसिंह सुमन के नाम

(1)

शान्तिनिकेतन
5-7-49

प्रिय भाई सुमनजी,

आते ही बीमार पड़ गया। कई दिन अशान्ति में ही कटे हैं। रीतिकाल बराबर दिमाग मे चक्कर काटता है, पर कुछ ऐसी अस्वस्थकर चित्तवृत्ति रही है कि आपको कुछ लिख नही सका। दो दिन तो सिर्फ सोता ही रहा हूँ। अब तबीयत कुछ अच्छी लग रही है। वर्षा तो नित्य हो रही है पर उमस बराबर बनी हुई है। कहना कठिन है कि काशी से अच्छा वातावरण है या बुरा। काशी की याद निरन्तर आ रही है। पटने का तकाजा आ रहा है। मन उखड़ा-उखड़ा लग रहा है। खैर।

रीतिकाल भारतीय साहित्य का विचित्र काल है। चार प्रवृत्तियों की जरूर आलोचना करें—

(1) अपभ्रंश कविता के भीतर से चली आती हुई पश्चिमी सेक्यूलर प्रवृत्ति। यह ध्यान मे रखें कि फारसी के प्रभाव से बाद में अतिशयोक्ति और गूढ़ोक्ति बहुल

जो कविता उर्दू में आयी वह जिस क्षेत्र के कवियों के प्रभाव से पनपी थी उसी क्षेत्र की मुस्लिमपूर्व जातियाँ भारत में पहले भी आयी थीं। मेरा मतलब शकों, गूजरों और आभीर आदि लोगों से है जिनके वंशज बाद में मुसलमान हो गये। हाफिज और फिरदौसी आदि मे उनका रक्त था। अपभ्रंश कविता पर इन मुस्लिमपूर्व जातियों का प्रभाव था' (हिन्दी साहित्य की भूमिका)।

(2) भक्तिकाल मे राधाकृष्ण और गोपियों का इतना अधिक प्रभाव रहा कि बाद में विशुद्ध शृंगारी कविता भी गोपियों का नाम लिये बिना लोकप्रिय नही हो पायी। शृंगार और भक्ति के इस विचित्र मिश्रण में शृंगार प्रधान था।

(3) नाट्यशास्त्र का एक अंग नायिकाभेद है जो इस काल मे खूब पनपा पर इसका मूल सुर नाट्यशास्त्रीय एकदम नहीं था; था वह कामशास्त्रीय। नाट्य-शास्त्र पर भी कामसूत्र का प्रभाव था। अनेक प्रकार की दूतियों और खर-मृदु-स्वभाव की नायिकाओं की कल्पना कामशास्त्रीय अधिक है।

(4) यद्यपि रीतिकाव्य ठीक अर्थ में लोकगीत या लोककाव्य नही है पर उसमें लोककाव्य का पुट है अवश्य। कविगण शास्त्र का सहारा लेते थे पर थे वे जनता के आदमी। आपका मत इससे भिन्न हो तो अवश्य लिखें। मेरा मत यह है कि रीतिकाल मध्ययुग का वह काल है जब श्रम का विभाजन पूर्ण रूप से हो गया था और 'प्रिमिटिव' लोगों में जो श्रम-विभाजन-पूर्व का 'क्लेक्टिव इमोशन' वाला 'स्टेज' है वह दूर हो चुका था। इस अवस्था मे समाजशास्त्री लोग बताते हैं कि कविता यद्यपि सामाजिक अभिव्यक्ति ही रहती है तथापि कवि समाज से दूर होकर ऐकान्तिक हो जाता है। यदि वह दरबारी हुआ तो भी पुराना सामूहिक आवेग उसमें इस प्रकार काम करने लगता है कि वह विच्छिन्न-सा लगने लगता है। रीतिकाल इसका उत्तम उदाहरण है।

अब भी मैं पूर्ण स्वस्थ नही हूँ। इसलिए इस पत्र को संक्षेप में ही लिख रहा हूँ। रीतिकाल के लिरिक के बाधक उपादान है—

कवियों की शासन पर बद्धदृष्टि
शृंगारचेष्टाओं की बाधित (आरोपित) अभिव्यंजना
छन्द की गतिहीनता
रूढ़ियों का प्राधान्य
फिर भी कथित और आरोपित आवेग कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

घर से कोई सामाचार आया या नही ? सु. शान्तिजी का स्वास्थ्य अब कैसा है ? यहाँ आपकी भाभी का स्वास्थ्य बिगड़ गया है।

आपको यह समाचार दे दूँ कि वाजपेयीजी के कलकत्ते में एक पुत्ररत्न हुए हैं। आज ही समाचार मिला है। दोनों स्वस्थ हैं।

क्या श्री पण्डित गोविन्द मालवीयजी काशी आये है ? कोई बात हुई है ?

मैं आज आचार्य नरेन्द्रदेवजी को एक पत्र लिखकर लखनऊ विश्वविद्यालय के व्याख्यानों का विषय बता रहा हूँ। विषय है—'साहित्य का मर्म !'

शेष फिर।

आशा है, सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[80]

विश्वभारती पत्रिका

साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी
हिन्दी त्रैमासिक
पत्र सं.

हिन्दी-भवन,
शान्तिनिकेतन, बंगाल
2-6-50

प्रिय भाई,

कृपापत्र मिला। रथीबाबू के पत्र की नकल भी मिल गयी है। बहुत सुन्दर पत्र है। अफसोस यह है कि रथीबाबू इसे बहुत दिनों तक पढ़ने का मौका ही नहीं पा सकेंगे। दार्जिलिंग और कालिम्पोंग का रास्ता एकदम नष्ट हो गया है। उन तक कोई पत्र नहीं पहुँच पा रहा है। मैंने तो बनारस आने का निश्चय कर लिया है। जो होना होगा सो होगा। कठिनाई यह है कि मैं रथीबाबू से न तो आज्ञा ही ले पा रहा हूँ, न उनके साथ झगड़ा ही करके चलने का उपाय देख रहा हूँ। सब कुछ उनकी अनुपस्थिति में और उनके अनजाने होने जा रहा है। यही बात हृदय कुरेद रही है। अभी भी आशा कर रहा हूँ कि शायद 30 जून तक टेलीफोन का सम्बन्ध हो जाय। एक बार उनसे कह लेता, फिर जो होना हो सो हो।

अभी भी मैं श्रद्धेय गोविन्दजी को अन्तिम सूचना का पत्र नहीं लिख सका हूँ। 30 जून तक टेलीफोन की प्रतीक्षा करने के बाद लिखूँगा। पत्र तो लिखकर रख भी लिया है, छोड़ा-भर नहीं है। 20 वर्षों के दुःख-सुख का सम्बन्ध है। टूटते-टूटते भी बाँध रहा है। मेरी मानसिक स्थिति की आप कल्पना करें।

आपकी भाभी तो चलने को कमर कसे बैठी हैं। योजना में आपको उज्जैन से बनारस बुला लेने की बात भी है। यह भी है कि सामान उतारने के लिए भी आपको उज्जैन से बुलाया जायगा।

आपके गाँव के नाम को शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करने में मैंने कोई बात उठा नहीं रखी है। पर आपकी भाभी उसे 'झगड़पुर' ही कह रही हैं। 'नारद' की जन्मभूमि का इससे अच्छा नाम क्या हो सकता है? आशा करता हूँ आप गाँव पहुँच गये होंगे। माताजी को मेरा सादर प्रणाम कहें। चि. अरुण की बीमारी से चिन्ता हुई। डाक्टरों ने क्या निश्चय किया है? पूरा विवरण लिखिए। मैं

अपने डाक्टर से भी पूछूंगा। ये बड़े अनुभवी है। कोई दवा वता सकते हैं।

श्री छैलविहारीजी के पुत्र की इस टर्म में तो भर्ती नही हो सकेगी, परन्तु मैं प्रयत्न करता हूँ कि अगली जनवरी में हो जाय। नन्दबाबू थोड़ी शिक्षा अवश्य चाहते हैं क्योंकि आजकल चित्रकार केवल प्रतिकृतिकार तो होता नही। शिक्षा से उसमे नयी वस्तु देने की प्रतिभा आती है। इसलिए वे कम उम्र के विद्यार्थियों को थोड़ा और पढ़ लेने की सलाह देते हैं। फिर भी मैं प्रयत्न करता रहा हूँ। उन्हे पत्र लिखकर सब बातें बता दूंगा।

क्या श्री शान्तिजी साथ आयी हैं? इस समय तो वे बहुत चिन्तित होगी। पर चिन्तित होने की कोई जरूरत नही। बच्चों को इस प्रकार का दीर्घज्वर होता ही रहता है। वाजपेयी का पुत्र दो महीने से भोग रहा है। केवल इतनी-सी सावधानी रहे कि गड़वड़ चीज न खाने पावे। दूध और फलों (मीठे) का रस समय पर दिया जाता रहे। कोई भी विकार होगा वह निश्चय ही दूर हो जायेगा। बच्चों में प्रकृति की दी हुई शक्ति ज्यादा होती है। फिर भी मन मे चिन्ता तो होती ही है। मुझे भी थोड़ी चिन्ता हो ही रही है।

मैं इस समय यही सोच रहा हूँ कि एक या दो वर्ष की छुट्टी के लिए निवेदन करूँ। रथीबाबू की अनुपस्थिति ने बड़े असमंजस मे डाल दिया है। कहेंगे कि एक बार मुझसे कहा भी नही और चले गये। क्या करूँ, कुछ उपाय नही सूझ रहा है। नया मकान प्रायः बन गया है। शायद जिस दिन पूर्ण हो जायेगा उसी दिन यहाँ से रवाना होना पड़े। पिछले कई दिन बड़ी चिन्ता में गये है। अब बहुत-कुछ स्वस्थ और आश्वस्त हूँ।

आशा है, प्रसन्न हैं। हम सब लोग, सानन्द हैं।

हाँ, यह लिखना तो भूल ही गया कि यहाँ के लोग किसी तरह जाने देना नहीं चाहते। इस समय मुख्य युक्ति यह है कि विश्वभारती को क्षति होगी।

आपका

हजारीप्रसाद द्विवेदी

पुनश्च—पत्र कल ही लिख लिया था पर कल सिद्धार्थ को बुखार आ गया और रात ग्यारह बजे बहुत भयंकर हो उठा। उसी समय डाक्टर मिल गये। कहते हैं, मौलिग्नेण्ट मलेरिया है। भाग्यवश समय रहते ही इंजेक्शन पड़ गया। इस वक्त कुछ स्वस्थ है। डाक्टर कहते है कि अब खतरा पार हो गया है। रात भर जागना पड़ा है। अन्त भला तो सब भला।

[81]

23 अक्टूबर, 1973

प्रिय भाई सुमनजी,

18 अक्टूबर का कृपापत्र मिला। पत्र में आपने ऐसा जाल फेंका है कि इसमें मुझे फँसना ही पड़ गया, क्योंकि आपकी भाभीजी अभी से चलने की तैयारी करने लगी हैं। सो, मैं प्रयत्न करूँगा कि 6 नवम्बर को ही किसी समय उज्जैन पहुँच जाऊँ। आप जानते ही हैं कि 6, 7 और 8 नवम्बर मेरे द्विजत्वप्राप्ति की तिथि है। मैं शान्तिनिकेतन के लिए 6 को चला था, 7 को पहुँचा था और 8 को काम शुरू किया था। इन तिथियों को मैं बहुत महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। इसी समय उज्जैन में महाकाल के दरबार में इसकी 43वीं वर्षगाँठ सम्पन्न होगी। जाना तो प्रायः निश्चित हो गया लेकिन घुटनों में कुछ बाई की शिकायत है परन्तु महाकाल की कृपा होगी, 'पंगु चढ़ै गिरिवर गहन'। आप जानते ही हैं कि भोपाल मेरी दृष्टि में वह 'उच्चैव' पर्वत है जिसकी चर्चा कालिदास ने 'मेघदूत' में की है। मगर पिछले अनुभवों से मैंने यह देखा है कि उज्जैन जाना तो आसान है लेकिन वहाँ से लौटना उतना आसान नहीं है, सो किसी दिन हमारे लौटने का रिजर्वेशन कराने की कृपा करें। श्रीमती द्विवेदी भी मेरे साथ रहेंगी।

आशा करता हूँ स्वस्थ और सानन्द होंगे।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[82]

देवीलाल पंवार (जोधपुर) के नाम

25-3-74

प्रिय भाई,

आपका 11 मार्च का कृपापत्र मिला। आपका यह विचार कि सामाजिक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवादी एक ही पर्यायवाचक शब्द नहीं हैं ठीक ही जान पड़ता है। समाजवादी यथार्थ का अर्थ यही होना चाहिए कि समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुसार सोचा हुआ यथार्थवाद। वस्तुतः जिस प्रकार आप सामाजिक यथार्थ और समाजवादी यथार्थ में अन्तर कर रहे हैं उसी प्रकार यथार्थ और यथार्थवादी में भी अन्तर करना चाहिए। आशा है कि आप सानन्द हैं।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

कर दिया गया है। इससे थोड़ी भ्रान्ति की आशंका है। 'समिति' नाम देने पर उसकी 'कार्यकारिणी समिति' को उपसमिति कहा जायेगा जो प्रचलन के विरुद्ध होगा। वैसे नाम जो भी उचित हो रखा जाय। हिन्दी समिति या हिन्दी अकादमी भी चल ही सकते है।

3. इस संस्था के तीन अंग हों—
   (क) हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
   (विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य पुस्तकों का निर्माण)
   (ख) हिन्दी समिति
   (उच्चतर साहित्य सन्दर्भ ग्रन्थ, कोप, व्याकरण आदि की मौलिक पुस्तकों का निर्माण)
   (ग) हिन्दी सम्वर्द्धन समिति
   (उत्तम ग्रन्थों पर पुरस्कार, उत्तम पुस्तकों की खरीद, साहित्यकारों का सम्मान, सहायता-अनुदान आदि के कार्य)
4. इन तीनों अंगों का विक्रय विभाग एक और सुसंगठित हो।
5. हिन्दी समिति के वर्त्तमान अध्यक्ष और मन्त्री इस संस्था के भी अध्यक्ष और मन्त्री हो। यथासम्भव हिन्दी समिति, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी और हिन्दुस्तानी एकेडेमी के वर्त्तमान कार्यकर्त्ता इसमे ले लिये जायँ।
6. इस विषय में और विचार करने के लिए कुछ विद्वानों की एक समिति बना दी जाय जिनमें निम्नलिखित लोग अवश्य हों—
   1. मुख्यमन्त्रीजी (अध्यक्ष),
   2. शिक्षा सचिव,
   3. सूचना सचिव,
   4. वित्त सचिव,
   5. श्री अमृतलाल नागर,
   6. श्री काशीनाथ भ्रमर,
   7. श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित,
   8. हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अध्यक्ष,
   9. हजारीप्रसाद द्विवेदी।
7. मेरा विनम्र सुझाव यह भी है कि यह नयी संस्था सीधे मुख्यमन्त्रीजी के अधीन हो।

आशा है, सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[84]

भगवतशरण उपाध्याय (देहरादून) के नाम

18-2-75

आदरणीय उपाध्यायजी,

आपका 2-2-75 का कृपापत्र पता नही क्यों काफी देर से मिला। आपके स्वास्थ्य के बारे में जानकर मन में थोड़ी चिन्ता हुई। मैं भी दिसम्बर के महीने में बहुत बीमार पड़ गया था लेकिन बच गया। अब ठीक हूँ, कोई कठिनाई नहीं है। इस पत्र से मालूम हुआ कि आप देहरादून में हैं। यह तो मुझे मालूम था कि विक्रम विश्वविद्यालय से आपने अवकाश ग्रहण कर लिया है, परन्तु ठीक पता नही मालूम था। क्या वहाँ आप स्थायी रूप से रह रहे है या केवल जलवायु परिवर्त्तन की दृष्टि से कुछ दिन रहने का विचार है। मैंने बीच में सुना था कि आप भी बहुत अस्वस्थ हो गये हैं। मेरा विचार है कि आपने मुझे कम काम करने की सलाह दी है, उसे मैं आपको ही दूं। आप बहुत काम करते हैं और अपने शरीर की बिलकुल परवा नहीं करते। यह मेरी बहुत दिनो से शिकायत है। आपने जो कुछ साहित्य और इतिहास को दिया है, वह सदा स्मरण किया जायगा। अब थोड़ा विश्राम का समय आ गया है। वैसे तो मैं जानता हूँ कि आपसे बिना लिखे नही रहा जायगा, पर उसकी भी सीमा निर्धारित रखें और खूब घूमे-फिरें। लम्बी यात्राएँ बन्द रखें और निश्चिन्त होकर कुछ दिन विश्राम करें।

आशा है स्वस्थ है।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[85]

गंगाप्रसाद विमल (नयी दिल्ली) के नाम

23-9-76

प्रियवर विमल,

तुम्हारा पत्र मिला। इधर कुछ दिनों से मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारा मूड निराश होता जा रहा है। निराश होने की कौन-सी बात है। मेरा विश्वास है कि तुम निश्चय ही बडा काम करोगे। तुम छोटी-मोटी बातों के लिए नही बनाये गये हो। निराश होने की कोई आवश्यकता नही है। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि तुमने हिमालय पर एक बड़े काम की रूप-रेखा बना ली है और उसमें जुटे हुए हो। निस्सन्देह यह काम बहुत महत्त्व का है। अगर तुम्हें अंग्रेजी में . . ने

आनन्द मिलता हो तो अंग्रेजी में ही लिखो, बाद मे हिन्दी में कर लिया जायेगा। हिमालय बहुत बड़ा है—देश में भी और काल में भी। यह रहस्यों का भण्डार है। तुमने अपने लिए बड़ा विषय चुना है, यह बहुत शुभ लक्षण है। तुम्हारी पुस्तक की भूमिका देख गया हूँ, ठीक है। बिना किसी झिझक के या कुण्ठा के तुम उसी प्रकार लिखो जिस प्रकार तुम्हारे अन्तरयामी लिखने को कह रहे हैं। जरा भी चिन्तित होने की बात नहीं है। तुमने बहुत बड़े काम का संकल्प किया है। इसे मैं भगवान् का अनुग्रह ही मानता हूँ। परमात्मा तुम्हें सफलता तो देंगे ही, इस कार्य से तुम्हें अपनी विद्या और परिश्रम चरितार्थ भी जान पड़ेगी। सफलता (सक्सेज) बड़ी चीज है लेकिन उससे भी बड़ी चीज है चरितार्थता (फुलफिलमेण्ट)। परमात्मा तुम्हें ठीक दिशा में ले जा रहे हैं। तुम्हारा प्रयत्न शुभ हो, सार्थक हो, चरितार्थ हो।

शुभेच्छु
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[86]

गोपालप्रसाद व्यास (नयी दिल्ली) के नाम

2-11-76

प्रिय भाई गोपालप्रसादजी,

आपका 20 अक्टूबर का कृपापत्र मिला, अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। आपकी आज्ञानुसार मैं 21 जनवरी को दिल्ली आना चाहता हूँ लेकिन एक शर्त है। इस नामावली के साथ आपने जो महर्षिमण्डल शब्द का प्रयोग किया है उसे हटा दें। कम-से-कम मैं अपने नाम के साथ इतने बड़े शब्द का अवमूल्यन करना पसन्द नहीं करूँगा। मैं और मेरे जैसे कई मित्र हिन्दी के सेवक तो अवश्य रहे हैं लेकिन थोड़े ही ऐसे होंगे जो महर्षि कहलाना पसन्द करते होंगे।

शेष कुशल है। आशा है, सपरिवार स्वस्थ और सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[87]

नरेन्द्र कोहली (नयी दिल्ली) के नाम

ए-33, रवीन्द्रपुरी, वाराणसी
3-11-76

प्रियवर कोहलीजी,

'अवसर' मिल गया। मैंने पढ़ भी लिया है। रामकथा को आपने एकदम नयी दृष्टि से देखा है। 'अवसर' मे राम के चरित्र को आपने नयी मानवीय दृष्टि से चित्रित किया है। इसमें सीता का जो चरित्र आपने अंकित किया है, वह बहुत ही आकर्षक है। अब तक सीता का चरित्र इस प्रकार तेजोदृप्त रूप में नहीं चित्रित किया गया था। साथ ही सुमित्रा का चरित्र आपने बहुत तेजस्वी नारी के रूप में उरेहा है। जो लोग परम्परा से राम और भरत के विशुद्ध अविशंकित भ्रातृ-भाव को, जिसे तुलसीदासजी ने अपनी चरम सीमा पर पहुँचा दिया है, मन में स्थान दे रखा है, वे इससे थोडा चौंकेंगे। उन्हे यह बात शायद नही पसन्द आयेगी कि रामचन्द्र ने सिर्फ भरत और कैकेयी की गतिविधियों की जानकारी के लिए ही चित्रकूट में कुछ काल तक प्रतीक्षा की थी। क्योकि वे राम को ऐसी शंकाओ से ग्रस्त नहीं देखना चाहेंगे। लेकिन मानव-रूप मे राम का सावधान रहना असंगत नही होना चाहिए।

कुछ दिन पहले मैं कलकत्ता में था। वहाँ श्री माधवप्रसादजी गोयनका ने मुझसे एक प्रश्न पूछा था। प्रश्न यह था कि भरत और शत्रुघ्न को राम के राज्याभिषेक के अवसर पर ननिहाल से क्यों नहीं बुला लिया गया था। मैंने जैसा-तैसा कुछ उत्तर तो दिया था लेकिन उससे उनको सन्तोप नही हुआ और सच वात तो यह है कि मुझे भी सन्तोष नहीं हुआ। अव सोचता हूँ कि गोयनकाजी को आपकी पुस्तक पढ़ने के लिए कह दूँ। इस पुस्तक से मानवीय धरातल पर इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है।

कैकेयी का चरित्र भी इसमें इस प्रकार अंकित किया गया है कि उसके भीतर की प्रतिहिंसा का स्वरूप और उसकी मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओ का रूप संगत हो जाता है। दशरथ का चरित्र अवश्य ही ऐसा है जिसे परम्पराप्रेमी स्वीकार करने में थोड़ा हिचकिचायेंगे। वे लोग यह भी नही स्वीकार करना चाहेंगे कि कौशल्या और उनके पुत्र राम, दशरथ के द्वारा सदा उपेक्षित रहे। लेकिन आपने अन्त.पुर के ईर्ष्या-द्वेप से जर्जरित अवस्थाओ का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि यथासम्भव रामायण कथा की मूल घटनाओं को परिवर्तित किये विना आपने उसकी एक मनोग्राही व्याख्या की है। 'यथासम्भव' इसलिए कह रहा हूँ कि लक्ष्मण का उस समय तक विवाह नही हुआ

था यह बात कदाचित् लोगों के गले से न उतरे। हिन्दी साहित्य में तो उर्मिला को लेकर जितनी चर्चा हुई है वह इस कल्पना से एकदम व्यर्थ हो जाती है। इधर माण्डवी पर भी कई पुस्तकें लिखी गयी हैं। रवीन्द्रनाथ ने भी काव्य की उपेक्षिताओं में उर्मिला की चर्चा की है। इस प्रकार लक्ष्मण के अविवाहित रहनेवाली बात कदाचित् आसानी से नहीं स्वीकार की जायेगी। लेकिन राम-कथा के इतने रूप हैं कि इससे भी 'कल्पभेद' से 'हरिकथा' की अनेकरूपता का ही सन्धान मिलेगा। 'कल्प' वस्तुतः रचयिता की परिकल्पना का ही नाम है। रचयिता यहाँ अवश्य ही आदिस्रष्टा है।

सबसे ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसमें राम का वनवास 'अवसर' के रूप मे ही चित्रित किया गया है। राम ऐसा ही अवसर खोजते थे और वह अवसर उन्हें कैकेयी के प्रकोप के द्वारा अनायास मिल गया। पुस्तक का नाम 'अवसर' देकर आपने इसी तथ्य को ध्यातव्य बना दिया है।

सीता का जो नया तेजस्वी रूप आपने उभारा है उसकी अन्तिम परिणति किस रूप में होने जा रही है, इसकी बड़ी प्रतीक्षा रही। पुस्तक आपके अध्ययन, मनन और चिन्तन को उजागर करती है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

भवदीय,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[88]

अम्बाप्रसाद 'सुमन' के नाम

रवीन्द्रपुरी,
वाराणसी
21-11-77

प्रिय भाई सुमनजी,

सादर सप्रेम नमस्कार।

आपका 6-11-77 का कृपा-पत्र मिला। बहुत परेशानियो में था। उत्तर नहीं दे पाया। क्षमा करें।

मुझे विश्वास ही नहीं होता कि आप अवकाश प्राप्त करने की अवस्था पार कर गये। समय कितना तेजी से बीत रहा है? 'अनामदास का पोथा' आपको अच्छा लगा, इससे बड़ी प्रसन्नता हुई।

'प्रस्तोता', 'उद्गाता' आदि शब्द छान्दोग्य उपनिषद् से ज्यों-के-त्यों ले लिये गये हैं। यह सामवेदीय उपनिषद् है। इसलिए ये सामगान के पारिभाषिक शब्द हैं।

गान के सन्दर्भ में प्रस्तोता=कार्य आरम्भ करनेवाला। उद्गाता=गान

करनेवाला। तृतीय उपसंहार करनेवाला है। किसी वैदिक सामवेदीय व्याख्यापरक ग्रन्थ में इनके अर्थ मिलेंगे या छान्दोग्य के ही भाष्य में।

परमात्मा आपको दीर्घजीवन और उत्तम स्वास्थ्य दें। जरा जल्दी में हूँ। मेरी पत्नी अस्पताल में पड़ी हुई हैं। मन चंचल है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[89]

राममूर्ति त्रिपाठी (उज्जैन) के नाम

वाराणसी
1-8-77

प्रियवर त्रिपाठीजी,

खुश रहो।

आपका कृपा-पत्र मिला। पत्र मे प्रस्ताव तो लुभावना है। पर शायद एक अन्य विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष की भाँति आप भी धोखे में हो। उक्त अध्यक्षजी ने भी ऐसा ही प्रस्ताव रखा था, पर जब उन्हें पता चला कि मैं सत्तर पार कर रहा हूँ तो धीरे से प्रस्ताव वापस ले लिया। जान बची, मगर थोड़ी तकलीफ तो हो ही गयी। इसीलिए कह रहा हूँ कि बूढे बैल को नाथने से पहले थोड़ी सावधानी बरतनी चाहिए।

दूसरी बात यह है कि अपनी हैसियत नही समझ पा रहा हूँ आपने दो जाति के अतिथि अध्यक्षों की चर्चा की है: (1) कार्यरत और (2)अकार्यरत। कार्यरत को शायद साहित्यशास्त्र में 'धीरोदात्त' कहते हैं, जैसे सुमनजी। अकार्यरत को शायद 'धीरललित' कहते हैं, जो बेमतलब के कामों में परेशान रहता है, जैसे'''। मगर छोड़िए, बेकार के झमेले मे नही पड़ना चाहिए। जो बेकार के झगड़े में नही पड़ता, उसे आप लोग अर्थात् साहित्य मर्मज्ञ 'धीर प्रशान्त' कहते होंगे। मैं प्रथम श्रेणी मे नही आता, द्वितीय श्रेणी में भी नही। तृतीय श्रेणी मे शायद। 'धीर प्रशान्त' गुरुगम्भीर शब्द है। लोकभाषा में यदि इसका अर्थ यह हो कि यह व्यक्ति जो धीरे-धीरे प्रशान्त हो रहा हो, तो मेरी गणना उसमे हो सकती है।

एक तीसरी बात भी है—कान मे कहने लायक। मैं छह महीने के लिए शान्तिनिकेतन मे कुछ इसी तरह के काम के लिए बात दे चुका हूँ। स्वास्थ्य ठीक नहीं था, इसीलिए जा नही सका था। कही और जाने मे 6-7 महीने का व्यवधान पड़ सकता है। मगर अभी तो स्वास्थ्य ही ठीक नही चल रहा है।

आशा करता हूँ स्वस्थ और सानन्द हैं। सुमनजी को मेरी शुभकामना दें।

शुभैषी
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[90]

मूलचन्द्र गौतम (चन्दौसी, मुरादाबाद) के नाम

वाराणसी
14-2-78

प्रिय गौतमजी,

कृपापत्र मिला। बहुत अनुगृहीत हुआ। आपने इस प्रकार पत्र लिखा है जैसे मैं कोई ज्ञानी सन्त होऊँ। 'अनामदास का पोथा' आपको पढ़ने योग्य लगा, इसे मैं अपना भाग्य समझता हूँ। विवाह हो या उद्वाह, पुरुष का स्त्री से ही होता है। दोनो में शारीरिक, मानसिक आकर्षण तो होना ही चाहिए। आध्यात्मिक हो तो और अच्छा। मेरी दृष्टि में 'उद्वाह' में आध्यात्मिक पक्ष प्रवल होता है। मानसिक आकर्षण तो इसमें भी रहेगा पर वही अन्त नही होते। यह मेरा अपना विचार है। गलत या सही, मैं नही कह सकता। ऐसा सोचना अच्छा लगता है। शायद ठीक भी हो।

आशा है, स्वस्थ और सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[91]

कृष्णचन्द्र गुप्त (मुजफ्फरनगर) के नाम

वाराणसी-5
18-7-78

प्रिय गुप्तजी,

आपका 13 जुलाई का कृपापत्र मिला। अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। आपने जिस प्रेम के साथ मुझे स्मरण किया है उसके लिए बहुत ही अनुगृहीत हूँ! लावण्य और माधुर्य के बारे मे मैंने कही अपना विचार लिखा तो अवश्य है, लेकिन स्मरण नही आ रहा है कि कहाँ लिखा है। आपने ठीक ही लिखा है कि ये दोनों शब्द क्रमशः 'लवण' और 'मधुर' से वने हैं और वाह्य इन्द्रियों द्वारा गृहीत शब्द को मानसिक आनन्द के लिए व्यवहार किया जाने लगा है। इस समय मैं थोड़ा अस्वस्थ हूँ इसलिए संस्कृत के मूलग्रन्थों से इन दोनों के भेद खोलने मे असमर्थ हूँ। लेकिन मैंने स्वयं जो सोचा है, उसे निवेदन कर देना चाहता हूँ। लावण्य उस सौन्दर्य को कहते हैं जो निश्चित मात्रा मे रहने पर ही सुखद होता है। जिस प्रकार भोजन में लवण

एक निश्चित मात्रा में ही प्रीतिकर होता है, अधिक या कम हो जाने पर उतना प्रीतिकर नहीं होता। और यदि अधिक हो जाये तो भोजन के आनन्द में बाधा भी उत्पन्न करता है ! किसी व्यक्ति या वस्तु का सौन्दर्य निश्चित मात्रा मे ही सुखकर होने पर उस व्यक्ति या वस्तु के सौन्दर्य को लावण्य कहा जाता है। माधुर्य के साथ यह बात नहीं। वह कुछ ज्यादा कम होने पर भी अप्रीतिकर नही होता ! इसके अतिरिक्त, माधुर्य अधिक शामक होता है। मन पर उसका प्रभाव भी शामक होता है ! किन्तु लावण्य उत्तेजक होता है। मेरी समझ मे इन दोनों शब्दों मे यही अन्तर है ! केवल सहृदय ही इन दोनो के फर्क का अनुभव कर सकते हैं। माधुर्य मे 'सुषमा' बनी रहती है ! लावण्य मे उसके विचलित होने की भी आशंका बनी रहती है ! 'सुषमा' सु+समा है, अर्थ है well-balanced अर्थात् सब ओर से साम्य की रक्षा करनेवाला।

आज इतना ही। संस्कृत ग्रन्थों में इन दोनो शब्दो की जो परिभाषा लिखी हुई है उसे खोजकर बाद में लिखूँगा।

आशा है, आप स्वस्थ और सानन्द होगे।

आपका

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[92]

प्रोफेसर रामपूजन तिवारी के नाम

दिल्ली

19-2-1956

प्रिय तिवारीजी,

आपके पत्र का उत्तर मैंने बनारस से ही दे दिया था। मैं आजकल 9 फरवरी से दिल्ली मे हूँ। गवाहियाँ चल रही हैं। हिन्दी का भविष्य अब बहुत अन्धकारमय नही जान पड़ता। मैं आकर थोड़ा अस्वस्थ हो गया था। अब ठीक हूँ। आपके क्या हाल हैं ? मैं 23-24 ग्वालियर मे रहूँगा। तोमरजी को लिख तो दिया है कि वे मुझसे वहाँ मिलें पर उनका कोई उत्तर अभी तक नही मिला। शेष वहाँ जाने पर मालूम होगा। आपके यहाँ से जायसवाल साहब का एक पत्र पं. बनारसीदासजी के यहाँ आया है जो बड़ा निराशाजनक है। हिन्दीभवन के बारे मे वे चिन्तित जान पड़ते हैं। आपके यहाँ अब उपाचार्य कौन हो रहा है ? यहाँ अखबारों में छपा है कि काशी विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर ने त्यागपत्र दे दिया है। पता नही यह बात कहाँ तक ठीक है। पर चिन्ताजनक अवश्य है।

आशा है आप सानन्द हैं।

आपका

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[93]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी
9-6-58

प्रिय तिवारीजी,

प्रणाम।

5-6-58 का कृपापत्र मिल गया है। 7 जून को एक्जामिनेशन कमिटी की मीटिंग थी। मुझे 5 जून को सूचना मिली। मैं एक बारात में छपरा गया था, लौटते समय थोड़ी लू लग गयी। कोई खास कष्ट तो नही हुआ पर अभी तक हिलने-डोलने की इच्छा नही हो रही है। इसीलिए मैं जा नही सका। जाना तो शायद पड़ेगा ही। सोचता हूँ, एक-आध सप्ताह बाद चलूं। कलकत्ते भी जाना है। देखना है एक-दो लड़कों को। आप भी साथ रहें तो अच्छा हो। बबुआ की माँ भी रहेंगी। *आप 200 रु. में बे-दाँतमार्गी हो गये, यह अच्छा ही हुआ। गर्मी तो यहाँ* भी है। पुतुल पति के साथ शिमला गयी है। पीछे-पीछे तितिल और मुन्नु भी चल पड़ीं। यहाँ चार पुत्रों के साथ हम लोग विराजमान हैं। एकाध मँगनी के पुत्र भी आ गये हैं। पिताजी भी गाँव गये हैं। पानी बरसने के बाद बनारस आइए। शेष कुशल है। आशा है, घर पर सब लोग सानन्द होंगे।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

[94]

3-12-60

प्रिय तिवारीजी,

प्रणाम।

बहुत दिनों से आपका कोई पत्र नही मिला। नाराज तो नही हैं। मैं यहाँ आकर काम-काज में मगन हो गया। अब यहाँ का पोस्ट विज्ञापित हुआ है। देखें क्या होता है। मैंने निश्चय किया है कि आवेदन नही करूँगा। अपने निश्चय की सूचना भी दे दी है। कदाचित् जरूरत न पड़े। पर अभी अनिश्चय तो है ही। चार सप्ताह और रह गये हैं। ये लोग अनुकूल ही है।

तितिल और लालजी मजे में हैं। पिताजी भी आ गये हैं। एक भृत्य भी मिल गये हैं। ब्राह्मण हैं और ज्योतिषी भी। काम ज़रा धीरे-धीरे करते हैं। Combined Hand तो हैं ही। प्रत्येक गलती को 'फिलासोफाइज' करते हैं। रोटी कच्ची है तो उसका कारण कोई गूढ़ तत्त्व-दर्शन है, जल गयी तो दूसरा तत्त्व-दर्शन

तैयार है। मजे में निभ रहा है। सिर्फ तितिल से डरते हैं। तितिल भी कुछ 'आनर्ड फील' कर रही है। चलो एक आदमी पर तो रोब है। सुभीता यह है कि सुनते कम हैं—लेकिन इसकी व्याख्या भी उनके पास है !

आज तै किया है कि आपको 500 रु. भेज दूँ। यह भी तै किया है कि वहाँ यूनाइटेड बैंक में जो कुछ भी है उसे बन्द करके आपके एकाउण्ट मे जमा करा दूँ। पता नही कि उसमें कितना है। कभी बोलपुर जायँ तो पता करें। उस पत्र की एक कापी आपको भी भेज रहा हूँ।*

ऊपर जो सील है सो हमारे विभाग के क्लर्क महोदय ने बनवाकर दान किया है। अभी तक इसका व्यवहार नहीं किया था। अब आपके पास भेज रहा हूँ।

शेष कुशल है। शिवचन्द्रजी से आपने कोई चर्चा चलायी थी ? क्या कहा उन्होंने ? मेरा मतलब नलिनजी के भाई के बारे मे पूछताछ करने से था। कुछ इस दिशा में सहायता कीजिए। कुछ समझ नही पा रहा हूँ। इसे ज़रा जल्दी कीजिएगा।

आशा है, सानन्द हैं।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

* सीधे लिखना सम्भव नही है। कोई कागज पास नही है। सो उसकी प्रति आपके ही पास भेज रहा हूँ। एकाउण्ट नम्बर का स्थान खाली रख दिया है। उस पर नम्बर चढ़ाकर उन्हें दे दें।

हजारीप्रसाद

[95]

काशी विश्वविद्यालय
वाराणसी
25-2-59

प्रिय तिवारीजी,

प्रणाम।

उस दिन मैं नही आ सका। चलने की सब तैयारी कर चुका था। अचानक एक सेलेक्शन कमिटी की सूचना मिली और मैं रुक गया। परिणाम अच्छा नही हुआ। खैर भगवान की जैसी इच्छा। इधर मकान का काम भी तेजी से चल रहा है। सारा संचित धन समाप्त हो गया और ओर-छोर का कहीं पता नही लगता। मेरे बिल का भुगतान हो गया हो तो तुरन्त भेज दें। सम्भव हो तो कुछ और मिलाकर भेजिए। इस समय बड़ी तंगी है। पैसा दो-तीन महीने बाद मिल जायेगा। पर यहाँ तो प्रतिदिन जरूरत पड़ रही है। आपके पास कुछ हो तो भेज

दें। दो-चार महीने में लौटा दूंगा। पर न हो तो चिन्तित होने की बात नहीं। समय मिले तो यूनाइटेड बैंक वालों से मेरे हिसाब के बारे में पूछ लीजिएगा। अगर उसमें कुछ हो तो मैं उसे आपके नाम ट्रांसफर कर दूंगा। शेष कुशल है। आशा है, प्रसन्न हैं। तोमरजी को मेरा नमस्कार कहें।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

[96]

जी 7, सेक्टर 14
चण्डीगढ़-3
29/30-4-66

प्रिय तिवारीजी,

नमस्कार।

आपका पत्र कल मिला। क्या उत्तर दूं, कुछ समझ में नहीं आता। यहाँ एक-दो दिन पहले यहाँ के वाइस चांसलर साहब से बातचीत में मैंने कह दिया था कि साल-भर बाद मेरा रिटायर होने का समय आ जायेगा। वे हँसते हुए कहने लगे कि हम रिटायर होने देंगे तब न? बात हँसी-हँसी में ही उड़ गयी। मैं 10-12 दिन में काशी जानेवाला हूँ। वहाँ जाकर कुछ स्वस्थ और अनासक्त भाव से विचार करूँगा। तब तक मन्थन चलता रहेगा। यहाँ 6 वर्षों से काफी जड़ें जम गयी हैं। उखड़ने की कल्पना ही परेशान कर देती है।

इस समय तो आप कृपा करके दो काम कीजिये। (1) एक तो कालिदास बाबू को मेरी हार्दिक कृतज्ञता कह दें जो उन्होंने मेरे ऊपर ऐसा प्रेम दिखाया है और उन्हें यह भी कह दें कि मेरे लिए पैसों की चिन्ता कम कर दें। शान्तिनिकेतन में कुछ शान्तिपूर्वक रह सकूं, यही वाञ्छा है। (2) दूसरी बात यह कि 1600 मासिक देकर वे लोग मुझसे क्या कराना चाहते हैं। किसी के स्थान पर जाना मेरी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। यह क्या नई कोई सेवा है?

मैं बनारस जाकर जरा और सोचकर आपको लिखूंगा। फिर यहाँ कुछ और भी बातचीत करने का अवसर मिल जायेगा। किसी से शान्तिनिकेतन वाली बात तो अभी नहीं करूँगा। जब निश्चित रूप से कुछ तै कर लूंगा तभी आगे बात करूँगा।

आपको नये पद के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ। परमात्मा आपको सफलता देंगे।

सभी मित्रों को नमस्कार दें।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

30 जून, 1974

प्रिय चोपड़ा जी,

हम लोग सकुशल कल पहुँच गये। आपने हमारे लिए जो सुन्दर व्यवस्था की थी उससे हम सभी बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुए। चण्डीगढ़ में और रास्ते में भी हम लोगों को विशेष आराम और सुख मिला। चण्डीगढ़ से दिल्ली आते समय भी हम लोग बहुत आराम से पहुँच गये। भगवान् की कृपा से लम्बी यात्रा में भी कोई कठिनाई नहीं हुई। सब लोग सानन्द पहुँच गये।

श्रीमती द्विवेदी अपनी नयी बहू को देखकर प्रसन्न हैं। वे आपको और श्रीमती चोपड़ा को अपना आनन्द पहुँचा देने को कह रही हैं और आप दोनों को हार्दिक नमस्कार निवेदन करती हैं।

आ. अनुराधा प्रसन्न और स्वस्थ हैं। लम्बी यात्रा और बेहद गर्मी से कल थोड़ा मुरझा अवश्य गयी थी परन्तु आज प्रसन्न है। चण्डीगढ़ में आपके आँखों में आँसू देखकर मुझे थोड़ा कष्ट हुआ। यद्यपि मैं जानता हूँ पिता के लिए ऐसे अवसर पर आँसू रोकना कठिन होता है, निश्चय ही उसकी माँ और बहन भी विचलित होंगी परन्तु आप कोई चिन्ता न करें। एक माँ-बाप की गोद से उठकर वह दूसरी माँ-बाप की गोद में आ गयी है। उसे किसी प्रकार की उदासी या कष्ट न हो, इसके लिए हम लोग सदा प्रयत्नशील हैं और रहेंगे। आ. अनुराधा की जेठानियाँ और ननदें बहुत खुश हैं। उन्हें ऐसा लग रहा है कि घर में एक नयी ज्योति आ गयी है।

विवाह विधि के सम्बन्ध में पण्डितजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। शुद्ध वैदिक रूप से विवाह करवाया और बच्चों को अर्थ और महत्त्व समझा दिया। मुझे बहुत अच्छा लगा। मेरी ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद दें। आशा करता हूँ कि आप लोग स्वस्थ और सानन्द है। आप दोनों हम लोगों का नमस्कार स्वीकार करें और चि. पूजा को हम लोगों का बहुत-बहुत प्यार और आशीर्वाद दें।

आपका,

हजारीप्रसाद द्विवेदी